



वेद और ब्रह्म का रहस्य वा तत्त्व ।

— ईशाद्यष्टोपनिषद् —

अष्टाद-रंता, केन, कठ, मम, छन्द, माण्डूक्य, तैत्तिरीय और ऐतरेय ब्रह्मसूत्र

अन्वय. पदार्थ और भाषार्थ सहित ।

छापा सुन्दर बम्बई टाइप, कागज चिकना और पुष्ट

पृष्ठ ४३६ जिल्द कपड़े की मजबूत, मूल्य

१) रुपया ढाक सहस्रसूत्र २) आना ।

यदि आप दुर्लभ मनुष्य शरीरको कूकर सूकर की समान न खोकर सार्थक करते हुए संसारसागर के पार होना चाहते हों, यदि आप अपने स्वस्वको परिचागकर जीवित समय पर्यन्त जीवन्मुक्ति और अन्तर्मायुज्यमुक्ति चाहते हों तो प्रतिदिन थोड़े समय उपनिषदोंका विचार किया कीजिये, जिस भगवद्गीताको देशी, विदेशी हिन्दू, अहिन्दू सब ही गोरव की दृष्टिसे देखते हैं, वह गीताकृपी अमृत भगवान् श्रीकृष्ण ने उपनिषदोंमें से ही दुहर कर अर्जुन को पिलाया था, इतने से ही उपनिषदों की महिमा समझ देखिये, उन ही ईशा आदि आठ उपनिषदों को अन्वय पदार्थ और सरल भाषार्थ सहित छापा है जो कि—सुबोध गुरुका काम देता है ।

पता—पण्डित रामस्वरूप शर्मा

सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद.

सनातनधर्मप्रेसकी छपी पुस्तकें

सनातनधर्मशिक्षा—वेदशास्त्रोंके प्रमाण और युक्तियें
सनातनधर्मका मण्डन जिल्द सहित मूल्य १ रुपया । व्याख्यान
माला—स्वामी ईशस्वरूपजी के मूर्तिपूजा, भवनार, अहिंसा
सन्ध्यादिपर जगत्प्रसिद्ध दश व्याख्यान कीमत् १०० आना ।
व्याख्यानकुसुम—अहिंसा, वेदमहिमा और कुरीतिसंशोधन
पर महामहोपाध्याय स्वामी रामामेशशास्त्रीजीके व्याख्यान मूल्य
४ आना । तीन व्याख्यान—कर्म, ज्ञान, भक्तिार मि० एनी-
वसेंटके व्याख्यान मूल्य ४ आना । विधवाविवाहमीमांसा-
प्रमाण युक्तिसहित विधवाविवाहका तण्डन कीमत् १ रुपया
श्रीकृष्णतत्त्व—मि० एनिवसेंट का व्याख्यान मूल्य २ आना
आदिसिद्धि—१० रामप्रापशास्त्रिका १ आना । ईशावष्टो-
पानपट्ट—अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित ईश, केन, कठ
प्रश्न, सुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय और ऐतरेय उपनिषद् सजिए
मूल्य १ रुपया । गाथजी व्याख्या—मूल्य १॥ आना । भार-
तीर्षि-राजभक्त, देशभक्त, स्वामिभक्त और धर्मभक्त, राजपू, मराठे
आरसिखोंके १ जीवनचरित्र कीमत् १२ आना । शंकरविजय-
नाटक-जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीका जीवनचरित्र की० १ रु०
पंचमहापञ्चविधि (२) सन्ध्याविधि । चैराग्यशतक—अन्वय
पदार्थ और भावार्थ सहित ४ आना । वेदान्तसूत्र भा. टी. स. ॥
हरिकीर्तनगजलसंग्रह प्रथमभाग (२) द्वितीयभाग (२) चैतान्दी
गजधनौषहार (२) सुदामाचरित्र गजधनभजन (२) बलिलीला (२) भजन
बोधपरीक्षा (२) गंगालहरी भा. टी. (२) ॥ महिम्नःस्तोत्र भाषाटीका (२)
महिम्नःस्तोत्र और शिवगायत्र भाषाछन्दमें टीका (२) गंगालहरी
भाषाछन्दमें टीका (२) रामगीता भा० टी० (२) वचनतामालासका
इनके सिवाय बंबई की छपी सबप्रकारकी पुस्तकें मिलेंगी । १३८

मिलने का पता—

भैनेजर—सनातनधर्म व्याखाना सुरादावा

ता करने के लिये उस पवित्र वाक्यराशिके चार भाग किये ऋक्, यजु, साम और अथर्व । पद्यमय वाक्यावलि ऋक्, गीतिमय वाक्यावलि साम, और शेषगद्यमय वाक्योंका नाम यजु हुआ, इस विभागसे पहिले यह समस्त वाक्यावलि त्रयी नामसे प्रसिद्ध थी, त्रयीका ही एक अंश स्वतंत्र भावसे अथर्व नामसे प्रसिद्ध है, यही विभाग व्यासजी ने किया है, त्रयी के कर्मों की अपेक्षा अथर्व के कर्म स्वतन्त्र हैं, इसीकारण त्रयीविषयक कर्मोंमें अथर्वका नामोद्धेख और अथर्वविषयक कर्मोंमें त्रयीका नामोद्धेख नहीं है।

ऋक्, यजु और साममें कर्म, उपासना और ज्ञानका वर्णन कहीं स्वतन्त्ररूपसे और कहीं मिश्रितरूपसे है, अन्तःकरणशुद्धिके द्वारा प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्तिमें लानेके निमित्त यजुर्वेद यज्ञोपयोगोंकीभित्ति है, ऋग्वेद के मंत्र उस भित्तिको सुशोभित करनेवाले चित्ररूप हैं और उन चित्रोंमें सामगीतिरूप मणिमुक्ता सजेहुए हैं, परन्तु वैदिक कर्मको भूमिरूप यजुर्वेद ही है, इसकारण सबसे पहिले यजुर्वेदसंहितासे ही धार्मिकोंका गृह सुशोभित होना चाहिये ।

वेद किसी का रचाहुआ नहीं है, प्रतिकलकी आदिमें परमात्मा उसका स्मरण करके प्रजापतिके हृदयमें उसकी प्रेरण करते हैं इसीकारण लिखा है कि—

न कश्चिद्वेदकृत्तास्ति वेदस्मर्ता महेश्वरः ।

वेदका बनानेवाला कोई नहीं है महेश्वर उसका स्मरण किया करते हैं, तदनन्तर ऋषिरम्परासे श्रवण हो होकर उसका प्रचार होता रहता है, इसी कारण वेदका दूसरा नाम श्रुति भी है । वेदकी आनुपूर्वी सदासे एकरूप और अनादि है इसीकारण वेदके अक्षरोंका यथाविधि उच्चारण होनेपर ही शास्त्रोक्त फल प्राप्त होताहै, इसीकारण मंत्रोंका यथावत् उच्चारण होनेके लिये स्वरोंका विन्यास और उच्चारण का क्रम स्वतन्त्ररूप से विधिवद्ध कियागया है ।

कर्म में वेदके मंत्रोंका अर्थज्ञान केवल उच्चारणशुद्धिके निमित्त ही जानना आवश्यक है, मुख्य तो मंत्रोंका यथार्थरूपसे उच्चारण ही है, इसीकारण कर्मके समय वेदमंत्रोंके अर्थका विचार वा वर्णन न होकर

पर कुछ ध्यान नहीं दिया कि मनमाना अर्थ करने से पुरातन मर्यादानुसृत त्वरविन्यास के प्रतिकूल मेरा हास्य और वैदिकधर्मकी मूल में कुठारा घात होगा, जो केवल अर्थमात्र दिखाकर वेद को ऐहिकोन्नतिमात्र साधन के प्रेमियोंका रुचिकर बनाना चाहते हैं, वह वेद के वेदत्व को जानते ही नहीं। ऐसे कल्पित अर्थमात्रसारवाले वेद न समझे जायें इस कारण यह वेदका संचित अर्थ पुरातन महर्षिपर उल्लट आदि रचित भाष्यों के अनुसार लिखा है।

वैदिक यज्ञादिमें पञ्चालम्बनके विषयको लेकर आजकल प्रायः विवाद होता है, इसका कारण यह है कि आजकल लोग धर्मका स्वरूप मनमाना बनाते हैं, पाँचले लोगोंका विश्वास था कि-जिसको वेद कर्तव्य कहता है वह धर्म है और जिसका वेद निषेध करता है वह अधर्म है, इस नियमका पालन करके निजकर्तव्यका पालन करनेवालोंको कुछ शक्ति प्राप्त होती थी, उस शक्तिको धार्मिकजन योगादुष्टानसे सम्मानितकर पञ्चभूतोंपर प्रभुता जमाते थे, सूक्ष्मसृष्टिमें पहुँचानेके कारण उनको देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन होता था, वह प्रकृति और पुरुषके स्वरूपको करामतकबू देखते थे, इसप्रकार अपना उद्धार करके वह परमपदको पाते थे, ऐसेही महात्मा वैदिक यज्ञों में यजमान होता ऋत्विज् आदिके आसनको सुशोभित करते थे, उनके मंत्रों के प्रभाव से स्थूलसूक्ष्म दोनों प्रकारके पञ्चभौतिक शरीर उनकी इच्छानुसार परिचालित होते थे, उनके विश्वासादुसार जैसा कि-पूर्वमोमांसादिमें निर्णय किया है, वैदिक यज्ञोंमें यथाविधि पञ्चालम्बन धर्म था, उसमें उदरम्भरोंको कौहुई हिंसा की समान भाव नहीं होता था, आजकल के शिक्षादरपरायण स्वकल्पित कृत्रिम धर्म माननेवालों के सामने इस बातको रखकर मानो वैदिकधर्मसे उनकी रुचि हटाना है इसीकारण शान्त्रने सिद्धान्त किया है कि हरएक बात अधिकारसे कहना चाहिये, आजकलके स्वयन्त्रचित्तोंका अनुमान करकेही पुरातन महर्षि कालमें प्रशस्तेनादि यज्ञोंके करनेका निषेध करगये इसके अतिरिक्त ऐसे यज्ञोंमें श्रद्धा न होनेके कारण आजकलके वेद २ प्रकारकेवाले उन यज्ञोंके अधिकारों में तो नहीं हैं, फिर वह इनकी वर्षा

हैं क्या करें, अथवा वेदिक यज्ञादि कर्मकलाप काम्य है, जो प्रवृत्तिमार्ग के बगैरही स्वर्गादिकी चाहना समझे हैं, और उनको यह विश्वास हो कि—इन यज्ञोंके करनेसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होता है, तो वह इन यज्ञाका पुरातन रीतिमें यथाविधि अनुष्ठान करें, और उनको यदि इन उपायोंसे स्वर्गादि भित्तनेको श्रद्धा नहावे तो वह इनका अनुष्ठान करेगें ही क्यों ? और शास्त्र उनको करनेका प्रेरणा ही कर रहा है, क्योंकि—वह ब्रह्मज्ञान होनेमें उस कर्मके अधिकारी नहीं हैं, वर्ममें तो सबसे पहिले अधिकारी होनेकी आवश्यकता है, जैसे वैद्यशास्त्रमें अनेकों रोगोंपर बहुतसी औषधियाँ काष्ठादिक लिखी हैं और बहुतसी मासमयी लिखी हैं, जिनकी मासमें घृणा हो वह मासमयी औषधि क्यों खाएँ, जिन प्रवृत्तिप्रेमियोंको मासका अभ्यास है उनके ही निमित्त वह उपयोगी होगी, ऐसे ही जिनकी माससे घृणा है और जो प्रवृत्तिको हेय समझकर निवृत्तिसे प्रेम करनेवाले हैं वह उन काम्य यज्ञोंको क्यों करें उनकी चित्तशुद्धिके लिये नित्यनैमित्तिक कर्तव्य कर्मानुष्ठान तथा योगसाधनाके अङ्गरूप शमदमादि निर्दिष्ट हैं । ऐसे ही निवृत्तिमार्गप्रेमा जितने ही धार्मिक मित्रोंकी प्रेरणासे मैंने इस साक्षिसार्थको लिखतेसमय अथालम्भनादि न्यत्नोंपर पुरातन भाष्योंके अविरुद्ध हिंसाभासको भी बचादिया है, वास्तवमें मुझे इस साक्षिसार्थके लिखनेका अहन्त्व नहीं है, क्योंकि—इस अनुवादमें मेरी अपनी रचना कुछ नहीं है, मैंने अवतरकके छपे हुए संस्कृतभाष्य और भाषानुवादांको सामने रखकर इस अनुवादका स्वतन्त्र रीतिपर सम्पादनमात्र कर दिया है, और अतिमुल्लभ मूल्यपर पताकाके ग्राहकोंकी सेवामें भेजनेकी इच्छा से छपवाकर प्रकाशित किया है ।

निवेदक—

क० कु० रामस्वरूप शर्मा



धन्यवाद ।

मुरादाबादके प्रतिष्ठित रईस साहू पुरुषोत्तमशरण जीको कोटिशः धन्यवाद हैं, इस सनातनधर्म प्रेस की स्थिति और सानुवाद यजुर्वेदसंहिता के प्रकाशित होनेका आश्रय आप ही हैं, क्योंकि—आपने ही स्वर्गीय परोपकारपरायण महाराज गोपालजी की प्रेरणा से उपयुक्त रुपये की ऋणरूप सहायता देकर प्रेसको स्थायी किया और आपने ही यजुर्वेद की तयारीके निमित्त भी ऋणस्वरूप रुपया देकर इस कार्यको भेरे हाथसे पूर्ण करादिया, कदाचित् आपकी यह सहायता न मिलनेसे मैं इस कार्यका निर्वाह न करसकता, साहूसाहबकी ऐसी ही सहायता समय २ पर मिलते रहनेसे आशाहै सनातनधर्मपताकाके ग्राहक बहुतसे धर्मग्रन्थोंको बहुत ही सुलभता से पासकेंगे, आपका पवित्र चित्र भी किसी दूसरे पुस्तकमें ग्राहकों की भेट कियाजायगा । मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि—वह साहू साहबके पुत्रपौत्र धनधान्यादिकी दिनप्रतिदिन वृद्धि करें । इसके सिवाय खुरजेके रायबहादुर ला० नत्थीमल साहबने भी पचास रुपया यजुर्वेदके छपनेकी सहायतार्थ धर्मार्थ दिया था, तिसका धन्यवाद है ।

रामस्वरूप शर्मा

सम्पादक सनातनधर्मपताका मुरादाबाद

* हरिः ३० *

श्रीशुक्लयजुर्वेदः

अन्वयेन भावार्थेन च सहितः

प्रथमोऽध्यायः

प्रणम्य साम्भं गिरिशं गणेशं भाष्यं समालोक्य महीधरीपम् ।

यजुर्मन्त्रां मिलित्वाभि चार्पे परोपवाराय विनेष्टुणाय ॥ १ ॥

हरिः ओं ॥ परमात्मा का आसुरूप वेद प्रथम ब्रह्माजी को प्राप्त हुआ, ब्रह्माजी से ऋषियों को प्राप्त हुआ, परन्तु कितने ही काल के अनन्तर मनुष्यों को मन्दमति देखकर कृपालु भगवान् वेदव्यास ने वेद को ऋक्-यजुः-साम और अथर्व इन चार भागों में विभक्त किया एवं क्रम से पैल वैशम्पायन-जैमिनि तथा सुमन्तु इन अपने चार शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, उन्होंने भी अपने शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, इस प्रकार वेद की सहस्रों शाखा होगई। उनमें से व्यासजी के शिष्य वैशम्पायन जी ने याज्ञवल्क्यादि अपने शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया था, सो देवात् किसी कारण से क्रुद्ध होकर वैशम्पायन जी ने याज्ञवल्क्य जी से कहा कि-मेरे पढ़ाये हुए वेद को त्याग दे, उसी समय याज्ञवल्क्य जी ने योगसामर्थ्य से वेदविद्या को मूर्तिमान् करके उगल दिया उन उगलेहुए यजुर्मन्त्रों को, “ग्रहण करलो” इसप्रकार गुरु के कहने पर वैशम्पायन जी के अन्य शिष्यों ने तित्तिरि (तीतर) बनकर चुगलिया, वह यजुः बुद्धि की मलिनता के कारण कृष्ण होगए। तब दुःखित हुए याज्ञवल्क्य जी ने सूर्य भगवान् की आराधना करके अन्य शुक्ल यजुर्मन्त्र पाए। उन यजुर्मन्त्रों को याज्ञवल्क्य जी ने जावाल यौधेय-कण्व एवं मध्यन्दिन आदि अपने १५ पन्द्रह शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, इस विषय को सूचित करनेवाली श्रुति भी है-“आदित्यानीमानि

शुक्लानि यजूंश्चि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त इति (बृहदारण्य० माध्य० ५।५।३३) अर्थात्—(आदित्यानि) आदित्य से पढ़ेहुए (शुक्लानि) शुद्ध (वाजसनेयेन) वाज कहिये अन्न का सनि कहिये दान है जिसके वह हुआ वाजसनि तिसके अपत्य-वाजसनेय (याज्ञवल्क्येन) याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों के अर्थ (आख्यायन्ते) कहेजाने हैं ” । तिन याज्ञवल्क्य ऋषि से मध्यन्दिन महर्षि ने जो यजुर्वेद की शाखा प्राप्त करी वह माध्यन्दिन नाम वाली हुई । यद्यपि याज्ञवल्क्य ने यह मन्त्र बहुत से शिष्यों को उपदेश किये थे, परन्तु ईश्वर की कृपा से मध्यन्दिन महर्षि के नाम से ही लोक में मसिद्ध हुए उस माध्यन्दिन वेद को जो पढ़ते हैं वा जानते हैं शिष्यपरम्परा से वर्तमान वह भी माध्यन्दिन कहाते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।७ में लिखा है कि—“स्वाध्यायोऽध्येतव्यः” अर्थात् स्वाध्याय (अपने पितृपितामहादि परम्परा करके प्राप्त वेदशाखा) को पढ़ना चाहिये, परन्तु वह अध्ययन (पढ़ना) मत्पेक मन्त्र के ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ को जानकर करना चाहिये, नहीं तो “एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुमूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवत्यथान्तराश्वगर्तं वापद्यते स्यागुं वच्छति ममीयते वा पापीयान् भवति” अर्थात् इन ऋषि छन्द आदि को बिना जाने जो वेद पढ़ता है, पढ़ाता है गायत्री आदि का जप करता है व्याहृत्यां दि से हवन करता है, यज्ञ करता है तथा औरों को यज्ञ कराता है उसका ब्रह्म (वेद) निर्वीर्य (कार्यको सिद्ध न करनेवाला) यातयाम (निष्फल) होता है, और ऋषि छन्द आदि को न जानकर वेदाध्ययन आदि करने के अनन्तर श्वगर्त (नरक विशेष) में पड़ता है, वायु आदि से टूटी है शाखा जिसकी ऐसे शुष्कवृक्ष की थोनि को प्राप्त होता है (ममीयते) अध वा बधिर होता है और अत्यन्त पापाचारी होता है जिसका फल

यह होता है कि श्लेच्छ चाण्डाल आदि योनि में जन्म धारण करना पड़ता है । ऐसा कात्यायन ऋषि का कथन है । जो ऋषि छन्द आदि को जानकर वेदाध्ययन आदि करते हैं उनके विषय में कात्यायन ऋषि का ऐसा कथन है कि—“अथ विज्ञायैतानि योऽधी ते तस्य वीर्यवदय योर्यवित्तस्थ वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्टा तत्फलेन युज्यते” अर्थात्—जो ऋषि छन्द आदि को जानकर वेदाध्ययन आदि करता है उसका वेद वीर्यवान् (कार्य को सिद्ध करने वाला) होता है, जो अर्थ को भी जानता है, उसका वेद अत्यन्त वीर्यवान् होता है, ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ को जानकर जो जप होम तथा यज्ञ करता है वह उसका फल पाता है । इस कारण वेद मन्त्रों के ऋषि आदि का जानना तथा अर्थ को जानना अत्यन्त ही आवश्यक है, नहीं तो वेदाध्ययनादि का फल नहीं प्राप्त होसکتा । अतएव हम पूर्वाचार्यों के भाष्यों के अनुसार वेदों के ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ के लिखने का संकल्प करके प्रथम यजुर्वेद का प्रारम्भ करते हैं, तहां यजुर्वेद के मन्त्रों में कोई यजु है और कोई ऋचा है, तिनमें नियत हैं अक्षर पादावसान जिनके ऐसी ऋचाओं का आवश्यक छन्द कात्यायन ऋषि ने कहा है, और एकाक्षरादि नियताक्षर यजुषों का छन्द पिङ्गल से जानना क्योंकि—साधारणतः तो बत्तीस अक्षर का अनुष्टुप् होता है, परन्तु “इपे त्वा” इस तीन अक्षर के मन्त्र का जो अनुष्टुप् छन्द कहा है, सो कैसे ! इस विषय में पिङ्गल का यह सूत्र है कि—छन्दः । गायत्री । दैव्येकम् । आसुरी पञ्चदश । प्राजा पत्याष्टौ । यजुषां षट् । साम्नां द्विः । ऋचां त्रिः । द्वौ द्वौ साम्नां चर्द्धत । त्रींस्त्रीनृचाम् । चतुरश्रचतुरः प्राजापत्यायाः । एकैकं शेषे । जज्ञादासुरी । तान्युष्णिगनुष्टुब्धृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यः । तिस्रस्तिष्ठः सनाभ्य एकैका ब्राह्मणः प्राग्यजुषामार्ष्य इति अर्थात् दैवी गायत्री छन्द पंद्रह अक्षर का प्राजापत्या गायत्री छन्द आठ अक्षर का, यजुषी गायत्री छन्द छः अक्षर का, साम्नी गायत्री छन्द बारह अक्षर का,

आर्चीगायत्रीछन्द अठारह अक्षर का, आर्पीगायत्री छन्द चौबीस अक्षर का, ब्राह्मी गायत्री छन्द छत्तीस अक्षर का है। देवीगायत्री पर एक २ बढ़ाने पर क्रमसे उष्णिक्, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द होते हैं। और आसुरी में एक २ घटाने से, माजा पत्या में चार २ बढ़ाने से, याजुपी में एक २ बढ़ाने से, साम्नी में दो २ बढ़ाने से, आर्ची में तीन २ बढ़ाने से ब्राह्मी में छः २ बढ़ाने से, तथा आर्पी में चार २ बढ़ाने से क्रमशः उष्णिक् आदि छन्द होते हैं, स्पष्ट होने के लिये नीचे ७२ कोष्ट का यन्त्र लिखते हैं।

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	वृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती
आर्पी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
देवी	१	१	३	४	५	६	७
आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
माजाप०	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुपी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

जहाँ दो तीन छन्दों की संख्या समान हो, जैसे कि देवी त्रिष्टुप् और याजुपी गायत्री की तथा साम्नी गायत्री—याजुपी जगती एवं आसुरी वृहती की है, ऐसे स्थल पर यदि सेन्दह हो कि

यहाँ कौनसा छन्द है तो “ देवतादितश्च ” पिङ्गल ७ । २ के प्रमाणानुसार चतुर्याध्याय के १० । ११ । १२ खण्डों में वर्णन करेहुए गायत्री आदि छन्दों के देवताओं से निश्चय करें, और यदि तहाँ वर्णन करेहुए देवताओं से अन्य देवता होय तो जितने छन्द माप्तहों उन में से चाहे जौनसा छन्द मानलेय और जहाँ आचार्य ने स्वयं छन्द लिखे हैं तदां तो सन्देह करने की कोई आवश्यकता है ही नहीं । इसप्रकार एक अक्षर से लेकर एक सौ छः अक्षर तक के यजुः का छन्द पिङ्गल के अनुसार जानना, परंतु इस से अधिक अक्षरों के होता यक्षद्वनस्पतिभित्यादि,, (यं० २१ । ४६) मंत्रों में छन्द की कल्पना है ही नहीं ।

अब ऋषिका स्वरूप लिखते हैं कि—‘ऋषिर्दर्शनात्, इस निरुक्त के प्रमाणानुसार जिस ने जिसमन्त्र को देखा वह उस का ऋषि हुआ, क्योंकि—‘अजान्ह वै पृरर्नोस्तपमानान् ब्रह्मस्यम्भ्वम्या नर्पतहपयोभवनन्,, इस प्रमाण के अनुसार वेद की माप्ति के निमित्त तप करनेवाले जिन पुरुषों को स्वयम्भू वेद माप्ता हुआ, वह परमेश्वर के अनुग्रह से अतीन्द्रिय वेद का मानस दर्शन करने से ऋषि कहलाए, इस ही आशयको लेकर स्मृति में भी लिखा है कि—‘युगांतेऽन्तर्हितान् वेदान्सेतिहासान् महर्षयः । लेभिरेतपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥,,

अब देवता का स्वरूप कहते हैं, कि—“देवता मंत्रांतर्भूता अग्न्यादिका हविर्भोजः स्तुतिभाजो वा,, अर्थान्=मंत्रों के मध्य में पड़ेहुए हविर्भोक्ता वा सूक्तभोक्ता अग्नि—सोम—इन्द्र—विष्णु आदि देवता हैं । और “यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्यपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तदैवतः स मंत्रो भुवति (नि० ७ । १)” अर्थात् जो कामना करनेवाला ऋषि जिस देवता में आर्यपत्य (उस कार्यसाधनके स्वामित्व) की इच्छा करता हुआ स्तुति करता है वह उस मंत्र का देवता होता है ।

प्रथम अध्याय से प्रारम्भ करके द्वितीय अध्याय की अष्टाईस-

कण्डिका पर्यंत दर्शपौर्णमास यज्ञ(१)के मंत्र हैं, उनका परमेष्ठी मजापति ऋषि है, अथवा मजापाति के पुत्र देवता ऋषि हैं । उ-
 व्वट भाष्य में ऐसा लिखा है कि—‘परमेष्ठिनः मजापत्यस्यार्थं
 देवानां वा मजापत्यानाम्., अर्थात्—इन दर्शपौर्णमास मंत्रों का
 मजापत्य (मजापाति-का अपत्य) परमेष्ठी ऋषि है अथवा मजा-
 पाति के पुत्र देवता ऋषि हैं । ऐसा ही ब्राह्मण में भी लिखा है
 कि—“परमेष्ठी मजापत्यो यज्ञमपरयद्यदर्शपौर्णमासाविति,, तथा
 “ते देवा अकामयन्ते,, त्युपक्रम्य “ततएतंहविर्यज्ञं ददृशुर्गदर्श,,
 पौर्णमासाविति,,॥ इस कारण आगे हम दर्शपौर्णमास मंत्रों का
 महीधर के अनुसार ‘मजापति परमेष्ठी ऋषि न लिखकर श्रुति
 प्रमाणयुक्त होने के कारण उव्वट के अनुसार दर्शपौर्णमास मंत्रों
 का परमेष्ठी मजापत्य ऋषि लिखेंगे ॥

द्वितीय अध्याय के अन्त की छः कण्डिका पितृयज्ञ के मन्त्र हैं,
 उनका मजापति ऋषि है । मथम अध्याय में सब मन्त्र यजु हैं एक
 “ पुरा कूरुष ” इत्यादि मन्त्र ऋक् है, यजुः मन्त्रों का पित्रल
 के अनुसार छन्द जानना, अधिक विस्तार होजाने के कारण यहां
 नहीं कहेंगे । ऋचों के छन्द कहेंगे ।

तहां (मथम अध्याय में) मथम कण्डिका में पांच मन्त्र हैं, दो
 त्रिं २ अक्षर के, तीसरा चार अक्षर का, चौथा वासठ अक्षर
 का और पाँचवां नौ अक्षर का है ।

मकृतिरूप होने के कारण मथम दर्शपौर्णमास के मन्त्र कहते हैं ।
 विधि दो मकार की होती है, एक मकृतिसंज्ञक, दूसरी विकृतिसं-
 ज्ञक जहां सकल अक्षों का उपदेश होता है अर्थात् जिन के मन्त्रों
 में सकल विधान वर्णित होता है वह मकृति कहाती है और जहां
 किसी विशेष अङ्गमात्र का उपदेश होता है एवं शेष अङ्ग(विधान)

(१) भमात्रास्या में जब कि—चन्द्रमा सूर्य का परस्पर दर्शन हो, जो याग किया
 जाता है उसको दंष्ट कहते हैं, और पौर्णमा के दिन जो इष्टि की जाती है उस
 को पौर्णमासयाग कहते हैं, इति विषय में यह श्रुति है कि—“दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेता,,

प्रकृति मन्त्रों से जाने जाते हैं वह विकृति कहाती है। प्रकृति तीन प्रकारकी है, अग्निहोत्र, इष्टि और सोम ।

यद्यपि दर्शपौर्णमास यज्ञ में कृताधान (अग्निहोत्र करनेवाले) को ही अधिकार है, इसकारण मथम अग्न्याधान (अग्निस्थापना) के मन्त्र कहने चाहिये ये परन्तु अग्न्याधान में पवमान नामक इष्टि करनी पड़ती है, अतः पवमान इष्टियों के बिना अग्न्याधान होही नहीं सक्ता और पवमान इष्टि दर्श पौर्णमासकी विकृति हैं अतः दर्शपौर्णमास के ज्ञान के बिना पवमानेष्टि नहीं होसक्ती। इसकारण से, तथा सोमयाग में भी दीक्षणीय मायणीय आदि के विषे दर्शपौर्णमास की अपेक्षा होती है इसकारण भी मथम दर्शपौर्णमास मन्त्रों का कथन ही उचित है वह दर्शपौर्णमास के मन्त्र आगे लिखे 'इपे त्वा' इत्यादि हैं—

हरिः ओ३म् । इपे त्वा । ऊर्जे त्वा वायवं स्थ । देवो वः ।
सविता प्रापयैतु श्रेष्ठतमायु कर्मण आप्यायध्वमध्व्या
इन्द्राय भागन्प्रजावतीरनमीवा अयक्षमा मा धंस्तेन ईशत
माघश ७ सोध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात वव्होः । यज-
मानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥

भावार्थः—मूल में जो “इपे त्वा” इत्यादि लिखा है, वह एक काण्डका है और उस कण्डका में पाँच मन्त्र हैं, मथम मन्त्र के दोपद और तीन अक्षर हैं, उसका दैवी अनुष्टुप् छन्द, शाखा देवता और पलाश की शाखा का छंदन करने में विनियोग है, यहाँ शङ्का होती है कि—शाखा तो अचेतन (जड़) है वह देवता कैसे होसक्ती है? इसका उत्तर यह है कि—यद्यपि यह शाखा उखा आदि अचेतन हैं परन्तु इनके अभिमानी देवताओं का सान्निध्य होने से इनमें देवतात्व माना है, भगवान् वेदव्यासजी ने भी वेदान्तदर्शन में “अभिमानिव्यपदेशस्तु अ० २ पा० १ सूत्र ५” इस सूत्र के द्वारा यही वर्णन किया है, तथा “मृदव्वीदापोऽध्रुवन्” अर्थात् मृत्ति का बोली, जल बोले यह श्रुति अभिमानी

देवताओं के सन्निध्य से मृत्ति का आदि में देवतात्व मानने से ही सहित होती है, यही कारण है कि—शास्त्र के तत्त्वको जानने वाले विद्वान् अचेतन भी शालिग्राम की शिला में शास्त्रदृष्टि से विष्णु भगवान् की सन्निधि मानतेहुए विष्णु भगवान् को ही सम्बोधन करके षोडशोपचारके द्वारा पूजन करते हैं । ऊपर उत्थानिका में लिख आये हैं कि—“इषेत्वा” इत्यादि दर्शयैर्णिमास के मन्त्र हैं उसका ही मसङ्ग उठाते हैं कि—मतिपदों में दर्शयाग को करने की इच्छा करनेवाला पुरुष, अमावस्या के दिन मातःकाल के समय अग्निहोत्र करके दर्शयाग के निमित्त, कात्यायन मुनि प्रणीत श्रौतसूत्र अ० २ का० १ सू० ३ में कहेहुए “अग्निर्बर्च इत्पादि” मन्त्र के द्वारा अग्निर्घोमे समिदाधानरूप अग्निवाधान करके वत्सापाकरण (गौओं के समीप से बछड़ों को हटाना) करे, दर्शयाग में तीन हवि होते हैं—आठ कपालों (इस मकर के पात्र) में पकाया हुआ अग्नि है देवता जिसका ऐसा दाधि, इंद्र है देवता जिसका ऐसा दाधि, तथा इंद्र है देवता जिसका ऐसा पय (दुग्ध) । इस दाधि दुग्धाधिक्य हवि की मतिपदों के दिन हवन करने की आवश्यकता होती है इस कारण दाधि बनाने के लिये अमावस्या की रात्रि में गौओं को दुधे, तिस दुहने के निमित्त अमावस्या के दिन मातःकाल के समय मतिदिन के नियमानुसार गौओं के लौकिक दुहने के अनन्तर अपनी माताओं के साथ चरतेहुए बछड़ों को पलाशकी शाखा से अलग करे, इसकारण पलाशकी शाखाका छेदन किया जाता है । शतपथ ब्राह्मण १।७।१।८।२।१० में लिखा है कि—जब गायत्री पक्षी का रूप धारण करके स्वर्ग से सो मबल्ली लाई थी, उससमय तिस सोमबल्लीका पत्र (पत्ता) भूमि पर गिरकर उगयाया तिस से पलाशहुआ इसकारण शास्त्रों में पलाशकी प्रशंसा करी है और उसको ब्रह्मत्व कहा है, अतएव बछड़ों को हटाने के लिये पलाशकी शाखा का तथा शमी (१) की शाखा

का भी छेदन करना कहा है, तिस छेदन करने के समय प्रथम का मन्त्र “ इषेत्वा ” पढ़ना चाहिये इसका अर्थ यह है कि—(शाखे) हे पलाशकी शाखे ! अथवा शमी की शाखे (त्वा) तुझको । (इषे) वृष्टि के निमित्त (छिनद्मि) छेदन करता हूँ (क्योंकि—शाखा से बछड़ों को पृथक् किया जायगा तब गौओं का दुग्ध दुहकर दधि होगा—तिस दधि का हवन करने से “ अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्रादृष्टिः ” इस श्रुति के अनुसार वर्षा होती है । इस कण्डिका में दो पद और तीन अक्षर का दूसरा मन्त्र है “ ऊर्जेत्वा ” इसका भी परमेष्ठी माजापत्य ऋषि दैवी अनुष्ण छन्द, शाखा देवता माध्यन्दिनी शाखा वालों के मत में इस मन्त्र का भी शाखा के छेदन में विनियोग है अर्थात् इन के यहां शाखाछेदन के मन्त्र में विकल्प है चाहे इस द्वितीय मन्त्र से शाखाछेदन करे और चाहे प्रथम मन्त्र से शाखा छेदन करे, परन्तु काण्व शाखावालों के मत में इस द्वितीय मन्त्र का शाखा के सन्नमन में विनियोग है अर्थात् काण्व शाखावाले शाखा छेदन प्रथममन्त्र से ही करते हैं और इस दूसरे मन्त्र से शाखाका सन्नमन (शाखा में लगी हुई धूलि आदि को दूर करके शुद्ध और सुधी) करते हैं (१) इस द्वितीय मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शाखे ! मैं (ऊर्जे) सकल मनुष्य पशु आदिकों को पान आदि के द्वारा दृढ़ शरीर करनेवाले अथवा वेष्टारूप जीवन देनेवाले वर्षा के जलरूप रसकी माप्ति के लिये (त्वा) तुझको । (छिनधि) (माध्यन्दिनी शाखावालों के मत में) छेदन (काण्व शाखावालों के मत में) शोधन करता हूँ । इस सब का तात्पर्य यह है कि—अध्वर्यु (यजुर्वेदियों को यज्ञ करानेवाला आचार्य) इन दोनों

(१) इषेत्वेष्टुर्ने ज्ञेति वा छिन्दिम इति बोधयोः साक्षाच्छ्रुत्वात्सममयामोति योतर इति कात्यायनोक्तेः । अस्त्यर्थः—शाखाच्छेदने इषेत्वेर्जनेत्वेति द्वौ मन्त्रौ विकल्पितौ तयोः क्रियापदाकांक्षत्वाद्द्वयवचोपाय छिन्दिम इति पदमध्याहर्त्यमित्येकः पदः । इषेत्वेति छेदनार्थो मन्त्रः । जनेत्वेति सममनार्थः । सममने कञ्चकरणं शाखाछिन्नभूत्वाग्रपवनम् । इदं प्रधानतरमित्यर्थः ।

मन्त्रों को पढ़कर शाखाभिमानों देवता से प्रार्थना करता है कि—
इस वृक्षकी शाखा का छेदन और शोधन जो किया जाता है तिससे
यज्ञ के द्वारा वर्षा हो और वर्षा के द्वारा हमारे इस यजमान को
अन्न तथा बलकारक घृत दुग्धादि प्राप्त हो ।

दो पद और चार अक्षर का तीसरा मन्त्र है “ वायवःस्य ”
इसका भी परमेष्ठी आज्ञापत्य ऋषि, देवी बृहती छन्द, वायुदेवता
और गौओं के समीप से बछड़ों को हटाने में इसका विनियोग
है । इस मन्त्र को पढ़कर गौओं को दुहने के निमित्त तिस पलाश
शाखा के द्वारा बछड़ों को गौओं से अलग करके हटादेय । इस
मन्त्रका अर्थ यह है कि—(वत्साः) हे बछड़ों ! तुम, (वायवः)
गमन करनेवाले होनाओ, क्योंकि बिना तुम्हारे अलग हुए सा-
यंकाल को यज्ञ के निमित्त दोहना नहीं होसकेगा । अथवा ऐसा
अर्थ समझना कि—हे बछड़ों तुम वायुरूप [वायु की समान]
हो, जिस प्रकार वायु पादमंशालन [चरण धोना] निष्ठीवन
[यूकनां] आदि से दोषयुक्त हुई पृथ्वी को मुखाकर पवित्र क-
रता है तिसी प्रकार तुम लीपने के निमित्त गोमय (गोबर)
देकर भूमि को पवित्र करते हो । अथवा इस मन्त्र का अभिप्राय
यह है कि—जिस प्रकार अपने निवास करने के निमित्त मनुष्यों
को गृह आदि बनाने की सामर्थ्य है तिस प्रकार पशुओं को नहीं
है अतः पशु निरावरण (बिना छाये) अन्तरिक्ष में विचरते हैं
तिस अन्तरिक्ष का अधिपति वायु अपने अवयवों (अङ्गों) की
समान पशुओं का पालन करता है अतः हे बछड़ो ! हम तुमको
गौओं से पूषक करके चरते हुए तुम्हारी रक्षा करने के निमित्त
वायु देवता को समर्पण करते हैं । अथवा यह अर्थ जानना कि—
हे बछड़ो तुम वायुरूप होवो अर्थात् अब गौओं से पूषक हुए तुम
दिन में तृण भक्षण के निमित्त जहाँ तहाँ वन में विचरकर सायं
काल के समय वायु की समान वेग से लौटकर यजमान (अपने
स्वामी) के घर को आओ ।

बासठ अक्षर का तीसरा मन्त्र है, इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, ब्राह्मी पङ्क्ति छन्द, इन्द्र देवता और पलाशशाखा से गौओं का उपस्पर्शन करने में विनियोग है । पूर्वोक्त मन्त्र से पृथक् करे हुए बछड़ों की माता जो गौएं हैं, उनमें से एक गौ को पृथक् करके "देवोव इत्यादि,, इस मन्त्र को पढ़ता हुआ पलाश से स्पर्श करे, ऐसा करने से उस गौ का दविरूप हवि इन्द्र देवता का होता है । इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(गावः) हे गौओं ! (सविता) सब का मेरक (देवः) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर (वः) तुमको, (श्रेष्ठ-तमाय) यज्ञरूप श्रेष्ठतम* (कर्मणे) कर्म के निमित्त, (मार्हयतु) बहुत से वृणोंवाले वन में पहुँचावै (जिस से तुम यथेष्ट वृणभक्षण करके बहुत से दुग्धदधिरूप हवि को उत्पन्न करती हुई यज्ञ में सहायक होवो) । (अघ्न्याः) हे अवध्य गौओं ! [यज्ञ में] (इन्द्राय) इन्द्र के निमित्त (भागम्) हवि बनाने के अर्थ तिस हविरूप दधि के हेतुभूत दुग्ध को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ, (मजा-वतीः) जीवित सन्तति वाली (अन्मीवाः) कुमिपीड़ा आदि भुङ्ग रोग रहित (अयत्नमाः) राजयक्ष्मा आदि मवल रोगरहित (वः) तुमको, (स्तनः) चोर पुरुष, (अपहर्तुम्) चुराने को, (मा) मत, (अयशंसः) चाण्डाल वा व्याघ्रादि हिंसक जीव (निहन्तुम्) बध करने को (मा) मत, (ईशत) समर्थ हो, (अस्मिन्) इस (गोपता) गौओं के स्वामी यजमान के समीप, (ध्रुवाः) निरन्तर रहनेवाली, (वन्हीः) बहुतसी, (स्यात्) होवो ।

नौ अक्षर का पाँचवां मन्त्र है "यजमानस्य पशून्पाहि, इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी बृहती छन्द, शाखा देवता और शाखा के उपगूहन (ग्रहण) करने में विनियोग है । यजमान के अग्न्यागार (आहवनीय वा मार्हयत्य अग्नि के स्थान) के

* कर्म चार प्रकार के होते हैं, अप्रशस्त, प्रशस्त, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम—छोक विष्ट हिंसा चोरी आदि अप्रशस्त कर्म हैं, छोक में इलापनीय कुटुम्बपाटन आदि प्रशस्त कर्म हैं, स्मृतियों में कहे हुए बाकी कृप तदागादि श्रेष्ठ कर्म हैं और वेदोक्त यह श्रेष्ठतम कर्म कहते हैं, ऐसा ही भुक्ति में भी कहा है कि—यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म,,

आगँ शाखा को उपगूहन करता हुआ “यजमानस्य पशून्पाहि” इस मंत्र को पढ़े । इस मंत्र का अर्थ यह है कि—(शाखे) हे शाखाभिमानि देवते! (यजमानस्य) यजमान के (पशून्) पशुओं [गौओं के बछड़ों] को, (पाहि) व्याघ्र चोर आदि से रक्षाकर [जिससे किसीकाल को आनन्दपूर्वक यजमान के घरको लौट कर आवें और गौओं के दुहने में सहायक हों तथा यज्ञ के निमित्त हवि सम्पादित हो] ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिद्वन्द्वो घृमोऽसि विश्वधा असि । परमेणुधाम्ना दध्रस्व माध्वामा तै घृक्षपतिव्हीर्षीत् ॥ २ ॥

इस कण्टिका में तीन मंत्र हैं—प्रथम “वसोरित्यादि” मंत्र का प्रजापति का अपत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी उष्णिक् छंद, वायु देवता और पलाशशाखा में पवित्र बांधने में विनियोग है । दो या तीन कुशा को पवित्र कहते हैं, पलाश की शाखा में वह कुशाओं का पवित्र बांधे, तिस पवित्र के बांधते में इस प्रथम मंत्र को पढ़े, “वसोः पवित्रमसि” इसका अर्थ यह है कि—(पवित्र) हे कुशाओं के पवित्र! (वसोः) इन्द्र देवता के भागरूप दुग्ध को (पवित्रम्) पवित्र करने वाले (असि) हो ।

“द्यौरसि पृथिव्यसि,, यह दूसरा मंत्र है तिसका प्रजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी जगती छंद, उखा देवता और दुग्ध धारणार्थ उखाग्रहण में इसका विनियोग है । पलाशशाखामें पवित्र बांधने के अनन्तर जिस स्थालीमें दुग्ध रखना हो उसको ग्रहण करते समय द्यौरसित्यादि मंत्र को पढ़े; इसका अर्थ यह है कि—(स्थालि) हे स्थालि! अर्थात् हांडी (द्यौः) शुलोक के अवयवमूल जल से बनी हुई, (असि) है इस कारण शुलोक रूप है, (पृथिवी) पृथिवी में से ली हुई मृत्ति का के द्वारा बनी हुई (असि) है, अतः पृथिवी रूप है ।

“मातरिद्वेत्यादि” तीसरा मंत्र है, इसका परमेष्ठी प्रजापत्य

अपि प्राजापत्या जगती छन्द, उखा देवता और दुग्ध की हांडी को अग्निपर चढ़ाने में इसका विनियोग है, द्वितीय मंत्र से हांडी में दुग्ध करने के अनन्तर उस दूध की हांडी को गार्हपत्य अग्नि में से अक्षरों को निकाल, उस गार्हपत्य के उत्तर में बिछाव उनपर चढ़ा देय उस समय "मातरिभेत्यादि" यह तीसरा मंत्र पढ़ा जाता है । इस मंत्र का अर्थ यह है कि—(उखे) हे उखे ! अर्थात् हांडी तुम्हारे भीतर अन्तरिक्ष शून्य स्थान में वायु का सञ्चार होता है अतः तुम (मातरिभनः) वायु की (धर्मः) दीपक कहिए अभिव्यञ्जक वा प्रकाशक (असि) हो, इसकारण अन्तरिक्ष लोक रूप हो, दूसरे मंत्र में शुलोक रूप पृथिवी लोक रूप स्थाली को कहा और इस मंत्र में अन्तरिक्ष लोक रूप कहा, इस प्रकार तीनों लोकों के धारण करने से (विश्वधाः) विश्व को धारण करने में समर्थ (असि) हो, (परमेण) बहुत दुग्ध को धारण करने की सामर्थ्य रूप उत्तम (धाम्ना) तेज करके (दंस्व) दृढ़ हो अर्थात् तेज का अधिष्ठातृ देवता तुमको दृढ़ करे, नहीं तो टूट जाने से दुग्ध निकल जायगा, (न्हाः) ठेकी (मा) मत होयों, जिस से कि (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यजमान (मान्हापीत्) कुटिल [तुभ में स्थित दुग्ध के निकल जाने से यज्ञानुष्ठान में बिघ्नवाला] न हो (यह मैं यज्ञ पुरुष परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ) ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेणे सुप्वा । कामधुक्षः ॥ ३ ॥

इस काण्डिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्" का परमेष्ठी प्राजापत्य अपि, यजुः छन्द, वायु देवता और उखा पर पवित्र को स्थापन करने में विनियोग है । उखा [हांडी] के मुखपर कुशों के पवित्र को इस प्रकार रखै, कि जिस में पवित्र के कुशाओं का अग्रभाग पूर्व वा उत्तर दिशा की ओर को रहे इस प्रकार पवित्र को रखते समय

यह मंत्र पढ़ा जाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि (शाखापवित्र) हे शाखा मे वंधे दुग्ध पवित्र (वसोः) इंद्रदेवता के निवास के हेतु दुग्ध का (त्वम्) तू (शतधारम्) सैंकड़ों धारावाला (सहस्रधारम्) सहस्रों धारावाला । (पवित्रम्) शोधक । (आसि) है ।

दूसरे "देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा" मंत्र का परमेष्ठी आज्यापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, पयो देवता और दुग्ध के पवित्र करने में विनियोग है। दुहने के अनन्तर हांडी में दुग्ध डालते समय यह मन्त्र पढ़ा जाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे क्षीर ! (सविता) सबका भरक (देवः) धोत मान परमात्मा (शतधारेण) १०० सम्बन्धी शतधार, (सुप्वा) अच्छे शोधक (पवित्रेण) पवित्रे से (त्वा) तुम्ह को (पुनातु) पवित्र [निर्दोष] करे ॥

तीसरे "कामधुलः" मंत्र का परमेष्ठी आज्यापत्य ऋषि, देवी बृहती छन्द, मरुत देवता और गोदोहन के मरुत में विनियोग है। अध्वर्यु इस मंत्र को पढ़कर दुहनेवाले से मरुत करे। इसका मंत्र का अर्थ यह है अध्वर्यु दुहनेवाले से वृक्षता है कि—हे दोग्धः ! तुम ने इन विद्यमान गौओं में से (काम्) कौनसी को (अधुलः) बुहा ॥ ३ ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा । विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्या भ्रातृसोमेनातनच्छि विष्णो हव्यशरक्ष ॥ ४ ॥

इस कण्डिका में पांच मंत्र हैं, प्रथम "सा विश्वायुः" मंत्र का परमेष्ठी आज्यापत्य ऋषि, देवी बृहती छन्द, गौ देवता और मधुम मंत्र के उत्तर में विनियोग है। दोग्धा जब उत्तर देय कि—मैंने इस गौ को बुहा तब अध्वर्यु इस मंत्र को पढ़े। इसका अर्थ यह है अध्वर्यु कहता है कि हे दोग्धः ! जिस गौ को तुम ने बुहा और मैंने वृक्षा (सा) वह गौ (विश्वायुः) विश्वायु शब्द से कहने योग्य है अर्थात् परमेश्वर से मार्यना है कि—यह गौ यजमान को पूर्ण आयु देने वाली हो ।

दूसरे "सा विश्वकर्मा" मंत्र का परमेष्ठी आज्यापत्य ऋषि,

देवी पंक्ति छन्द गौ देवता और द्वितीय मन्त्र के उत्तर में विनियोग है । कात्यायन महर्षि ने लिखा है कि—जिस प्रकार मयम गौ के दुहने का भी मन्त्र करै, इस कारण, दूसरी गौ के दुहने पर दोग्धा से अध्वर्यु मन्त्र करै कि “ कामधुवः ” कौनसी गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मन्त्र को पढ़े । इसका अर्थ यह है कि—अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः ! जिस दूसरी गौ को तुमने दुहा और मैंने दूभा (सा) वह, (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा शब्द से कहने योग्य है अर्थात् वह गौ जगत् की स्थिति की कारण है क्योंकि यज्ञों में हवि की साधन होकर सबकी कामनाओं को सिद्ध करती है सो हमारे इस यजमान की कामना को सिद्ध करै ।

तिसरे सा विश्वधायाः, मन्त्र का परमेष्ठी माजापात्य ऋषि, देवी पंक्ति छन्द, गौ देवता और तृतीय मन्त्र के उत्तर में विनियोग है । तृतीय वार किस गौ को दुहा, अध्वर्यु के इस प्रकार मन्त्र करने पर जब दोग्धा कहै कि—मैंने इस गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मन्त्र को पढ़े । इस का अर्थ यह है कि—अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः ! जिस तिसरी गौ को तुमने दुहा और मैंने दूभा, (सा) वह (विश्वधायाः) विश्वधाया शब्द से कहने योग्य है क्योंकि क्षीर दधि आदिरूप हवि देकर सकल देवताओं को पुष्ट करती है सो परमेश्वर से प्रार्थना है कि—इस यज्ञ में भी इन्द्रादि देवताओं को दधिदुग्धादिरूप हवि देकर हमारे यजमान की कामना को सिद्ध करावे ॥

चौथे “ इन्द्रस्य त्वा भागः सोमेनातनन्मि ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापात्य ऋषि, याजुषी जगती छन्द, इन्द्र देवता और दधिको जमाने में विनियोग है । गरम करेहुए दुग्ध को अग्निपर से उतार कर कुछ एक गरम रहनेपर उसमें मातःकाल के होम से बचेहुए दधिको ढालकर दधि बनावै उस समय इस मन्त्र को पढ़े । इसका अर्थ यह है कि—हे क्षीर ! (इन्द्रस्य) इन्द्र के (भागम्) भाग रूप (त्वा) तुझको, (सोमेन) सोमवल्ली के रसरूप मातेहुए

हवनसे बचे हुए दधि के द्वारा, (आतनच्छिम्) कठिन करता हूँ कहिए जमाता हूँ, अर्थात् परमेश्वर की कृपा से यह दधि जमै और उससे देवता को याग प्राप्त होकर यजमान की अभीष्टसिद्धि हो ॥

पाँचवें "विष्णो हव्यं रक्ष,, मंत्रका परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छंद, पयो देवता और विष्णु की मार्यना में विनि योग है। उस दुग्ध की हाँडी को जल भरे हुए किसी, मृत्तिका का न हो, ऐसे पात्रसे ढके और उससमय इस मंत्र को पढ़ें। इसका अर्थ यह है कि—(विष्णो) हे यज्ञपुरुष (हव्यम्) हवि को (रक्ष) रक्षा करो, [क्योंकि—जगत् में रक्षा करने का भार आप के ही ऊपर है अर्थात् आप रक्षा के अभिमानी देवता हैं] ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतश्चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

इस काण्विका में दो मंत्र हैं, मथम " अग्ने व्रतश्चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् " मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि; विष्णु छंद, अग्नि देवता और यज्ञानुष्ठान की मतिज्ञा में इसका विनियोग है यजमान आहवनीय अग्नि के समीप पूर्व को मुखकर अग्नि को, देखता हुआ दाहिने हाथ में जल लेकर इस मंत्र को पढ़ें। इसका अर्थ यह है कि (व्रतपते) हे इस कियेजाते हुए कर्म के पालक [विष्णुभगवान् के अशयुक्त] अग्निदेव ! (व्रतम्) व्रत को, (चरिष्यामि) कहेगा, (तत्) उस को, (शक्यम्) कर सकूँ (मे) मेरे, (तत्) उस व्रत को, (राध्यताम्) सिद्ध करो। अर्थात् तुम्हारा भरोसा करके मैं इस कर्म को करता हूँ, आपके अनुग्रह से मैं इस कर्म के करने को समर्थ होऊँ, मेरा यह कर्म निर्वघ्नतापूर्वक फलकी प्राप्ति पर्यन्त सिद्ध हो।

"इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि" मंत्रका परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, साम्नी गायत्री छंद, अग्नि देवता और सत्यप्राप्ति की मार्यना में विनियोग है। आहवनीय अग्नि के समीप पूर्वोक्त प्रकार से इस मंत्र को भी पढ़ें। इसका अर्थ यह है कि—हे अग्निदेव ! (अहम्) मैं यजमान,

(अनृत त) अनृत कहिये स्वप्न में देखेहुए हस्ती आदि की समान शीघ्र ही नाशको प्राप्त होनेवाले मनुष्यशरीर से (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य कहिये बहुत काल पर्यन्त स्थित रहनेवाले देवशरीर को (उपैमि) प्राप्त होता हूं ऐसा अर्थ करने में इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपावर्त्तत इति (१।१।१।४) यह शतपथ की श्रुति प्रमाण है । अथवा लोकमसिद्ध ही सत्य अनृत को मानकर ऐसा अर्थ करना चाहिये कि—हे अग्निदेव! (अहम्) मैं (अनृतात्) मिथ्याभाषण से पृथक् होकर (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य भाषण को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ । “नानृतं वदेत्” अर्थात् मिथ्याभाषण न करै, इस प्रमाण के अनुसार सत्य भाषण कर्म का अङ्ग है अतः कर्मानुष्ठान के समय सर्व प्रकारसे सत्यभाषण का पालन करना चाहिये ॥५॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति
तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेपाय वाम् ॥ ६ ॥

‘इस काण्डिका में दो मंत्र हैं—प्रथम “कस्त्वा—इत्यादि” मंत्र का परमेष्ठी राजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिपुच्छन्द, मजापति देवता और जलमण्यन तथा आहवनीय अग्नि के उत्तर प्रदेश के विपै धारण में विनियोग है । पञ्चम काण्डिका में कही हुई रीति से सत्यभाषणादि रूप मतिज्ञा करके यज्ञ के आरम्भ में अपने कर्तृत्व (मैं कर्त्ता हूँ, इस अभिमान) को त्यागकर मजापति को यज्ञ का कर्त्ता मान अतएव तदनन्तर ब्रह्मा का वरण करके जलों का मण्यन करै । यजमान ब्रह्मा से प्रश्न करै कि—ब्रह्मन्तपः मणोप्यामि—हे ब्रह्मन् ! जलों का मण्यन करूँ । तब ब्रह्मा “(का० २।२।८ मण्ययज्ञं देवता वर्द्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमाने।ऽस्तु सप्त ऋषीणां सुकृतां यत्र लोकस्तत्रेभं यज्ञं यजमानञ्च धेहि) इस प्रकार धीरे २ पद कर “ॐ मण्य” इस प्रकार ऊँचे स्वर से कहै कि—जिस में अश्वर्यु सृनलेय फिर अश्वर्यु चमस (काष्ठ के बने हुए यज्ञ के पात्र विशेष) को लेकर आहवनीय अग्नि की उत्तर दिशा में वेदी के बाहर कुशों पर स्थापन करै उस समय इस मंत्र को पढ़ै । इस मंत्र

का अर्थ यह है कि हे मणीता जल को धारण करने वाले पात्र ! (त्वा) तुम्हको (कः) कौन पुरुष, (युनाक्ति) आहवनीय अग्नि के उत्तर भाग में स्थापन करता है, यह मन्त्र है, जो मकल बेदों में जगत् का निर्वाह करने वाला मासेन्द्र है, वह मजापति परमेश्वर ही है पात्र ! तुम्हको स्थापन करता है यह उत्तर हुआ । (कस्मै) किस प्रयोजन केलिये (त्वा) तुम्हको (युनाक्ति) स्थापन करता है ? यह मन्त्र है, (तस्मै) तिस मजापति परमेश्वर की प्रसन्नता के अर्थ (त्वा) तुम्हको (युनाक्ति) स्थापन करता है, (इसका ही निष्कर्ष श्रीकृष्णभगवान् ने गीता में अर्जुन से कहा है—”ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्मेक्षाग्नौ ब्रह्मणाहुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

दूसरे “वर्धण इत्यादि” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि भाजा पत्या गायत्री छन्द, स्रुक् और शूर्पाभिमाना देवता तथा शूर्प एवं अग्निहोत्रहवणी के ग्रहण में विनियोग है । कुशों का परिस्तरण कर दो दो पात्रों को रखकर शूर्प और अग्निहोत्रहवणी को ग्रहण करें, उससमय इस मन्त्र को पढ़ें । इस मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे शूर्प ! हे अग्निहोत्रकी हवणि ! मैं (कर्मणे) यज्ञ सम्बन्धी कर्म के निमित्त (वाम्) तुम को, ग्रहण करता हूँ तथा (वेपाय) सूचित कर्मोंमें व्याप्ति के अर्थ (वाम्) तुम दोनों को, ग्रहण करता हूँ शकट [गाड़ी] में स्थित धान्यों को हवि के निमिषा अलग करना तथा मोक्षण करने के निमित्त जलको धारण करना इत्यादि अग्निहोत्रहवणी [काष्ठ के पात्रविशेष] के व्यापार हैं । धान्यों का फटकना धारण करना और उलूखलमें ढालना फिर निकालना इत्यादि शूर्प के व्यापार हैं ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरांतयः । निष्टुष्टं रक्षो
निष्टुष्टा अरांतयः । उर्वन्तारिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

इस कोण्डका में तीन मन्त्र हैं मथम “प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा

अरातयः “मन्त्र और द्वितीयः “निष्टप्त रक्षो निष्टप्ता अरातयः” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी वृहती छन्द, रक्षोघ्न देवता और अग्निहोत्रहवणी तथा शूर्प को तपाकर राक्षसों के जलाने में विनियोग है । इन दोनों मन्त्रों में से किसी एक को पढ़ता हुआ अग्निहोत्रहवणी और शूर्प को गार्हपत्य अग्नि में तपावे । इन दोनों मन्त्रों का अर्थ यह है कि—अग्निहोत्रहवणी और शूर्प के तपाने से इन में अपनी माया के बल से स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (मृत्युष्टम्) एक एक करके दग्ध हुई, (अरातयः) देवताओं को हविर्देने में प्रतिबन्धक होकर यज्ञ में विघ्न करने वाले (मृत्युष्टाः) दग्ध हुए । अपनी माया के प्रभाव से शूर्प आदि के विषै गुप्त रूप से स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (निष्टप्तम्) निःशेषरूप से सन्तप्त हुई, (अरातयः) यज्ञसिद्धि में विघ्नकरने वाले (निष्टप्ताः) निःशेषरूप से सन्तप्त हुए ।

तीसरे “उर्वन्तरिक्षमन्वेमि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, रक्षोघ्न देवता अवकाश में चलने में विनियोग है । धान्यों की गाड़ी के समीप जाता हुआ इस मन्त्र को पढ़े । इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(उरु) विस्तारयुक्त (अन्तरिक्षम्) अवकाश को अन्वेमि पाकर चलता हूँ अर्थात् जाने में मुझको विघ्नकर्त्ता प्रतिबन्धक न हो । इसलिये यज्ञपुरुष परमेश्वर चलते समय मेरे दोनों ओर के राक्षसों को दूर करें ॥ ७ ॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्वं तं योऽस्मान् धूर्वन्ति
तं धूर्वं यंचयं धूर्वामः देवानामसि चन्हितम्
सस्नितम् पप्रितम् जुष्टम् देवदूतम् ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, प्रथम “धूरसीत्यादि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, अग्नि देवता और अग्नि की प्रार्थना में विनियोग है । गार्हपत्य अग्नि के पश्चात् भाग में स्थित सुन्दर अङ्गों वाला शकट [अकडा] होता है उसके धुर [वृषभ] जोतने के (स्थान) को स्पर्श करता हुआ “धूरसीत्यादि” मन्त्र

को पढ़ै, वृषभ को जोतने के स्थान में शास्त्र में वर्णित एक हिंसक अग्नि है, उसकी प्रार्थना करने का यह मन्त्र है। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे अग्ने ! तुम (धूः) हिंसक [दग्ध करनेवाले] (असि) हो, अतः (धूर्वन्तम्) हिंसा करने वाले पाप को (धूर्व) विनष्ट करो, (यः) जो राक्षसादि, यज्ञ में विघ्न करके (अस्मान्) हम को (धूर्वति) हिंसा करने को उद्यत होता है, (तम्) उसको एवं जिस आलस्यादि रूप बैरी का (वयम्) हम (धूर्वामः) हनन करना चाहते हैं (तम्) उसको (धूर्व) विनष्ट करो ॥

दूसरे “देवानामसीत्यादि” मन्त्र का परमेष्ठी आज्ञापत्य ऋषि, यजुः, शकटाभिमानी देवता और शकट के उपस्तम्भ नामक काष्ठ के पश्चाद्भाग में ईषा का स्पर्श करने में विनियोग है। गाड़ी के दीर्घ काष्ठ ईषा का अग्रभाग जिस में कि युग (जुआ) बाँधा जाता है भूमि में स्पर्श न हो इन कारण इस के रोकने के निमित्त एक काष्ठ लगाया जाता है उसको उपस्तम्भ कहते हैं, तिस उपस्तम्भ के पश्चाद्भाग में तिस ईषा का स्पर्श करता हुआ इस मन्त्र को पढ़ै। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकटाभिमानी देव ! (स्वम्) तुम (देवानाम्) देवताओं के (वन्हितम्) अतिशय करके धीहीरूप दधि के पहुँचाने वाले (सस्मितम्) अत्यन्त शुद्ध (पमितम्), धीदियों करके अत्यन्त पूर्ण (जुष्टम्) देवताओं के अत्यन्त मिय (देवहृतम्) देवताओं का अतिशय करके आवाहन करने वाले (असि) हो (तुम मेरे ऊपर भी अनुग्रह करके अपनी सकल शक्तियों के द्वारा मेरे यज्ञ को पूर्ण करो) ॥ ८ ॥

अहुतमासि हविर्धानं दधुर्हस्व मान्दार्पात्
यज्ञपतिर्हर्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमताम् । उरु
याताय अपहृतुरक्षो यच्छन्तां पक्ष ॥ ९ ॥

इस कण्डिका में “अहुत यहाँ से लेकर मान्दार्पात् पर्यन्त जो मन्त्र है वह पूर्व की अष्टम कण्डिका के अन्तिम मन्त्र का शेष है। शेष नवम कण्डिका में चार मन्त्र हैं—प्रथम “विष्णुस्त्वा-

क्रमताम् ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, शकटाभिमानी देवता और शकटपर आरोहण करने में विनियोग है । दूसरे “उरु वाताय ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी पद्मक्ति छन्द, शकटाभिमानी देवता और व्रीहियों के अवलोकन में विनियोग है । तीसरे “अपहत रक्षः ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुषी, गायत्री छन्द, रक्षो देवता और तृणादि के अपाकरण में विनियोग है । चौथे “यच्छन्तां पञ्च ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी पद्मक्ति छन्द, हवि देवता और हवि ग्रहण करने में विनियोग है ।

भाषार्थः—अहुतमित्यादि मथम मन्त्र के शेष का अर्थ यह है कि—हे शकट के अभिमानी देव ! तुम (अहुतम्) अकुटिल हो [अतः चढ़ते समय टूटने का भय नहीं है] (हविर्धानम्) व्रीहिरूप हवि के धारण करनेवाले (असि) हो, (हंहस्व) दृढ होवो (मा) मत, (ष्हाः) कुटिल होवो, जिससे कि—(ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान, (माह्वर्षीत्) यज्ञक्रिया में विघ्न रूप कुटिलतायुक्त नहो ॥

विष्णुरित्यादि मथम मन्त्र को पढ़कर शकटपर आरोहण किया जाता है तिस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकट (विष्णुः) सर्व-व्यापी यज्ञपुरुष विष्णु भगवान् (त्वा) तुम्हारे ऊपर (क्रमताम्) चढ़, [इस प्रकार कर्म करने में अपनी निरभिमनिता दिखाई] ॥

उरु इत्यादि द्वितीय मन्त्र को पढ़कर शकट में के व्रीहियों को देखा जाता है, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकट ! अपने में स्थित व्रीहियों के विषै (वाताय) वायु का सञ्चार होने के निमित्त, (उरु) विस्तीर्ण हो [इस मन्त्र से व्रीहिरूप हवि को वायुरूप प्राण का प्रवेश करके समाण किया जाता है]

अपहतमित्यादि तीसरे मन्त्र को पढ़कर व्रीहियों के ऊपर से तृण आदि अलग किये जाते हैं, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(रक्षः) राक्षस [यज्ञ विघातक तृणादि] (अपहतम्) दूर हुआ ॥

यच्छेत्यादि चौथे मन्त्र को पढ़कर शकट में से मुट्ठी भरकर

ब्रीहि लियेजाते हैं, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(पञ्च) पांच अहुतियों की बँधीहुई मुट्ठी (यच्छन्ताम्) ब्रीहिरूप हवि को ग्रहण करें ॥ ९ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णामि अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

इस दशवीं कण्डिका में तीन मन्त्र हैं—उनमें से प्रथम “देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता और हवि के ग्रहण करने में विनियोग है। दूसरे “अग्नये जुष्टं गृह्णामि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, लिङ्गोक्तदेवता और हवि के ग्रहण में विनियोग है। तीसरे “अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छन्द, लिङ्गोक्त देवता और हवि के ग्रहण में विनियोग है ॥

भाषार्थः—इस कण्डिकाके तीनों मन्त्रों को पढ़कर हवि ग्रहण कियाजाता है और वह अग्निहोत्रहवणी में अग्नि के निमित्त चार मुट्ठी तदनन्तर अग्नि सोम के अर्थ चार मुट्ठी, तिस में सेतीन मुट्ठी मन्त्र पढ़कर और चौथी मुट्ठी मान होकर डाली जाती है इन तीनों मन्त्रों का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (सवितुः) सब के प्रेरक (देवस्य) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर के (प्रसवे) प्रेरणा करनेपर (अश्विभ्याम्) देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार की बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे अपने बाहुओं से (पूष्णः) देवताओं के समीप उनके भागको देनेवाले पूषा देवता के (हस्ताभ्याम्) हस्तों की करी है भावना जिनमें ऐसे अपने हस्तों से, (अग्नये) अग्नि देवता के अर्थ (मियम्) मिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्निसोमदेवताओं के अर्थ (जुष्टम्) मिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥

“सत्यं देवा अनृतं मनुष्याः” इस श्रुति के अनुसार देवता

सत्यरूप हैं सो उनके नामके स्मरण के साथ हवि ग्रहण करने से यज्ञ सत्यफल और निर्विघ्न होगा । देवताओं का स्मरण न करके मनुष्यों का किया हुआ अनुष्ठान मनुष्यों के अनृतस्वरूप (अमृत-शीघ्रविनाशी) होने से अमृत (निष्फल) होता है ॥ सर्वात्मक अग्नि के मंत्रों से अभिमंत्रित करेहुए हवि को ग्रहण करने में मनुष्य समर्थ नहीं होसक्ता, अतः प्रार्थना करने पर परमेश्वर की आज्ञा से बाहुओं में अश्विनी कुमार की बाहुओं की और हस्तों में पूषा देवता के हस्तों की भावना करनी होती है, क्योंकि—अश्विनीकुमार देवताओं के अध्वर्यु और पूषादेव देवताओं का भागधुक है ॥ १० ॥

भूतायाः त्वा नारातये । स्वरभिर्विख्येपम् । दृष्ट्वहन्तां
दुर्याः पृथिव्याम् । उर्वन्तरिक्षमन्वोमि । पृथिव्यास्त्वा
नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यश्नः ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में पाँच मंत्र हैं—प्रथम 'भूताय त्वा नारातये' मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द हविर्देवता, और व्रीहिशेष के विचार में विनियोग है । दूसरे 'स्वरभिर्विख्येपम्' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि याजुषी गायत्री छन्द, सूर्य देवता और पूर्वाभिमुख होकर यज्ञभूमि के अवलोकन में विनियोग है । तीसरे 'दृष्ट्वहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्' इस मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, गृह देवता और शकट से उतरने में विनियोग है । चौथे 'उर्वन्तरिक्षमन्वोमि' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, शकट देवता और अन्तरिक्ष में चलने में विनियोग है, पाँचवें 'पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यश्नः' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि साम्नी पंक्ति छन्द, हविर्देवता और हवि के स्थापन करने में विनियोग है ॥

इस कण्डिका के प्रथम मंत्र को पढ़कर शकट में शेष रहे हुए व्रीहियों का अभिमर्शन कियाजाता है । इस मंत्र का अर्थ यह है

कि—हे शकट में शेष रहे हुए ब्रीहि! हम (त्वा) तुझे [सद्भाव के अर्थ अर्थात् शेष रहे हुए तुम्हारे द्वारा अन्य याग ब्राह्मण भोजन तथा बीज धनाकर अन्यबहुत से ब्रीहियों की उत्पत्ति हो इसनिमित्त शेष छोड़ता हूँ] (अरातये) कृपणता के कारण अदान के अर्थ (न) नहीं ।

दूसर मंत्र को पढ़कर पूर्वमुख होकर यज्ञभूमि को देखा जाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—मैं (स्वः) यज्ञको (अभिविख्येयम्) देखूँ (अर्थात् ईश्वर मुझको अन्न धनादि से सम्पन्न करे जिस से कि—मैं फिरभी अपने को ऐसाही यज्ञ करता देखूँ)

तीसरे मंत्र को पढ़कर शकट पर से उतरै, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—(पृथिव्याम्) भूमि पर (दुर्याः) गृह (इहं हस्ताम्) हड्ड हों (हव्य लेकर ब्रह्मभाव को प्राप्तहुए उतरतेहुए अध्वर्यु के भार से गृहक्षीभ होने की सम्भावना है वह इस मन्त्र के द्वारा निवारण करीजाती है) ।

चौथे मंत्र को पढ़कर उत्तर दिशा की ओर को चलै, तिस मंत्र का अर्थ यह है कि—(उरु) विस्तीर्ण (अन्तारिक्षम्) अवकाशको (अन्वोमि) अनुसरण करके गमन करता हूँ ।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर गार्हपत्य वा आहवनीय अग्नि के पश्चात् भाग में शूर्प में स्थित हवि को स्थापन करै, मंत्र का अर्थ यह है कि हे हविमें (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभौ) मध्य में, (आदित्याः) देवमाता की (उपस्थे) गोद में (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अग्ने) हे अग्ने ! (हव्यम्) तुम्हारे समीप में स्थापन करेहुए इस हविकी (रक्ष) रक्षा करो ॥ ११ ॥

पवित्रैः स्थो वैष्णव्यौ । सवितुर्वैः प्रसूच उत्पुन्य-
च्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुश्मिभिः । देवीरापो
अग्रेणुपो अग्रेणुवोऽग्रं इममद्य यज्ञं नयन्ताग्रं
यज्ञर्पति ५ सुधातुं यज्ञर्पति देवयुवंम् ॥ १२ ॥
इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं—प्रथम “पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ”

मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी वृहती छन्द, लिङ्गोक्त देवता, और पवित्री के छेदन में विनियोग है । दूसरे “सावितुर्व इत्यादि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या पङ्क्ति छन्द, आपो देवता और जलके अतिशय करके पवित्र करने में विनियोग है । तीसरे “देवीरापो इत्यादि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः आपो देवता और अतिशय पवित्र जल से पूर्ण अग्निहोत्रहवणी को ऊपर चलाने में विनियोग है ॥

इस बारहवीं कण्डिका के प्रथम मन्त्र को पढ़कर पूर्ण, अन्तर्गर्भ (जिसकी तै के भीतर तै हों) एक समान दोकुशों को, क्षुरीरूप बनाए हुए अन्य कुशों से छेदन करै; मन्त्र का अर्थ यह है कि—(पवित्रे) हे कुंशरूप शोधक दोनों पवित्रों ! (वैष्णव्यौ) यक्षसंबंधी (स्यः) हो (अतः तुम यज्ञमें सहायता देकर यजमान की अभीष्ट सिद्धिकरो) ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर, अग्निहोत्रहवणी में जल डालकर पूर्ण एक दोनों कुशों से पवित्र करै—मन्त्र का अर्थ यह है कि हे जलों ! (सवितुः) मेरे परमात्मा के (प्रसेवे) मेरणाकरनेपर (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) अच्छिद्र (पवित्रेण) वायुकी समान शोधक पवित्र के द्वारा (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणों के द्वारा (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर, पूर्वमन्त्र से पवित्र करे हुए जलों से भरी हुई अग्निहोत्रहवणी को वाम हाथ पर स्थापन करके दाहिने हाथ से ऊपर को चलावे मन्त्र का अर्थ यह है कि—(देवीः) हे प्रकाशमान, (अग्नेगुवः) प्रथम समुद्र को प्राप्त होनेवाले (अग्नेषुवः) जहाँ जाओ उस स्थान को प्रथम पवित्र करनेवाले अथवा सोम रसका पान करनेवाले (आपः) जलों (अथ) आज सुन्दरदिन में प्रवर्त्तमान (इमम्) इस (यज्ञम्) दर्शपूर्णमास नामक यज्ञको (नयत) निर्विघ्न समाप्त करो, (सुधातुम्) दक्षिणादि के द्वारा यज्ञको पुष्ट करनेवाले, (यज्ञपाति मे) यज्ञका पालन करने (देवयुषम्)

देवताओं को यज्ञ में एकत्र करनेवाले अथवा यज्ञपुरुष परमेश्वर की कामना करने वाले (यज्ञपतिम्) यजमान को (नयत्) यज्ञका फल प्राप्त कराओ ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यं यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं प्रोक्षिता स्य । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । अग्नीपोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्वामि ॥ १३ ॥

इस तरहवाँ काण्डिका में प्रथम का "युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यं यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं" इतना भाग प्रथम काण्डिका के अंतिम मंत्र का शेष है। आगे चार मंत्र हैं—उन में से प्रथम प्रोक्षिता स्य" मित्रका परमेश्वरी प्राजापत्य ऋषि देवी बृहती छन्द, आपो देवता और जलों के प्रोक्षण करने में विनियोग है। दूसरे "अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मंत्र का परमेश्वरी प्राजापत्य ऋषि- याजुषी बृहती छन्द लिङ्गोक्त देवता और देवतानामोच्चारण पूर्वक हवि के प्रोक्षण करने में विनियोग है तीसरे "अग्नीपोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मंत्र का परमेश्वरी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप्छन्द लिङ्गोक्त देवता और देवतानामोच्चारणपूर्वक हवि के प्रोक्षण करने में विनियोग है। चौथे "दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्वामि" मंत्र का परमेश्वरी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, पात्र देवता और यज्ञपात्रों के प्रोक्षण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—पूर्वमन्त्रशेष "युष्मा इत्यादि वृत्रतूर्यं पर्यन्तं" का अर्थ यह है कि—हे जलों ! (इन्द्रः) इन्द्र (वृत्रतूर्यं) वृत्रासुर के बधके निमित्त (युष्मा) तुमको (अवृणीत) सहायता के निमित्त चाहता हूँ और (यूयम्) तुमने (इन्द्रम्) इन्द्र को (वृत्रतूर्यं) वृत्रासुर के निमित्त, (अवृणीध्वम्) सहायता देवे हुए (इसी प्रकार यह यजमान अपने पापकी निवृत्ति के अर्थ तुमसे मार्यना करता है तुमभी पापको दूरकरने के निमित्त इस यजमानको चाहो) ॥

इसकाण्डिका के प्रथम मन्त्र को पढ़कर जलों का प्रोक्षण किया

जाता है, अर्थ यह है—हे जलों ! तुम (मोक्षिताः) मोक्षित (स्थ) हो [क्योंकि बिना संस्कार हुए औरों को संस्कृत (शुद्ध) करने को समर्थ नहीं होसके] ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर अग्नि देवता के निमित्त हविका मोक्षण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (अग्नये) अग्नि देवता के निमित्त (जुष्टम्) मिय (त्वा) तुमको (मोक्षामि) मोक्षण करता हूँ ॥

तीसरे मन्त्र को पढ़कर अग्निसोम के अर्थ हवि का मोक्षण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (अग्नीपोमाभ्याम्) अग्नीपोम देवता के निमित्त (जुष्टम्) मिय (त्वा) तुमको (मोक्षामि) मोक्षण करता हूँ ।

[इसीप्रकार अन्यदेवताओं के हवियों का भी मोक्षण करै]
चौथे मंत्र को पढ़कर कृष्णाजिन उलूखलादि अन्य यज्ञ के पात्रों को मोक्षण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि हे यज्ञ के पात्रों (दैव्याय) ईश्वर सम्बन्धी (देवयज्यायै) देवता सम्बन्धी (कर्मणे) दर्शादि यागकर्म के निमित्त (शुन्धध्वम्) तुम शुद्ध होवो, (अशुद्धाः) नीचजाति बर्द्ध आदि (यत्) जो (वः) तुमको (पराजघ्नुः) श्रेष्ठ को हारने आदि के समय अपने हस्तस्पर्श से अपवित्र करते हुए (तत्) सो (इदम्) इस (वः) तुम्हारे श्रेष्ठ को (शुन्धामि) मोक्षणादि से पवित्र करता हूँ ॥ १३ ॥

शर्मासि । अवधूत रक्षोऽवधूता अरातयः । अदित्या-
स्त्वर्गसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अग्निरसि वानस्पत्यः ।
प्राचांसि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वर्गवेत्तु ॥ १४ ॥

इस चौदहवीं कण्डिका में पाँचमन्त्र हैं—पयम” शर्मासि, मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी अनुष्टुप् छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन को ग्रहण करने में विनियोग है । द्वितीय” अवधूत रक्षोऽवधूता अरातयः, मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द, रक्षो देवता और राक्षसदूरीकरण में विनियोग है । तीसरे ” अदित्यास्त्वर्गसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु” मन्त्र का

परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, आसुरी अनुष्टुप्छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन के विधाने में विनियोग है। चौथे “अद्रिरसि वानस्पत्यः” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुपी अनुष्टुप् छन्द, उलूखल देवता और कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में विनियोग है। पाँचवें “ग्रावासि पृथुव्यः पतित्वा दित्वास्त्यग्नेतु” मन्त्र का पर मेष्ठी माजापत्य ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, उलूखल देवता और कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में विनियोग है ॥

प्रथम मंत्र को पढ़कर कृष्णाजिन (कृष्ण मृगका चर्म) ग्रहण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे कृष्णाजिन ! तू उलूखल के धारण के निमित्त (शर्म) सुख का हेतु (असि) है। अर्थात् तुझको हम शास्त्रकी विधि के अनुसार कृष्णाजिन पै रख कर यहको पूर्ण करै तिससे तेरा अभिमानी देवता हमको सुख देय)।

दूसरे मंत्र को पढ़कर पात्रों से अलग करके मृगचर्म को भाँटा जाता है—मन्त्र का अर्थ यह है कि—कृष्णाजिन के भेड़ने से उस में छुराछुरा (रक्षः) राक्षस (अशूतम्) अक्षय गिरा दिया और (अरातयः) पक्ष में धिन करने वाले शत्रु भी (अशूतयः) गिरा दिये।

तीसरे मंत्र को पढ़कर दोनों हाथों से कृष्णाजिन को इस प्रकार बिछावे कि—पश्चिम को श्रीवा रहे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे कृष्णाजिन तू (अदित्याः) भूमिदेवता का (त्वक्) चर्मरूप (असि) है इस कारण (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुझको (प्रातिवेतु) ग्रहण करके अपना ही जानै।

चौथे मंत्र को पढ़कर कृष्णाजिन पर उलूखल रखै मंत्र का अर्थ यह है कि—हे उलूखल ! तू (अद्रिः) ग्रीहि आदिका विदीर्ण करने वाला है और यययि (वानस्पत्यः) नाष्ट का है परंतु (ग्रावा) रह होने के कारण पापाण की सपान (असि) है।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर भी कृष्णाजिन पर उलूखल रक्खा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे उलूखल ! (पृथुवुवनः) तेरी जड़ स्थूल है (मुसल लगने के आधा से हिले नहीं यह उलूखला मे देवता से मार्यना की जाती है) अतः दृढता में पापाण की समान है, (अदित्याः) नीचे बिछाई हुई कृष्णाजिनरूप भूमि की (त्वक् स्वचा (त्वा) तुझको (मतिवेषु) अपना करके जानै अर्थात् अपने अङ्ग के अभिमान से चेतन करे ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देवर्षीतये त्वा गृह्णामि । बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः । स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशामि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं—प्रथम “अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देवर्षीतये त्वा गृह्णामि” मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आर्ची उष्णिक् छन्द, हवि देवता और हवि का आवपन करने में विनियोग है । दूसरे “बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः” मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी जगती छन्द, मुसल देवता और मुसल के ग्रहण करने में विनियोग है । तीसरे “स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशामि शमीष्व” मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः मुसल देवता और मुसल को उलूखल में स्थापन करने में विनियोग है । चौथे “हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि, मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छन्द, वाग्देवता और हवि का संस्कार करनेवाले का आवाहन करने में विनियोग है ।

पहिले मंत्र को पढ़कर हवि छोड़ने के निमित्त ओखली में डाला जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि हे हवि ! (जलों के मणयन काल में मौन हुई यजमान की वांछी हविके आवपन के

* कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में च.य और पांचवें दोनों मन्त्रों का विकल्प है अर्थात् चाहे चौथे को पढ़कर रखे और चाहे पांचवें को पढ़कर रखे परन्तु “प्रति स्थावित्पास्त्ववेत्तु” यह दोनों ही मन्त्रों में पढ़ना पड़ता है ।

समय में खुलती है अतः) (वाचः) वाणी का (विसर्जनम्) खोलनेवाला, (अग्नेः) अग्नि का (तनूः) शरीर- (आसि) है (क्योंकि—हवि अग्नि में डालते ही अग्निरूप होजाता है) (देववीतये) देवताओं की वृत्ति के लिये (त्वा) तुझको (गृह्यामि) ग्रहण करता हूँ ॥

दूसरे मंत्र को पढ़कर मुसल को हाथ में लिया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मुसल ! तू (वानस्पत्यः) काष्ठ का बनाहुआ (ग्रावा) पाषाण की-समान बड़ (बृहत्) महान् (आसि) है ।

तीसरे मंत्र को पढ़कर मूसल उलूखल (ओखली) में स्थापन किया जाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मूसल ? (सः) वह (त्वम्) तू (देवेभ्यः) अग्नि आदि देवताओं के उपकार के निमित्त (इदम्) इस हवि को (शमीष्व) भूसी आदि को दूर करके शान्तरूप करो तथा (सुशमि) भूसी दूर होनेपर तण्डुलों के ऊपर की मलिनता को भी दूर करके (शमीष्व) शान्तरूप करो ॥

चौथे मंत्र को पढ़कर अध्वर्यु हवि को कूटने के निमित्त यजमान की पत्नी वा और जो कोई हो उसको तीन बार पुकार कर बुलावे मंत्र का अर्थ यह है कि—(हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करने वाले (एहि) आओ (हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करनेवाले (एहि) आओ (हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करने वाले (एहि) आओ [तीन बार कहेहुए अर्थ को देवता मानते हैं इस कारण तीन बार आवाहन है] ॥ १५ ॥

कुक्कुटोसि मधुजिह्व इषमूर्जमावट त्वयावयसं-
घातसंघातं जेष्म । वर्षवृद्धमसि । प्रतित्वा वर्षवृद्धं
वेत्तु । परापूतः रक्षः परापूता अरांतयः । अपहतः
रक्षः । बायुर्वो विविनक्तु । देवोवः सविता हिरण्य-
पाणिः प्रविगृह्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

इस कण्विक में सात मन्त्र हैं—प्रथम “कुक्कुटोसि मधुजिह्व

इषमूर्जमावद त्वया वयं संघातं संघातं जेष्म” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, आर्ची त्रिष्टुप् छन्द, वाक् देवता और शम्या से दृषत् उपल को कूटने में विनियोग है । दूसरे “वर्षष्टदमसि” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुपी गायत्री छन्द, शूर्प देवता और शूर्प के ग्रहण में विनियोग है । तीसरे “गति त्वा वर्षष्टदं वेत्तु” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुपी वृहती छन्द, हवि देवता और हवि को उत्तूखल से बाहर निकाल कर शूर्प में ढालने में विनियोग है । चौथे “परापूत रक्षः परापूता अरातयः” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, आसुरी उष्णिक् छन्द, रक्षो देवता और निष्पवन करने में विनियोग है । पाँचवें “अपहत रक्षः” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुपी गायत्री छन्द, रक्षो देवता और भूसी को दूर करने में विनियोग है । छठे “वायुर्वो विविनक्तु” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुपी उष्णिक् छन्द, तण्डुलाभिमानी देवता और भूसी मिले तण्डुलों को पृथक् करने में विनियोग है । सातवें “देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, तण्डुलाभिमानी देवता और तण्डुलों को पान में रखकर अभिमन्त्रण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—पहिले मन्त्र को पढ़कर शम्या से दृषद् और उपल को कूटाजाता है * मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शम्या नामक

* मनु राजा का एक दृषभ था, उस दृषभ में अक्षरों की नाश करनेवाली वाणी स्थित थी अतः उस दृषभ के शब्द करनेपर तिस शब्द को धनतेही अक्षर मरण को प्राप्त होजाते थे, इसकारण किष्कत और अकुली नामक अक्षरपात्रकों (अक्षरों को यज्ञ करानेवालों) ने मनुके पास जाकर तिस दृषभ के द्वारा ही यज्ञ कराया, तब वह दृषभ की अक्षरघ्नी वाक् मनुकी भीमें प्रविष्ट होगई, तब तों उन अक्षर याजकों ने उस भी के द्वारा भी मनुको यज्ञ कराया, तब वह अक्षरघ्नीवाक् यज्ञके शोखों में प्रविष्ट होगई, अतः अक्षरों का तिरस्कार करने के निमित्त उस अक्षरघ्नी वाक् को प्रकट करने की इच्छा से शम्या से दृषद् और उपल को कूटाजाता है यह श्रुति का कथन है (धात० १।१।४।१४)

यज्ञ के आयुध के अधिष्ठात्री देवता ! तुम (कुकुटः) कुकुट अर्थात् यज्ञ में विघ्न करनेवाले असुर कहाँ कहाँ हैं, यह जानने के लिये उनको मारने के अर्थ सर्वत्र विचरते हो, अथवा असुरों को भव-भीत करने के निमित्त कुकुट की समान शब्द करनेवाले (मधु-जिह्वः) मधुरभाषिणी जिह्वावाले देवताओं के मृत्यु (आसि) हो, हम को (इपम्) अन्न को और (रुजम्) बलदायक रस को (धावद) दोलो अर्थात् तुम अपना शब्द करके असुरों को यज्ञ-भूमि से दूर करो जिससे कि—(त्वया) तुम्हारे द्वारा (वयम्) हम (संघातम् संघातम्) मत्स्येक समूह को (जेष्म) जीतें । हम निर्बिघ्नता के साथ यज्ञ करें और उस यज्ञ के द्वारा वर्षा होकर हमको अन्न और बलकारक रसकी प्राप्ति हो, जिससे कि—हम बलिष्ठ होकर मत्स्येक संग्राम में असुरों को जीतें और कदापि हमारा पराजय न हो ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर शूर्प ग्रहण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शूर्प ! (वर्षष्टब्दम्) वर्षा के जल से बढ़ी हुई वेणुशलाका (तुली)ओं के बने होने के कारण वर्षष्टब्द (आसि) हो (अतः तुम्हारा अभिमानी देवता इस यज्ञ में सहायता देकर तुम्हारी वृद्धि की कारणरूप वर्षा को यज्ञ के द्वारा करावे) ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर हवि को ओखली में से बाहर निकालकर शूर्प में डाला जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (वर्षष्टब्दम्) शूर्पाभिमानि देवता (स्वा) तुम्हको (प्रतिवेत्तु) अपना करके जानें (क्योंकि—शूर्प और तुम दोनों वृष्टि से वृद्धि को प्राप्त हुए हो) ।

चौथे मन्त्र को पढ़कर हवि फटका जाता है अर्थात् भूसी उससे पृथक् करके नीचे गिराई जाती है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(रसः) राक्षसों को (परापूतम्) दूरकिया (अरातयः) आलस्यादिशत्रु (परापूताः) निरादर क्षिणम् । (अर्थात् शूर्प से भूसी को दूर करनेपर उसमें माया से छुी हुई राक्षस जाति को भी दूरकिया) ॥

पाँचवें मन्त्र को पढ़कर पृथिवी पर गिरी हुई हवि की भूसी को उठाकर कूड़े के स्थान पर डाले, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(रसः)

राक्षसों को (अवहतम्) दूर ले जाकर मारा (अर्थात् भूमी में माया से स्थित राक्षसों को भी भूमी के साथ हवि से मयक् किया) ।

छठे मन्त्र को पढ़कर भूमी के चावलों में से बिना भूमीकों को पृथक् करे मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलों ! (वायुः शूर्प के चलाने से उठा हुआ वायु (वः) तुमको (विविनक्तु) सूक्ष्मकरणों से पृथक् करे ।

सातवें मन्त्र को पढ़कर शूर्प में के तण्डुलों को किसी पात्र में डाल कर अभिमन्त्रण करे, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलों ! (हिरण्यपाणिः) हिरण्यपाणि (सुवर्ण की अंगूठी आदि आभूषण युक्त हैं हाथ जिसके, अथवा दैत्यों ने मार्शत्र के प्रहार से सविता के हाथ काट दिये थे उनको देवताओं ने हिरण्यमय किया यह वह च कहिये ऋग्वेद के किसी सूक्त की कथा है इस कारण हिरण्यपाणि) (सविता) सविता (देवः) देव (वः) तुमको, (विविनक्तु) मिलित हैं अङ्गुलियों जिसमें ऐसे हाथ से (मतिगृभ्णात्) स्वीकार करे (जिस से कि पात्री में डालते समय तण्डुल भूमि में न गिरें) ॥ १६ ॥

धृष्टिरसि । अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं
ॐ सेध । आदेवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दं ह ब्रह्म
वनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्पुपदधामि आतृव्यस्य
वधाय ॥ १७ ॥

इस कांडिका में चार मन्त्र हैं । प्रथम “धृष्टिरसि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, देवी वृहती छन्द-उपवेप देवता और पलाश शाखा का उपवेप ग्रहण करने में विनियोग है । दूसरे “अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेध” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि प्राजापत्या अनुष्टुप् छन्द, अग्निदेवता और अङ्गारों को पूर्वभाग में स्थित करने में विनियोग है । तीसरे “आदेवयजं वह” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी जगती छन्द, अग्निदेवता और अङ्गारों से उपवेप से एक अङ्गार को अलग करने में विनियोग है । चौथे “ध्रुवमसि पृथिवीं दं ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्पुपदधामि आतृव्यस्य वधाय,” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु, क-

पल्लः देवता और अङ्गार को कपाल से ढकने में विनियोग है ॥

भावार्थ—प्रथम मन्त्र को पढ़कर उपवेप (पलाश की शाखा को मूलसे काटकर लिए हुए काष्ठ के भाग) को ग्रहण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे उपवेशू नू (धृष्टिः) धृष्ट [जाज्वल्यमान अङ्गारों को इधर उधर हटानेवाला] (असि) है [इस यज्ञ में भी तेरा अभिमानी देवता तुझ को अङ्गारों को इधर उधर हटाने की शक्ति देय] ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर उपवेप से गार्हपत्य अग्नि में से तीन अङ्गारों को पूर्वभाग में अलग करा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे गार्हपत्य अग्ने ! (अयमादम्) जिस में याग की योग्यता नहीं है ऐसे अपक्व भक्षण करनेवाले (अग्निम्) लौकिक अग्नि [लौकिक अग्निनामक अपने रूप] को [अपजहि] त्यागो तथा (आव्यादम्) शवका दाह करने के समय मांस भक्षण करनेवाले चिताग्नि [चिताग्नि नामक अपने रूप] को भी (निःपेध) त्यागो ॥

तीसरे मन्त्र को पढ़कर उपवेप से अलग करे हुए अङ्गारों में से एक अङ्गार लिया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे अग्ने ! (देवयंजम्) देवताओं के अर्थ याग करने के योग्य तीसरे अग्नि [अपने रूप] को (आवह) हमारे समीप में प्राप्त करो ॥

चौथे मन्त्र को पढ़कर उस अङ्गार को कपाल से ढका जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे कपाल ! तू (ध्रुवम्) स्थिर (असि) है [क्योंकि—अङ्गार के ऊपर स्थित होकर इधर उधर नहीं चलायमान नहीं होता है] (पृथ्वीम्) पृथ्वी को (दृष्ट्वा) दृष्ट कर [जिस से कि—पुरोडाश का पाक करने के समय तेरे व्यवधान से भूमि को अग्नि के दाह से शिथिलता न हो अर्थात् जल कर घसक न जाय] और (सप्तवनि) पुरोडाश बनाने के निमित्त ब्राह्मण से स्वीकार करे हुए, (सप्तवनि) क्षत्रिय करके स्वीकार करे हुए एवं (सजावनि) यजमान के सजावियों करके स्वीकार करे हुए (त्वा) तुझ को मैं (भ्रातृव्यस्य) भ्रातृ और पापों

का (वधाय) नाश करने के निमित्त (उपदधामि) अक्षर सर
स्थापन करना है ॥ १७ ॥

अग्ने ब्रह्म-गृभ्णीष्व । धरुणमस्यन्तरिक्षं दृष्ट्व ब्रह्म
घनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्पुपदधामि भ्रातृव्यस्य
वधाय । धर्ममसि दिवं दृष्ट्व ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
सजातवन्पुपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्य-
स्त्वाशाभ्य उपदधामि । चितं स्योर्ध्वचितः । भृगुणाम
क्षिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

इस कथिडका में छः मन्त्र हैं—प्रथम “अग्ने ब्रह्मगृभ्णीष्व”
मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुपी उष्णिक् छन्द, अग्नि
देवता और स्थापन में विनियोग है । दूसरे “धरुणमस्यन्तरिक्षं दृष्ट्व
ब्रह्मघनित्वा क्षत्रवनि सजातवन्पुपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय” मन्त्र
का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, बल्लः, कपालदेवता और पूर्वस्थापित
कपाल के पश्चिमभाग में द्वितीय कपाल के स्थापन करने में विनि-
योग है । तीसरे “धर्ममसि दिवं दृष्ट्व ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि स-
जातवन्पुपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय” मन्त्र का प्राजापत्य पर-
मेष्ठी ऋषि, आर्ची त्रिष्टुप् छन्द, कपाल देवता और प्रथम क-
पाल के पूर्वभाग में तीसरे कपाल को स्थापन करने में विनियोग
है । चौथे “विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि” मन्त्र का प्राजापत्य
परमेष्ठी ऋषि, याजुपी त्रिष्टुप् छन्द, कपाल देवता और प्रथम क-
पाल के दक्षिणभाग में चतुर्थ कपाल को स्थापन करने में विनियोग
है । पांचवें “चितस्योर्ध्वचितः” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,
याजुपी गायत्री छन्द, कपाल देवता और दक्षिण एवं उत्तर में
दो २ कपाल स्थापन करने में विनियोग है । छठे “भृगुणामक्षि-
रसां तपसा तप्यध्वम्” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आ-
सुरी अनुष्टुप् छन्द, कपाल देवता और अक्षरों से कपालों के
आदन करने में विनियोग है ॥

भावार्थः—प्रथम मन्त्र को पढ़कर सन्म हाथ की ओर झुल्लि करके

शून्य में अक्षर को स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि— (अग्ने) हे स्थापन करेहुए अक्षर रूप अग्ने ! (ब्रह्म) हमारे करेहुए मौढ़ कर्म को वा ब्राह्मण को (गृम्णीष्व) ग्रहण करो अर्थात् हमारे ऊपर अनुग्रह करके इस कर्म में विघ्न करने वाले राक्षसों को बध करके इस यज्ञ को पूर्ण करो अथवा हे अग्ने ! मुझ ब्राह्मण के ऊपर अनुग्रह करो अर्थात् अग्नि के विषे लगी हुई मेरी अंगुलि को दृढ़ करो जिससे दाहजनित पीड़ा न हो ॥

दूसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व स्थापित कपाल के पश्चिम में दूसरा कपाल स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे दूसरे कपाल के अभिमानी देव ! तुम (धरुणम्) पुरोडाश धारण करनेवाले (असि) हो, इस कारण (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (दृंह) दृढ़ करो, [जिससे कि पुरोडाश के पाकसे उत्पन्न हुई ज्वाला करके अन्तरिक्ष में उपद्रव न हो यद्यपि यह कपाल, ज्वाला और अन्तरिक्ष के बीच में व्यवधान करनेवाला नहीं है तथापि अन्तरिक्ष की दृढ़ता के निमित्त कपालाभिमानि देवता की मार्यना की जाती है] हे कपाल ! पुरोडाश सिद्धि के लिये (ब्राह्मवनि) ब्राह्मणों करके स्वीकार करेहुए (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके स्वीकार करेहुए और (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके स्वीकार करेहुए (त्वा) तुमको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पाप का (वधाय) बध होने के लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूँ ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व स्थापित कपाल के पूर्व में तृतीय कपाल स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तृतीय कपालाभिमानि देव ! तुम (धर्मम्) पुरोडास को धारण करने वाले (असि) हो, तुम (दिवम्) धुलोक को (दृंह) दृढ़ करो [अर्थात् यज्ञ समाप्ति में साधन होकर धुलोक को वर्षा करनेवाला करो] पुरोडाश सिद्धि के निमित्त (ब्राह्मवनि) ब्राह्मणों करके मार्यना करेहुए (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके मार्यना करेहुए तथा (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके मार्यना करेहुए (त्वा)

तुभको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पापका (वधाय) वध होने के लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूं ।

चौथे मन्त्र को पढ़कर पूर्वस्थापित कंपाल के दक्षिण में चतुर्थ कंपाल को स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे चतुर्थ कपाल ! (विश्वाभ्यः) सकल (आशाभ्यः) दिशाओं की दृढ़ता के लिये तुभको (उपदधामि) स्थापन करता हूं । [इस प्रकार तीन कपालों को स्थापन करने से यजमान त्रिलोकी जीतता है और चौथे से दिशाओं को जीतता है, अर्थात् उन कपालों में का पुरोडाश त्रिलोकीरूप होकर देवताओं को गृह्य करता है] आग्नेय पुरोडाश अष्टाकपाल [आठ कपालों में पकाया हुआ] होता है, उनमें से चार कपाल तो उपरोक्त मन्त्रों से स्थापन किये गये, शेष चार कपालों में से दो २ पांचवें मन्त्र को पढ़कर दक्षिण और उत्तर में स्थापन किये जाते हैं, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे कपाल विशेषों ! तुम (चितः) प्रथम कपाल का तथा (ऊर्ध्वचित्राः) ऊर्ध्व स्थापित द्वितीयादि कपाल का उपकार करनेवाले (स्थ) हो ।

षष्ठ मन्त्र को पढ़कर अङ्गारों से कपालों का आच्छादन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे कपालों ! तुम (भृगूणाम्) भृगु और (अङ्गिरसाम्) अङ्गिरा नामक देवर्षियों के (तपसां) तपो रूप अग्नि से (तप्यध्वम्) तप्त होवो [अर्थात् तुम्हारे अभिमानी देव तुम्हारे विषे भृगु और अङ्गिरा नामक देवर्षियों का तपोरूप तेज प्राप्त करें] ॥ १८ ॥

शर्मसि । अयं धृतश्चरक्षो वधूतां अरांतयः । अदित्या स्त्वरांसि प्रति त्वादिनिर्वेत्तु । धिपणांसि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्धेत्तु । दिवः स्कंमनीरांसि । धिपणांसि पर्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं—प्रथम “शर्मसि” मन्त्र का मा- जापत्य परमेश्वरी ऋषि, देवी अनुष्टुप् छन्दः कृष्णाजित् देवता और कृष्णाजित् के ग्रहण में विनियोग है । “दूसरे अवधूत १९

ऽधुना अरातयः” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आमुरी त्रिष्टुप् छंद, रत्नो देवता और राक्षस तथा शत्रुओं के अपाकरण में विनियोग है। तीसरे “अदित्यास्त्वगसि मत्तित्वादिनिर्वेत्तु” मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आमुरी अनुष्टुप् छंद, कृष्णाजिन देवता और कृष्णा जिनकोविद्वान् में विनियोग है। चौथे “धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आमुरी गायत्री छंद, दृष्ट दधिपानी देवता और मृग चर्म पर शिला को स्थापन करने में विनियोग है। पांचवें “दिवस्कर्मनीरसि” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी उष्णिक् छंद, शम्पा देवता और शिला के पश्चाद्भाग में नीचे से शम्पा रखने में विनियोग है। छठे “धिषणासि पार्वतेयी मत्तित्वां पर्वती वेत्तु” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या अनुष्टुप् छंद, उपल देवता और ऊपर की शिला को ग्रहण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—प्रथम मंत्र को पढ़कर मृगचर्म ग्रहण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मृगचर्म के अधिष्ठातृ देव ! तुम (शर्म) सुख के हेतु (असि) हो।

दूसरे मंत्र को पढ़कर राक्षसादि दूर किये जाते हैं, मंत्र का अर्थ यह है कि—(रक्षः) राक्षस जाति (अपहतम्) दूर हुई, (अरातयः) आलस्यदि शत्रु (अवधूताः) निरादर किये गए।

तीसरे मंत्र को पढ़कर मृगचर्म बिछाया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मृगचर्म तुम (अदित्याः) भूमि देवता के (त्वक्) त्वचा रूप (असि) हो, (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुम को (प्रतिवेत्तु) अपना करके जानै।

चौथे मंत्र को पढ़कर मृगचर्म के ऊपर शिला बिछाई जाती है मंत्र का अर्थ यह है कि—हे शिला ! तुम (पर्वती) पर्वत की पुत्री (अभि) हो [क्योंकि पर्वत से उत्पन्न हुई हो] (धिषणाः) कर्म को देने वाली [साधन होकर यह रूपकर्म का फल देने वाली] (असि) हो, (अदित्याः) भूमि की (त्वक्) त्वचा [मृगचर्म]

(त्वा) तुभ्यं कां (प्रतिवेत्तु) स्थिति की आज्ञा देय ।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर शिला के पश्चिम की ओर नीचे शम्भा को स्थापन कपा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे शम्भा के अधिष्ठातृ देव ! तुम (दिवः) स्वर्ग लोक की (स्तम्भनी) स्तम्भन करने वाली (आभि) हो ।

छठे मंत्र को पढ़कर शिला पर उपल [ऊपर का छोटा पत्थर] रक्त्वा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे ऊपर की शिला ! तू (पार्व-
तेयी) पेपण के व्यापारको धारण करने वाली और नीचे की शिला की बालक रूप (असि) है, (पर्वती) माता की समान नीचे की शिला (त्वा) तुभ्यं को (प्रतिवेत्तु) पुत्री भाव से जाने ॥ १६ ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् । पूणाय त्वा । उदानाय त्वा ।
व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान्देवो वः
सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्यणात्त्वच्छिद्रेण पाणिना
चक्षुषे त्वा । महीनां पयोऽसि ॥ २० ॥

इस कथिडका में सात मंत्र हैं—प्रथम,, धान्यमसि धिनुहि देवान्,,
मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुपी बृहती छंद, हविर्देवता
और तण्डुलों को शिला पर स्थापन करने में विनियोग है । दूसरे
'प्राणायत्वा,, तीसरे 'उदानायत्वा,, एवं चौथे 'व्यानाय त्वा,,
मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दूसरे चौथे मंत्र का दैवी बृहती,
छंद तथा तीसरे का दैवी पंक्ति छंद, सब का हविर्देवता
और तण्डुलों को पीसने में विनियोग है । पाँचवें,, दीर्घामनु
प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्यणात्त्व-
च्छिद्रेण पाणिना,, मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्षी त्रिषुष्
छंद, हविर्देवता और मृगचर्म पर पिसे तण्डुलों को गिराने में वि-
नियोग है । छठे 'चक्षुषे त्वा मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवीं
बृहती छंद, हविर्देवता और पिष्टतण्डुलों का अवलोकन करने में
विनियोग है । सातवें 'महीनां पयोऽसि' मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी
ऋषि, दैवी त्रिषुष् छंद, आय्य देवता और अन्यपात्र में से घृत

को हवि में डालने में विनियोग है॥

भावार्थ—प्रथम मंत्र को पढ़कर शिलापर चावल रक्खे जाते हैं, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे हवि! (धान्यम्) तुम करने वाला होने के कारण तू धान्य (असि) है सो नूइस यज्ञ में (देवान्) अग्न्यादि देवताओं को (धिनुहि) वृष्ण कर [जिससे यज्ञ सिद्ध होकर यजमान की अभीष्टभिद्धि हो] ।

दूसरे तीसरे और चौथे मंत्र को पढ़कर तण्डुलों को पीसा जाता है, मंत्रों का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलों ! मैं (त्वा) तुमको (माः) गाय (संदा) अधिकता के साथ मुख में चेषा करनेवाले प्राण [श्वास] वायु के देने के लिये, पीसता हूँ; (उदानाय) ऊपर को चेषा करने वाले उदानवायु के देने के लिये (त्वा) तुमको, पीसता हूँ, तथा (व्यानाय) सब शरीर में व्यापक होकर चेषा करनेवाले बलके हेतु व्यानवायु के देने के लिये (त्वा) तुमको, पीसता हूँ [देवताओं का हविसजीव होता है इस कारण यह हवि सजीव किया गया] ।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर शिलापर का पिसाहुआ तण्डुल रूप हवि नीचे बिछी हुई कृष्णाजिन पर गिराया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे हवि! (आयुषे) निरन्तर यज्ञादिकर्म परम्परा के होने के निमित्त यजमान की आयु को बढ़ाने की इच्छा से (दीर्घाम्) अविच्छिन्न (प्रसितिम्) कर्म सन्ताति को (धाम्) धारण करता हूँ। (अथवा पूर्व के तीन मंत्रों से हवि को सजीव किया और इस मंत्र से हवि की आयु दिया जाता है, अर्थ ऐसा होगा कि—हे हवि ! तेरी आयु की वृद्धि करने के लिये तुम्हको दीर्घकृष्णाजिन पर स्थापन करता हूँ, इस वेदोक्त कर्म से कृष्णाजिन का अभिमानी देवता आयुदेय) । हे हवि! (हिरण्यपाणिः) हिरण्यपाणि (सविता) सविता (देवः) देवता (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) अच्छिद्र (पाणिना) हस्तसे (प्रतिगृभ्णतु) ग्रहण करै।

छठे 'चक्षुषे त्वा' मंत्र को पढ़कर उस पिसे हुए हवि को देखा

जाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हृ हवि ! (चक्षुषे) यजमान के चक्षुः इंद्रिय का प्रकाश अधिक होने के लिये अथवा हवि को सजीव काने पर चक्षुगादि की अपेक्षा होती है अतः चक्षु शक्ति के देने के निमित्त (त्वा) तुम को (पश्यामि) देखता हूँ । -

सातवें मंत्र को पढ़कर पिसे हुए हवि में दूसरा पुरुष घृत डालता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आन्य ! तू दुग्ध से उत्पन्न होने के कारण (महीनाम्) गौआंका (पयः) दुग्धरूप (असि) है ॥२०॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽभिर्नोर्वाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम् । संवपामि । समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन सः रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

इस कण्विके में तीन मंत्र हैं, प्रथम "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽभिर्नोर्वाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम्", मंत्र का भाजापत्य परमेष्ठी ऋषि, भाजापत्या बृहती छंद, सविता देवता पिष्ट को पावित्रायुक्त पात्री के विषे डालने में विनियोग है। दूसरे "संवपामि" मंत्र का भाजापत्य परमेष्ठी, ऋषि, देवी बृहती छंद, हविर्देवता और पिष्टको पात्री में डालने में विनियोग है, तिसरे "समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन सः रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताम्" मंत्र का भाजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु, आपोदेवता और पिष्ट में जल मिलाने में विनियोग है।

प्रथम तथा दूसरे मंत्र को पढ़कर कुशा के पवित्र युक्त पात्र में पिसाहुआ तण्डुलों का हवि डाला जाता है, दोनों मंत्रों का अर्थ यह है कि—(सवितु) तबके मेरक सविता (देवस्य) देवता के (प्रसवे) मेरणा करने पर (अभिनो) अभिनीकुमार की वाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे (वाहुभ्या) वाहुओं करके और (पूष्ण) पूषा देवता के हस्तों की करी है भावना जिनमें ऐसे (हस्ताभ्याम्) हस्तों करके हे हवि ! (त्वा) तुम्हको (संवपामि) विधिपूर्वक भलीप्रकार पात्र में डालता हूँ [सविता देव, तुम्हको

पूर्ण करने की शक्ति देय] ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर अग्नीध्र, पिष्ट हवि में डालने के उपसर्जनी नामक जलको लावै और अर्घ्य पवित्राओं करके उस जल की पात्री में लेय अर्थात् पवित्रों के ऊपर होकर जल की धारा पात्र में गिरावै, मन्त्रका अर्थ यह है कि (आषः) जल (ओषधीभिः) पिष्ट तण्डुल रूप ओषधियों से (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिलें, (ओषधयः) पिष्ट तण्डुल (रसेन) जल करके (सम्पृच्यन्ताम्) मिलें (रेवतीः) जल (जगतीभिः) पिष्ट तण्डुलों से (संपृच्यन्ताम्) मिलें और (मधुमतीः) मधुर्ययुक्त जल (मधुमतीभिः) मधुर ओषधियों से (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिलें ॥२॥

जनयत्यै त्वा संयौभिः । इदमग्नेः । इदमग्नीषो-
मयोः । इवे त्वा । घर्मोऽसि विश्वायुः । उरुमया उरु-
प्रस्थस्वीरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् । अग्निष्टे त्वं
माहिः सीत् । देवस्त्वा साविता अययतु बर्हि-
ष्टेऽधि नाके ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में आठ मन्त्र हैं, प्रथम “जनयत्यै त्वा संयौभिः” मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि माजापत्या गायत्री छन्द, हविर्देवता और जलपिष्ट के संमिश्रण में विनियोग है। दूसरे “इदमग्नेः” मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी बृहती छन्द, हविर्देवता और हविके पिष्ट को स्पर्श करने में विनियोग है। तीसरे “इदमग्नीषोमयोः” मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि देवी जगती छन्द, हविर्देवता और हवि के पिष्ट को स्पर्श करने में विनियोग है। चौथे “इवे त्वा” मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी अनुष्टुप् छन्द, आद्य देवता और घृत को तपाने में विनियोग है। पांचवें “घर्मोऽसि विश्वायुः” मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश को अग्नि पर चढ़ाने में विनियोग है। छठे “उरुमया उरु प्रस्थस्वीरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्”, मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि

आर्ष गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाशके कपाल में फैलाने में विनियोग है । सातवें, “अग्निष्टे त्वचं माहिःसीत्,” मन्त्रका माजापत्य परमेष्ठी आधि, माजापत्या गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश के ऊपर, जलस्पर्श करने में विनियोग है । आठवें “ देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाके,” मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी आधि, माजापत्या अनुष्टुप् छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश को पकाने में विनियोग है ।

प्रथम मन्त्र को पढ़कर जल और तण्डुलों के पिष्ट को मिलाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे जल और पिष्ट ! (त्वा) तुमको । (जनयत्यै) पुरोडाश बनानेके निमित्त यजमान के सन्तति उत्पन्न होने के निमित्त (संयौमि) मिलाता हूँ क्योंकि—जैसे जल और पिष्टका मेलन होता है तिसीप्रकार शुक्र शोणित (वीर्यरज) के मेलन से यजमान के सन्तति की उत्पत्ति हो ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर मिलाएहुए पिष्ट के अवदान (छेदन) के विन्ध्युक्त दो पिण्ड करके अलग २ स्थापन कर एकको स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(इदम्) यह पिण्ड (अग्नेः) अग्नि देवता का, है (असः) इसको अग्नि ग्रहण करके यजमान के ऊपर प्रसन्न हो)

तीसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व की समान दूसरे पिण्ड को स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(इदम्) यह पिण्ड (अग्नीषोमयोः) अग्नीषोम देवता का, है (उक्त देवता, इसको ग्रहण करके यजमान के ऊपर प्रसन्न हों) ।

चौथे मन्त्र को पढ़कर पिघलाने के लिये घृत का पात्र अग्नि पर तपाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे घृत (इषे) इच्छित वृष्टि के अर्थ (त्वा) तुमको, तपाता हूँ, (क्योंकि तेरे द्वारा पुरोडाश तयार होने पर उस से यज्ञ होकर वृष्टि होगी) ।

पाचवें मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश अग्नि पर चढ़ाया जाता है,

मन्त्रका अर्थ यह है कि हे पुरोडाश ! तू (धर्मः) दीप्यमान यज्ञ का अंश (विश्वायुः) यजमान को पूर्ण आयु देनेवाला (असि) है।

छठे मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश सब कपालों में रखने के लिये फैलाया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश ! तू स्वर्माक्ष से ही (उरुमयाः) विस्तार के साथ फैलनेवाला है । (उरु) फैलकर (प्रयस्वै) प्रख्यात हो। और (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञपति यजमान (उरु) बहुत से पुत्रपशवादिको प्राप्त होकर (प्रयताम्) प्रसिद्ध हो।

सातवें मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश के ऊपर जन्तु छिड़का जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश ! (अग्निः) पकता हुआ अग्नि (ते) तेरे (त्वचम्) त्वंचारूप ऊपर के भाग को (भाहिंसति) जलाकर बाँकला करके नष्ट न करे।

आठवें मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश पकाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश (सविता) सविता (देवः) देवता (वर्षिष्ठे) वड़े वेग के साथ चड़ी ज्वालाओं से मज्जालित होते हुए, राक्षसों के नाशक (नाके) स्वर्ग के नाकनामरु अग्नि में (त्वा) तुझको (अश्रिपयतु) मरू करे ॥ २२ ॥

मा भेर्मा संविक्र्याः । अतमेर्युर्ज्ञोऽतमेर्युर्जमानस्य मृज्ज भूयात् त्रितार्य त्वा । द्वितार्य त्वा एकृतार्य त्वा ॥ २३ ॥

इस के छिड़का में यौचमन्त्र हैं, मयम “मा भेर्मा संविक्र्याः” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, योजुषी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाशको स्पर्श करने में विनियोग है। दूसरे “अतमेर्युर्ज्ञोऽतमेर्युर्जमानस्य मृज्ज भूयात्” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आपी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और अक्षरों के द्वारा दर्भाकर भली मकार पक करने में विनियोग है तीसरे “त्रितार्य त्वा” मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी वृहती छन्द, त्रित देवता ऋषि और ऋग्वेदियों के मसालन के जल को औंधाने में विनियोग है। चौथे “द्वितार्य त्वा” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि देवी वृहती,

छन्दः, द्वित देवता और तृतीय मन्त्रोक्त विनियोग है। पांचवें—“एकता
यत्वा” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी अपि; दैवी प्रीति छन्दः, एकता
देवता और तृतीय मन्त्रोक्त विनियोग है। प्रथम मन्त्र को पढ़कर, पुरोडाश पका है या नहीं यह जाने
के निमित्त स्पर्श करा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पुरो-
डाश (मधेः) भयभीत मत हो, (मा सन्मिकथाः) चलायमान मत हो
दूसरे मन्त्र को पढ़कर पके हुए पुरोडाश को अङ्गारों से ढककर
पकाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(यज्ञः) यज्ञसाधक
पुरोडाश (अतमेरुः) ऊपर भस्म जमजाने की मलिनसारूप श्लानि
रहित हो (यजमानस्य) यजमान की (मृजाः) पुनर्वादि
सन्निधि (अतमेरुः) श्लानिरहित (ध्यात्) हो, अर्थात् यज-
मान की सन्निधि को कदापि दुःख न हो।
तीसरे चौथे और पाँचवें मन्त्र को पढ़कर प्रिष्टलिप्तपात्र तथा अंगु-
लियों के धोवन का जल पात्र में रक्पाकर गार्हपत्य अग्नि के ऊपर
(औपांवि) मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पात्र और अंगुलियों के मला-
लन के जल (त्रितायः) त्रित (१) नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुभ को
(द्विताय) द्वित नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुभ को
और (एकताय) एकता नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुभ को
त्यागता हूँ॥ ३३॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽभिघ्नोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ता-
भ्याम्, आदेदेऽश्वरकृते देवेभ्यः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः
(सहस्रभृष्टिः) शततेजा बाधुरसि तिग्मतेजा द्विपतो वधः॥
इस कंदिका में तीन मन्त्र हैं, प्रथम देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽभि-
घ्नोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी अपि,
(१) पूर्वकादः में किसी कारण से भयभीत हुआ अग्नि देवता जल में प्रवेश कर गया
सदमन्तर देवताओं ने जानकर ग्रहण किया; उस समय अग्नि ने अपने वीर्य को जल
में त्यागा, उस से त्रित, द्वित और एकता नामक व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने देवताओं
के साथ विचरते हुए, यज्ञ में पात्र और अंगुलियों के प्रक्षालन का जल रूप भोग
पाया, यह कथा अंतर्गत् ३३-३४-३५ में लिखी है।

अजं गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते यौ. प्रधान देव
सवित परमस्या पृथिव्या ७३ शतेन पाशैर्योऽस्मान्
द्रेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥

इस काण्डिका में चार मन्त्र है, प्रथम “पृथिवि देवयजन्योप-
ध्यास्ते मूलमाहि ७३ सिपम्, मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,
यजुः, वेदि देवता और वृणों को हटाकर भूमि को स्फ्य से खो-
दने में विनियोग है । दूसरे “अजं गच्छ गोष्ठानम्” मन्त्र का
प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी जगती छन्द, पुरीष देवता और
खोदी हुई मृत्तिका को ग्रहण करने में विनियोग है । तीसरे “व-
र्षतु ते यौ., मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द
वेदि देवता और वेदी को अर्दलोकन करने में विनियोग है
चौथे ‘प्रधान देव सवित. परमस्या पृथिव्या ७३ शतेन पाशैर्योऽस्मान्
द्रेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्’ मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी
ऋषि, यजुः सविता देवता और खोदी हुई मृत्तिका को उत्कर
(घूरा) स्थान में डालने में विनियोग है ।

प्रथम मन्त्र को पढ़कर वृणों को हटाकर भूमि खोदी जाती है,
मन्त्र का अर्थ यह है कि—(देवयजानि) देवताओं के यज्ञ करने
के योग्य (पृथिवि) हैं पृथिवी ! मैं (ते) तेरी (ओपध्या)
वृणरूप ओषधि की (मूलम्) मूल को (माहिंसिपम्) नष्ट नहीं
करता हूँ, (किन्तु यज्ञ के निमित्त खोदता हूँ) ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर पुरीष (कुदाल से खोदने पर उत्पन्न
हुई मृत्तिका) को ग्रहण किया जाता है मन्त्र का अर्थ यह है कि—
हे खोदी हुई मृत्तिका ! तू (गोष्ठानम्) जहा इस समय गौर्ण स्थित
हैं ऐसी (अजम्) गोशाला को (गच्छ) जा ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर वेदिको (ठीक हुई या नहीं यह जानने
के लिये) देखा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि हे वेदी ! (ते)
तेरे लिये (यौ) धुलोक का अभिमानी देवता (वर्षतु) जल
की वर्षा करे (जिस से खोदने से होनेवाले दःख की शान्ति हो)

चाये मंत्रको पढ़कर उत्कर, (कूड़ा ढालने के स्थान) पर कु-
दाल से खोदी हुई मृत्तिका ढालीजाती है, मंत्रका अर्थ यह है
कि—(सवितः) हे सविता (देव) देवता ! (य) जो (अ-
स्मान्) हमारे ऊपर (द्वेष्टि) द्वेषदृष्टि रखता है (त्र) और (यम्) जिसके
मति (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेषदृष्टि रखते हैं (तम्) इसद्रोने
भकार के हमारे शत्रु को (परमस्याम्) अन्तिम (पृथिव्याम्)
पृथिवी के विषे अर्थात् जहाँ भूमिके अन्तिम स्थान में अन्धतामिस्र
नरक है तहाँ (शनेन) सैकड़ों (पाशैः) पाशों से (बधान) बांधो
और (अतः) उस अन्धतामिस्र नरक में से (मामौक्) कदापि
मत छोड़ो ॥ २५ ॥

अपारहं पृथिव्यै देवयजनाद् वध्यासम् । व्रजं
गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते यौः । बधान देव स-
वितः परमस्या पृथिव्या शतेन पाशैर्योस्मा
न् द्वेष्टियं च वयं द्विष्मस्ततो मामौक् । अररो
दिव मा पप्त । द्विष्मस्ते यौ मा स्कन् । व्रजं
गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते यौः । बधान देव स-
वितः परमस्या पृथिव्या शतेन पाशैर्योस्मान्
द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

इस कण्टिका में नौ मंत्र हैं—प्रथम “अपारहं पृथिव्यै देवयज-
नाद् वध्यासम्” मंत्र का भाजापत्य परमेश्वरी ऋषि, असुरी, गायत्री
छन्द, असुरदेवता और उत्कर स्थान में द्वितीय बार मृत्तिका ढाल-
ने में विनियोग है । द्वितीय “व्रजमित्यादि” तृतीय “वर्षस्वि-
त्यादि” और चतुर्थ “बधानेत्यादि” मन्त्र इनके ऋषि इत्यादि
पच्चीसवीं कण्टिका की समान जानने । पाँचवें “अररो दिव मा
पप्त” मन्त्र का प्रा० प० पर० ऋषि, यजु, असुर देवता और उत्कर
के अभिमुख हाथों को रखने में विनियोग है । षष्ठे “द्विष्मस्ते यौ
मा स्कन्” मन्त्र का प्रा० प० ऋषि, यजु, असुर देवता और तृतीय बार
मृत्तिका को उत्करस्थान में ढालने में विनियोग है ॥ सप्तम अष्टम और

नवम मंत्रका ऋषि छन्दादि पञ्चीसवीं कंडिका की समान जानना ।

प्रथम मंत्र को पढ़कर द्वितीयवार, खोदी हुई मृत्तिका को ग्रहणकर उत्कर स्थान में डाले, मंत्र का अर्थ यह है कि— (पृथिव्यै) पृथिवी के (देवयजनात्) देवयजननामके वेदिके स्थान से (अररुम्) अररु नामक असुर को (अपवध्यासम्) दूर ले जाकर मारता हूँ ।

(द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ मंत्र का कार्य और भावार्थ पूर्व अर्थात् पञ्चीसवीं कंडिका की समान जानना)

पाँचवें मन्त्र को पढ़कर उत्कर के अभिमुख हाथ रखे जाते हैं मंत्र का अर्थ यह है कि—हे अररुनामक असुर ! (दिवम्) यज्ञ के फलरूप धुलोक को (मा पतः) तू मत प्राप्त हो ।

छठे मंत्र को पढ़कर तृतीय बार मृत्तिका को ग्रहण कर उत्कर स्थान में डाला जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे वेदिके देवता ! (ते) पृथिवी रूप जो तू तिसका (द्रप्सः) उपजीव्य रस अर्थात् भोग (धाम्) स्वर्गलोक को (मास्कन्) मतजाओ ।

(सातवें आठवें और नवें मंत्रों का कार्य और भावार्थ पञ्चीसवीं कण्डिका की समान जानना) ॥ २६ ॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । । जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सुष्मा चासि शिवा चासि । स्योना चासि सुपदा चासि । ऊर्जस्वती चासि पर्यस्वती च ॥ २७ ॥

इस कण्डिका में छः मंत्र हैं—प्रथम ‘गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि’ मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद विष्णु देवता और वेदि खोदने से पहिले स्फुट से रेखा खेचने में विनियोग है। द्वितीय ‘त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि’ मंत्र का मा० पर० ऋषि आसुरी अनुष्टुप्छन्द, विष्णु देवता और स्फुट से द्वितीय रेखा खेचने में विनियोग है। तृतीय ‘जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि’ मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद, विष्णु

देवता और स्फ्य से तीसरी रेखा करने में विनियोग है। चौथे 'सु-
रमा चासि शिवा चासि' मंत्र का मा० पर० ऋषि, माजापस्था
गायत्री छंद वेदि देवता और वेदि खोदने के पश्चात् स्फ्य से रेखा
करने में विनियोग है। पाँचवें 'स्थोना चासि सुपदा चासि' मंत्र का
मा० पर० ऋषि, आसुरी जगती छंद वेदि देवता और द्वितीय रेखा
करने में विनियोग है। छठे 'उजस्वती चासि पयस्वती च' मंत्र का
माजापत्य प० ऋषि, आसुरी पंक्ति छंद वेदि देवता और तृतीय रेखा
करने में विनियोग है॥

जिस स्थान से अररु नामक अमुर को निकाला तहाँ वेदी के परि-
माण का निश्चय करने के लिये दक्षिण पश्चिम उत्तर इन तीन दिशाओं
में स्फ्य से रेखा करी जाती है, जिसमें से प्रथम मंत्रको पढ़कर दक्षिण में
द्वितीय को पढ़कर पश्चिम में और तृतीय मंत्रको पढ़कर उत्तर में रेखा
करे इस कर्म का नाम पूर्वपरिग्रह है तीनों मंत्रों का अर्थ यह है
कि—हे यज्ञ ! गायत्री त्रिष्टुप् और जगती छंद रूप से भावना
करे शुष् स्फ्य के द्वारा (त्वा) तुभ को (गायत्रेण) गायत्री के
(छन्दसा) छन्दोरूप स्फ्य करके (परिग्रहामि) परिग्रहण करता
हूँ, (त्रिष्टुभेन) त्रिष्टुप् के (छन्दसा) छंदोरूप स्फ्य करके (त्वा)
तुभको (परिग्रहामि) परिग्रहण करता हूँ (जागतेन) जगती
के (छन्दसा) छंदोरूप स्फ्य करके (त्वा) तुभको (परिग्रहामि)
परिग्रहण करता हूँ, (तीनों छंदों के देवता तीनों दिशाओं में तेरी अमुरों
से रक्षा करेंगे और पूर्व दिशा में आहवनीय अग्नि ही रक्षा करेगा)
चौथे पाँचवें और छठे मंत्र को पढ़कर उत्तरपरिग्रह किया जाता
है अर्थात् पहिले जो पूर्व परिग्रह कर्म कहा वह वेदि खोदने से पूर्व
किया जाता है, और वेदी खोदने के अनन्तर चतुर्यादि तीनों मंत्रों
को पढ़कर फिर दक्षिणादि तीनों दिशाओं में स्फ्य से तीन रेखा
करी जाती हैं, इस का नाम उत्तरपरिग्रह कर्म है। मंत्रों का अर्थ
यह है कि—हे वेदी तुम ईश्वर के तेज से युक्त होने के कारण
(सुरमा) सुन्दर (चासि) है (च) और उग्र अमुर के निकल

जाने तथा यज्ञपुरुष का निवासस्थान होने से (शिवा) शांतस्वरूप (च) भी (अस्ति) हो (च) और (स्योना) सुखरूप (अस्ति) हो (च) और (सुपदा) देवताओं की सुन्दर स्थिति की स्थान (च) भी (अस्ति) हो (ऊर्जस्वती) अन्न वाली (अस्ति) हो (च) और (पर्यस्वती) दध्यादि के मूलभूत दुग्ध की खनि (च) भी हो ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्य विमृषो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीव-
दानुम् यामैरयन् चन्द्रमासि स्वधाभिस्ताम् धीरासोऽनु-
दिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय । द्विपतो वधोऽसि २८

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं, प्रथम “पुरा क्रूरस्य विमृषो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुं यामैरयन् चन्द्रमासि स्वधाभिस्ताम् धीरासोऽनुदिश्य यजन्ते,, मन्त्र का अर्थशंस ऋषि, विष्णु छन्द, चन्द्रमा देवता और वेदी को समान तथा शुद्ध करने में नियोग है । दूसरे “प्रोक्षणीरासादय” मन्त्र का अर्थशंस ऋषि याजुषी उष्णिक् छन्द, भैषदेवता और प्रोक्षणीपात्र को स्थापन करने में विनियोग है । तीसरे “द्विपतो वधोऽसि,, मन्त्र का अर्थशंस ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, अभिचारिक देवता और स्फ्यको ऊपरको उठाने में विनियोग है । प्रथम मन्त्र को पढ़कर वेदी को लोप्रादि निकालकर समान और शुद्ध किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(विरप्शिन्) हे परमेश्वर विष्णो ! तुम प्रार्थना को (शृणु) सुनो, और अनुग्रह करो * (विमृषः) नाना योधा युक्त (क्रूरस्य) युद्ध के (पुरा) प्रथम देवताओं ने (जीवदानुम्) जीवों की धारण करनेवाली सारभूत (याम्) जिस (पृथिवीम्) पृथिवी के आत्मा को (उदादाय) ऊँचा उठाकर (स्वधाभिः) वेदों सहित (चन्द्रमासि) चन्द्रमा में

* किसी समय अगुरों के साथ देवताओं का युद्ध हुआ उस समय देवताओं ने आपस में सम्मति करी कि—इस भूमिका जो देवयजन नाम उत्तम स्थल है उसको चन्द्रमा में स्थापन करके युद्ध करें, यदि हमारा पराजय होजायगा तो फिर भी यह करके अगुरों को जीतलेंगे, यह सम्मति करके पृथिवी के सारभूत देवयजन भागको चन्द्रमामें स्थापित किया, अब भी वह कृष्णवर्ण दीपता है । (मत० १।२।१।२८)

(पेरयन्) स्थापन कर दिया था (ताम्) उसही चन्द्रमा में स्थित पृथिवी के आत्मा को (अनुदिश्य) शास्त्रोपदेश के द्वारा सिद्ध करके अर्थात् वही सारभूत भूमि इस वेदीमें विद्यमान है ऐसी भावना करके (धीरासः) धीरपुरुष (यजन्ते) यज्ञ करते हैं ।

दूसरे मंत्र को पढ़कर मोक्षणी को लाया जाता है, अर्ध्वर्ग्य कहता है, हे अग्निध्रि ! (मोक्षणीः) मोक्षण करने के जलों को (आसादय) वेदी पर स्थापन करो ।

तीसरे मंत्र को पढ़कर स्फ्य को ऊँचा करके उत्तर स्थान में ढाला जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे स्फ्य ! तू (द्विषतः) यज्ञ में विघ्न करने वाले शत्रुओं का (वधः) वध करने वाला (आसि) है ॥ २८ ॥

प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः । निष्टप्त ॐ रक्षो निष्टप्ता अरातयः अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम । प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः । निष्टप्त ॐ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम । इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं, प्रथम "प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः,, और दूसरे "निष्टप्त ॐ रक्षो निष्टप्ता अरातयः,, मन्त्रका ऋषि, आदि सातवीं कण्डिका के अनुसार जानना केवल विनियोग में अन्तर है अर्थात् इसका सुव को तपाने में विनियोग है । तीसरे "अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम,, मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सुवदेवता और सुवका मार्जन करने में विनियोग है । चौथे "प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः,, और पाँचवें निष्टप्त ॐ रक्षो निष्टप्ता अरातयः,, मन्त्रका ऋषि आदि ७ वीं कण्डिका के समान है और सुव को तपाकर अर्ध्वर्ग्य को समर्पण करने में विनियोग है । छठे "अनिशितोऽसि" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्रा० प० बृह० छन्द, सुवदेवता और सुवका मार्जन करने में विनियोग है । प्रथम

वा द्वितीय मन्त्रको पढ़कर सुव (खैर के काठका हस्तकी समान यज्ञका पात्र) अग्निपर तपाया जाता है, इन दोनों मंत्रोंका अर्थ ७ वीं कण्डिका के १।२ मंत्रके अर्थकी समान जानना तिसरे मन्त्रको पढ़कर सुव का सम्मार्जन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे सुव ! तुम हमारे विषय में (अनिशितः) तक्षिणता रहित, उपद्रव न करनेवाले, (आसि) हो (सप्तनजित्) हमारे शत्रुओं का वध करते हो, इस कारण, हमारे हितैषी होने से, (वाजिनम्) यज्ञ के द्वारा अन्न से युक्त, अथवा यज्ञनामक अन्न के योग्य तुम को (वजिध्यायै) यज्ञ नामक अन्नके प्रकाशके अर्थ (सम्मार्ज्जिम) भली प्रकार शोधता हूँ, क्योंकि मार्जन करे हुए सुव में आज्य के ग्रहण करने और होम करने से अग्निदेवता प्रज्वलित होता है । उसमें आहुति देने से तिस आहुति का फलरूप अन्न प्रकाशित [उत्पन्न होता है] । छठे मन्त्र को पढ़कर सम्मार्जन करे हुए जुहू, उपभृत और ध्रुवनामक तीन छुच् (बटके पत्रकी समान आकृति वाला बाहुकी बराबर विड्कत काष्ठका यज्ञका पात्र) का मार्जन करके मरत्येक को चौथे और पांचवें मन्त्रको पढ़ कर अग्निपर तप्त कर २ के वेदी में स्थापन करने के निमित्त अध्वर्यु को देय चौथे और पांचवें मन्त्रका अर्थ ७वीं कण्डिका में कहे अनुसार जानना और छठे मन्त्रका अर्थ इसी कण्डिका के तिसरे मन्त्रकी समान जानना ॥ २९ ॥

अदित्यै रास्नासि । विष्णोर्विष्योऽसि । ऊर्जे त्वा ।

अदन्धेन त्वा चक्षुषा च पश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहृ-
द्वेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, मयम “अदित्यै रास्नासि” मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, योक्त देवता और मुंज की रज्जुसे यजमानकी स्त्री की कमर को युक्त करने में विनियोग है । दूसरे “विष्णोर्विष्योऽसि” मंत्र का प्राजापत्य परमेश्वरी ऋषि, पंक्ति छन्द, योक्त देवता और कमर की रज्जु

को दक्षिणके पाश को उत्तर की ओर कमर में लगाने में विनियोग है । तीसरे “ऊर्जे त्वा” मंत्र का मा० पर० ऋषि, देवी अनुष्ण छन्द, आज्य देवता और घृतपात्र को अग्निपर से उतारने में विनियोग है । चौथे “अदव्येन त्वा चक्षुषावपश्यामि अग्नेर्जिह्वासि सुहृदेभ्यो धाम्ने धाम्ने भव यजुषे यजुषे” मंत्र का मा० पर० ऋषि, यजुः, आज्य देवता और पत्नी के घृणावलोकन करने में विनियोग है ॥ प्रथम मंत्र को पढ़ कर, अग्नीध्र योक्त (तीन बल की मुंज की मेखला) से, गार्हपत्य अग्नि के दक्षिण में ईशान कोण को मुख करके बैठी हुई यजमान की भार्या की नाभि से नीचे कमर में प्रदक्षिण लपेटे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मुंजकी मेखला तू (अदित्यै) भूमि की (रास्ना) मेखला (असि) है । दूसरे मंत्र को पढ़ कर, तिस मेखला के दक्षिण पाश (सिरे) को शंकुस्थानीय (गुण्डी युक्त) दूसरे पाश (सिरे) में दो लपेटों से डरस कर ऊपर को उद्गूहन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे दक्षिण पाश ! तू (विष्णोः) यज्ञ का (वेपथः) व्यापक (अस्ति) है । तीसरे मंत्र को पढ़ कर घृत को अग्निपर से नीचे उतार कर यजमान की स्त्री के सम्मुख रखकर कहै कि—हे यजमान की पत्नी, घृतको अवलोकन कर, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे घृत ! (त्वा) तुझको (ऊर्जे) उत्तम रसकी प्राप्ति के अर्थ । अग्निपर से तायकर उतारता हूँ (क्योंकि ताय हुआ घृत दोषरहित होनेके कारण अस्ति स्वादरेसः युक्त होता है) । चौथे मंत्र को पढ़ते समय यजमान की स्त्री घृतको देखे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे घृत (त्वा) तुझको (अदव्येन) अधोमुखी होकर निरोग (चक्षुषा) नेत्रों से (अवपश्यामि) अवलोकन करती हूँ, हे घृत ! तू (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वा) जिह्वा रूप है, (क्योंकि अग्नि में घृतका हवन करनेपर जिह्वा की समान ज्वाला उत्पन्न होती है) तुम (देवेभ्यः) देवताओं की प्रसन्नता के निमित्त (सुहृः)

॥ से होमेजानेवाले (अस्ति) हो, अथवा तुम अग्नि की

जिन्हा हो कि—जिसके द्वारा देवगाओं का आवाहन होता है,
 (क्योंकि—यज्ञमें वेदके मंत्रों से प्रज्वलित हुई अग्नि की ज्वालाको
 देखकर देवता आते हैं) अतः हे घृत यज्ञकी आहुतिओं में उत्तमता से
 साधनरूप होकर तू (मैं) मेरे (धाम्ने धाम्ने) सब यागों के फलों के
 उपयोग के स्थानों की प्राप्ति कराने के अर्थ और (यजुषे यजुषे)
 तिम २ यागकी सिद्धि कराने के अर्थ [समर्थ] (भव) हो ३०
 सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य
 रश्मिभिः । सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण
 सूर्यस्य रश्मिभिः । तेजोऽसि शुक्रमस्य मृतमसि धाम
 नामासि प्रियं देवानामनाघृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, प्रथम “सवितुस्त्वा प्रसव उत्पु-
 नाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ” मंत्र का प्राजापत्य
 परमेष्ठी ऋषि, साम्नी जगती छन्द, आज्य देवता और घृतको
 पवित्र करने में विनियोग है । दूसरे “ सवितुर्वः प्रसव उत्पुना-
 म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी
 ऋषि, प्राजापत्या पंक्ति छन्द, आपो देवता और मोक्षण के जल
 का शोधन करने में विनियोग है । तीसरे “ तेजोऽसि शुक्रमस्य-
 मृतमसि ” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुपी त्रिष्टुप् छन्द
 आज्य देवता और घृतके अवलोकन में विनियोग है । चौथे “ धाम
 नामासि प्रियं देवानामनाघृष्टं देवयजनमसि ” मंत्र का प्राजापत्य
 परमेष्ठी ऋषि, आर्ची उष्णिक् छन्द, आज्य देवता और सुवे से
 घृत को ग्रहण करने में विनियोग है । प्रथम मंत्र को पढ़कर घृत
 को पवित्र करा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(सवितुः)
 सविता देवता की (प्रसवे) आज्ञा में वर्तमान होनेपर मैं हे घृत
 (त्वा) तुझको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्रा और
 (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से (उत्पुनामि) पवित्र
 करता हूँ । द्वितीय मंत्र को पढ़कर मोक्षण का जल शोध जाता है,
 मंत्र का अर्थ यह है कि—हे जलों ! (सवितुः) सर्वमेरक देव

की (प्रसवे) मेरणा होनेपर मैं (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्रा और (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणों से (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । तीसरे मंत्रको पढ़कर घृत का अवलोकन किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आज्य ! तू (तेजः) शरीर की कान्ति का हेतु होने से तेजःस्वरूप (असि) है (अथवा गीता के भगवद्चनानुसार भगवान् की विभूति है) दीप्तिमान् अथवा वर्षा अन्नादि की उत्पत्ति का हेतु होने से वीर्यरूप है, (अमृतम्) अमृत (चिरकाल पर्यन्त निर्दोष रहनेवाला) (असि) है अथवा अमृत की समान देवताओं को तृप्ति देनेवाला है, अथवा पूर्ण मंत्र का ऐसा वाक्यार्थ समझना कि—जो घृत का भक्षण, दान वा हवन करता है उसको घृताभि मानी देवता, तेज, वीर्य और अमृत (चिरकालस्थायित्व) देता है । चौथे मंत्र को पढ़कर एक सुवे में घृत लेय और तीन सुवे में बिना मंत्र बोले मौन होकर घृत लेय, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे आज्य ! तू (धाम) धाम (देवताओं की चित्त की वृत्ति के धारण होने का स्थान) (असि) है (नाम) नाम (सकल जीवों को अपनी ओर भुक्तानेवाला) (असि) है क्योंकि घृतको देवदेव भोजन करनेके लिये सब नमते है) (देवानाम्) देवताओंका (मियम्) मिय (अनाधृष्टम्) यज्ञ में विघ्न करनेवाले राक्षसों करके अभतिहत (देवयजम्) देवताओं के याग का साधन (असि) है, इस कारण मैं तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ३१ ॥

इतिथी शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीषशाखाद्येतु भारद्वाजगोत्री
दभूतगौडवशावर्तसंश्रितमद्रोलनाथात्मजसामस्वरूपशर्मा द्वारा प्राचीन
उपब्रह्मदीपपरिभाष्यो के अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ
और भावार्थ सहित शुक्लयजुर्वेदकी माध्यन्दिनीषशाखाकी
आज्यब्रह्म त प्रथम अध्याय समाप्त,

द्वितीयोऽध्यायः ।

कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । वहिरसि
वर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । वहिरसि सुग्भ्यस्त्वा
जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

इस कण्डिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि," मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी उष्णिक् छन्द, इध्म देवता, इध्ममोक्षण में विनियोग है । दूसरे वेदिरसि वर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,, मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द, लिङ्गोक्त देवता और वेदी के मोक्षण में विनियोग है । तीसरे वहिरसि सुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,, मन्त्र का मा० पर० ऋषि, मानापत्य उष्णिक् छन्द, लिङ्गोक्त देवता और कुशमोक्षण में विनियोग है । प्रथम मन्त्रको पढ़कर इध्म (इध्म-काष्ठ) का मोक्षण किया जाता है मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे इध्म तू (आखरेष्टः) स्वर्ग देनेवाले आहवनीय अग्निमें स्थित, (कृष्णः) कृष्णमृगरूप यज्ञ(असि) है, अग्निके अर्थ (जुष्टम्) मिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) शुद्धिके निमित्त जलसे मोक्षण करता हूँ । दूसरे मन्त्रको पढ़कर वेदीका मोक्षण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे वेदी तुम (वेदीः) असुरों से देवताओं को प्राप्त होने के कारण वेदी नाम-वाली (असि) हो (वर्हिषे) वहिके अर्थ (जुष्टम्) मिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) मोक्षण करता हूँ । तीसरे मन्त्रको पढ़कर, वेदी में पूर्वग्रन्थि करके कुशों का मोक्षण करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे दर्भः ! (वर्हिः) बहुत होने से वेदी की शुद्धि करने में समर्थ (असि) हो (सुग्भ्यः) सुर्चों के धारणार्थ (जुष्टम्) मिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) मोक्षण करता हूँ ॥ १ ॥

अदित्यै वयुर्देवमसि विष्णोस्तुषोऽसि । ऊर्णमूदसे त्वा नमः
स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः । भुवपतये स्वाहा । भुव-
नपतये स्वाहा । भूतानां पतये स्वाहा ॥ २ ॥

इस कपिडका में छः मंत्र हैं, प्रथम "आदित्यै व्युन्दनमसि" मंत्रका मा० पर० ऋषि, मांजापत्या गायत्री छन्द आशो देवता और मोक्षणावशिष्ट जल को कुशा के पूले की मूल पर ढालने में विनियोग है । द्वितीय "विष्णोस्तुपोऽसि" मंत्रका मा० पर० ऋषि, देवी पंक्ति छन्द, मस्तारो देवता और मस्तारग्रहण में विनियोग है । तृतीय "ऊर्णभ्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः" मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, वेदि देवता और वेदी को कुशाओं से आच्छादन करने में विनियोग है । चतुर्थ "भुवपतये स्वाहा" मंत्र का मा० पर० ऋषि, देवी जगती छन्द, अग्निदेवता स्कन्न के स्पर्श में विनियोग है । पंचम "भुवनपतये स्वाहा" मा० पर० ऋषि, मांजापत्या गायत्री छन्द, अग्निदेवता और स्कन्न को स्पर्श करने में विनियोग है । छठे "भूमानां पतये स्वाहा" मंत्र का मा० पर० ऋषि, मांजापत्या गायत्री छन्द, अग्नि देवता और स्कन्न को स्पर्श करने में विनियोग है । प्रथम मंत्र को पढ़कर मोक्षण से बचेहुए जल को कुशा के पूले की जड़ में ढाले; मंत्रका अर्थ यह है कि—हे मोक्षणशेषजल के अभिमानी देव ! तुम (आदित्यै) भूमि को (व्युन्दनम्) विशेष करके आर्द्र करनेवाले (असि) हो । दूसरे मंत्र को पढ़कर कुशाओं के पूले को खोल कर पूर्वभाग से मस्तार को ग्रहण कर मंत्रका अर्थ यह है कि—हे दर्भ के पूलेरूप मस्तार तुम (विष्णोः) यज्ञपुरुष की (स्तुपः) शिखा (असि) हो । तीसरे मंत्र को पढ़कर वेदी के ऊपर कुशाओं को बिछावे, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे वेदी (ऊर्णभ्रदसम्) जिस प्रकार स्वामी के बैठालने को भूमि ऊर्णासन बिछाकर कोमल करी जाती है तिसी प्रकार (देवेभ्यः) देवताओं के अर्थ (स्वास स्याम्) सुखपूर्वक स्थिति होने के लिये (त्वा) तुम्हें (कुशाओं से (स्तृणामि) आच्छादन करता हूँ । चौथे पांचवें और छठे मंत्र को पढ़कर स्कन्न (हविको ग्रहण करतेसमय जो परिधि

* पूर्वकाल में अग्नि के आता उपद्वार के मध्य से भूमि में प्रवेश करत, जिन

से बाहर गिरा हो उस) को स्पर्श करा जाता है, चतुर्थ मंत्र का अर्थ यह है कि—यह स्कन्न हवि अग्नि के प्रथम भ्राता (भुवंपति) भुवंपति के अर्थ (स्वाहा) दिया । पंचम मंत्र का अर्थ यह है कि यह स्कन्न हवि अग्नि के द्वितीय भ्राता (भुवनपति) भुवनपति के अर्थ (स्वाहा) दिया । छठे मंत्र का अर्थ यह है कि—यह स्कन्न हवि अग्नि के तृतीय भ्राता (भूतानां पति) भूतपति के अर्थ (स्वाहा) दिया ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वां विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ३

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं, “ प्रथमं गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ” मंत्र और द्वितीय “ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ” मंत्र तथा तिसरे “ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ” मंत्र का मा० पर० ऋषि, यजुः, परिधिदेवता और क्रमसे पश्चिम दक्षिण और उत्तर में तीनों परिधियों के स्थापन में विनियोग है । प्रथम मन्त्र को पढ़कर पश्चिमदिशामें परिधि को स्थापन करा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे परिधिदेव । (विश्वावसुः) विश्वा-

के दुःख से अग्नि भी भागकर जलमें प्रवेश करगया, तब देवताओं ने अग्नि को लाकर उसके अधिकार में स्थापित किया, उससमय अग्नि ने कहा कि मेरे भ्राताओं को मेरे पास ही चारों ओर रखो, और इनको यज्ञ का भाग दो, उससमय से यह अग्नि के भ्राता परिधिरूप हुए और स्कन्न (गिरा हुआ) हवि उनका भाग हुआ । यह कथा गताथ १ । १ । १ । ११-१६ में मिलती है ॥

वसु (सर्वत्र निवास करनेवाला) ; * (गन्धर्वः) गन्धर्व (विश्वस्य)
 आहवनीय अग्नि के सकल स्थान को (अरिष्ट्यै) रक्षा के निमित्त
 (त्वा) तुमको (परिधधातु) , पश्चिम दिशामें सर्वत्र स्थापन करै,
 जिससे राक्षस उस स्थान में प्रविष्ट होकर विघ्न न करै, तुम केवल
 आहवनीय अग्नि के ही परिधि नहीं हो किंतु तुम (यजमानस्य) यज
 मान की भी रक्षा के लिये (परिधिः) पश्चिम दिशा में स्थापन कर
 हुए हो । तुम (इन्द्रः) स्तुति के योग्य और (ईडितः) होता आदि
 करके स्तुति

(अग्निः)
 को स्थापन

धिदेव तुम (विश्वस्य) सकल विघ्नों की (अरिष्ट्यै) शान्ति करने
 के निमित्त (इन्द्रस्य) इन्द्र के (दक्षिणः) दक्षिण (बाहुः) बाहु की
 समान समर्थ (अग्निः) हो, तथा (यजमानस्य) यजमान के भी
 (परिधिः) रक्षक (अग्निः) हो, तुम (इन्द्रः) स्तुति के योग्य और
 (ईडितः) होता आदि करके स्तुति करे हुए (अग्निः) भुवन्पति
 नामक अग्नि के द्वितीय आत्मा (अग्निः) हो । तिसरे मंत्र को पढ़
 कर उत्तर दिशा में तिसरे परिधि को स्थापन करा जाता है, मंत्र
 का अर्थ यह है कि—हे तिसरे परिधिदेव ! (मित्रावरुणौ) वायु
 आदित्य देवता, (विश्वस्य) सकल विघ्नों की (अरिष्ट्यै)
 शान्ति के लिये (त्वा) तुमको (ध्रुवेण) निश्चलता के साथ
 (धर्मणा) धारण करके (उत्तरतः) उत्तर दिशा में (परिधत्ताम्)
 स्थापन करै, तुम (यजमानस्य) यजमान के भी (परिधिः) रक्षक
 (इन्द्रः) स्तुति के योग्य और (ईडितः) होता आदिको करके
 स्तुति करे हुए (अग्निः) भूतपति नामक अग्नि के तिसरे आत्मा
 (अग्निः) हो ॥ ३ ॥

॥ अतिहोत्रं त्वा कवे शुमन्तं ॥ समिधोमहि अग्ने न-
 न्तमध्वरे ॥ ४ ॥

* पुनः क वे स्थित सोम की रक्षा करने के लिये उसके समीप में सर्वत्र गन्धर्व वस्तु
 या यह गन्धर्व की धृति में कथा है ।

। इस मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, गायत्री छंद अग्नि देवता और परिधि को स्पर्श कर समिधा को अग्नि में छोड़ने में विनियोग है । इस मंत्र को पढ़कर समिधा से परिधि को स्पर्श कराकर अग्नि में छोड़ें मंत्र का अर्थ यह है कि—(कवे) हे भूत भविष्य और दूरवर्ति पदार्थों के प्रतिक्षण जाननेवाले करि (अग्ने) भगवान् अग्निदेव ! हवन करने से—(वीतिहोत्रम्) यजमान को पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धि प्राप्त कराने वाले (धुमन्ताम्) स्वतः प्रकाशवान् (बृहन्ताम्) महान् (त्वा) तुमको (अश्वरे) इस यज्ञ में । यजमान को पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धि की प्राप्ति के निमित्त (सामिधीमहि) ईंधन के काष्ठ से हम प्रज्वलित करते हैं ॥ ४ ॥

समिदसि । सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिस्त्यै । सवितुर्वाहस्थः । ऊर्णमृदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्यं देवेभ्यः । आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्या सदन्तु ॥

। इस कण्डिका में पाँच मंत्र हैं, प्रथम "समिदसि" मंत्र का मा० पर० ऋषि, दैवी बृहती छंद अग्नि देवता और परिधि को बिना स्पर्श करे दूसरी समिधा को अग्नि में छोड़ने में विनियोग है । दूसरे "सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिस्त्यै" मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी, गायत्री छंद, लिङ्गोक्त देवता और अग्नि को देखते हुए इस मंत्र का जप करने में विनियोग है । तीसरे "सवितुर्वाहस्थः मंत्र का मा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छंद, विष्टति देवता और दो कुशों को उत्तराग्र स्थापन करने में विनियोग है । चौथे "ऊर्णमृदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्यं देवेभ्यः" मंत्र का प्राजापत्य पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छंद, मस्तर देवता और कुशों पर मस्तर को स्थापन करने में विनियोग है । पाँचवें "आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्या सदन्तु" मंत्र का मा० पर० ऋषि आसुरी गायत्री छंद, मस्तर देवता और मस्तर पर दोनों हाथ रखने में विनियोग है । प्रथम मंत्र को पढ़कर परिधिको बिना स्पर्श करे अग्नि में दूसरी समिधा छोड़ें, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे

समिधा त् (समिद्) अग्नि को दीप्त करने वाला (आसि) है । दूसरे मंत्र को अध्वर्यु बैठकर आहवनीय अग्नि को देखता हुआ पढ़े, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आहवनीय अग्ने ! (पुरस्तात्) पूर्वदिशा में (सूर्यः) सूर्य (त्वा) तुम को (कस्थाधित्) किसी (अभिशस्त्यै) हिंसाओंसे (पातु) रक्षा करे (तीनों दिशाओं में तीन परिधि रक्षक हैं, इस कारण शेष पूर्व दिशामें सूर्य को रक्षक कहा, इसही विषय को “गुप्त्यै वा अभि-
 तः परिधयो भवन्त्यथैतत्सूर्यमेव पुरस्ताद् गोप्तारं करोति,, यह शतपथ १. १. ४ । ८ की श्रुति कहती है) । तीसरे मंत्र को पढ़कर दो कुशा के तृणमस्तर को स्थापन करने के लिये उत्तर को अप्रभाग रहै इस प्रकार स्थापन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि हे कुशतृणों—तुम दोनों (सवितुः) सविता की (बाहू) बाहु रूप (स्थः) हो । चौथे मंत्र को पढ़कर उन दोनों कुशाओं पर प्रस्तर बिछावै, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे प्रस्तर ! (ऊर्णमसम्) उनकी समान कोमल (स्वासस्यम्) देवताओंके सुवासनरूप (त्वा) तुम्हें (स्तृणामि) बिछाता हूँ । पाँचवें मंत्र को पढ़कर प्रस्तर पर दोनों हाथ रखवै, मंत्र का अर्थ यह है कि हे प्रस्तर ! मातुः माध्यन्दिन और तृतीय इन तीनों सवनों के अभिमानी (बसवः) वसु, (रुद्राः) रुद्र और (आदित्याः) आदित्य देवता (त्वा) तुम्हें (आसदन्तु) सर्वतः फैलावें ॥ ५ ॥
 घृताच्यसि जुहर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सदः आसीद । घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सदः आसीद । घृताच्यसि धृवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सदः आसीद । प्रियेण धाम्ना प्रियं सदः आसीद । घृवा असदन्तुतस्य योनौ ताः विष्णोः पाहि । पाहि यज्ञम् । पाहि यज्ञपतिम् । पाहि मां यं ज्ञान्यम् ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में छः मंत्र हैं, मध्यम घृताच्यसि जुहर्नाम्ना सेदं

भियेण धाम्ना भियं सद् आसीद' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, जुह देवता और जुह को मस्तरपर स्थापन करने में विनियोग है । दूसरे घृताच्यम्युपमृशाम्ना सेदं भियेण धाम्ना भियं सद् आसीद' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, उपमृत् देवता और मस्तरपर उपमृत् को स्थापन करने में विनियोग है । तीसरे घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं भियेण धाम्ना भियं सद् आसीद' मन्त्र का प्राजापत्य पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, ध्रुवा देवता और ध्रुवा को मस्तरपर स्थापन करने में विनियोग है । चौथे 'भियेण धाम्ना भियं सद् आसीद' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि याजुषी जगती छन्द हविर्देवता और हवियों को वेदीपर स्थापन करने में विनियोग है । पांचवें "ध्रुवा असदन्वृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञपतिम्' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि धनु, विष्णुदेवता और सबका स्पर्श करने में विनियोग है । छठे 'पाहि मां यज्ञन्यम्' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, विष्णुदेवता और अपने को स्पर्श करने में विनियोग है ।

प्रथम मंत्र को पढ़कर जुह को ग्रहण कर मस्तरपर स्थापन करै मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे जुह ! तुम (घृताची) घृत से पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (जुहः) तुम्हारे द्वारा हवन किया जाता है, इस कारण जुह नामवाले (आसि) हो । (सा) ऐसे तुम (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस (भियम्) भियं (सद्ः) मस्तररूप स्थानपर (आसीद) स्थित होवो । दूसरे मंत्र को पढ़कर उपमृत् को ग्रहण कर मस्तरपर स्थापन करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे उपमृत् ! तुम (घृताची) घृत से पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (उपमृत्) समीप में स्थित होकर घृत को ग्रहण करनेवाले (आसि) हो । (साः) वह तुम (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस मस्तररूप (सद्ः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो । तीसरे मंत्र को पढ़कर ध्रुवा को ग्रहण कर मस्तरपर स्थापन करै, मन्त्र

का अर्थ यह है कि—हे ध्रुव तुम (धृताची) धृत से पूर्ण (नाम्ना) नामकरके प्रसिद्ध (अग्नि) हो । (ध्रुवा) निश्चल अर्थात् जुहूँ और ज्योतिष की समान चलायमान नहीं (असि) होते हो [इसकारण तुम्हारा नाम ध्रुवा है], (सा) वह तुम (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) धृत करके सहित (इदम्) इस मस्तरूप (भियम्) भिय (सदः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो । चौथे मंत्रको पढ़कर आज्यस्थाली पुरोडाशादि हवि को बेदी के विषे स्थापित करै, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे हवि ! (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) धृत करके सहित (इदम्) इस (भियम्) भिय (सदः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो ।

पाँचवें मन्त्रको पढ़कर सबको स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि (ऋतस्य) अवश्य फल युक्त होने के कारण सत्यरूप यज्ञके (योनौ) स्थान में जो हवि (असदन्) है, (विष्णो) हे व्यापक यज्ञ-पुरुष विष्णुभगवान् (तां) उन हवियों को (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञम्) यज्ञ को (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञपतिम्) यजमान को (पाहि) रक्षा करो । छठे मंत्रको पढ़कर अध्वर्यु अपने हृदय को स्पर्श करै, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे विष्णुभगवन् (यज्ञन्यम्) यज्ञ करानेवाले (माम्) मुझ अध्वर्यु को (पाहि) रक्षा करो ॥६॥

‘अग्ने वाजजिह्वाजं स्वा सरिप्यन्तं वाजजित् सम्मार्जिम ।
जिम । नमो देवेभ्यः । स्वधा पितृभ्यः । सुयमे मे भू-
यास्तम् ॥७॥’

‘इस काण्डिका में चार मन्त्र हैं, मध्यम ‘अग्ने वाजजिह्वाजं स्वा सरिप्यन्तं वाजजित् सम्मार्जिम मन्त्र का मा० पर० ऋषिः ब्रजुः अग्निदेवता और अग्नि के मार्जन में विनियोग है । दूसरे ‘नमो देवेभ्यः’ मन्त्रका मा० पर० ऋषिः, दैवी पंक्ति छंदः, देवा देवता और अङ्गुलि करने में विनियोग है । तीसरे ‘स्वधा पितृभ्यः’ मन्त्रका माजापत्य परमेश्वरी ऋषिः, दैवी पंक्ति छंदः, पितर देवता और दाक्षिण को उत्तान अङ्गुलि करने में विनियोग है । चौथे

‘सुयमे मे भूयास्तम्’ मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, आर्ची उपिण्क् ब्रह्म
 जुहूपभृत् देवता और जुहूपभृत् को ग्रहण करने में विनियोग है।
 मथम मंत्र को पढ़कर इन्धन के बाँधने के वेत् (जने) से दक्षिण
 उत्तर और पश्चिम की परिधियों के समीप तीन तीनों
 नीय अग्नि का मार्जन करे, मंत्रका अर्थ यह है कि—(वाजजित्)
 हे अन्न को जीतनेवाले (अग्नेः) अग्निदेव ! (अन्नम्) अन्नको
 (सरिप्यन्तम्) सम्पादन करने में उपयुक्त (वाजजित्) अन्न
 के प्रतिबन्ध का निवारण करनेवाले (त्वा) तुमको (सम्मार्जिम)
 सम्मार्जन करता हूँ ॥

दूसरे मंत्र को पढ़कर पूर्व दिशा की ओर को हाथ जोड़े, मंत्र
 का अर्थ यह है कि—(देवेभ्यः) जो देवता इस यज्ञरूप अनुष्ठान
 का ऊपर अनुग्रह करते हैं उनको (नमः) नमस्कार काता हूँ।
 तीसरे मंत्र को पढ़कर दक्षिण दिशा की ओर को ऊपर को हाथ
 जोड़े जाते हैं, मंत्रका अर्थ यह है कि—(पितृभ्यः) जो पालन
 करने वाले पिता हैं, उनके अर्थ (स्वधा) स्वधा हो अर्थात् उन
 को जो देना योग्य है सो दूँगा। चौथे मंत्र को पढ़कर जुहू और
 उपभृत् को ग्रहण करे, मंत्र का अर्थ यह है कि—जुहू और उपभृत्
 (मे) मेरे निमित्त (सुयमे) भली प्रकार सावधान (भूयास्तम्)
 होवो जिस से कि अनुष्ठान में तुम्हारे विपै धारण कराहुआ घृत
 गिरै नहीं, तुम्हारे अभिमानी देव तुमको ऐसी शक्ति दें ॥७॥

अत्कन्नमथ देवेभ्य आज्यं सम्भ्रयासम् । अङ्घ्रिणा
 विष्णो मा त्वावक्रमिषम् । वसुमतीमग्ने ते छाया-
 मुपस्थेयं विष्णो स्थानमसि । इत इन्द्रो वोधिमकृणो-
 दूध्वोऽध्वर आस्थात् ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में ‘अत्कन्नमथ देवेभ्य आज्यं सम्भ्रयासम्’
 पूर्व मंत्रका शेष है, इससे आगे प्रथम ‘अङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वाव-
 क्रमिषम्’ मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, याजुषी, विष्णु ब्रह्म, विष्णु
 देवता और दक्षिणोत्तिकमग्न में विनियोग है। दूसरे ‘वसुमती-

मंजने ते छायांमुपस्थेपं विष्णोः स्थानमसि' मंत्रका मा० पर० ऋषि
 यजुः अग्नि देवता और अस्थान में विनियोग है । तीसरे 'इत
 इन्द्रो वीर्यम्' इन्द्र देवता और हवन करने में विनियोग है । प्रथम मंत्रके
 शेष का अर्थ यह है कि—तुम्हारे सांवधान होनेपर (अथ) आत्र
 इस अनुष्ठान के दिनमें (देवेभ्यः) देवताओं के उपकारके नि-
 भित्स (आज्यम्) घृत तुममें (अस्कन्धम्) जैसे भूमिमें न गिरै
 तिस प्रकार (सम्भ्रयासम्) धारण करता हूँ । प्रथम मंत्र को
 पढ़कर दक्षिण दिशा अर्थात् यजन के स्थान को गमन करै, मंत्र
 का अर्थ यह है कि—(विष्णोः) हे व्यापक यज्ञपुरुष विष्णु भगवन् ! मैं
 (अद्विष्टा) चरण करके (त्वा) तुमको (भावक्रमिषम्) अव-
 क्रमण न करूँ अर्थात् चरण से तुमको उल्लंघन करनेका दोष मुझ
 को न हो । दूसरे मंत्र को पढ़कर यजनस्थान में ईशान को मुखकरके
 बैठे, मंत्रका अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे अग्निदेव ! (ते)
 तुम्हारी (छायाम्) छाया की समीपवर्ती (वसुमतीम्) भूमि को
 (उपस्थेपम्) सेवन करूँ, हे भूमि तू (विष्णोः)
 यज्ञपुरुष का (स्थानम्) स्थान (असिः) है अर्थात् यहां
 बैठकर यज्ञ करने में समर्थ होते हैं, अथवा ऐसा अर्थ करना कि
 हे अग्निदेव ! मैं धनमाप्ति करानेवाले तुम्हारे आश्रय का सेवन
 करता हूँ क्योंकि—तुम यज्ञ पुरुष विष्णु का स्थान हो । तीसरे
 मंत्र को पढ़कर अग्नि में घृत का हवन करै मंत्र का अर्थ यह है कि—
 (इन्द्रः) इन्द्र (इह) इस देवयजन नामक स्थान से उद्युक्त होकर
 (वीर्यम्) शत्रुबधरूप वीर का कार्य (अकृणोत्) करता हुआ
 इस कारण ही (अध्वरः) यज्ञ (ऊर्ध्वम्) श्रेष्ठ (आस्थात्)
 माना गया है ॥ ८ ॥

अग्ने वेदोऽन्नं वेदोऽथ्यम् । अर्वातां त्वां यावापृथिवी ।

अव त्वं यावापृथिवी सिंघाकुरेवेभ्य इन्द्र आज्येन

ऋषिषा भूत् स्वाहा । संज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

इसमें “अग्ने वेहोत्रं वेदृत्यम् अवतां त्वां धावापृथिवी अव त्वं
 धावापृथिवी स्विष्टकृदेवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत् स्वाहा.”
 यह पूर्व मंत्रका शेष है, और “संज्योतिषा ज्योतिः” मंत्र का
 मा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, आज्यदेवता और जुहूस्पृ-
 घृत को ध्रुवा में टपकाने में विनियोग है॥ भावार्थ—इसमें प्रथम
 मंत्र के शेष “अग्ने इत्यादि” का अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे
 अग्निदेव ! तुम (होत्रम्) होताके कर्म को (वेः) जानो, और
 देवताओं के (दृत्यम्) दूत कर्म को (वेः) जानो (अर्थात् इस
 याग में दूतरूप * होकर देवताओं का भाग पहुंचाओ) (धावा
 पृथिवी) ध्रुलोक और पृथिवी के अभिमानी देवता (त्वाम्)
 तुमको (अवताम्) रक्षा करें और तुम (धावापृथिवी) ध्रुलोक
 तथा पृथिवी के अभिमानी देवताओं की (अव) रक्षा करो, इस
 प्रकार परस्पर रक्षा करने से (इन्द्रः) इन्द्रदेव इस याग में हमारे
 दियेहुए (आज्येन) घृतरूप हवि के द्वारा (देवेभ्यः) देवताओं
 के अर्थ (स्विष्टकृत्) शोभन इष्ट करनेवाले (भले प्रकार अभीष्ट
 भाग देनेवाले) (भूत्) हैं अर्थात् हमजो २ भाग जिस २ देवता
 के अर्थ दें वह (स्वाहा) पूर्णाहुतापूर्वक उन सकल देवताओं को
 प्राप्त हो हमारा इन्द्रके उद्देश्य से होमाहुआ घृतरूप हवि सुहुत
 हो अर्थात् इन्द्र देवता को प्राप्त हो इस “संज्योतिषेत्यादि” मंत्रको
 पढ़कर जुहू नामक मुख में के घृत का बिन्दु ध्रुवा में डाले, मंत्रका
 अर्थ यह है, (ज्योतिषा) ध्रुवा में स्थित घृतरूप ज्योति के साथ
 (ज्योतिः) टपकायाहुआ घृत (सङ्गच्छताम्) मिले ॥ ९ ॥
 मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायामघवानः सच-
 न्ताम्, अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्यानः सन्त्वाशिषः
 उपहृता पृथिवी मातोष मां पृथिवी मातां ह्यन्ताम्,
 अमिराग्नीधात् स्वाहा ॥ १० ॥

* होतृत्वं दूतत्वं आग्नेः कर्म तथा च श्रुतिः “उभवे वा एतदग्निदेवानां ई देवता
 च मन्त्रः” (शत० ११४।१।४) ।

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, प्रथम " मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधा-
त्वस्मान् रायो भगवानः सचन्ताम्, अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्वा
नः सन्त्वाशिषः " मंत्र का मा० पर० ऋषिः, यजुः, आशीर्देवता
और आशासन में विनियोग है । दूसरे " उपहूता पृथिवी माताप
मयी पृथिवी माता ह्यताम्, अग्निराग्नीध्रात् स्वाहा " मंत्र का मा०
पर० ऋषिः, यजुः, पृथिवी, देवता और हविः, माशन में विनियोग है ।
प्रथम मंत्र को प्रधान याग के अनन्तर शेष पुरोडाश के माशन के
समय होता आशीर्वाद देय उस समय यजमान पढ़े, मंत्र का अर्थ
यह है कि- (इन्द्रः) परमेश्वर (इदम्) इस (इन्द्रियम्) इच्छित
वीर्य को (मयि) मुझ यजमान के विषे (दधातु) स्थापन करे,
(रायः) धन और (भगवानः) धनवान् (अस्मात्) हमको
(सचन्ताम्) सेवन करे, (अस्माकम्) हमको (आशिषः)
अभीष्ट अर्थ के आशीर्वाद (सन्तु) हों और वह (नः) हमारे
विषय के (आशिषः) आशीर्वाद (सत्याः) सत्य (सन्तु) हों ।
होता के धावा पृथिवी का उपह्वान करते समय दोनों पुरोडाशों
में से एक २ अंशके छः छः भागकर आग्नीध्र को देवे और इस
दूसरे मंत्र को पढ़कर उनका भक्षण करे, मंत्र का अर्थ यह है कि-
(माता) जगत् का निर्माण करने वाली पृथिवी, (उपहूता)
मुझ से आवाहन की गई है, यह (मातां) मातारूप मानी हुई
(पृथिवी) पृथिवी (माम्) मुझको (उपह्वताम्) शेषहवि के
भक्षण की आज्ञा देय में (आग्नीध्रात्) अग्नि का कर्म करनेवाला
होने के कारण (अग्निः) अग्निरूप (अग्नि देव करके अपनाया
हुआ) होकर तिस हविः शेष को भक्षण करता है, यह जाठराग्नि
में (स्वाहा) सुहृत हो ॥ १० ॥

उपहूतो यौष्टितोष मां यौष्टिता ह्यतामग्निराग्नी-
ध्रात् स्वाहा । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽभिनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि अग्नेष्ट्वास्येन प्राशामि ? ?
इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, प्रथम " उपहूतो यौष्टितोष मां

थापिता हयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा” मंत्र का प्रा० पर० ऋषि
 साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, चौद्वेवता और द्वितीयवार माशन में विनियोग
 है। द्वितीय “देवस्य त्वा सवितुः मसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ता
 भ्याम्” मंत्र का बृहस्पति ऋषि प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता
 देवता एवं तृतीय “प्रतिग्रहणामि” मंत्र का बृहस्पति ऋषि, दैवी
 पंक्ति छन्द, माशित्रदेवता और द्वितीय तृतीय इन दोनों मंत्रों का
 स्वीकार करने में विनियोग है। चौथे “अग्नेष्वास्येन माश्रामि”
 मंत्र का बृहस्पति ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, माशित्र देवता और
 भक्षण में विनियोग है। मध्यम मंत्र को पढ़कर दूसरा भाग भक्षण
 किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(पिता) जंगत् का पालन
 करनेवाला (चौः) स्वर्ग (उपहृता) मुझ से आवाहन किया गया
 वह (पिता) पितारूप भावना किया हुआ (चौः) स्वर्ग (माम्)
 मुझको (उपहृताम्) इस शेष हवि के भक्षण की आज्ञा देय, मैं
 (आग्नीध्रात्) अग्नि का कर्म करने वाला होने के कारण (अग्निः)
 अग्निरूप (अग्नि देवता करके अपनाया हुआ) होकर तिस हविः
 शेष को भक्षण करता हूँ, यह जाठराग्नि में (स्वाहा) सुहुत हो।
 दूसरे और तिसरे मंत्र को पढ़कर माशित्र को ग्रहण किया जाता है
 मंत्रों का अर्थ यह है कि—हे माशित्र ! (सवितुः) सविता (देव-
 स्य) देवता की (मसवे) भरण होने पर मैं (अश्विनोः) अ-
 श्विनी कुमारों के बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे (बाहु-
 भ्याम्) बाहुओं करके और (पूष्णः) पूषा देवता के हस्तों करी
 है भावना जिन में ऐसे (हस्ताभ्याम्) हस्तों करके (त्वा) तुझ
 को (प्रतिग्रहणामि) स्वीकार करता हूँ। चतुर्थ मंत्र को पढ़कर
 तिस ग्रहण करे हुए माशित्र को इस प्रकार भक्षण करे कि—दंतों
 से स्पर्श न हो, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे माशित्र ! (अग्निः)
 अग्नि देवता के (आस्येन) मुख करके (त्वा) तुझको (माश्रामि)

* यहां से लेकर “अ प्रतिग्रह” यहां पर्यन्त के मंत्रों को भक्षण है, इन का आशि-
 रम बृहस्पति ऋषि है।

स्येनं मसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में । अग्नीषोमयोरित्यादि । इन्द्राग्न्योरित्यादि । इन्द्राग्नी इत्यादि । यह तीन मन्त्र हैं, तीनों का प्राजापत्य ऋषि, छंद पहिले का यजुः, दूसरे का आर्षी उष्णिक्, तीसरे का आर्षी पंक्ति । और तीनों का लिङ्गोक्त देवता । पहिले मंत्र को पढ़कर यजमान जुहू को अपने स्थान पश्चिम से उठाकर पूर्व में रखे, और उपभृत् को पूर्व से उठाकर पश्चिम में रखे । मंत्र का अर्थ यह है कि—(अग्नीषोमयोः) द्वितीय पुरोडाश देवताओं के (उज्जितम्) निर्विघ्नता के साथ हविको स्वीकार करने पर उत्तम विजयको (अनु) अनुसरण करके (उज्जयम्) उत्तम जयको प्राप्त हुआ हूँ (वाजस्य) पुरोडाश आदि अन्न की (मसवेन) मेरणा से (मां) मुझ जुहूरूप यजमान को (मोहामि) उत्साह देता हूँ [उपभृत् को पश्चिम में रखे] (यः) जो अमुरादि शत्रु (अहमान्) हमारे प्रति (द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (यम्) जिस अनुष्ठानविरोधी शत्रु के प्रति (वंशम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तम्) उसको (अग्नीषोमौ) अग्नि और सोमदेवता (अपनुदताम्) तिरस्कृत कर (वाजस्य) अन्न के (मसवेन) आर्घ्य करने पर (अपोहामि) निराकरण करता हूँ । अगले, दूसरा और तीसरा दोनों मंत्र दर्श के अधिष्ठात्री देवता की प्रार्थना विषय के हैं, एकसमान पद होने से संवको अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार है केवल (अग्नीषोमौ) के स्थान में (इन्द्राग्नी) पद है, उसको अर्थ है—इन्द्र और अग्निदेवता ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा आदित्येभ्यस्त्वा सज्जानाथा
धावापृथिवी मित्रारुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् ॥ अथन्तु
वपोऽक्तुरिहाणाः मरुतां पृषतीगच्छ वशा पृश्निभूत्वा
दिषद्गच्छ ततो नो वृष्टिमावह ॥ अथुष्पा अग्नेऽसि
बभुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में वसु० रुद्रे० आदि० मरुता० पृ० अ० अ०

न्तु० ६० । छःमन्त्र हैं । सब का मजापति ऋषि है । छन्द—
 पहिले और दूसरे का दैवी बृहती, तीसरे का दैवीपंक्ति । चौथे
 का यजुः । पाँचवें का माजापत्या गायत्री । छठे का बृहती । १
 २ । ३ मंत्र का परिधि देवता । ४ । ५ । का मस्तर देवता और
 ६ का परिध्यग्नि देवता है । पहिले मंत्र को पढ़कर मध्यमपरिधि
 को जुहू के द्वारा घृत से छिड़कें मंत्र का अर्थ यह है कि—हे
 मध्यम परिधि (वसुभ्यः) वसुदेवताओं की प्रीति के लिए (त्वा)
 तुझको, घृत से सींचताहूँ । दूसरे मंत्र से दक्षिण परिधि को
 सींचा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे दक्षिण परिधि !
 (रुद्रेभ्यः) रुद्रों की प्रीति के निमित्त (त्वा) तुझको, घृत-
 सिक्त करता हूँ । तीसरे मंत्र से उत्तरपरिधि को सींचा जाता है,
 अर्थ यह है—हे उत्तर परिधि (आदित्येभ्यः) आदित्य देवता
 ओं की मस्तनार्थ (त्वा) तुझको, घृतसिक्त करताहूँ । चौथे
 मंत्र से मस्तर ग्रहण किया जाता है, मन्त्रार्थ यह है कि—(धावा-
 पृथिवी) हे ध्रुलोक भूलोक के अधिष्ठात्री देव ! (सज्जानायाम्)
 इस ग्रहण किएहुए मस्तर को भलीप्रकार जानो । हे मस्तर
 (मित्रावरुणौ) वायु और सूर्य देवता (त्वा) तुझको (ह-
 पृथा) जल की वर्षा से (अव्रताम्) रक्षा करें । पाँचवें मंत्र को
 पढ़कर ग्रहण करेहुए मस्तर के अग्र-मध्य—और मूलभागों को
 क्रम से जुहू—उपभृत्—और ध्रुवा में स्थित घृत से लिप्त करें,
 मन्त्रार्थ—(अक्तम्) घृतलिप्त मस्तर को (रिहाणाः) चाटतेहुए
 (वयः) अन्तरिक्षचारी देवता वा पक्षिरूप गायत्री आदिछन्द
 (व्यन्तु) विचरें [इस मस्तर कहिए पूली में से एक कुश अलग
 करके उस को नीचे हाथ से छठे मंत्र को पढ़ताहुआ अग्नि में
 छोड़ें] मन्त्रार्थ यह है—हे मस्तर तुम (मरुताम्) मरुत् नामक
 देवताओं के (पृपतीः) वाहन को (गच्छ) माम हो अर्थात् पवन
 के वाहन की समान वेग से जा । (वशा) स्वाधीन (पृायेनः)
 दिव्यशरीर धारिणी कामधेनु गौकी समान क्षति करने वाली

(भूत्वा) होकर (दिवम्) स्वर्ग को (गच्छ) जा । (गत)
 तिसके अनन्तर (नः) हमारे निमित्त (दृष्टिम्) वर्षा को
 (आनय) ला । अर्थात् अंतरिक्ष में जाकर तहाँ वाहनसहित
 मरुत्तृगणों को तृप्त करो फिर स्वर्ग में जाकर देवताओं को वृष्ण
 करो जिससे पृथिवीपर वर्षा हो, यह आहुति का फल दिखाया
 [आगे के मन्त्र से अध्वर्यु मन्तर से लियेहुए तृण को आहवनीय
 अग्नि में डालकर आत्मा को हृदयदेशपर स्पर्श करके आचमन
 करे] मन्त्रार्थ यह है—(अग्ने) हे अग्निदेव ! क्योंकि—तुम (च-
 क्षुप्सा) नेत्रों की रक्षा करनेवाले (असि) हो, इसकारण (मे)
 मेरे (चक्षु) नेत्रको (पाहि) रक्षाकरो, अर्थात् मन्तर की तीव्र
 ज्वाला से नेत्रों को पीडा न पहुँचै ॥ १६ ॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमान । तं
 त एनमनु जोपम्भराम्येष नेस्वदपचेतयानै । अग्ने-
 मिष पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

इस कण्डिका में—य परिधिमित्यादि और अग्नेरित्यादि दो मन्त्र
 हैं, दोनों का देवल ऋषि, अग्निदेवता तथा पहिले का विराड् रूप
 त्रिष्टुप् छन्द और दूसरे का याजुषी छन्द है । पहिले मन्त्र को पढ़
 कर मध्यम परिधि को अग्नि में डाला जाता है, मन्त्र का अर्थ यह
 है कि—(अग्नेदेव) हे आहवनीय अग्निदेव (पणिभि) असुरों
 से (गुह्यमान) रुकेहुए तुम (यम्) जिस (परिधिम्) परिधि
 को, असुरोंका उपद्रव दूर करने को पश्चिम दिशा में (पर्यधत्था)
 स्थापित करोहुए (ने) तुम्हारे (जोपम्) भ्रम (तम्) उस (एनम्)
 इस परिधि को (अनुमरामि) अग्नि में डालकर तुम्हारे अर्पण
 करता हूँ (एष) यह पारधि (त्वत्) तुमसे (न इत्-अपचेतयानै)
 नियुक्त न हो [दूसरे मन्त्र को पढ़कर दक्षिण उत्तर परिधि का अ-
 ग्नि में डाला जाता है] मन्त्रार्थ—हे दक्षिण उत्तर परिधि ! तुम
 (अग्ने) अग्नि के (मिषम्) भ्रम (पाथः) मरुत्तृगणयोग्य अ-
 नर्भाव को (इतम्) माप्त करो ॥ १७-॥

संस्तवभागाः स्थेपा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च
 देवाः । इमां वाचमभिविश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् ।
 वर्हिषि मादयध्वम् । स्वाहा वाद् ॥ १८ ॥
 इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । १ संस्तवभागाः इ० २ स्वाहा-
 वाद् । दोनों का सोमगुण्म ऋषि । पहिले का त्रिषुषं छन्द । दूसरे
 का यजुः । और दोनों के विश्वेदेवा देवता हैं । पहिले को पढ़कर
 अध्वर्यु घृत से गीले मस्तर का हवन करे । मंत्रार्थ यह है—(हे विश्व-
 देवाः) हे विश्वेदेवा तुम (संस्तवभागाः) ताण्डुल घृत के भागी
 (इपाः) घृतयुक्त अन्न के द्वारा (बृहन्तः) महान् (चः) और
 (प्रस्तरेष्ठाः) मस्तर पर स्थित (परिधेयाः) परित्यक्त से वादुर्भूत
 (स्थ) हो (इमाम्) इस मेरी (वाचम्) वाणी को (अभिगृणन्तः)
 सादर ग्रहण कर वर्णन करनेहुए (अस्मिन्) इस (वर्हिषि) यज्ञ
 में (आसद्य) प्राप्त होकर (मादयध्वम्) तृप्त होओ [दूसरे मंत्र
 से होम करे] (स्वाहा) हमारे दिण्डुल हवि को ग्रहण करो (वाद्)
 हमारी दीहुई आहुति को भली प्रकार स्वीकार करो ॥ १८ ॥
 घृताचीं स्थो धुर्यो पात सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् ।
 यज्ञ नमश्च त उष च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे
 मे सन्तिष्ठस्व ॥ १९ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं—घृताची इत्यादि पहिले मंत्र का
 मजापानि ऋषि, अनुषुप छन्द सुक् सुक् देवता और यज्ञ नम इत्यादि
 दूसरे मंत्रका शूर्पादि ऋषि, यजुश्छन्द तथा यज्ञ देवता है । पहिले
 मंत्र को पढ़कर अध्वर्यु जुहू और उपभृत् को शकट की धुरी पर
 धरे । मंत्रार्थ—हे जुहू उपभृत् तुम दोनों (घृताचीं) घृत को प्राप्त
 करनेवाले (स्थ) हो (धुर्यो) शकट के दोनों वाहनों को (पातम्)
 प्रसाद करो, तुम (सुम्ने) मुखरूप (स्थ) हो (सुम्ने) सुख में
 (मा) मुझको (धत्तम्) स्थापन करो [दूसरे मंत्र को पढ़कर
 वेदी को स्पर्श किया जाता है] मंत्रार्थ—(यज्ञ) हे वेदी ॥ (स्थे)
 तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार हो (उष) और (उपभृत्) इति

भी हो (यज्ञस्यः) यज्ञ के (शिवे) कल्याण में (सन्तिष्ठस्व)
स्थित हो (मे) मेरे (स्विष्टे) सुन्दरयाग में (सन्तिष्ठस्व)
माप्ति कराओ ॥ १९ ॥

अग्नेऽदव्धापोशीतमपाहि मां दिव्योः । पाहि मसित्यै ।
पाहि दुरिष्ट्यै । पाहि दुरदमन्या अविषं नः पितुं कृणु ।
सुपदायोनौ स्वाहा वाद । अग्नये संवेशपतये स्वाहा ।
सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

इस कण्विका में ३ मंत्र हैं । १ अग्नेऽव्धा० इ० । अग्नये० इ० ।
३ सरस्व० इ० । पहिले का म० प० ऋषि, याजुषी छन्द, गार्ह
पत्याग्नि देवता । दूसरे का म० ऋ०, याजुषी त्रिष्टुप् छन्द, द-
क्षिणाग्नि देवता । और तीसरे का म० ऋ०, या०, त्रि० छन्द,
तथा लिङ्गोक्त देवता है । पहिले मंत्र [को पढ़कर अश्वर्यु होमार्थ
सुक्ल और सुक्ल को ग्रहण करें] मन्त्रार्थ — (अदव्धापो) हे
यज्ञमान के मङ्गलकारिन् (अशितम्) बहुभोजी वा सर्वत्र व्या-
पक (अग्ने) गार्हपत्यनामाने (मा) मुझको (दिव्योः) शत्रु
के बज्रसमान शस्त्र से (पाहि) रक्षा करो (मसित्यै) बंधन
करने वाले जाल से (पाहि) रक्षा करो (दुरिष्ट्यै) अशास्त्रीय
याग से (पाहि) रक्षा करो (दुरदमन्याः) दूषितभोजन से
(पाहि) रक्षा करो (सुपदायोनौ) सम्यक् स्थितियोग्य स्थान में
(नः) हमारे (पितुम्) अन्न जल को (अविषम्) विषरहित
(आकृणु) करो (स्वाहावाद्) यह आहुति म्लीषकार स्वीकृत
हो [दूसरे तीसरे मंत्र को पढ़कर सुवेसे दक्षिणाग्नि में हवन करें]
मन्त्रार्थ (संवेशपतये) स्त्रीपुरुषों के एकत्र शयन को संवेश कहते
हैं तिस के पति (अग्नये) अग्नि के निमित्त (स्वाहा) सुन्दर
इविदिवा अर्थात् इस आहुति के फल से हम को संवेश का फल
मिले (यशोभगिन्यै) यश की वहिन वाणीरूप (सरस्वत्यै)
सरस्वती के अर्थ (स्वाहा) सुन्दर आहुति हो अर्थात् इसके फल
हम को यश मिले ॥ २० ॥

वेदोऽसि येन स्वन्देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभ्यस्तेन महं
वेदो भूयाः । देवा गातु विदो गातुं विच्चागातुमित
मनसस्पत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

इस कण्विकामें दो मंत्र हैं । १ वेदोसीति । २ विच्चा इत्या० ।
पहिले का मजापति ऋषि, याजुषी छन्द, वेदा देवता । दूसरेका
मनसस्पति ऋषि, त्रिपदा विराट् छन्द और वातदेवता है, पहिले
को पढ़कर यजमान की पत्नी मुष्ठीभर दर्भके पूलेकी गाँठ को खो-
लती है जो कि-वेदी से पहिले ही बनाया जाता है, मन्त्रार्थ-हे कुश
मुष्टिसे निर्मित वेदपदार्थ (वेदोऽसि) तुम ऋगादि वेदरूप हो
(देव) हैं प्रकाशात्मक (वेद) सबके ज्ञाता (येन) जिसकारण
से तुम यज्ञका समस्त घृतान्त आद्योपान्त जानते हो अतः (देवेभ्यः)
देवताओं के अर्थ (वेदः) ज्ञापक (अभवः) होतेहुए (तेन)
जिसकारण से (मह्यम्) मेरे निमित्त (वेद) ज्ञापक (भूयाः)
हो [दूसरे मंत्र को पढ़कर यज्ञके आगे से देवताओं का विसर्जन
किया जाता है] मन्त्रार्थ-(गातुविदः) यज्ञके जाननेवाले (देवाः)
देवताओं ! (गातुम्) यज्ञके सब घृतान्त को (विच्चा) जानकर
(गातुमित) यज्ञ के प्रति आओ वा हमारे यज्ञसे सन्तुष्ट हो-
कर अपने लोकों को जाओ (मनसस्पते) हे मन के मवर्त्तक
(इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (स्वाहा) तुम्हारे अर्पण क-
रता हूँ, आप इस यज्ञको (वाते) वायुरूप देवता में (धाः)
स्थापित करो ॥ २१ ॥

सम्बार्हिरङ्क्तां हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम-
रुद्धिः । समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छ
तु यत् स्वाहा ॥ २२ ॥

इस कण्विकामें १ मंत्र है, इसका म० प० ऋषि, विराटरूपा
त्रिष्टुप् छन्द और बार्हि देवता है, इसको पढ़कर जुहू से कुशा का
होम होता है । मन्त्रार्थ-(इन्द्रः) इन्द्र देवता (बार्हिः) कुशा
को (हविषा) हविरूप (घृतेन) घृत से (समङ्क्ताम्) भली

मकार लिप्त करो (आदित्यैः) १२ आदित्यों के (सम्) साथ
 (वसुभिः) = वसुओं के (सम्) साथ (विश्वदेवेभिः) विश्व-
 देवों के (सम्) साथ (अङ्कताम्) लिप्त करो, वह (यत्) जो
 (दिव्यम्) दिव्यमंकाशरूप (नभः) सूर्यरूप ज्योति को (गच्छतु)
 माया हो (स्वाहा) सुन्दर होम हो ॥ २२ ॥
 'कस्तवा विमुञ्चति, तत्वा विमुञ्चति कस्मै त्वां विमु-
 ञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय परक्षसां भागोऽसि ॥
 इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । १ कस्तवा = १२ रक्षसां ० । पहिले
 का म० ऋषि, याजुषी, छन्द, मजापति देवता । दूसरे का म०
 ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द और रक्षो देवता है । पहिले मंत्र को
 पढ़कर पूर्व स्थापित (१, ६) पात्र का विसर्जन करे । मन्त्रार्थ—
 अध्वर्यु, स्वयं आहवनीय की परिक्रमा करके वेदी के दक्षिणभाग
 में उत्तरमुख होकर माणीतापात्र को वेदी के मध्य में स्थापन कर
 किसी स्थान पर पलट देय । हे माणीतापात्र ! (कः) कौन (त्वा)
 तुमको (विमुञ्चति) त्याग करता है (सः) वह मजापति (त्वा)
 तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (कस्मै) किस निमित्त (त्वा)
 तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (तस्मै) उस मजापति के सन्तो-
 पार्थ (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (पोषाय) यजमान
 के पुत्र, पौत्रादि को पोषण करने के निमित्त तुमको त्यागता हूँ ।
 दूसरे मंत्र को पढ़कर प्रथम पुरोडाश के कपाल से ओदनकणों
 को निकालकर कुष्णाजिन के समीप स्थान में उत्कर पर ढाले ।
 मन्त्रार्थ—हे कणसमूह तुम (रक्षसाम्) राक्षसों के (भागः)
 भाग (असि) हो ॥ २३ ॥

संवर्चसा पर्यमा सन्ननूभिरगन्महि मनसा संशिवेम ।

॥ त्वष्टा मुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो याद्विलिष्टम् ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, जिसका म० ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द
 और त्वष्टा देवता है । इस मंत्र को पढ़कर यजमान अंजुलि से
 पूर्ण पात्र को गृहण करे । अध्वर्यु आहवनीय की परिक्रमा कर

दक्षिण में बैठा हुआ उत्तर को मुखकर पूर्णपात्र को लेय तथा यजमान अर्जुन में जल लेकर मुख शुद्ध करे । मनार्थ—हम आज (चर्चसा) ब्रह्मतेज से वा अन्न से (समगन्माहे) संयुक्त हों (पयसा) दुग्धादि रस से संयुक्त हों (तन्मिः) अनुग्रान में समर्थ शरीर के अवयवों से संयुक्त हों (शिबेन) शान्तकर्म अदायुक्त (मनसा) मन से संयुक्त हों (सुदत्रः) उत्तम दानी (त्वष्टा) त्वष्टा देवता (रायः) धन (विदधातु) विधान करे (यत्) जो (तन्वः) शरीरका (विलिष्टम्) दोषरूप न्यून अङ्ग है उस को (अनुमार्ष्टु) शोधन करे ॥ २४ ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यच्च यं द्विष्मः । अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यच्च यं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यच्च यं द्विष्मः । अस्मादन्तात् । अस्यै प्रतिष्ठायै । अगन्मस्वः । संज्योतिषाभूमः ॥ २५ ॥

इस कण्डिका में ७ मंत्र हैं । पहिले दिवि इत्यादि मंत्र का म० ऋषि, याजुषी छ०, विष्णुदेवता । दूसरे अस्यै इत्यादि का म० ऋषि, याजुषी गायत्री छ०, विष्णुदेवता । तीसरे पृथि० इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी गा० छ०, विष्णु दे० । चौथे अस्मात् इत्यादि मंत्र का म० ऋ०, देवी वृह० छ० भाग्यदेवता पांचवे अस्यै इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी गा० छ०, भूमिदेवता । छठे अगन्मस्वः का म० ऋ०, देवी वृ० छ०, देवा देवता और सातवें संज्यो० इ० का म० ऋ०, गा० छ०, आहवनीय देवता है । पहिले तीन मंत्रों को पढ़कर यजमान अपने आसन से उठकर वेदीपर खड़ा हो धीरेर कुछ पग चले, ऐसे मदक्षिणा करे और यह विचारै कि—यक्षपति विष्णु ही यह चरण रख रहे हैं । मनार्थ—(विष्णुः) सर्वव्यापी नारायण (जागतेन छन्दसा)

वृ० छ०, सूर्य देवता है। पहिले दूसरे मंत्रको पढ़कर सूर्य को देखे। मन्त्रार्थ—हे सूर्य तुम (स्वयंभूः) स्वयंसिद्ध (असि) हो (श्रेष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ (रश्मिः) हिरण्यगर्भ पुरुष, हो। क्योंकि तुम (बर्चोदा) तेज के देनेवाले (असि) हो, अतः (मे) मेरेनिमित्त (षर्वः) ब्रह्मतेज को (देहि) दो तीसरे मंत्र को पढ़कर प्रदक्षिणा करे। मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृत्तम्) प्रदक्षिणा को (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वं याग्नेऽहं गृहपतिना भूयास
सुगृहपतिस्त्वं मयाग्ने गृहपतिना भूयाः अस्थूरिणौ
गार्हपत्यानि सन्तु शतं हिमाः। सूर्यस्यावृत्तमन्वावर्त्ते २७

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, पहिले अग्ने इत्यादि मंत्र का म० ऋ०, ग्राह्मी वृहती छ०, गार्हपत्याग्नि देवता। दूसरे सूर्यस्य इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी वृ० छ० और सूर्य देवता है, पहिले मंत्र से गार्हपत्य का उपस्थान करे। मन्त्रार्थ—(गृहपते) मेरे घर के रक्षक (अग्ने) हे गार्हपत्य अग्निदेव ! (त्वया) तुम (गृहपतिना) गृहपति करके (अहम्) मैं (सुगृहपतिः) सुन्दर गृहपति (भूयासम्) होऊँ (अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (मया) मुझ (गृहपतिना) गृहपति करके (सुगृहपतिः) श्रेष्ठ घरके रक्षक (भूयाः) होवो (अग्ने) हे अग्निदेव (नौ) हमदोनोंके (गार्हपत्यानि) गृहपति संवन्धी कर्म (शतम्) पूर्णायुष्यन्त (हिमाः) वर्षोत्तक (अस्थूरि) निरन्तर (सन्तु) हों। अगले मंत्र से सूर्य की परिक्रमा करे। मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृत्तम्) परिक्रमा को (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिणं तदंशकं तन्मेऽराधि। इदमहं
यण्वास्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, पहिले अग्ने इ० का म० ऋ०, साम्नी पंक्ति छ०, अग्नि देवता। दूसरे इदमहमित्यादि का म० ऋ०, याजुषी पंक्ति छ० और अग्नि देवता है। पहिले को पद-

कर व्रत का विसर्जन करै। मंत्रार्थ—(अग्ने) अग्निदेव ।
 (व्रतपते) व्रत के पालक (व्रतम्) जिसव्रतको (अवारिषम्)
 किया (तम्) उसको (अशकम्) तुम्हारी कृपा से करने में
 समर्थ हुआ (मे) मेरे (तत्) उस कर्म को (अराधि) आपने
 सिद्ध किया । दूसरे मंत्र को पढ़कर कर्म को समाप्त करै । (इदम्)
 यह (अहम्) मैं (यः) जो (अस्मि) या (सः) वही देवता
 (अस्मि) हैं ॥ २८ ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । सोमाय पितृमते स्वाहा ।

अपहता असुरारक्षांसि वेदिपदः ॥ २९ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, पहिले अग्न ३० का प्र० ऋ०,
 याजुषी गा० छ०, देव देवता । दूसरे सोमाय ३० का प्र० ऋ०,
 याजुषी छ०, देव देवता और तीसरे अपहता ३० का प्र० ऋ०,
 उष्णिक् छ०, असुर देवता है । पहिले और दूसरे मंत्र को पढ़ता
 हुआ सार चावल को कुछ एक पकाकर अभिधारण उद्गासन और
 देखने के पश्चात् होम करै । मंत्रार्थ—(कव्यवाहनाय) पितरों के
 हवि को उनके पांस पहुँचानेवाले (अग्नये) अग्नि के अर्थ (स्वाहा)
 यह आहुति सुन्दर रूप से प्राप्त हो (पितृमते) पितरों के अधि-
 ष्ठान (सोमाय) सोमदेवता के अर्थ (स्वाहा) यह आहुति सुन्दर
 रूप से प्राप्त हो । तीसरे मंत्र से दक्षिण ओर रेखा करै मंत्रार्थ—
 (वेदिपदः) वेदी पर स्थित होनेवाले (असुराः) असुर (रक्षांसि)
 राक्षस (अपहताः) वेदी से दूर निकाले गए ॥ २९ ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया च
 रन्ति । परापुरो निपुरो ये भरन्त्याग्निष्टान् लोकात्
 प्रणुदात्थस्मात् ॥ ३० ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका प्र० ऋ०, त्रिष्टुप् छन्द और
 कव्यवाहन अग्नि देवता । इस को पढ़कर वेदी के आगे एक जलती
 हुई लकड़ी धुमाकर रखदेय । मंत्रार्थ—(स्वधया) पितरों का अन्न
 अक्षय करना चाहिये इस इच्छा से (रूपाणि) अपने रूपों को

(प्रतिमुञ्चमानाः) पितरों की समान करते (सन्तः) हुए (ये) जो (असुराः) अमुर (चरन्ति) पितृगण में फिरते हैं (ये) जो असुर (परापुरः) स्थूल शरीर (निपुरः) अपना असुरत्व छुपाने के लिए सूक्ष्म शरीरों को (भ्रान्ति) धारण करते हैं (अग्निः) उल्लुक्छ रूप अग्नि (अस्माल्लोकात्) इस पितृगणस्थान से (तान्) उन असुरों को (मणुदत्तु) दूर इटाओ ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमी मदन्त पितरों यथाभागमावृषायिपत ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । पहिले अत्र ३० का म० ऋ०, साम्नी बृहती छन्द, पितर देवता । दूसरे अमी ३० का म० ऋ०, सा० बृ० छ० और पितर देवता है । यजमान पङ्कजलि करे पीछे पिण्ड के सामने आस रोककर जब तक न थके पहिले मंत्र का जप करे, थकनेपर दूसरे मंत्र को पढ़कर रोकानुआ आस छोड़देय मन्त्रार्थ—(पितरः) हे पितरों ! (अत्र) इन कुशों पर (मादयध्वम्) बैठकर मसन्न हूजिए (यथाभागम्) अपने २ भागों को (आवृषायध्वम्) दृष की समान भोजन कर लुप्ति पाओ (पितरः) यह पितर (अमीमदन्त) अत्यन्त मसन्न होतेहुए (यथाभागम्) अपने २ भागको (आवृषायित) दृष की समान स्वीकार कर लुप्ता होवो ॥ ३१ ॥

नमो वः पितरो रंसाय । नमो वः पितरः शोषाय ।
नमो वः पितरो जीवाय । नमो वः पितरः स्वधाय । नमो
वः पितरो घोराय । नमो वः पितरो मुन्यवे । नमो वः
पितरः पितरो नमो वः । गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः
पितरो देष्म । एतर्हः पितरो वासु आर्धत्त ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका में ८ मंत्र हैं । नमो वः इत्यादि पहिले ६ मंत्रों का म० ऋ०, याजुषी बृ० छ० षष्ठ्यार्थी उष्णिक् छन्द लिङ्गोक्त देवता । गृहान्त ३० सातवें का म० ऋ०, साम्नी अनुष्टुप् छन्द, पितर देवता, और एतत् ३० आठवें का म० ऋ०, प्राजा० गाय०

छ०, पितर देवता हैं । पहिले छः मंत्रों को पढ़ता हुआ पितरों के आगे हाथ जोड़े । मंत्रार्थ-१ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे (रसाय) रसस्वरूप वसन्त ऋतु के अर्थ (नमः) नमस्कार है । २ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारे (शोषाय) ग्रीष्म ऋतु के अर्थ (नमः) नमस्कार है । ३ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारे (जीवाय) माणियों के जीवनस्वरूप वर्षा ऋतु के अर्थ (नमः) नमस्कार है । ४ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारी (स्वधायै) स्वधारूप शरद ऋतु को (नमः) नमस्कार है । ५ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारी (योराय) जीवमान को असन्न हेमन्त ऋतु को (नमः) नमस्कार है । ६ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारे (मन्यवे) क्रोधरूप शिशिर ऋतु को (नमः) नमस्कार है, अर्थात् हे पितरों ! आप के अनुग्रह से देश में वसन्त ऋतु के मंचार से सब वस्तु रसयुक्त हों ग्रीष्म शुभदायक होकर वर्षे, सब को समीप करनेवाली वर्षा उत्तम हो, शरद में श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न हों, हेमन्त से किसी को कष्ट न हो और शीत ऋतु में किसी का स्वास्थ्य न बिगड़े । (पितरः) हे छः ऋतुरूप पितरों (वः) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार है (पितरः, वः, नमः) हे पितरों, आप को, नमस्कार है । सातवें मंत्र को पढ़ता हुआ स्त्री की ओर देखे । मंत्रार्थ- (पितरः) हे पितरों (नः) हमारे अर्थ (गृहान्) स्त्री पुत्रादि घर के स्वरूप को (दत्त) दो । (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारे अर्थ (सतः) देने योग्य विद्यमान वस्तुएं (देष्मः) देते हैं अर्थात् दानकरते हुए हमारा धन कमी कम न हो । आठवें मंत्र को पढ़कर पितृपिण्डों पर ऊन के दशासूत्र या साठ बर्ष से अधिक अवस्था का यजमान अपनी छाती के बाल धरे मंत्रार्थ- (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे अर्थ है (एतत्) यह (वासः) सूत्ररूप पहिरने का कस्त्र (आघत्त) धारण करो ॥ ३२ ॥

आघत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसीत् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका म० ऋ०, गायत्री छ० और पितर देवता है। इसको पढ़ते में पुत्र की इच्छावाली पत्नी बीच के पिएड को उठाकर खालेय। मंत्रार्थ—(पितरः) हे पितरों ! (यथा) जैसे (इह) इस ऋतु में (पुरुषः) देव पितर मनुष्यों की अभिलाषा को पूरी करनेवाला (अस्तु) होवे, इसप्रकार (पुष्करसजम्) पुष्कर मालाधारी अश्विनीकुमार की समान नीरोग सुन्दर (कुमारम्) पुष्कर (गर्भम्) गर्भको (आधत्त) स्थापन करो ॥ ३३ ॥
 ऊर्जं वहन्तीं गृतं घृतं पयः कीलालं परिश्रुतम् । स्वधा
 स्थं तर्पयन्त मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका म० ऋ०, त्रिपदाविराट् छन्द और आप देवता है, इसको पढ़कर कुशमार्जन से बचे जल को पिहों पर सींचे। मंत्रार्थ—(ऊर्जम्) अनेक प्रकार के स्वादुरस (अमृतम्) सकल रोग और मृत्युनाशक (परिश्रुतम्) पुष्पसार (घृतम्) घृत (कीलालं) सब बंधन दूर करनेवाले (पयः) दुग्ध को (वहन्तीः) धारण करनेवाले जलों (स्वधा, स्थ) पितरों की दधिःस्वरूप हो (मे) मेरे (पितॄन्) पितरों को (तर्पयन्त) तृप्त करो ॥ ३४ ॥

इन दोनों अध्यायों का दयानन्दजी का किया अर्थ ब्राह्मण कल्पसूत्र मीमांसा आदि के सर्वथा विरुद्ध होने के कारण मान्य नहीं होसक्ता ॥

इति श्रीछन्दोग्यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशास्त्राध्येतृ पारद्वाजगोत्रो-

द्भूतगौडवंशावतंस श्रीमद्गोठानाथात्मजराजस्वरूपशर्मा द्वारा

खण्डमहीपरादिप्राचीनभाष्यों के अनुसार सम्पादित अन्वय

पदार्थ और भावार्थसहित इष्टप्रोधादि पित्र्यान्त

द्वितीय अध्याय समाप्त.



आदधे) अन्नादि लाभ की इच्छा के लिए, अन्न के भक्षक, अग्नि को, स्थापन करता हैं । और उसको स्थापन करके (भूम्या, धौरिव) बहुतायत से तारागण से भरे बुलोक की मुख्य पुत्रपौत्र आदि से युक्त होऊँ (वरिष्मणा, पृथ्वीव) बहुताओं के आश्रय से बड़ी होने के कारण, पृथ्वी की समान अनेकों का आश्रय होऊँ (तैत्तिरीय उपनिषद् के ५ वें अनुवाक में ३ व्याख्यातिका विस्तार के साथ वर्णन है) ॥ ५ ॥

आयँ गौः पृश्निरक्रीदिसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन् स्वः ॥ ६ ॥

इस कण्विका में एक मंत्र है, उसका सर्पराशी कद्रु ऋ०, गायत्री छ०, और अग्नि देवता है, यहाँ से तीन मंत्रों को पढ़कर गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि को क्रम से स्थापन करें । मन्त्रार्थ — (अयम्) यह अग्नि (गौः) यज्ञसाधनार्थ यजमान के घर जानेवाला (पृश्निः) अनेकों वर्णों की ज्वालायुक्त (आक्रीद) सब ओर तीनों अग्नियों के स्थानों में पादक्रमण करता हुआ (पुरः, मातरम्, असदत्) मैंने आहवनीयरूप से पृथ्वीको, पाया (स्वः, प्रयन्) सूर्यरूप से स्वर्ग में, विचरा, (पितरञ्च असदत्) बुलोक को भी, प्राप्त किया अर्थात् अग्नि से सब, जगत् का पालन होता है ॥ ६ ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपान्ती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

इस कण्विका में १ मंत्र है, उस का म० अ०, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है । वायुरूप से अग्निकी स्तुति करते हैं । मन्त्रार्थ — (अस्य, रोचना, प्राणात्, अपान्ती, अन्तः, चरति) इस अग्नि की, वायुनामक कोई शक्ति, प्राण के अनन्तर, अपान की शक्ति को बढ़ाती हुई, पृथिवी स्वर्ग के मध्य में, चलती है । इस प्रकार वायु आदित्यस्वरूप अपनी शक्ति से जगत् के ऊपर अनुग्रह करके (महिषः, दिवम्, व्यख्यत्) अग्नि, भोगस्थान बुलोक को

विशेष प्रकाशित करता हुआ ॥ ७ ॥

त्रिंशद्वाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति
वस्तोरह्युभिः ॥ ८ ॥

इस कण्डिका के १ मंत्र का प्र० अ०, और अग्नि देवता है। इस से अग्नि का उपस्थान होता है। मंत्रार्थ (वाक्, त्रिंशद्वाम, विराजति) जो वेदवाणी, तीस मुहूर्त स्थानों में, शोभा पाती है (प्रतिवस्तोः), अह्युभिः, पतङ्गाय, धीयते) प्रतिदिन, ब्रह्मरिद आगे कहे रूपों से, अग्नि के अर्थ, उच्चारण की जाती है। अर्थात् वेदमंत्रों में अग्नि की जो स्तुति की जाती है, वह विशेष विराजित होती है ॥ ८ ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिर्गग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः
सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । सूर्यो
वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो
ज्योतिः स्वाहा ॥ ९ ॥

इस कण्डिका में १ अग्निरित्यादि । २ सूर्योज्योतिरित्यादि
३ अग्निर्वर्चरित्यादि । ४ सूर्योवर्चरित्यादि । ५ ज्योतिः सूर्यइत्यादि
५ मंत्र हैं । ऋषि पहिले और दूसरे का तथा, तीसरे चौथे का प्र०
और पाँचवें का जीवल । छन्द पाँचों का एकपदा गायत्री,
तथा देवता पाँचों का लिङ्गोक्त है। यहाँ से अग्निहोत्र के मंत्र हैं।
पहिले मंत्र को पढ़कर सायंकाल समिधा से होम करे। मंत्रार्थ—
(अग्निः, ज्योतिः, ज्योतिः, अग्निः, स्वाहा) जो अग्निदेव है,
वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है, वही अग्निदेव है, ऐसे
अग्नि को मैं हवि देता हूँ । दूसरे मंत्र से प्रातःकाल होम करे।
मंत्रार्थ—(सूर्यः, ज्योतिः, ज्योतिः, सूर्यः, स्वाहा) जो सूर्य देवता
है, वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है, वही सूर्य है, इससे
ज्योतिको मैं हवि देता हूँ । ब्रह्मतेज चाहने वाला ३ रे मंत्र से
सन्ध्या के समय हवन करे। मंत्रार्थ—(अग्निः, वर्चः, ज्योतिः,
वर्चः, स्वाहा) जो अग्नि है, वही ब्रह्मतेज है, जो ब्रह्म ज्योति

है वही तेज है, उस के अर्थ अच्छा होम हो। ब्रह्मतेज की इच्छा से। प्रातःकाल हवन करने का ४ वां मंत्र है उस का अर्थ—(सूर्यः, वर्चः ज्योतिः, वर्चः स्वाहा) जो सूर्य है, वही ब्रह्मतेज है, जो ज्योति है, वही तेज है, उस के अर्थ श्रेष्ठ होम हो । प्रातःकाल हवन करने के पांचवें मंत्र का अर्थ—(ज्योतिः, सूर्यः, सूर्यः, ज्योतिः, स्वाहा) जो ज्योति है, वही सूर्य है, जो सूर्य है, वही ब्रह्मज्योति है, उस के लिए श्रेष्ठ होम हो ॥ १९ ॥

संजुदेवेन सवित्रा संजुरादयेन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ संजुदेवेन सवित्रा संजुरवसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, १ संजुरित्योदि । २ संजुरित्यादि दोनों का प्रजापति ऋ०, एकपदा गा० ऋ० और लिङ्गोक्त देवता है । दोनों मंत्रों को पढ़कर हवन किया जाता है । मंत्रार्थ—१ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सर्व के प्रेरक, सूर्यदेव के साथ, प्रीति करने वाले (इन्द्रवत्या, रात्र्या, सजूः) इन्द्र देवतावाली, रात्रि के साथ, प्रीति करनेवाले (जुषाणः, अग्निः, वेतु, स्वाहा) हम पर प्रीति करनेवाले, अग्नि देवता, इसको स्वीकार करें, उनको यह श्रेष्ठ आहुति दी । २ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सर्वप्रेरक, देव के साथ प्रीति करनेवाले (इन्द्रवत्या, उपसा, सजूः) इन्द्र देवतावाली, उपसा के साथ, प्रीति करनेवाले (जुषाणः, सूर्यः वेतु, स्वाहा) हम पर प्रेम करनेवाले सूर्यदेव, आहुति को वा हमारे कर्म को प्राप्त करो, उनके निमित्त यह सुन्दर होम हो ॥ १० ॥

उपमयन्तो अर्ध्वरं मन्त्रं वोचैमाग्नये । अग्रे अस्मे च ऋष्यकृते ॥ ११ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का गौतम ऋ०, निच्युद्गायत्री ऋ० और अग्नि देवता है यहां से लेकर २६ वीं कण्डिका तक के मंत्रों को तीन १ बार पढ़कर तीन २ आहुति देता हुआ दोनों प्रती अग्नि का उपस्थान करे, पहिले आहवनीय का उपस्थान

है। मन्त्रार्थ—(अध्वरं, उपमयन्तः, आरे, च, अस्मे, शृण्वते, अग्नये, मन्त्रं, वोचेम) यह के प्रति, जातेहुए हम, दूर, और, अपने समीप, मृननेवाले, अग्नि-देव के अर्थ, मंत्रन करतेही रक्षा और उच्चारण करते ही मनोरथ सिद्ध करनेवाले शब्दसमूह रूप मन्त्र को, उच्चारण करते हैं॥ ११॥

अग्निर्मूर्धा दिवः किकुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा ॥
रेतांसि जिन्वति ॥ १२ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का विरूप ऋ०, निष्यद्गायत्री छ०, और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयम्, अग्निः, दिवः, मूर्धा, किकुत्) यह, अग्नि, स्वर्गलोक का, शिर की समान प्रधान, वैल के कन्धे की समान सर्वोन्नत वा जगत् का महान् कारण है। (पृथिव्यां, पतिः) सूर्यरूप से प्रकाश देने के कारण पृथिवी का, पालक है। (अपाम्, रेतांसि, जिन्वति) जलों के, सारभागों को, पुष्ट करता है अर्थात् ध्रुलोक से गिरतेहुए वर्षा के जलों को अन्नादि के पकाने की शक्ति देता है, वा आहुति के फल से वर्षा को उत्पन्न करता है॥ १२॥

उभा धामिन्द्राग्नी आहुवध्यौ उभा राधिसः सह मा-
दयध्यौ । उभा द्वाताराविषा रयीणामुभा वाजस्य
सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का भरद्वाज ऋ०, त्रिष्टुप्छन्द और इन्द्राग्नी देवता है। मन्त्रार्थ—(इन्द्राग्नी, वाम्, उभा, आहुवध्यौ) हे इन्द्र अग्नि देवताओं !, तुम, दोनों को, आन्वहान करना चाहता हूँ (उभा, सह, राधिसः, मादयध्यौ) दोनों को, एकसाथ, हविरूप-धन से, प्रसन्न करना चाहता हूँ। (उभा, इषाम्, रयीणाम्, द्वातारौ) तुम दोनों, अन्नो के, और धनों वा जलों के, देनेवाले हो। (वाम्, उभा, वाजस्य, सातये, हुवे) तुम, दोनों को, अन्न के, दानार्थ, आन्वहान करता हूँ॥ १३॥

अयं ते योनिर्भर्त्विषो यतो जाति अरोचथाः ।

जानन्नस्य आरोहाथा नो वर्गया इयिम् ॥ १४॥

इस कण्डिका के मन्त्र का देवश्रव और देववात ऋषि, स्वराह
 अनुष्टुप् छन्द और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने, अवम्,
 ते ऋत्विगः, योनिः) हे गार्हपत्य अग्ने ! यह, तुम्हारा, साथ
 मातःकाल सम्बन्धी, उत्पत्ति स्थान है (यतः, जातः, अरोचयाः)
 जिससे, प्रकट हुए तुम, कर्मकाल में प्रज्वलित होते हो (तम्,
 जानन्, आरोह) उस गार्हपत्य को, जानते अर्थात् अपना अंश
 मानते हुए, उसमें प्रविष्ट हजिये (अय, नः, रयिम्, आवर्द्धय)
 फिर, हमारे निमित्त, यह साधन धनको, चारों ओर से बढ़ाइये ॥ १४ ॥
 अयमिह प्रथमो धावि धातृभिर्होता यजिष्ठो अश्वरे-
 प्वीडयः। धमप्रवानो भृगवो विरुचुर्बनेषु चित्रं विभुं
 विशेषविशे ॥ १५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वामदेव ऋषि, जगती वा भुरिक्
 त्रिष्टुप् छ०, और अ० दे० है। मन्त्रार्थ—(अयम्, होता, यजिष्ठः
 अश्वरेपु, ईड्यः, इह, धातृभिः, आधायि) यह अग्नि, देवताओं
 का आवाहन करनेवाला, यह में स्थित वा अतिशय यह क-
 रानेवाला, यज्ञों में, ऋत्विजों से स्तुति, किया हुआ, इस कर्म
 स्थान में, स्थापन करनेवालों करके, स्थापित किया गया है। (अम-
 वानः, भृगवः, विशेषविशे, चित्रम्, विभुम्, यम्, बनेषु, विरुचुः)
 पुत्रवान्, यज्ञविद्या जाननेवाले भृगुवंशी मुनियों ने, यजमान के
 उपकारार्थ, आश्चर्यरूप, व्यापक शक्तिवाले, जिस अग्नि को,
 घनों में, प्रज्वलित किया है ॥ १५ ॥

अस्य मत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुहे अन्हयः। पयः सहस्र-
 सामृषिम् ॥ १६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का अवत्सार ऋ०, गा० छ० और गोमिपय
 देवता है। मन्त्रार्थ—(अहयः, अस्य, मत्नाम्, द्युतम्, अनु, ऋषिम्,
 सहस्रसाम्, शुक्रम्, पयः दुदुहे) संस्कारशुद्ध होने से अयोग्यता
 की लज्जा से रहित ऋषि, इस अग्नि की, पुरात्म, कान्ति को,
 अनुसरण करके, दोहनस्थान में जानेवाली गौ के द्वारा सहस्रों कार्यों

के साधक, शुद्ध, दूधको, दुहतेहुए ॥ १६ ॥

तनूपा अग्नेऽसि तन्वु मे पाहि । आयुर्दा अग्नेऽस्यायुं
मे देहि । वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे
तन्वा ऊनं तन्मे आपृण ॥ १७ ॥

इस कपिठका के मंत्र का अवत्सार ऋ० त्रिष्टुप् छ० और अग्नि
देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने, तनूपाः असि) हे अग्निदेव, तुम स्व-
भाव से ही अग्निहोत्रियों के रक्षक, हो (मे, तन्वम्, पाहि) मेरे,
शरीर को, रक्षा करो (अग्ने, आयुर्दा, असि) हे अग्ने तुम, आयु
 देनेवाले, हो (मे, आयुः, देहि) मेरेलिये, आयु, दीजिये (अग्ने,
वर्चोदा, असि) हे अग्ने, तेज देनेवाले, हो (मे, वर्चः, देहि) मेरे
लिए, तेज, दीजिए (अग्ने, मे, तन्वाः, यत् ऊनम्, तत्, आपृणः)
हे अग्निदेव, मेरे शरीर का, जो अङ्ग, कम हो, उसको, सब प्रकार
से पूर्ण करो ॥ १७ ॥

इन्द्रानास्त्वा शतं हिमां शुमन्तं समिधीमहि ।

वयस्वन्ती वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने
सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् । चित्रावसो स्युस्ति
ते पारमशीय ॥ १८ ॥

इस कपिठका के मंत्र का अवत्सार ऋ० निच्युद्ब्राह्मी पंक्ति
वा महापंक्ति छन्द और अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने, इन्द्रानाः,
वयस्वन्तः, सहस्वन्तः, अदब्धासः, शुमन्तम्, वयस्कृतम्, सहस्क-
ृतम्, सपत्नदम्भनम्, अदाभ्यम्, त्वा, शतम्, हिमाः, समिधीमहि)
हे अग्निदेव ! दीप्तिमान्, अन्नवान्, बलवान्, पीडारहित हम,
कान्तिमान्, अन्नवान्, बलवान्, शत्रुओं के हिंसक, किसी से
पीड़ा न पानेवाले, तुमको, सौ, वर्षोपर्यन्त, निरन्तर भज्जलित
करें । अर्थात् हमको यह सब पदार्थ प्राप्त हों (चित्रावसो, स्वास्ति,
ते, पारम्, अशीय) हे चन्द्रतारागणादिकी निवासस्थान रात्रि,
कल्याणपूर्वक, तेरे, पारको, पाऊं । देवयज्ञ में राक्षस न घुस
जायें इसलिये रात्रि से प्रार्थना की है ॥ १८ ॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणां ३८ स्तुतेन ।

सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषाः सं वर्चसां सं प्रजया

सं रायस्पोषेण भिषीय ॥ १९ ॥

इस मंत्र का अर्थ—(अग्ने, त्वम्, सूर्यस्य, वर्चसा, समगथाः) हे अग्निदेव! तुम, रात में सूर्य के, तेज से, युक्त हुए हो (कृषीणाम्, स्तुतेन, सम्) मंत्रों के, स्तोत्र से, संयुक्त हुए हो (प्रियेण, धाम्ना, सम्) प्रिय, आहुति से, संयुक्त हुए हो । उसी प्रकार (अहम्, आयुषा, संभिषीय) मैं, आपकी कृपा से अपमृत्युरहित आयु से, युक्त होऊँ (वर्चसा, सम्) विद्या ऐश्वर्य आदि के तेज से युक्त होऊँ (प्रजया, सम्) पुत्रादि से, संयुक्त होऊँ (रायस्पोषेण, सम्) धनकी पुष्टि से, संयुक्त होऊँ ॥ १९ ॥

अन्यस्थान्धों को भक्षाय महं स्थ महो वो भक्षीयोज्ञे
स्थोज्ञे वो भक्षाय रायस्पोषं स्थ रायस्पोषं वो भक्षाय ॥

इस कण्डिका के मंत्र का भाववत्क्य अ०, भुरिगृह्णी छ० और गौ देवता है । वीसवीं और इक्कीसवीं कण्डिका को पढ़कर गौओं, के पास जाय मंत्रार्थ—हे गौओं ! तुम (अन्यः, स्थं) दूध आदि अन्न को उत्पन्न करनेवाली, हो (वः, अन्धः, भक्षाय) तुम्हारे दूध ग्री-आदि को, खाता रहूँ (महः, स्थं) पूज्यरूप, हो (वः, महः, भक्षाय) तुम्हारी, पूज्यता को, पाऊँ (ऊर्जः, स्वः) बलरूप, हो (वः, ऊर्म, भक्षाय) तुम्हारे, दुग्धादि के द्वारा बल को, पाऊँ (रायस्पोषः, स्थः) धनपुष्टिरूप, हो (वः, रायस्पोषम्, भक्षाय) तुम्हारे अनुग्रह से, धनकी पुष्टि को, पाऊँ ॥ २० ॥

देवती रमध्वमस्मिन्धोनास्मिन् गोष्ठेऽस्मिन्लोकेऽस्मिन्

नक्षत्रेऽहैव स्ते मारुतास्त ॥ २१ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का भाववत्क्य अ०, उधिण्क् छ०, और गौ देवता है । मंत्रार्थ—(अस्मिन्, गोष्ठे, अस्मिन्, लोके, अस्मिन्, सये, रमध्वम्) हे धनप्राप्ति की साधन गौओं, इस, दुग्ध के स्थान

में, इस, गोठ में, इस, यजमान की दृष्टि में वा रात में, इस, यजमान के घर में, क्रीड़ा करो (इह, एव, स्त, मा, अपगोत) यहां यजमान के घर में, ही, रहो, मत, जाओ ॥ २१ ॥

सं० छितासि विश्वरूप्यर्जमाविश गोपत्येन । उप
त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्षिया वयम् । नमो भरन्तु
गमसि ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । पहिले संहितेत्यादिका वैश्वामित्र मधुच्छन्दा ऋषि, धुरिगासुरी गायत्री छ०, गौदेवता । दूसरे, उपेत्यादिका पूर्वोक्त ऋ०, गायत्री छन्द, और अग्नि देवता है । पहिले मंत्र से गौ को स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—हे गौ ! तुम (विश्वरूपी, संहिता, असि) अनेकों रूपवाली, हविके निमित्त यज्ञ में संपुक्त हो (ऊर्जा, गोपत्येन, माम्, आविश) दूध आदि रस से, गो-स्वामित्व से, मुझ में, सब प्रकार से प्रवेश कर अर्थात् हमारा गो-स्वामित्व श्रुत रहै । दूसरे मंत्र से गार्हपत्य में जाय । मन्त्रार्थ—(दोषावस्तः, अग्ने, वयं, दिवेदिवे, धिया, नमो भरन्तः, स्वा, उपपमसि) रात में भी निरन्तर बसनेवाले, हे अग्निदेव ॥ हम, प्रतिदिन श्रद्धायुक्त बुद्धि से, नमस्कार करते हुए, तुम को, प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं छ
स्वे दमे ॥ २३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वै० मधु० ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ—(राजन्तम्, अध्वराणाम्, गोपाम्, मृतस्य, दीदिविम्, स्वे, दमे, वर्धमानम्) दीप्तिमान्, यज्ञों के, रसक, सत्वान्न रूपव्रत के, रसक, अपने घर में, सोम आदि से बढ़नेवाले । अग्नि की हम शरण हैं ॥ २३ ॥

सनः पितेर्व सूनवेऽग्ने सृपायनो भव । सच स्वा ना
स्थस्तये ॥ २४ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वै० मधु० ऋ०, विराट् गायत्री छन्द

ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

इस कण्विका के मंत्रका सत्यधृति वारुणी ऋषि, निच्यूद गायत्री छन्द और ब्रह्मणस्पति देवता है। मन्त्रार्थ—(ब्रह्मणस्पते, अरुणः मर्त्यस्य, शंसः, धृतिः, नः, मा, मणक्, नः, आरक्ष) हे वेदरक्षक जगदीश्वर !, देवपितरों को कभी हव्यकव्य न देनेवाले यज्ञ से विमुख, मनुष्य का, अनिष्टचिन्तन, द्रोह, हमको, न, सतावै, हमारी, सब प्रकार से रक्षा करो ॥ ३० ॥

महिं त्रीणामवोऽस्तु शुचं मित्रस्यार्घ्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

इस कण्विका के मंत्रका सत्यधृति वारुणी ऋषि, विराट् गायत्री छन्द और आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ—(मित्रस्य, अर्घ्यम्णः, वरुणस्य, त्रीणाम्, महि, शुसम्, दुराधर्षम्, अवः, अस्तु) प्राणवृत्ति और दिन के अधिष्ठात्रीदेव मित्र, नेत्र वा सूर्य के अधिष्ठात्री देव अर्घ्यमा, अपान और जलों के अधिष्ठात्री देव वरुण, इन तीनों से सम्बन्ध रखनेवाली, बड़ी, कान्तिमान् सुवर्णादि से युक्त, तिरस्कार पाने को अशक्य, रक्षा, हमको प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेपु । ईशे रिपुघ्नोऽसः ॥ ३२ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का सत्यधृति वारुणी ऋषि, निच्यूद गायत्री छन्द और आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ—(तेषाम्, अमा, अध्वसु, वारणेपु, चन, अधशंसः, रिपुः, नहि ईशे) ईश्वर और इनतीन देवताओं की उपासना करने वालों के, घर में, मार्ग में, दुर्गम वन आदि और संग्रामों में, भी, स्थित यजमान को, कष्ट पहुँचाने को पापकर्मा, शत्रु, समर्थ नहो ॥ ३२ ॥

ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

इस कण्विका के मंत्र का स० धृ० वारु० ऋ०, वि० गा० छन्द और आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ—(दिते, अदितेः, पुत्रासः,

मर्त्याय, प्रजीवसे, अजस्रम्, ज्योतिः, मयच्छन्ति) क्योंकि, वह मित्र अर्थमादि, देवमाता के, पुत्र इसमनुष्य यजमानको, चिरजीवन के निमित्त, निरन्तर, अखण्ड तेज, देते हैं ॥ ३३ ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्वसि दाशुपे । उपोपेन्तु मघवन भूय इक्षु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का मधुच्छन्दाऋ०, पथ्या वृहती छ०, और इन्द्र देवता है । मन्त्रार्थ—(इन्द्र, कदाचन, स्तरीः, न, अ-सि) हे परमैश्वर्यवान् तुम, कभी भी, हिंसक, नहीं, हो (दाशुपे, उप इक्षु, सश्वसि) हवि देनेवाले के, हवि को समीप होकर, से-वन करते हो (मघवन, देवस्य, ते, भूय इत्, दानम्, नु, इत्, उ-पपृच्यते) हे ज्ञानधनवाले इन्द्र नामक जगदीश्वर, दीप्यमान, तु-झारे, बहुतसे, दान को, शीघ्र ही यजमान, प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

तत्संवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का विश्वामित्र ऋषि, निच्यूद्गायत्री छन्द और सविता देवता है । मन्त्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, तत्, वरणीयम्, भर्गः, धीमहि, यः, नः, धियो, प्रचोदयात्) आदित्य मण्डलस्थित अन्तर्यामी सविता नामक, प्रकाशस्वरूप परब्रह्म के, उस, सबके वरणीय, सर्वपापनिवर्त्तक तेज को, ध्यान करते हैं, जो सविता देवता, हमारी, बुद्धियों को, सत्कर्मों में प्रेरित करें ॥ ३५ ॥

परिं ते दूडभो रथोऽस्मान् ॥ अंश्रोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुपः ॥ ३६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वामदेव ऋषि, नि० गायत्री छन्द और अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—हे अग्ने (ते, दूडमः, रथः, अस्मान्, विश्वतः, पर्यरनोतु, येन, दाशुपः, रक्षसि) तुझारा, स्वच्छन्दगतिवाला, रथ, हमको, रक्षा करने के लिए सबदिशा-ओं में स्थित हो, जिसके द्वारा, यजमानों की, रक्षा करते हो ३६

भूर्भुवः स्वः सुमताः प्रजाभिः स्यात् सुवीरौ वीरैः सुपोषः

पोषैः । नर्यं प्रजां मे पाहि । शंस्यं पशून्मे पाहि ।
अर्यं पितुं मे पाहि ॥ ३७ ॥

इस कण्डिका में चार मन्त्र हैं, १ भूरित्यादि का वामदेवऋषि
ब्राह्मी त्रिष्णक् छन्द, और अग्नि देवता है । २ नर्येत्यादि का
वाम० ऋ० यजु छ०, अग्नि दे० शंस्येत्यादि का वाम० ऋ०,
यजु छ०, अग्नि देवता । ४ अर्येत्यादि का वाम० ऋ०, यजु
छ० और अग्नि देवता है । पहिले मंत्र से धुल्लकोपस्थान, दूसरे से
ग्रामान्तर को जातेसमय गार्हपत्य उपस्थान, तीसरे से आहवनी
योपस्थान और चौथे से दक्षिणाग्नि का उपस्थान करै। मन्त्रार्थ—
(भूः, भुवः, स्वः, प्रजाभिः, सुप्रजाः, वीरैः, सुवीरः, पोषैः, सुपोषः,
स्याम्) हे अग्ने तुम भूः, भुवः, स्वः तीन व्यावृत्ति वा तीनलोकस्वरूप
हो तुम्हारे अनुग्रह से, सन्तानों से, सुन्दर सन्तानवाला, वीरपुत्रों
से, प्रशंसित वीर पुत्रों वाला, और अधिक सम्पत्तियों से, सुन्दर
सम्पत्तिवाला, प्रसिद्ध होकै (नर्यं, मे, प्रजाम्, पाहि) हे हि
तंसाधक अग्ने, मेरी, पुत्रादि प्रजा को, रक्षाकरो । ३—(शंस्यं,
मे, पशून्, पाहि) हे अनुष्ठान वालों से प्रशंसित अग्ने, मेरे, गौ-
आदि पशुओं को, रक्षाकरो । ४—(अर्यं, मे, पितुम्, पाहि)
हे निरन्तर गमन शील अग्ने, मेरे, पिता को, रक्षा करो ॥ ३७ ॥

आर्गन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् । अग्ने स-
म्राडभि हुम्नमभि सह आपच्छस्व ॥ ३८ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और
आह० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(सम्राट्, अग्ने, अभ्यागमन्म,
विश्ववेदसम्, अस्मभ्यम्, वसुवित्तमम्, हुम्नम्, सह, अभि आय-
च्छस्व) हे सम्यक्प्रदीप्त, अग्निदेव !, ग्रामान्तर से आये हैं, क्यों
कि—तुम विश्व के सब चरित्र जानते हो, हमको, अत्यन्त धन के
देनेवाले हो, धनयुक्त बलके सहित, आइये, और हम में धन
बल स्थापित कीजिये ॥ ३८ ॥

अपमग्निर्गार्हपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अ-

अं गृहपतेऽभि शुम्नमभि सह आर्यच्छस्व ॥ ३९ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का आसुरि ऋ०, न्यडुसारिणी बृहती छन्द और गार्हपत्याग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयम्, गार्हपत्यः, अग्निः, गृहपतिः, मजायाः, वसुवित्तमः) यह, गार्हपत्य, अग्निही, हमारे घरका अधिपति है, पुत्रपौत्रादि का अनुग्रह करनेवाला, अत्यन्त धनवान् है। (गृहपते, अग्ने, शुम्नम्, अभि, सह अभि, आर्यच्छस्व) हे गृहपालक, अग्निदेव, धन को, सब ओर से, बलको भी सब ओर से, दीजिये ॥ ३९ ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्ने पुरीष्याभि शुम्नमभि सह आर्यच्छस्व ॥ ४० ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि ऋ०, निरुपृद् अनुमुप् छ०, और दक्षिणाग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयम्, अग्निः, पुरीष्यः, रयिमान्, पुष्टिवर्धनः, पुरीष्य, शुम्नम्, अभि, सह अभि, आर्यच्छस्व) यह, दक्षिणाग्नि, पशुओं का हितकारी, धनी, पुष्टिवर्धक है, हे पशुओं के हितकारिन् !, सब ओर से धनको, सब ओर से बलको, दीजिये ॥ ४० ॥

गृहा मा विभीत मा वेपध्वमूर्जं विभ्रत एमसि । ऊर्जं विभ्रदः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि, ऋषि, आर्या पंक्ति छन्द और धारु अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(गृहाः, मा, विभीत) हे घर के आधिष्ठात्री देवताओं !, मत, डरो (मा च, वेपध्वम्) और मत, काँपो (ऊर्जम्, विभ्रतः, एमसि) बल को, धारण करनेवाले आपके, निकट प्राप्त हुए हैं (ऊर्जम्, विभ्रत, सुमनाः, सुमेधाः, मनसा, मोदमानः, गृहान्, एमि) मैं भी बलको, धारण करता हुआ, श्रेष्ठमनवाला, सुन्दर बुद्धि से युक्त, दुःखरहित-मन से, प्रसन्न होता हुआ, घरों में, प्राप्त होता हूँ ॥ ४१ ॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बह्वः । गृहानुपेक्षामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका शंयु ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और वास्तुपति अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ—(मसवन्, येषाम्, अध्येति) देशान्तर को जाताहुआ यजमान, जिन घरों की, कुशल चाहता है (येषु, बहुः, सौमनसः, गृहान्, उपह्वयामहे) जिन घरों में, बहुत, प्रीति करता है, उन गृहों को, प्रीति से आन्धान करते हैं । घर के अधिष्ठात्री देव हमारे निकट आवें (ते, जानतः, नः, जानन्तु) वह हमारे बुलापहुए देवता, उपकार को जाननेवाले, हम को, अकृतघ्नी जानें ॥ ४२ ॥

उपहृता इह गाव उपहृता अजावयः । अथो अन्नस्य
कीलाल उपहृतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपथे
शिवम् शग्मम् शंयोः शंयोः ॥ ४३ ॥

इस कण्डिकामें दो मंत्र हैं, उपहृता इत्यादि पहिले मंत्रका शंयु बार्हस्पत्य ऋ०, भुरिगजगती छन्द, वास्तुपतिदेवता । क्षेमायेत्यादि का शंयु बार्हस्पत्य ऋ०, यजुश्छन्द और वास्तुपति देवता है । मन्त्रार्थ—(इह, नः, गृहेषु, गावः, उपहृताः, अजावयः, उपहृताः, अथ, अन्नस्य, कीलालः, उपहृतः) इन, हमारे, घरों में, गौएं, हमारी आइया से सुखपूर्वकरहो, बकरी भेड़आदि सुखपूर्वकरहो, और, अन्नसम्बन्धिरस, बढ़ता रहै । यह हमारी आप से मर्धना है । २ (क्षेमाय, शान्त्यै, वः, प्रपथे) हे गृहों ! के अधिष्ठात्री देवों ! धन की कुशल केलिए, सकल अरिष्टों की शान्ति के लिए, आप को, शरणागत होता हूँ । (शंयोः, शिवम्, शंयोः, शग्मम्) सब सुखसाधन चाहने वाले मुझ यजमान का, कल्याण हो, पार लौकिक सुख चाहनेवाले मुझ यजमान का, कल्याण हो ॥ ४३ ॥

अथ चातुर्मास्यमन्त्राः

प्रजासिनो हवामहे मरुतश्च विशादसः । करम्भेण
सजोषसः ॥ ४४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का प्रजापति ऋ०, गायत्री छन्द और मरुन् देवता है । चातुर्मास्य यज्ञ के चार पर्व हैं, वैश्वदेव, वरुण

प्रधांस, सांकमेध, शुनासीरीय । वैश्वदेव और शुनासीरीय का इस में उपदेश नहीं है, शेष दोनों का विधान करते हैं । वरुणप्रधांस नाम दूसरे पर्व में दक्षिण उत्तर दोनों वेदियों में हवि स्थापन कर आवाहन करे । मन्त्रार्थ—(रिशादसः, करम्भेण, सजोपसः, च, प्रधांसिनः, मरुतः, हवामहे) शत्रु की कीहुई हिंसा को दूर करने वाले, दधि मिले सक्तु के साथ सब समान भीति करने वाले तथा, प्रधासनामक हवि को भक्षण करनेवाले, हे मरुतगणों ! हम तुम्हारा आवाहन करते हैं ॥ ४४ ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा
व्यमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का प्रजापति ऋषि, स्वराट् अनुष्टुप् छन्द और मरुत् देवता है । यजमान पत्नी को साथ लेकर करम्भ भरे कई पात्रों को शूर्प में मस्तकपर रखकर वेदी के पूर्व पश्चिम में खड़ा होकर दक्षिणाग्नि में हवन करता हुआ इस मन्त्र को पढ़े । मन्त्रार्थ—(यत्, एनः, ग्रामे, यत्, अरण्ये, यत्, सभायाम्, इन्द्रिये, अचकृम, तत्, इदम्, अवयजामहे, स्वाहा) जो, पाप, ग्राम में बसतेहुए, जो पाप, वन में, जो पाप, सभा में और इन्द्रियों के विषय में, किया है, उस, इस पाप को, आहुति देकर नष्ट करता हूँ, यह हवि पापनाशक देवता को सुन्दर रूप से मांस हो ॥ ४५ ॥

मो पू ण इन्द्रात्र पतसु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मि-
अवयाः । महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो म-
रुतो वन्दते गीः ॥ ४६ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का अगस्त्य ऋषि, भुरिक् पंक्ति छन्द और इन्द्रमरुत् देवता है । इसका जप करे । मन्त्रार्थ—(शुष्मिन्, इन्द्र, अत्र, पतसु, देवैः, नः, मा, सु, ते, अवयाः, हिस्म, मीढुषः, हविष्मतः, यव्याः महश्चित्, गीः, मरुतः, वन्दते) हे बलवान् !, इन्द्रदेव, इन, संग्रामों में, मरुत् देवताओं के साथ, हमको, विनष्ट न करो, भले प्रकार रक्षा करो, तुम्हारा, यज्ञीयभाग, स्थित है,

वर्षा के द्वारा जगत् को सींचनेवाले, हवि पानेवाले आपकी, यबकी पिथी के कर्म पात्रों से निष्पन्न हुई होमक्रिया से, निश्चित पूजा करते हैं, हमारी स्तुति, आपके सखा मरुतदेवताओं को, भणाम करती है ॥ ४६ ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः

कर्म कृत्वास्तं प्रेतं सचाभुवः ॥ ४७ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का अगस्त्य ऋषि, विराट् अनुष्टुप् छन्द और अग्निदेवता है । प्रतिमस्यात्ता यजमान को, कर्मपात्र के होम-स्थान से अपने स्थान को लेजाता हुआ इस मन्त्र को पढ़े । मन्त्रार्थ—(कर्मकृतः, मयोभुवा, वाचा, सह, कर्म, अक्रन्, सचाभुवः, देवेभ्यः कर्मकृत्वा, अस्तम्, प्रेत) वरुणमघास कर्म को करनेवाले ऋत्विज्, मुख्यरूप, स्तुति के साथ, वरुणमघास को, कर चुके, इस कर्मस्थित हे ऋत्विजों देवताओं के लिए, वरुणमघास कर्म, करके, घर को, जाओ ॥ ४७ ॥

अवमृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अब दे-
वैर्देवकृतमेनोऽयासिपमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम् । पुरुराष्णो
देव रिपस्पाहि ॥ ४८ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का और्णवाम ऋषि, ग्राष्ठी अनुष्टुप् छन्द और यज्ञ देवता है । वरुणमघासकर्म के अन्त में, स्त्री पुरुष को जल में अवमृथस्नान करावै, उस समय पढ़ने का यह मन्त्र है । मन्त्रार्थ—(निचुम्पुण, अवमृथ, निचेरुः, असि) हे मन्दगति जलाशय, अवमृथ नामक यज्ञ, तुम अत्यन्तगमन करनेवाले, हो (निचुम्पुण) यहां पर मन्दगति हजिये (देवैः, देवकृतम्, एनः, अवयासिपम्) ज्ञानेन्द्रियों से, जो कुछ हविके स्वामी देवताओं का, ज्ञानपूर्वक पापक्रिया, वह सब मैंने इस जलाशय में त्याग दिया (मर्त्यैः, मर्त्यकृतम्, अव) हमारे सहायक ऋत्विजों करके, यज्ञ देखने की आए हुए मनुष्यों का, अवज्ञा रूप पाप किया है, उसको इसजल में त्याग दिया, (देव, पुरुराष्णः, रिपः)

पाहि) हे अन्नभूय यज्ञ के अधिष्ठात्री देव, विरुद्धफल देनेवाले
वध वा हिंसा से, हमारी रक्षा करो ॥ ४८ ॥

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणा-
वह्ना इपमूर्जे शतक्रतो ॥ ४९ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का और्णवाभ ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और
इन्द्र देवता है । इस मन्त्र को पढ़कर दर्विके द्वारा स्थाली से अग्नि
ग्रहण करे । मन्त्रार्थ—(दर्वि, पूर्णा, परा, पत) हे अन्न देने के सा-
धन काष्ठपात्र, तुम स्थाली के निकट से अन्न को ग्रहण करने से
पूर्ण होकर, उत्तमता को प्राप्त होतेहुए, इन्द्र के मति गमन करो ।
(सुपूर्णा, पुनः, आपत) कर्मफल से सम्यक् पूर्ण होकर, फिर,
हमारे निकट आओ (शतक्रतो, वस्नेन, इपम्, ऊर्मम्, विक्रीणावह्ना)
हे बहुकर्मा इन्द्र, मूल्य द्वारा, अभीष्ट हविरूप अन्न को, परस्पर बेचें ।
अर्थात् मैं तुम्हें हवि देता हूँ और तुम मुझको बल तथा पुण्य दो ४९
देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारमृ
हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

इस कण्डिका के मंत्र का और्णवाभ ऋषि, भुरिक् अनुष्टुप्
छन्द और इन्द्र देवता है । इस को पढ़कर आहुति देय । मन्त्रार्थ
मन में यह कल्पना करे कि—इन्द्र कह रहे हैं (मे, देहि, ते, ददामि)
हे यजमान ! तुम मुझ इन्द्र के अर्थ, प्रथम हविदो, तुम यजमान
के अर्थ, पीछे अपेक्षित हवि दूँगा (मे, निधेहि, ते, निदधे)
मुझ इन्द्र के निमित्त, पहिले हवि सम्पादन कर, तुम यजमान के
अर्थ, फिर मैं इच्छितफल देता हूँ । यजमान कहता है—(निहारम्
मे, हरासि, निहारम्, ते, निहराणि, स्वाहा) हे इन्द्र मूल्य से
खरीदने योग्य पदार्थ, मुझे दीजिये, मूल्यरूप हवि को, मैं तुझारे
अर्थ, समर्पण करता हूँ, यह आहुति भलीप्रकार फलीभूत हो ॥ ५० ॥

अक्षन्नमीमदन्तु ह्यव प्रिया अघूपत । अस्तापत स्व-
भानवो विम्रा न विष्टया मती योजान्विन्द्र ते हरि ॥ ५१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का गौतम ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द

और इन्द्र देवता है । इस को पढ़कर पितृयजन करे । मंत्रार्थ—इस पितृयज्ञ कर्म में जो पितर हैं वह हमारे दिए हविस्वरूप अन्न को (असन्, हि, अमीमदन्त, भियाः, अधूषत, भियाः, अवाधूषत) खानुके, क्योंकि, प्रसन्नहुए, और हमारी भक्ति को जानकर प्रीतियुक्त हो, अपना शिर हिलातेहुए, अपने शरीरों को, कम्पित करतेहुए । और (स्वभानवः, विप्राः, मविष्टया, मती, अस्तोषत) स्वयं दीप्तियुक्त, वह बुद्धिमान्, नवीनबुद्धि से, युक्त होकर, स्तुति करतेहुए, अर्थात् हमारी आहुति को स्वीकार करके कृतज्ञता प्रकाशित की, इस कारण (इन्द्र, नु, से, हरी, आयोज) हे इन्द्र ! तुमभी सन्तुष्ट होकर इन पितरों के साथ मिलने के लक्ष्य से, शीघ्रही, तुम अपने, हरितवर्ण के दोनों घोड़ों को, जाने के निमित्त रथ में जोतो अर्थात् पितरों की वृत्ति से सन्तुष्ट होकर आप को आना चाहिये ॥ ५१ ॥

सुसन्दिशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्ण-
बन्धुरः स्तुतो यासि वशान् ॥ अनुयोजान्विन्द्र ते
हरीं ॥ ५२ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का गौतम ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द और इन्द्र देवता है, इस से आहवनीय का उपस्थान होता है । मन्त्रार्थ—(मघवन्, वयम्, सुसन्दिशम्, त्वा, वन्दिषीमहि) हे इन्द्रदेव ! हम, सबको अनुग्रह युक्त समदृष्टि से देखनेवाले, आपकी, स्तुति करते हैं (स्तुतः, वशान्, अनु, नूनम्, यासि, पूर्णबन्धुरः, इन्द्र, से, हरी, आयोज) स्तुति कियेहुए तुम, अभिलाषावाले यजमानों को, देखकर, अवश्य, आओगे, कारण कि तुम हमारी कामना पूरी करने को रथपर स्थित हो, अतः हे इन्द्र ! तुम, अपने, घोड़ों को, जोतो ॥ ५२ ॥

मनो न्वाहामहे नाराशं सेन स्तोमेन । प्रियणाञ्च
मन्मभिः ॥ ५३ ॥

इस कण्विका के मंत्रका बन्धुर्वा०, अतिपाद निबृहद् गायत्री

छन्द और मन देवता है । इससे गार्हपत्य का उपस्थान करै । मन्त्रार्थ—(नाराशंसेन, म्तोमेन, च, पितृणाम्, मन्मभिः नु, मनः, आब्हामहे) हम मनुष्यों के योग्य स्तुति वाले, स्तोत्र, और, पितरों के, इच्छित स्तोत्रों से, शीघ्र, मन के अधिष्ठात्री देवता को, आब्हान करते हैं । अर्थात् पितृयज्ञ को करते समय हमारा मन, पितृलोक को गयासा होगया था, उसको बुलाते हैं ॥ ५३ ॥

आ न एतु मनः पुनः ऋत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्य्यं दृशे ॥ ५४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, विराट् गायत्री छन्द और मन देवता है । इस से भी गार्हपत्य का उपस्थान करै । मन्त्रार्थ—(नः, मनः, ऋत्वे, दक्षाय, ज्योक्, जीवसे, सूर्य्यन्दृशे, च, आप्तु) हमारा, मन, यज्ञसङ्कल्प के लिए, कर्मानुष्ठान के उत्साह के लिए, चिरकालतक, जीवन के लिए, चिरकालतक सूर्य के दर्शन के लिए भी, प्राप्तहो ॥ ५४ ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥ ५५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, निच्यूट् गायत्री छन्द और मन देवता है । इससे भी उपस्थान करै । मन्त्रार्थ—(पितरः, दैव्यः, जनः, नः, मनः, पुनः, ददातु) हे पितरों ! आपकी आज्ञा से, देवसम्बन्धी, पुरुष, हमारे लिए, हमारे पूर्वोक्त मनको, फिर इस कार्य के लिये देय । इसप्रकार अनुष्ठान करके हम आपके अनुग्रह से (जीवम्, व्रातम्, सचेमहि) जीवन वाले, पुत्र पशु आदिकों को, हम सेवन करै ॥ ५५ ॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनुषु विभ्रतः । पूजावन्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, गायत्री छन्द और सोम देवता है । इससे दक्षिणाग्नि का उपस्थान कर जप करै । मन्त्रार्थ—(सोम, वयम्, तव, व्रते, तनुषु, मनः, विभ्रतः, पूजावन्तः, सचे-

महि) हे पितृयज्ञ के सोमदेव ! हम यजमान, तुम्हारे, व्रतानुष्ठान में वर्त्तमान हुए, आपके शरीरों में, चित्तको, धारण करते हुए, आपके अनुग्रह से, पुत्र, पौत्रादि को प्राप्त हुए, हम, सेवन करते हैं ॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वसाम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा ।

एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं । एषत इत्यादि पहिले मंत्र का बन्धुर्ऋषि, माजापंत्या गायत्री छन्द और रुद्र देवता है । दूसरे एषत इत्यादि मंत्र का याजुषीगायत्री छन्द और रुद्र देवता है । शाकमेध के अङ्ग, पितृयज्ञ के शेषांश त्र्यम्बकयाग [चन्द्रयाग] का आरम्भ होता है, उस में इस कण्डिका के पहिले मंत्र से अवदान हवन करै । मन्त्रार्थ—(रुद्र, ते, स्वसा, अम्बिकया, एषः, भागः, तं, जुषस्व) हे पाषियों और देहाभिमानियों को रुतानेवाले रुद्र, अपनी, भगिनी, अम्बिका के साथ, यह हमारादिया हुआ, पुरोडाशरूपमात्र है, उसको, सेवन करिये । यजमान के जितने पुत्र पौत्रादि पुरुषों, उनमें से हर एक का एक २ पुरोडाश, फिर उन में से और एक अधिक पुरोडाश निर्वपण करै, उस अतिरिक्त पुरोडाश का होम न करै, किन्तु चूहे के खोदे बिल के समीप खोदी हुई मट्टीपर इस दूसरे मंत्र को पढ़कर बखेरदेय । मन्त्रार्थ—(रुद्र, एषः, ते, भागः, ते, आखुः, पशुः) हे रुद्र, यह हमारा बखेराहुआ, तुम्हारा, पुरोडाश, सेवनीय है, आपका, सुहा, रक्षणार्थ पशु है ॥ ५७ ॥

अर्व रुद्रमदीमहाव देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यस्-

स्करयथा नुः श्रेयसस्करयथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का बन्धुर्ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है । चूहे की मट्टी के पास से आकर इस का जप करै । मन्त्रार्थ—(रुद्रम्, त्र्यम्बकम्, देवम्, अव, अदीमहि) शत्रुओं को रुतानेवाले, तीनों लोकों के रक्षक, सृष्टि आदि से क्रीड़ा करने वाले वा शत्रुजयशील वा सब प्राणियों में आत्मस्वरूप से चेषा

करनेवाले, श्रुतिमान्, स्तोत्रों से स्तुत वा सर्वगत परमेश्वर को, गुरु तथा शास्त्र के द्वारा जानकर, सब दुःखों का नाश करते हैं (यथा, नः, वस्यस्करत्, यथा, नः, श्रेयस्करत्, यथा, नः, व्यवसा-ययात्) जिस प्रकार हमको वह, उत्तम प्रकार से निवास करने वाले करें, जिसप्रकार, हमको, ज्ञातियों में श्रेष्ठ करें, जिस प्रकार हमको, सब कार्यों में निश्चययुक्त करें । इस प्रकार इनका जप करते हैं ॥ ५८ ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वन्धुऋषि, स्वराइ गायत्री छन्द और रुद्र देवता है । जप करें । मन्त्रार्थ—(भेषजम्, असि) हे रुद्र आप औषध की समान सब उपद्रवों को दूर करनेवाले, हो (गवे, अश्वाय, पुरुषाय, भेषजम्, मेषाय, मेष्यै, सुखम्) गौ, घोड़े, और पुत्र पौत्रादि परिवार के लिये, रोगदूर करने को औषधि दो, मेष, मेषी आदि पशुओं के निरुपद्रव जीवन के लिये, अपने सुखदायक स्वरूप का प्रकाश करिये ॥ ५९ ॥

व्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । व्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामृताः ॥ ६० ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, व्यम्बकम् इत्यादि पहिले का वशिष्ठ ऋषि, वाइ ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द और रुद्र देवता है दूसरे व्यम्बकमित्यादि का ऋषि आदि पूर्वोक्त है । जैसे पितृमेध में पुत्रादि अपनी वाम ऊरु को ताड़न करके उलटी प्रदक्षिणा करते हैं तथा देवता की सेवा में दाहिनी जंघा ताड़न करके, तीन प्रदक्षिणा करते हैं, तिसी प्रकार इसमें भी पुरुष पहिले मंत्र जपकर अग्नि की तीन प्रदक्षिणा करते हैं । मन्त्रार्थ—(सुगन्धम्, पुष्टि वर्धनम्, व्यम्बकम्, यजामहे) दिव्यगन्धयुक्त मर्त्यधर्महीन उभय

लोक का फल देनेवाले, धन धान्यादिकी पुष्टि बढ़ानेवाले, पूर्वोक्त तीन नेत्रोंवाले शिवको, हम पूजते हैं । वह हमको (मृत्योः, मुक्षीय, बन्धनात्, उर्वारुकमिव, अमृतात्, मामुक्षीय) संसार के मरण से छुड़ावे, बन्धन से, कर्कटी फल को जैसे, अर्थात् जैसे पकाहुआ फल अपनी घुंटी से छूटकर भूमि पर गिरजाता है, तैसेही, शिवकी कृपा से मैं जन्ममरण रहित होजाऊँ, और अमरतारूप मुक्ति से, भ्रष्ट न होऊँ । दूसरे मंत्र को पढ़कर यजमान की कन्या तीन परि-
क्रमा करे । मन्त्रार्थ—(इतिवेदनम्, सुगन्धिम्, ज्यम्बकम्, यजामहे, उर्वारुकम्, इव. इतः, बन्धनात्, मुक्षीय, अमृतः, मा) सुन्दर पति के प्राप्त करानेवाले, दिव्य यशवाले—धर्माधर्म के ज्ञाता, ज्यम्बक शिवको, हम पूजती हैं, कर्कटीफल की, समान, इस माता पितादि कुटुम्ब रूप बन्धन से, छूटकर, विवाह उपरान्त पति के समीप से, भक्त छुटाओ । अर्थात् पिता के गोत्र और घर से अलग होकर पति के घर और गोत्र में शिवजी के अनुग्रह से सदा नि-
वास करूँ ॥ ६० ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन पुरो भूजंवतोऽर्तीहि । अब तत-
धन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंससः शिबो-
ऽर्तीहि ॥ ६१ ॥

इस कण्डिका के एतत् पहिले मंत्र का वशिष्ठ ऋषि, भुरिगा-
स्तार पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है दूसरे कृत्तिवासा इत्यादि का वशिष्ठऋषि, भुरिगास्तार पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है । ज्य-
म्बक याग के हवन से बचे हुए चावल जौ आदि पुरोडाश को वृण वांस आदि के बने हुए दोपात्रों में रखकर एक वांस की लकड़ी के दोनों सिधों में उस को बांध कंधेपर रखकर उत्तर को मुख किए कुछ दूरजाकर जिसको गौ मुख उठाकर संधन सके ऐसे वृक्ष आदि ऊँचे स्थान पर इस मंत्रको पढ़कर स्थापन करे, इस से गौओं को रोग न होगा । मन्त्रार्थ—(रुद्र, एतत्, ते, अवसम्) हे रुद्रदेव ! यह आपका, हविःशेष नामक भोजन है (तेन, अ-

वततधन्वा, पिनाकावसः, मूजवतः, परः, अतीहि) तिस के साथ तुम, हमारे विरोधियों के न रहने से मृत्यञ्चा उतारे हुए अपने पिनाक धनुष को वज्र से ढाँपे, मूजवान नाम पर्वत के, पार होकर, गमन करो । जिससे कि माणी भयभीत न हों । दोनों पात्रों को वृक्ष आदि ऊँचे स्थान में स्थापित करके यजमान वेदी के पास आ दूसरे मंत्र से जल स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—(कुत्तिवासाः, नः, अहिंसन्, शिवः, अतीहि) हे रुद्र तुम चर्माम्बर धारण किए हो वा सबप्राणियों के, अन्तर्यामी होने से चर्माम्बरधारी हो, हमारी हिंसा न करतेहुए, हमारी पूजा से प्रसन्न हो कल्याणस्वरूप होतेहुए, अपने स्थान में निवास करो ॥ ६१ ॥

ज्यायुपं जमदग्नेः कश्यपस्य ज्यायुपम् । यद्वेदेवेषु ज्यायुषं तन्नो अस्तु ज्यायुपम् ॥ ६२ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का नारायण ऋषि, उष्णिक् छन्द और रुद्र देवता है । यजमान शिर का मुण्डन करावे उससमय पहिले इस मंत्रको पढ़े । मन्त्रार्थ—(जमदग्नेः, ज्यायुपम्, कश्यपस्य, ज्यायुपम्, यत्, देवेषु, ज्यायुपम्, तत्, ज्यायुपम्, नः, अस्तु) जमदग्नि ऋषि की, जो बालकपन आदि तीन अवस्था हैं, कश्यप प्रजापति की, जो तीनों अवस्था हैं, जैसी, देवताओं में, तीन अवस्था हैं, वह सब, ज्यायुष, हम यजमानों को, प्राप्त हों अर्थात् रुद्र के अनुग्रह से हमारे चित्र इनके से होजायें ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वर्धितस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः । निर्वर्त्तयेत्प्रायुषेऽन्नायाय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुधीर्याय ॥ ६३ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, पहिले शिव इत्यादि का नारायण ऋषि, मुरिग जगती छन्द और क्षुर देवता है, निर्वर्त्तयेत्यादि दूसरे मंत्रका नारायण ऋ०, मुरिगजगती छन्द और लिङ्गोक्त देवता है । पहिले को पढ़कर क्षुर उठावे । मन्त्रार्थ—(सर्वव्यापक होने से क्षुर में भी विद्यमान देव ! तुम (नाम, शिवः, अस्ति)

नाम से, शान्तस्वभाव वा कल्याणकारक, हो (स्वधितिः, ते, पिता) वज्र, तेरा, रक्षक है (ते, नमः) तुझको, नमस्कार है (माम्, मा, हिंसीः) मुझको, मत, हिंसितकरो । दूसरे मंत्रको पढ़कर मुण्डन करे । मन्त्रार्थ—हे यजमान ! इस कर्म के फल से (आयुषे, अन्नाद्याय, मज्जननाय, रायस्पोषाय, सुमजास्त्वाय, सुधीर्याय, निर्वर्त्तयामि) जीवन के लिये, अन्नादि भक्षण के लिए अधिक सन्तान के लिए, धनपुष्टि के लिए, सन्तान उत्पन्न करने की उत्तम शक्ति के लिए, और श्रेष्ठ बलकी प्राप्ति के लिये, मुण्डन करता हूँ ॥ ६३ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदसंहितायां माध्यन्दिनीपञ्चाध्यायेन मारद्वाजगोशो-

नृत्तमि अर्थाय समाप्तः ॥

नृत्तमि अर्थाय समाप्तः

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

एदमंगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवांसो अजुषन्तु विश्वं । ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमा आपः शम्भु मे सन्तु देवीः । ओषधे आयस्व । स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ १ ॥

इस कांडिका में ४ मन्त्र हैं । १ एदमित्यादि का मन्त्र ० ऋ० विराह ब्राह्मी जगती छन्द देवयजन देवता है । २ आप इत्यादि का म० ऋ०, पूर्वोक्त छ०, आप देवता है । ३ ओषध इ० का म० ऋ० वि० प्रा० पंक्ति छ० ओषधि देवता है । ४—स्वधित इत्यादि का ऋषि छन्द पूर्वोक्त और शुरु देवता है । तीसरे अध्याय में आधान, अग्निहोत्र, उपस्थान और चातुर्मास्य के मन्त्र कहे अब ४ अध्याय में ३२ काण्डिका तक अग्निष्टोम के मंत्र कहे जावेंगे, आदि में यजमान १६ ऋत्विजों का वरण करके अरणी में अग्नि का समारोहण कर पहिले मंत्र को पढ़ता हुआ यज्ञशाला में प्रवेश करे । मन्त्रार्थ-

(इदम् पृथिव्याः, देवयजनम्, आ अगन्म) हम इस, पृथ्वीसम्बन्धी, देवयजनस्थान में, आये हैं (यत्र, विश्वेदेवाः, अजुपन्त) जहाँ, सबदेवता, प्रीति से स्थितहुए (ऋक्सामाभ्याम्, यजुभिः, सन्तरन्तः, रायः, पोषेण, इषा सम्मदेम) हम ऋग्वेद सामवेद, और यजुर्वेद के मन्त्रों से, समुद्रसमान गम्भीर सोमयाग को करते हुए, धनकी, पुष्टि, और इच्छित अन्न से, हृष्ट और वृत्त हों। दूसरे मन्त्र से यजमान के बाल भिगोवै। मन्त्रार्थ (देवीः, आपः, मे, शम्, उ, सन्तु) प्रकाशयुक्त निर्मल, शिरपर लगाएहुए जल, मुझ यजमान के निमित्त, सुखदायक—ही, हों। तीसरे मन्त्र को पढ़तेहुए सूक्ष्म कुशाग्र को छुरे से काटकर जलपात्र में डालें। मन्त्रार्थ—(ओषधे, मायस्व) हे कुशतरुण ओषधि के देवता, यजमान की छुरे से रक्षा करो। अध्वर्यु चौथे मन्त्र के पढ़ेजाने पर नारि को छुरा देय वह यजमान का सौर करे। मन्त्रार्थ—(स्वधिते, एनम्, मा, हिंसीः) हे धुर के अधिष्ठात्री देव, इस यजमान को, मत पीड़ा दो ॥ १ ॥

आपौ अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्वं हि रिप्स्वहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि । दीक्षातपसोस्तनूरंस्ति तान्त्वां शिवा-
ॐ अगमात्परिदधे भद्रं वर्णमुप्यन् ॥ २ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, आप इत्यादि और दीक्षेत्यादि दोनों का प्रजा० ऋ० और स्वराह ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द है, पहिले का आप और दुसरे का वास देवता है। १ मन्त्र ने तडाग आदि में स्नान करके निकलें। मन्त्रार्थ—(मातरः, आपः, अस्मान्, शुन्धयन्तु) माता की समान पालनकर्त्ता, हे जलों, हम को शुद्ध करो। (घृतप्वः नः, घृतेन पुनन्तु) पढ़तेहुए जलों से पवित्र करनेवाले हे जलदेवता ! क्षरितजल से, हम को, शुद्ध करो (हि, देवीः, आपः विश्वम्, रिप्स्व, मवहन्ति) विश्व, दीप्तिमान्, निर्मल, जल, सम्पूर्ण, पाप को, धोदेते हैं। (आभ्यः, शुचिः, आपूतः, उद-
इत्, एमि) इन जलों से, स्नान करने पर शुद्ध, बाहर भीतर प-

वित्र हुआ मैं, इस जल से ऊपर, आता हूँ । दूसरे मन्त्र से स्नान के अनन्तर रेशमी वा कोरी धोती पहिरै फेंक न बांधै । मन्त्रार्थ—(दीक्षातपसोः, तनूः, असि) हे सौमवस्त्रतुमदीक्षाभिमानि और तपोऽभिमानि देवता के, शरीरसमान भिय, हो (ताम्, शिवाम्, शम्भाम् त्वा, वर्णम्, पुण्यम्, परिदधे) उस दीक्षा तप के शरीर रूप, कल्याण रूप, सुखस्पर्श, तुमको, तुम्हारे धारने से कल्याणरूप कान्ति को, पुष्ट करता हुआ, मैं धारण करता हूँ ॥ २ ॥

महीनाम्पयोऽसि वचर्चोदा असि वचर्चो मे देहि । वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥ ३ ॥
 इस कण्डिका में महीनामित्यादि और वृत्रस्थेत्यादि दो मंत्र हैं, दोनों का प्रजा० अ०, भुरिकृत्रिपुण्ड्र और पहिले का नवनीत देवता तथा दूसरे का अञ्जन देवता है । पहिले मन्त्र से यजमान 'शाला' के पूर्व में कुशाओं पर पूर्वमुख बैठ कर गौ के मखन का मस्तक से चरणतक उबटन करै । मन्त्रार्थ—(महीनाम्, पयः, असि) हे नवनीत तुम गौओं के दूधरूप, हो । (वचोदाः, असि, मे, वचो, देहि) तेजसम्पादन करने में समर्थ हो, मुझको तेज, दो । दूसरे मंत्र से 'निककुन् पर्वत' के, उसके न मिलने पर दूसरे अञ्जन को यजमान दाईं ओर में दो बार और बाईं में तीनवार अँजै । मन्त्रार्थ—(वृत्रस्य, कनीनकः, असि) हे अञ्जन तुम वृत्रासुर की, काली पुतलीरूप, हो, (चक्षुर्दाः, असि, मे, चक्षुः, देहि) चक्षु इन्द्रिय को शक्ति देने वाले, हो, मुझको, दृष्टि, दो ॥ ३ ॥

चित्पतिर्म्मा पुनातु वाक्पतिर्म्मा पुनातु देवो मां स-
 खिता पुनात्वाच्छिन्नेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
 तस्य ते पवित्रपते पवित्रं पूतस्य यत्कामः पुने सच्छ-
 केयम् ॥ ४ ॥

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं तिनोका प्रजापति अ० निच्युद्ब्राह्मी पंक्ति छन्द और प्रजापति सविता देवता है । इन ३ मन्त्रों को सात सात बार पढ़कर कुश से शिर पर मार्जन करै । मन्त्रार्थ—(चित्पतिः,

अच्छिद्रेण, पवित्रेण, सूर्यस्य, रश्मिभिः, मा, पुनातु ।) ज्ञानाधीश
ब्रह्मा, वायुरूप, पवित्रेसे, सूर्यकी किरणों से, मुझको, पवित्र करें ।
(वाक्पतिः, मा, पुनातु) वाणी का अधिष्ठात्री देवता, मुझको
पवित्र करे । (सविता, देवः, मा, पुनातु) सर्वान्तर्यामी, देव,
मुझको, पवित्र करें । (पवित्रपते, तस्य पवित्रपूतस्य, ते, यत्, कामः,
पुने, तत्, शक्यम्) हे पवित्रात्मा के रक्षक, उस, पवित्रपूत, आपके,
पवित्रे से मैं पवित्र हुआ हूँ, जिस, कामनासे, मैं पवित्र हुआ हूँ
उसको करने को, मैं समर्थ होऊँ ॥ ४ ॥

आवो देवास ईमहे यामम्र्युत्तृध्वरे । आवो देवास
आशिपो यज्ञियासो हवामहे ॥ ५ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है, उसका प्र० ऋ० निच्युदाप्यनु
मुष्टन्द और आशीर्देवता है । इस मन्त्र को अध्वर्यु यजमान से
कहलायै । मन्त्रार्थ—(देवासः, अध्वरे, प्रयाति, वामम्र्यु, वः, अइम-
हे) देवताओं !, इस यज्ञ के, वर्तमान होनेपर, आपसे माँगनेयोग्य
यज्ञफल को, आपसे, माँगते हैं । (देवासः, यज्ञियासः, आशिपः,
आ, वः, हवामहे) हे देवताओं, यज्ञसम्बन्धी, फलरूप आशीर्वादों
के, प्राप्त करने को, आपको, आवाहन करते हैं ॥ ५ ॥

स्वाहा यज्ञम्मनसः स्वाहोरोऽन्तरिक्षात् स्वाहा यावा
पृथिवीभ्याम् स्वाहा वातादारमे स्वाहा ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, चारों का प्र० ऋ०, निच्युदाप्यनु
मु० छन्द और यज्ञदेवता है । पहिले मन्त्र से दोनों हाथ की कन
अंगुलियों को सकोडकर तथा शेष मन्त्रों से, और अंगुलियों को
सकोडकर मुझी बाँध स्वाहा कहै और मौन होकर फिर खोलै ।
मन्त्रार्थ—(मनसः, यज्ञम्, आरमे स्वाहा) चित्तसे, यज्ञ को, आर-
म्भ करता हूँ, यह सुसिद्ध हो । (उरोः, अन्तरिक्षात्, स्वाहा) वि-
स्तीर्ण, अन्तरिक्ष से, यज्ञलाभ करते हैं । (यावापृथिवीभ्याम्, स्वाहा)
धुलोक और भूलोक से, यज्ञलाभ करते हैं । (वातात्, १९
मवहमानवायु से, यज्ञलाभ करते हैं । (स्वाहा) यह अनुष्ठान मु

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा
 दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वा-
 हा । आपो देवीवृहतीविश्वशम्भुवो धावापृथिवी उरो
 अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में ५ मन्त्र हैं । पहिले चार का म० ऋ०, पंक्ति
 छ०, अग्नि देवता है । ५ वें का म० ऋ०, आर्षी वृहती छ०
 और लिङ्गोक्त देवता है । इन में पहिले ४ मन्त्रों से अन्नग्रहण
 करके ५ वें मन्त्र से तथा अगली कण्डिका के मन्त्रों से स्थाली
 में से खुबे के द्वारा दो उद्ग्रहण (कार्यारम्भसूचक) आहुति
 देय । मन्त्रार्थ (आकूत्यै, प्रयुजे, अग्नये, स्वाहा) यज्ञ करने की
 मनकी प्रबल इच्छा को पूरी करने के लिए, भेरक, अग्नि के अर्थ,
 यह आहुति सुसिद्ध हो (मेधायै, मनसे, अग्नये स्वाहा) धारण शक्ति
 के लिये, मनके भेरक, अग्नि के अर्थ, यह आहुति, सुसिद्ध हो
 (दीक्षायै तपसे, अग्नये, स्वाहा) व्रतनियमादि दीक्षा की सिद्धि
 के लिये, तप के प्रवर्त्तक, अग्निदेव के अर्थ, यह आहुति सुसिद्ध हो
 (सरस्वत्यै, पूष्णे, अग्नये, स्वाहा) मन्त्रोच्चारण की शक्ति के
 लिये, पुष्टि के साधक, अग्निदेव के अर्थ, यह आहुति सुसिद्ध हो
 (देवीः, वृहतीः, विश्वशम्भुवः आपः, धावापृथिवी, उरो, अन्तरिक्ष,
 बृहस्पतये, हविषा, विधेम, स्वाहा) मंकाशवात्, महान्, जगत्
 के सुखदाता, हे जलों, हे पृथिवी ध्रुलोकः हे विस्तीर्ण, अन्तरिक्ष
 तुम्हारे अर्थ और बृहस्पति के अर्थ, हवि, देते हैं, सुहुत हो ॥ ७ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मत्तां वुरीत सख्यम् । विश्वो ग्राय
 ईषुष्याति शुम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में एक मन्त्र है, उसका स्वस्त्याश्रय ऋ०, आ-
 र्पणुप्रुष्कन्द और सविता देवता है । इस मन्त्र से ओद्ग्रहण का
 हवन करे । मन्त्रार्थ—(विश्वः, मत्तः, नेतुः, देवस्य, सवितुः, स-
 ख्यम्, वुरीत,) सकल मनुष्यों के, कर्मानुसार नियामक, दाना-
 दिगुणयुक्त, परत्मा के, भाक्तिभाव को, चाहो । (पुष्यसे, शुम्नम्

वृणीत) कर्म-उपासना-ज्ञान की पुष्टि के लिये, अन्नको, चाहो (विश्वः, राये, इषुध्यति, स्वाहा) सकल मनुष्य, धन के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, उस परमेश्वर के लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारंभे ते मा पातमास्य
यज्ञस्योदृचः । शम्मांसि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु
मा मा हिंसी ॥ ९ ॥

इस काण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनों का आङ्गिरस ऋ०, आर्यी पंक्ति छन्द और कृष्णाजिन देवता है । पहिले मंत्र से यजमान बैठने को बिछाई हुई मृगचर्म के शुक्ल कृष्ण रोमों की संधि को छुए । मन्त्रार्थ— (ऋक्सामयोः, शिल्पे, स्थः) हे मृगचर्म के श्वेतश्याम रेखाओं, तुम ऋक्साम के मंत्रों के अधिष्ठात्री देवताओं के, चातुर्य, हो (ते, वाम्, आरभे) उन, तुमको, स्पर्श करता हूँ (ते, मा, अस्य, यज्ञस्य, आ उदृचः, पातम्) वह तुम, मुझको, इस, यज्ञकी, समाहितक, रक्षा करो । दूसरे मंत्र से मृगचर्म पर दाहिने जानु से चढ़े और पश्चिम भाग में उसी दाहिण जानु से बैठे । मन्त्रार्थ— (शर्म, अंसि, मे, शर्म, यच्छ) शरणदाता, हो, मुझे, शरण, दो । (ते, नमः, अस्तु, मा, माहिंसीः) तुम्हें नमस्कार, हो, मुझको, मत पीडा दो ॥ ९ ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्पूर्णमृदा ऊर्जम्मयि धेहि । सोमस्य नी-
विरसि विष्णोः शम्मांसि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य यो-
निरसि सुस्रस्याः कृपीस्कृषि । उच्छ्रयस्व वनस्पत
ऊर्ध्वो मा प्राह्यहंस आस्य यज्ञस्योदृचः ॥ १० ॥

इस काण्डिका में ६ मन्त्र हैं सब का आङ्गिरस ऋ० १।२।३।४।
कानिच्युदार्पी जगती छन्द ५।६ का साम्नात्रिष्टुप् छन्द १।२।३।४ का
मेखला-नीवी-वस्त्र-कृष्णविषाण देवता । ५ । ६ का कृष्ण
विषाण दण्ड देवता है । पहिले मन्त्र से यजमान बेणी के आकार
तिहरी सन भुंज मिलीमेखला धोती के भीतर बांधे । मन्त्रार्थ-आ-

द्विरसी, ऊर्क, ऊर्णम्मुदाः, आसि, ऊर्जम्, मयि, धेहि) हे मेखला
 तुम अंगिरावंशी ऋषियों से सम्बन्ध रखने वाली, अन्नरसरूप,
 उनकी समान कोमल, हो, अन्नरस को, मुझ में स्थापन करो ।
 दूसरे मन्त्र से मेखलाको कमर में बांधें । मन्त्रार्थ—(सोमस्य
 नीधिः) हे मेखले ! तुम सोम देवता की, नीवी हो । तीसरे मन्त्र
 से शिरपर पगड़ी पहिरें । मन्त्रार्थ—(विष्णोः, शर्म, आसि)
 हे उष्णीष तुम बहुव्यापी यज्ञकी, कल्याणरूप, हो (यजमानस्य,
 शर्म) मुझ यजमान का, कल्याण करो । चौथे मन्त्र से तनि वा
 पांचरेखावाले कालेमृग के सींग को दुपट्टे के किनारे में बांधें इस से
 खुंजावै और दक्षिण भों के ऊपर ललाट में स्पर्श करें । मन्त्रार्थ—
 (इन्द्रस्य, योनिः) हे विषाण तुम जैसे इंद्र के, स्थान हो तैसे मेरे
 होओ । पांचवें मंत्र से वेदी के बाहर विषाण से रेखा करें । मं-
 त्रार्थ—(कृषिः, सुशस्याः, कृधि) हे विषाण तुम खेती को, सु-
 न्दर धान्य वाली, करो । छठे मंत्र से यजमान अपने मुखतक
 ऊंचा गूलड़ का दण्ड लेकर उस को खड़ा करें । मन्त्रार्थ—(व-
 नस्पति, उच्छ्रयस्व, उर्ध्वः, अस्य, यज्ञस्य, उदृचः, मां, अंहसः, पाहि—)
 हे वनस्पति, के, दण्ड, तुम ऊंचे होवो, ऊंचे होकर, इस, यज्ञकी,
 समाप्ति पर्यंत, मुझको, पाप से, रक्षा करो ॥ १० ॥

व्रतङ्कणुत व्रतङ्कणुताभिर्धम्याभिर्धृजो वनस्पतिर्य-
 क्षियः देवीन्धियंमनामहे सुमृडोकामभिष्टये । धर्चोधा
 यज्ञवाहसः सुतीर्थो नो असहशे । ये देवा मनोजाता
 मनोयुजो दक्षकृतवस्ते नो वन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः
 स्वाहा ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनों के आह्निरस ऋषि, पहिले
 का स्वराह्वाही अनुष्टुप्छन्द, यज्ञ देवता, दूसरे का प्राजापत्या
 जगती छन्द यज्ञ देवता और तीसरे का प्राजापत्या त्रि० छ० और
 अग्निमित्रावरुणादित्यविश्वेदेवा देवता हैं । पूर्वमुख दीक्षित यज्ञ
 मान आहवनीय के सामने व्रतं कणुत, इस मंत्र को तीन बार

पठकर 'अग्निर्व्रतम्' कहकर वाग्विसर्जन कर ऋत्विजों को यज्ञकी आज्ञादेय । मन्त्रार्थ—(व्रतम्, कृणुत, व्रतम्, कृणुत, अग्निः, ब्रह्म अग्नि, यज्ञः, वनस्पतिः, याज्ञियः) हे ऋत्विजों, व्रतानुष्ठान, करो, दुग्धको, दोहन आदि से सम्पादन करो, यह यज्ञाग्नि, तीनों वेदरूप है, यह अग्नि, यज्ञसाधनरूप है, खादिरादि वनस्पति, यज्ञ के योग्य होने से यज्ञस्वरूप है । दूसरे मंत्र से यजमान आचमन करे । मन्त्रार्थ—(अधिष्ठये, दैवीम्, सुमृडीकाम्, वचोधाम्, यज्ञ बाहसम्, धियम्, मनामहे) इस अनुष्ठानकी सिद्धि के लिए देव-संवाधिनी, सुन्दर, सुखकारिणी, तेजोधारिणी, यज्ञ का निर्वाह करने वाली, बुद्धि को, परमात्मा से प्रार्थना करते हैं (सुतीर्थः, नः वशे, असत्) सर्वमसंनीय बुद्धि, हमारे, वशमें, हो । तीसरे मंत्र से यजमान मृत्तिका के पात्रमें दूधपिये । मन्त्रार्थ—(ये, मनोजाताः, मनोयुजः, दक्षकृतवः, देवाः, ते, नः, अवन्तु, तेभ्यः, स्वाहा) जो, इच्छारूप मनसे मकड़ हुए, रूपादि को देखते में मनसे युक्त, सत्सङ्गवाले, चक्षुरादि इन्द्रिय रूप पाण, वे सब, हमको, विघ्नदूरकर रक्षाकरो, उन देवताओं के अर्थ, यह शीर-सुफल हो ॥ ११ ॥

श्वान्नाः पीता भवन्त यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सु-
शेवाः । ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्व-
दन्तु देवीमृता क्रतावृधः ॥ १२ ॥

इस कण्डिका में एक मंत्र है, इसका आक्षिप्, जगती छन्द और आप देवता है । इस मंत्र से यजमान अपनी नाभि का स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—(आपः, यूयम्, पीताः, श्वानाः, भवन्त) हे दुग्धरूप जलों, तुम, पिये हुए, शीघ्रही जीर्ण, होजाओ (अस्माकम् अन्तरुदरे, सुशेवाः, ताः, अयक्ष्माः, अनमीवाः, अनागसः, क्रतावृधः, देवीः, अमृताः, अस्मभ्यम्, स्वदन्तु) हम पीनेवालों के, उदर के भीतर, सुखकारी, वह तुम, रोगादिरहित, साधारण रोगों को दूर करनेवाले, भूख प्यास आदि दोषों को दूरकरनेवाले, यज्ञवृद्धि के हेतु, मकाशवान्, मृत्युको हटानेवाले स्वयं मरण धर्मरहित तुम,

हमारे लिए, स्वादयुक्तहोवो ॥ १२ ॥

इयन्ते यज्ञियांतनूरपो मुञ्चामि न मजाम् । अ॥ हो
मुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविंशतं पृथिव्या सम्भव १३
इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं, तीनों के आङ्गिरस ऋषि, १ । ३ का
मजापत्या गा० छ०, २ का याजुपी छन्द । १ का यज्ञदेवता २ का
यजमान देवता और ३ का पृथिवी देवता है । १ मन्त्र से मत्स्य के
समय यजमानकाले हिरण के सींग से मट्टी या, कुद्व वृण ग्रहण करे ।
मन्त्रार्थ—(इयम्, ते, यज्ञिया, तनूः) हे यज्ञपुरुष ! यह पृथिवी,
तुम्हारा, यज्ञ के योग्य, शरीर है । अतः यहां सूत्र की, अपवित्रता
दूर करने को डेले वा वृण ग्रहण करता हूँ । दूसरे मन्त्र से सूत्र-
त्याग किया जाता है । मन्त्रार्थ—(अपः, मुञ्चामि, न, मजाम्, अ-
होमुचः स्वाहाकृताः, पृथिवीम्, आविंशतं) मैं सूत्ररूप जल को,
छोड़ता हूँ, न कि, सन्तानोत्पाति के कारण वीर्य को, हे मूत्ररूपजल
अशुचिरूप तुम, दूधपीतेसमय स्वाहामन्त्र से स्वीकृत तुम, पृथिवी
में प्रवेश करो । वह ग्रहणकी हुई मृत्तिका वा वृण दुर्गन्धि दूरकरने-
को सूत्र की भूमिपर डाले । मन्त्रार्थ—(पृथिव्या, सम्भव) हे लोष्ट
आदि तुम पृथिवी के साथ, एकीभाव को प्राप्त होजाओ ॥ १३ ॥

अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमन्दिषीमहि । रक्षाणो
अप्रयुच्छन् मनुष्ये नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है उस के आङ्गिरस ऋ० अनुप्रु छन्द
और अग्नि देवता है । इस मन्त्र से यजमान आहवनीय अग्नि के
दक्षिण में उत्तरमुख वा पूर्व को शिरकरके अग्नि की अपेक्षा नीची
भूमि में सोवै । मन्त्रार्थ—(अग्ने, त्वं सुजागृहि) हे अग्ने ! आप,
भलेभकार जागिये (वयम्, सुमन्दिषीमहि) हम, मुख से सोवें
(अप्रयुच्छन्, नः, आरक्ष) सावधानी से, हमको, चारों ओर
से रक्षा करो (नः, पुनः, मनुष्ये, कृधि) हम को, फिर, मबोध के
निमित्त, उपयुक्त करो ॥ १४ ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म

आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मम आगन् । वैश्वानरो
अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवधात् ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है, उसके आङ्गिरस ऋषि, भुरिग्राह्यो
वृहती छंद और अग्नि देवता है । फिर जागकर इस मंत्र को पढ़े
मन्त्रार्थ—(मे, मनः, पुनः आगन्) मेरा, मन, सुपुष्टि काल में
विलीन होकर फिर, शरीर में प्राप्त हुआ (आयुः, पुनः) स्वप्न
में नष्टमाय हुई आयु फिर प्राप्त हुई (प्राणाः, पुनः, आगन्) वही प्राण,
फिर, प्राप्त हुए (मे, आत्मा, पुनः) मेरा, जीवात्मा, फिर,
प्राप्त हुआ (चक्षुः, पुनः) चक्षु इन्द्रिय, फिर प्राप्त हुई (मे,
श्रोत्रम्, पुनः, आगन्) मेरी, श्रोत्र इन्द्रिय, फिर, प्राप्त हुई (वैश्वान-
रः, अदब्धः, तनूपाः, अग्निः, अवधात्, दुरितात्, नः, पातु)
सबमनुष्यों का उपकारक, अविनाशी, हमारे शरीर का रक्षक,
ईशानाग्नि, निन्दित, पाप से, हमारी, रक्षा करे ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतुपा असि देव आमर्त्येष्वपा । त्वं यज्ञेष्वी-
त्यः । रास्वेयत्सोमाभूयो भर देवो नः सविता वसो
दाता चस्वदात् ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनों का वत्स ऋ० भुरिगार्पी पंक्ति
छन्द १ का अग्नापोम देवता और २ का सोम देवता है ।
१ मन्त्र से यजमान, किसी कारण क्रुद्ध होना पड़ा हो या यज्ञवि-
रुद्ध भाषण करना पड़ा हो उसका दोष दूर करने को प्रायश्चित्त
करे । मन्त्रार्थ—(अग्ने, देवः त्वम्, आमर्त्येषु, व्रतुपाः, असि)
हे अग्ने, प्रकाशात्मक, तुम, मनुष्यपर्यन्त सब प्राणियों में, यज्ञकर्म
के रक्षक, हो (यज्ञेषु, आईदृशः) यज्ञों में, सब प्रकार से पूजनयोग्य
हो । दूसरे मंत्र से अग्नि में हवन करने को लाए हुए सुवर्ण को
स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—(सोम, इयत्, रास्व, भूयः, आभर,
वसोः, दाता, सविता, देवः नः वसु, अदात्) हे, सोम, इतना,
धन दीजिये, फिरभी, धन दीजिये । क्योंकि धन के दाता सविता,
देवता ने, हमको, धन, दिया था ॥ १६ ॥

एपां ते शुक्रतनूरेतद्वर्चस्तथा सम्भव आजङ्गच्छ ।
जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं—दोनों का वत्स ऋषि और आर्षी त्रिष्टुप्छन्द, पहिले का हिरण्यग्न्य देवता और दूसरे का वाग्देवता है : पहिले मंत्र से अध्वर्यु ध्रुव के आज्य से जुहू को ४ बार भर कर उस घी में दर्भ से बँधे हुए सुवर्ण को छोड़े, मन्त्रार्थ—(शुक्र एपा, ते, तनूः एतत्, वर्चः, तथा, सम्भव, आजम्, गच्छ) हे दीप्यमान अग्ने, यह घृत मुंहारा, शरीर है, यह सुवर्ण, तेज है, इन दोनों से एकीभाव को प्राप्त हजिये, सुवर्ण में की कान्ति को प्राप्त हजिये। दूसरे मंत्र से अग्नि में समिदाधानकरताहुआ होम करे। मन्त्रार्थ—(जूः, असि, मनसा, धृता, विष्णवे, जुष्टा) हे वाणी तुम वेगवान्, हो, वा जीवन देनेवाली हो, मन से, धारण की हुई, यज्ञ पुरुष के लिये, मीतियुक्त हो ॥ १७ ॥

तस्यांस्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्यो यन्त्रमशीयि स्वाहा ।

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वत्स ऋ०, स्वराढार्षी बृहती छ० और वाक्य हिरण्य देवता हैं। इस मंत्र से जुहू में के वृणवद् सुवर्ण को निकाल कर वेदी पर धरे। मन्त्रार्थ—(तस्याः, ते, सत्यसवसः, प्रसवे, तन्याः, यन्त्रम्, अशीय, स्वाहा) उस, वृक्ष, सत्य अनुज्ञा वाली वेदवाणी की, आज्ञा में वर्तमान मैं, शरीर के नियमनकी, वृद्धता को, प्राप्त करूँ, इस घृत की सुन्दर आहुति हो (शुक्रम, असि, चन्द्रम्, असि, अमृतम्, असि, वैश्वदेवम्, असि) हे सुवर्ण तुम दीप्यमान, हो, आल्हाद के देनेवाले, हो, जीवन के उपाय, हो, सब देवताओं के सम्बन्धी, हो। क्योंकि—सब देवता सुवर्णदान से वृष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

चिदसि गुनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञि-
यास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी । सा नः सुप्रोची सुप्र-
तीच्येधि मित्रस्त्वापदि बन्धीताम्पूषाध्वनस्पतिव-
न्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥

इस काण्डिका के मंत्र का वत्स ऋ०, भुरिग्राह्यी पंक्ति छन्द और वाग्देवता है। इस मंत्र से वाग्रूप अध्यारोप कल्पना करके सोम-क्रयणी गौ की स्तुति कीजाती है। मन्त्रार्थ—(चित्, असि, मनासि, धीः, असि) हे सोमक्रयणी गौ ! तुम चिदात्मा, हो, ब्रह्माविष्णुमहेशरूप पूज्य, हो, बुद्धिस्वरूपा, हो, (दक्षिणा, असि, क्षत्रिया, असि, यज्ञिया, असि) दक्षिणारूप, हो, दाता की कष्ट से रक्षा करने वाली, हो, यज्ञसम्बन्धिनी होने से, यज्ञ के योग्य हो (अदितिः, असि, उभयतःशीर्ष्णी) अस्त्ररिडता देवमाता रूप, हो, पृथिवी और स्वर्ग दोनों ओर शिर रखनेवाली अर्थात् दिव्य एवं भौम भोगों की देने वाली हो (सा, नः, सुमाची, सुप्रतीची, एधि) वह तुम, हमारे लिये, पूर्वमुखी, पश्चिममुखी, होवो (मित्रः, पदि, त्वा, बध्नीताम्) सूर्य, दक्षिणपाद में, तुम्हको, बाँधे (पूषा, अध्यक्षाय, इन्द्राय, अध्वनः, पातु) पूषा देवता, यज्ञ के स्वामी, इन्द्रदेवता की प्रसन्नता के अर्थ, मार्ग में, तुम्हारी रक्षा करें ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनुपितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु
सखा सयूथ्यः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमं
कृद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

इस काण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, पूर्वार्द्ध का साम्नी जगती और उत्तरार्द्ध का भुरिगार्घ्युष्णिक् छन्द और वाक् तथा गौ देवता हैं। इस से भी गौ की स्तुति कीजाती है। मन्त्रार्थ—(त्वा, माता, अनुमन्यताम्) हे गौ हे वाक्, सोम लाने में प्रवृत्त तुमको, तुम्हारी पृथिवी माता, आज्ञा देय (पिता, अनु) पिता स्वर्ग, आज्ञादेय (सगर्भ्यः, भ्राता, अनु) सहोदर, भाई ईश, आज्ञा देय (सयूथ्यः, सखा, अनु) एक युद्ध में प्रकट होने वाला, सखा आत्मप्रतिविम्ब, आज्ञा देय (देवि, सा, इन्द्राय, सोमम्, देवम्, अच्छेहि) हे दिव्य-गुणयुक्त सोमक्रयणी, वह तुम, इन्द्रके अर्थ, सोमलता, देवता को, पाने को जाओ (रुद्रः, त्वा, वर्त्तयतु) रुद्रदेवता, तुम को, हमारी

ओर को लौटावें (सोमसखा, स्वस्ति, पुनः, एहि) सोमसहित
तुम, क्षेमपूर्वक, फिर, आओ ॥ २० ॥

वसुस्पदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्प-
तिष्ट्वा सुम्ने रम्णा तु रुद्रो वसुभिराचके ॥ २१ ॥

इस मंत्र का वत्स ऋ० विराडापी वृहती छंद और वाक् गौ देवता
हैं । इस मंत्र से सोमक्रयणी को उत्तर की ओर गमन कराके उस
के पीछे २ जाकर स्तुति करें । मन्त्रार्थ—(वस्वी, असि, अदितिः,
असि, आदित्या, असि, रुद्रा, असि, चन्द्रा, असि) हे वाक् हे गौ
तुम वसुदेवता की शक्तिरूप, हो, देवमातारूप, हो, द्वादश आदित्य
रूप, हो, एकादश रुद्ररूप, हो, चन्द्ररूप, हो, (बृहस्पतिः, त्वा,
सुम्ने, रम्णा तु) बृहस्पति देवता, तुमको, सुख में, रमण करावें,
(रुद्रः, वसुभिः, आचके) रुद्र देवता, आठ वसुओं के साथ, तुम्हें
रक्षा करने की कामना करें ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्षि देवयजने पृथिव्या इडा-
यास्पदमसि घृतवत्स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते वन्धु-
स्त्वे रायो मे रायो मा वयश्च गायस्पोषेण वियौष्म तोतो
रायः ॥ २२ ॥

इस कण्विकामें ७ मंत्र हैं, सबका वत्स ऋ० और ब्राह्मी पंक्ति
छन्द है । देवता पहिलेका आज्य, दूसरेका स्थान, तीसरेका पद,
चौथे और पांचवेंका यजमान, छठेका अध्वर्यु और सातवें का
पत्नी है । पहिले मंत्र से सोमक्रयणी के पीछे छः पग चलकर
जहां ७वाँ पग पढ़कर तुरका चिन्ह हो उसमें सोनेका टुकड़ा डाल-
कर उसपर घीकी आहुति देय । मन्त्रार्थ—(अदित्याः, पृथिव्याः
मूर्धन, देवयजने, त्वा, आजिघर्षि, इडायाः, पदम्, असि, घृत-
वत्, स्वाहा) अखंडित, पृथ्वीके, शिरःस्वरूप हे घृत, देवताओं
के यज्ञयोग्य स्थान में, तुमको, टपकाता हूं, हे स्थान तुम गौके,
चरणचिन्ह, हो, घृतयुक्त, श्रेष्ठ होम होय । दूसरे मंत्रसे अध्वर्यु गो-
चरणचिन्ह में स्फ्यसे ३ रेखा करें । मन्त्रार्थ—(अस्मे, रमस्व)

हे गोपद तुम मुझमें, क्रीड़ा करो । तीसरे मंत्रसे उसमें की मट्टी सोनेको हटाकर हाथसे ले थालीमें डाले । मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, वन्धुः) हम, तुम्हारे, वन्धुरूप हैं । चौथे मंत्रसे गौके उठाएहुए पद के स्थानपर जल डालकर वह पद यजमान को देय । मंत्रार्थ (त्वे, रायः) हे यजमान, तुममें, धन इस पदरूप से स्थित हो । पांचवें मंत्रसे यजमान ग्रहण करे मंत्रार्थ—(मे, रायः) यह मेरे, धन वा पशु हैं । छठे मंत्रसे अध्वर्यु अपने हृदय को छुए । मंत्रार्थ (वयस्, रायः, पोषेष्, मा, वियौष्म) हम, धनकी, पुष्टिसे, न, वियुक्त हों । अध्वर्यु यजमान से पद लेकर पत्नी को देय और सहकारी अध्वर्यु ७वें मंत्रको पढ़े । मंत्रार्थ—(तोतः, रायः) ब्रह्मा विष्णु महेश—परारूपधारी पत्नीसहित यजमान को, धन वा पशु, प्राप्त हों ॥ २२ ॥

समख्ये देव्या प्रिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा । मा म
आयुः प्रमोपीमो अहन्तव वीरं विदेय तव देवि स-
न्दशिं ॥ २३ ॥

इस मंत्रका वत्स ऋ०, आस्तारपंक्ति छन्द और वाग्देवता है । सोमकृयणी को देखनेवाली पत्नी से अध्वर्यु यह मंत्र पाठ करावे । मंत्रार्थ—(देव्या, दक्षिणया, उरुचक्षसा, प्रिया, समख्ये) हे सोमकृयणी गौ प्रकाशवान्, यज्ञकी प्रधानदक्षिण के योग्य, विशाल दर्शनवाली तेरे द्वारा, मैं बुद्धिपूर्वक, यज्ञपुरुष को देखनी हूँ (मे, आयुः, मा, प्रमोपीः) तुम मेरी, आयुको, मत, खण्डित करो (तव, आयुः, अहम्, मा, उ) तेरी, आयु को, मैं, खण्डित न करूँ (देवि, तव, सन्दशि, वीरम्, विदेय) हे पराशक्ति, तेरा, सुन्दर दर्शन होनेपर, वली पुत्र को, प्राप्त करूँ ॥ २३ ॥

एव ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय वृताद्रेप ते त्रै-
ष्टुभो भाग इति मे सोमाय वृताद्रेप ते जागतो भाग
इति मे सोमाय वृताच्छन्दोनामानां साम्राज्यङ्गा-
च्छेति मे सोमाय वृतादास्माकोऽसि शुक्रस्तो अहो
विचितस्त्या विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं, १।२।३ का वत्स ऋ०, ब्राह्मी जगती छन्द, लिङ्गोक्त देवता ४ का वत्स ऋ०, याजुपी पंक्ति छन्द और लिङ्गोक्त देवता हैं। १।२।३ मंत्र को अध्वर्यु सोमकी ओर जानेवाले यजमान से कहलावे। मंत्रार्थ—(सोमाय, मे, इति, वृतात्, ते, एपः, भागः, गायत्रः) हे अध्वर्यु, सोमाधिष्ठात्री देवता के अर्थ मेरा, यह वचन, कहो, कि—तुम्हारा, यह भाग, गायत्रीसम्बन्धी है १। (ते, एपः, भागः, त्रैष्टुभः, इति, मे, सोमाय, वृतात्,) तुम्हारा यह, भाग, त्रिष्टुब्धसम्बन्धी है, ऐसा, मेरा, वचन, सोमदेवता के अर्थ, कहो २। (एपः, ते, भागः, जागतः, इति, मे, सोमाय, वृतात्) यह तुम्हारा, भाग, जगतीछन्दसम्बन्धी है, यह, मेरा वचन, सोमदेवता से, कहो (छन्दोनामानाम्, साम्राज्यम्, गच्छ, इति, मे, सोमाय वृतात्) तुम उष्णिक् आदि सब छंदों के, आधिपत्य को, पाओ, यह मेरा वचन, सोम देवता से, कहो ३। यजमाने पूर्वमुख बैठकर इस ४ मंत्र से सोम स्पर्श करे। मन्त्रार्थ— (आस्माकः असि, शुक्रः, ते, ग्रहः, विचितः, त्वा, विचिन्वन्तु) हे सोम क्रयमार्ग के मातृ हुए तुम हमारे, हो, यह शुक्रनामक सव, तुम्हारे, ग्रहण करने योग्य है, यह सब माहात्मा तुम्हारा सारासार जानने में समर्थ हैं, सारासार विचार कर तुम्हारे सारभाग को, ग्रहण कर ॥ २४ ॥

अभिल्यन्देवः सवितारमोण्योः कविक्रंतुमर्चामि स-
त्यसवः रत्नधामभि प्रियम्मतिङ्कविम् । ऊर्ध्वा
घस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सर्वामनि हिरण्यपाणिरमि-
मीत सुक्रतुः कृपास्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु
प्रजास्त्वमनुप्राणि हि ॥ २५ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनोंका वत्स ऋ०, १ का विराट् ब्राह्मी जगतीछन्द, २ का निच्युदार्पी गायत्रीछन्द, ३ का यजुरबंद और तीनोंका सविता देवता है। १ मंत्रसे सोम बांधने के कर्पड़े को दुहरा तिहरा करके उसमें १० चुकटी सोम डालें। मंत्रार्थ— (तम्, ओण्योः, देवम्, कविक्रनुम्, सत्यसवसम्, रत्नधाम, अभिप्रियम्, मतिम्, कविम्, सवितारम्, अभ्यर्चामि) उस, यावा

पृथिवी के, प्रकाशक, ब्रह्मसङ्कल्पसे प्रकट, सत्य भरणवाले, रत्नों के धारक, समस्त चराचर के मिय, अनूपम कल्पना शक्तिवाले, वेदाविद्या के उपदेशक, सूर्यदेव को, सब ओरसे पूजता हूँ (यस्य, अमितिः, ऊर्ध्वा, भाः, सर्वा मनि, अविद्युतत्) जिस सूर्यकी, अनंत आकाशाभिमुखी, दीप्ति, आकाश अथवा पराप्रकृतिरूप ब्रह्माण्ड को, प्रकाशित करती है (हिरण्यपाणिः, सुक्रतुः, कृपाः, स्वः) उद्योतिःस्वरूप, हाथवाले, सत्यसंकरूप जिसकी, कृपा से, स्वर्ग रचागया है, उसकी पूजा करता हूँ ।

दूसरे मंत्रसे उष्णीश के दोनों सिरे मिलाकर गांठ देय । मन्त्रार्थ—(प्रजाभ्यः, त्वा) हे सोम ! प्रजाके उपकार के अर्थ, तुझ को बांधता हूँ । तीसरे मंत्रसे गांठ के बीचमें अंगुली देकर छिद्र करै, जिससे उष्णीश में बँधे सोमका श्वास न रुके । मन्त्रार्थ—(प्रजाः, त्वा, अनुमान्तु, त्वम्, प्रजाः अनुपाणिहि) हे सोम ! प्रजा, श्वास लेतेहुए तुझको, अनुसरण करके जीवित रहें, तू, श्वास लेनेवाली, प्रजा का, अनुसरण कर ॥ २९ ॥

शुक्रन्त्या शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेणामृतममृतं तेन सग्मे ते गोस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरंसि प्रजापते र्षणीः परमेण पशुनां क्रीयसे सहस्रपोपस्थुपेयम् ॥ २६ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं । सबका वत्स ऋषि, मुरिग् ब्राह्मी पंक्ति छन्द और देवता पहिलेका सोम, दूसरे तीसरेका लिङ्गोक्त, तथा चौथेका अजा है । यजमान को सुवर्णका स्पर्श कराकर पहला मंत्र उच्चारण करवावे । मन्त्रार्थ—(चन्द्रम्, अमृतम्, शुक्रम्, त्वा, शुक्रेण, अमृतेन, चन्द्रेण, क्रीणामि) हे सोम ! तुम आलहाद करने वाले, अमृत की समान स्वादु, दीप्तिमान् हो, तुमको, दीप्तिमान् विनाशरहित, आलहादकारक, सुवर्ण से क्रय करता हूँ । दूसरे मंत्र से सोना सोम बेचने वाले को देकर उसको कर्षित करै । मन्त्रार्थ (गोः, ते, सग्मे) हे सोम बेचनेवाले, सोम के मूल्य में दीहुई गौ, तेरी गौ, फिर लौटकर यजमान के घर में स्थित हो । तीसरे मंत्र

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं, ऋषि तीनों का वत्स। छन्द पहिले का स्वाराह याजुषी त्रिष्टुप्, दूसरे का विराडापी त्रिष्टुप् और तीसरे का स्वाराह ग्राही है। देवता पहिले का कृष्णाजिन दूसरे का सोम और तीसरे का वरुण है। पहिले मन्त्र से शकट के ऊपर भृगु धर्मविद्वावै। मन्त्रार्थ—(अदित्याः, त्वक्, असि) हे कृष्णाजिन भुम पृथिवी के, त्वचारूप, हो। दूसरे मन्त्र से उसपर सोम की गाँठरक्खे। मन्त्रार्थ—(अदित्यै, सदः, आसीद) भूमिसम्बन्धी, स्थानपर, सबमकार स्थित होवो। तीसरा मन्त्र सोम को स्पर्श करता हुआ पढ़ै। मन्त्रार्थ—(वृषभः, घाम्, अन्तरिक्षम्, अस्तभ्नात्) श्रेष्ठवत्स्वरूप वरुण, बुलोक को, अन्तरिक्षको, स्थिर करता हुआ (पृथिव्याः, परिमाणम्, अभिमति) पृथिवी के, विस्तारको, जानता हुआ (सत्राद्, विश्वा, भुवनानि, आसीदत्, विश्वा, इत्, वरुणस्य, प्रतानि) सम्यक् प्रकाशवान् ब्रह्म, सम्पूर्ण, संसार में प्रविष्ट हुआ, सब, ही, वरुणदेव के, कर्म हैं अर्थात् वह सदा जगन्निर्माणादि कर्म करता है ॥ ३० ॥

वनेषु अपन्तरिक्षन्ततान वाजमर्वत्सु पयं उस्त्रियांसु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विध्वग्निन्दिवि सूर्यमदधात्सोम-
मूर्ध्नि ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, विराडापी त्रिष्टुप् छन्द और वरुण देवता है, सोम बांधने के वस्त्र से सोमको सब ओर से बांधकर इस मन्त्रको जपै। मन्त्रार्थ—(वरुणः, वनेषु, अन्तरिक्षम्, विततान) वरुणस्वरूप विष्णु ने, वनके वृक्षोंके अग्रमें, आकाश को, फैलाया है (अर्वत्सु, वाजम्, उस्त्रियांसु, पयः, हृत्सु, क्रतुम्, विधु, अग्निम्, दिवि, सूर्यम्, अद्रौ, सोमम्) पुरुषों में, वीर्य को, गौओं में, दुग्ध को, हृदयों में, संकल्पात्मक मन को, प्रजाओं में, जाठराग्नि को, बुलोक में, सूर्यको, पर्वतों में, बलीरूप सोम को, स्थापित किया है ॥ ३१ ॥

सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्षः कनीनकम् । यत्रैतं शोभि-

रीयसे आजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, निच्यूदार्प्यनु० छ० और कृष्णाजिन देवता है। इस मंत्र को पढ़कर, आसन के लिए जो दो मृगचर्म हैं, उन में से एक को शकट के पूर्वभाग में, जुए के समीप ऊंचे दण्ड में लगावें, यदि आसन का मृगचर्म एकही हो तो उस की ग्रीवा की ओर के भाग को अलग करके शकट के पूर्वभाग में लगावें। मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य, चक्षुः, अग्नेः, अक्षुणः, कनीनकम्, आरोह) हे कृष्णाजिन तुम—सूर्य के, नेत्र, और अग्नि के, नेत्र के तारे पर, आरोहण करो (यत्र, विपश्चिता, आजमानः, एतशेभिः, ईयसे) जहाँ इन दोनों के दर्शन वा प्रकाश में सर्वज्ञ सूर्य और अग्नि से, प्रकाशित होता, अश्वों के द्वारा, गमन करता है। क्यों कि—सूर्य और अग्नि की दृष्टि, पढ़ने से मार्ग, राक्षसों की बाधा से मुक्त होता है ॥ ३२ ॥

उत्सावेतं धूर्पाहौ युज्येयामनश्च अवीरहणो ब्रह्मचोद-
नौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का व० ऋ०, ऊर्ध्ववृहती छ० और अन-
इवाह देवता हैं। इससे बैलों को शकट में जोड़ें। मन्त्रार्थ—(उत्सा, धूर्पाहौ, अनश्च, अवीरहणो, ब्रह्मचोदनौ, एतम्, युज्येयाम्, स्वस्ति, यजमानस्य, गृहान्, गच्छतम्) हे अनइवानों, शकट के धुर को धारण करने में समर्थ, उत्साहवाले, सींगों से बालकों को न मारने वाले, ब्राह्मणों को यज्ञ में भेरेणा करनेवाले तुम दोनों, इस शकट में, जुत जाओ, कुशलपूर्वक, यजमान के, घरों को, जाओ ॥ ३३ ॥

भद्रो भेसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभिधामानि ।

मा त्वा परिपरिणो विदन्मा त्वा परिपन्थिनो विदन्मा
त्वा धृक्का अधायचो विदन् । श्येनो भूत्वा परापत
यजमानस्य गृहान् गच्छतन्नीं संस्कृतम् ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का व० ऋ०, भुरिगार्पी गायत्री और भु०
आ० वृ० छन्द तथा सोम देवता है। सोम लेकर यज्ञशाला में जा

नेवाले यजमान से अध्वर्यु यह मंत्र कहलावै । मन्त्रार्थ—(मे, मद्रः, असि, भुवः पते, विश्वानि, धामानि, अभिमच्यवस्व) हे सोम तुम मुझ यजमान के लिए, कल्याणरूप, हो, हे यजमान अध्वर्यु आदि सबके पाछे, सब, पत्नीशाला हविर्धानादि स्थानों को, देखकर चलो (त्वा, परिपरिणः, मा, विदन्) तुमको, सब ओर फिरनेवाले तस्कर, न, जानै (परिपन्थिनः, त्वा, मा, विदन्) यज्ञद्रोही, तुम को, न, जानै (अघायवः, वृकाः, त्वा, मा, विदन्) दूसरों का अपराध करनेवाले, दुर्जन, तुमको, न, जानै (श्येनः, भूत्वा परापत) श्येन की समान बेगामी, होकर, सन्मुख चलो (यजमानस्य, शुहान्, गच्छ, सत्, नौ संस्कृतम्) यजमान के धरों को, जाओ, यह यज्ञस्थान, हम तुम दोनों के लिए, सब सामग्री से युक्त है ॥१४॥
 नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महोदेवाय तदृतं संपर्यत । दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ १५ ॥

इस क० के मंत्र का व० अ० नि० जगती छ० और सूर्यदे० है । इसको पढ़कर प्रतिप्रस्थाता शाला के पूर्व में कृष्णशरङ्ग पशु को, उसके अभाव में लोहित सारंग को लेकर स्थित होय । मन्त्रार्थ—(मित्रस्य, वरुणस्य, चक्षसे, महोदेवाय, दूरेदृशे, देवजाताय, केतवे, दिवः, पुत्राय, सूर्याय, नमः सत्, अतम्, संपर्यत, शंसत) चराचर के मित्र, दुःखों को दूर करनेवाले सूर्यदेवता के, सन्मुख, महातेजःस्वरूप प्रकाशवान्, सब जगत् को दूर से ही देखनेवाले, देवताओं पर अनुग्रह करने को उत्पन्न हुए, प्रज्ञानघन, शुलोक के, पुत्रवत् प्रिय, सूर्य देवता के अर्थ, नमस्कार है, उस, सत्यव्रतको, भजो, तथा उन की स्तुति करो ॥ १५ ॥

वरुणस्योत्तमर्धनमसि वरुणस्यस्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसर्दनमसि वरुणस्य ऋतसर्दनमसि वरुणस्य ऋतसर्दनमासीद ॥ १६ ॥

इस कण्विका में ५ मंत्र हैं । ऋषि सबका वत्स, छंद विराहब्राह्मी

टहती और देवता वरुण हैं। पहिले को पढ़कर शाला के समीप शकट को पूर्वमुख वा उत्तरमुख खड़ाकर तिपाए से बाँधें। मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, उत्तम्भनम्, असि) हे काष्ठाभिमानी देवता तुम-वरुण देवता की प्रीति के लिए इस शकट में, वस्त्रवद्ध सोम के उन्नमन, हो। दूसरे मंत्र से दोनों बैलों को शम्पा से मुक्त करे। मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, स्कम्भसर्जनी, स्यः) हे शम्पे तुम दोनों—वरुण की, रोकनेवाली, हो। तीसरे मंत्र से अश्वर्यु आदि चारों ऋत्विज गूलड़ की लकड़ी की चनी हुई, नाभिप्रमाणवाले पायों की, फैली कन अंगुलि से मुट्ठीतक नाप में लम्बी, दिव्य कपास के डोरों से घुनी हुई मञ्चिका को आसन्दी कहते हैं, उस सोम रखने को शकट के समीप लावें और हाथसे स्पर्श करे मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, ऋतसदनी, असि) हे आसन्दी तुम-वरुण देवता की प्रीति के लिए, यज्ञकी प्राप्तिका स्थान, हो। चौथे मंत्र से मञ्चिका पर मृगचर्म बिछावें। मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, ऋतसदनम्, असि) हे कृष्णाजिन तुम-वरुण की प्रीति के लिए अथवा वद्ध सोमके, यज्ञके निमित्त बैठने का स्थान, हो। पांचवें मंत्रसे मृग चर्म पर सोमबल्ली की गांठ धरे। मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, ऋतसदनम्, आसीद) हे सोम तुम-वरुणदेव की प्रीति के लिए लाए गए हो, यज्ञसम्बन्धी आसन्दीपर बिछे हुए मृगचर्म पर, मुख से स्थित हूजिए ॥ ३६ ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभू-
रस्तु यज्ञम् । गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो वीरह्वा प्रच-
रा सोम दुर्यान् ॥ ३७ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का गीतम ऋ०, निच्युदार्पी त्रिष्टुप् छन्द और सोम देवता है। सोम को स्थापित कर अध्वर्यु यजमान से यह मंत्र कहलावें। मन्त्रार्थ—(सोम, ते, या, धामानि, हविषा, यज्ञम्, यजन्ति) हे सोम, तुम्हारे, जिन, मातःसोमादि स्थानोंको पाकर, तुम्हारे रसरूप हविसे, यज्ञपुरुष का, पूजन करते हैं (ते, ता, विश्वा, परिभूः, अस्तु) तुम्हारे, वह, सम्पूर्ण, स्थान, तुमसे

सब ओर से व्याप्त, हों (गयस्फानः, प्रतरणः, सुवीरः, अवीरहा, दुर्यान्, आचर) घरकी वृद्धि करनेवाले, यज्ञको प्राप्त कराने वाले, हम ऋत्विज् वा यजमान के पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न तुम, वीर पुरुषों को पालनेवाले, यज्ञगृहों को, प्राप्त हूँजिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येष्ट भारद्वाजगोत्रो-

द्भूतगौडवंशावतंस भीमश्रोतानापात्मजराजस्वरूपशर्मा द्वारा

संस्कृतमहीधरारिप्राचीनभाष्यों के अनुसार सम्पादित अन्वय

परार्थ और भावार्थसहित शास्त्रागमनादाद्यानन्त

चतुर्थ अध्याय समाप्त.

॥❀॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥❀॥

चौथे अध्याय में ऋत्विज् सहित यजमान के शालाप्रवेश से लेकर सोमक्रय करके शाला आगमनतक के मंत्र कहे, अब पांचवें अध्याय का प्रारम्भ होता है, जिसकी आदिमें आतिथ्येष्टि, हविर्ग्रहणादि के मंत्रोंका वर्णन है—

ॐ अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि वि-
ष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे श्येनाय त्वा सो-
मभृते विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥१॥

इस कण्डिका के मंत्रका गोतम ऋषि, स्वराह प्राची बृहती छन्द और विष्णुदेवता है । इस मंत्रसे हविर्ग्रहण करै, मन्त्रार्थ—
१ (अग्नेः, तनूः, असि, विष्णवे, त्वा) हे सोम तुम-अग्नि के, शरीर, हो, परमात्मा की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ । २ (सोमस्य, तनूः, असि, विष्णवे, त्वा) तुम सोमदेवता के, शरीर, हो, विष्णु के अर्थ, तुमको ग्रहण करता हूँ । ३ अतिथेः, आतिथ्यम्, विष्णवे, त्वा) हे सोम तुम-यज्ञमंडप में आयेहुए अतिथि के, अथितिसत्कार से सन्तुष्ट करनेवाले हो, विष्णुदेव की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ । ४ (सोमभृते, श्येनाय, विष्णवे, त्वा) हे सोम-सोम लानेवाले, शत्रुके दमन

करनेको श्येन की समान उद्योगी मुझ यजमान के कल्याणार्थ
यज्ञाधिष्ठात्री विष्णुदेवता के प्रसन्नतार्थ, तुमको ग्रहण करता हूँ ।
५ (गायत्रीपदे, अग्नये, त्वा, विष्णवे, त्वा) धनसम्बन्धी पु-
ष्टि देनेवाले, अग्नि के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ, यज्ञपति
विष्णुदेव की प्रीति के निमित्त, तुम को ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

अग्नेर्जनिमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरुरवा
असि । गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्यामि त्रैष्टुभेन त्वा
छन्दसा मन्यामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्यामि ॥ २ ॥

इस कण्विका में ८ मंत्र हैं, आपि सब का गौतम छंद पहिले ५
का आर्षी गायत्री, ६ । ७ । ८ का आर्षी त्रिष्टुप् देवता १ से ५
तक का शकलादि, ६ से ८ तक का अग्नि है, पहिले से यज्ञसंबन्धी
यज्ञ के टुकड़े को लेकर वेदीपर उत्तर को अग्रभाग करके धरै ।
मन्त्रार्थ—(अग्नेः, जनिमम्, असि) हे खण्ड तुम—अग्नि के, उ-
त्पन्न करनेवाले, हो, । दूसरे से उस टुकड़ेपर कुशतरुण को रखै
मन्त्रार्थ—(वृषणौ, स्थः) हे दोनों कुश तुम—सींचनेवाले अर्थात्
अरणिकाष्ठों में अग्नि उत्पन्न करने की शक्ति देनेवाले हो ।
तीसरे से इन दोनों कुशाओं पर नीचे की अरणि को उत्तराग्र धरै
मन्त्रार्थ—(उर्वशी, असि) हे नीचे की अरणि ! अग्नि की उत्पत्ति
के लिए हमने तुमको स्त्रीरूप माना है अब तुम—उर्वशी नामवाली,
हो । चौथे मंत्र से आज्यस्थाली से, उत्तरारणि का स्पर्श करै ।
मन्त्रार्थ—(आयुः, असि) हे स्थाली के आज्य तुम—अग्नि की आयु,
हो । पाँचवें मंत्र से नीचे की अरणि पर उत्तर अरणि धरै । मन्त्रार्थ—
(पुरुरवाः, असि) हे उत्तरारणि ! हम अग्नि उत्पन्न करने के निमित्त
तुमको पुरुष रूपसे कल्पना करते हैं अतः तुम—पुरुरवा नामक,
हो । ६ । ७ । ८ मंत्र से दोनों अरणियों को मयंकर अग्नि निकालै ।
मन्त्रार्थ—(गायत्रेण, छन्दसा, त्वा, मन्यामि) गायत्री, छन्द के अधि-
ष्ठाता, अग्नि देवता केवलसे, तुम को मन्यन से प्रकट करता हूँ । (त्रैष्टु-
भेन, छन्दसा, त्वा, मन्यामि) त्रिष्टुप्, छन्द के अधिष्ठाता इन्द्रदेवता

केवल से, तुभको, दो अरणियों के द्वारा मयता हूँ (जांगतेन, छन्दसा, स्वा, मन्यामि) हे अग्ने-जगती, छन्द के अधिष्ठाता विश्वेदेवा के वलसे, तुभको, दो अरणी के द्वारा मयता हूँ ॥ २ ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञं हि
सिष्ट मा यज्ञपतिञ्जातवेदसौ शिवौ भवतमयनः । ३ ।

इस कापिडका के मन्त्र का अ० गो०, छन्द आर्षी पंक्ति और देवता निर्मथ्याहवनीयाग्नि । इससे मयी हुई अग्नि को आहवनीय अग्नि के साथ युक्त करे । मन्त्रार्थ—(जातवेदसौ, नः, समनसौ, सचेतसौ, अरेपसौ, भवतम्) हे दोनो अग्नि !, हमारी कार्यसिद्धि के लिए, एकग्रमन, समानचित्त, हमपर कोप न करनेवाले, हजिये (यज्ञम्, भा, हिंसिष्ट, यज्ञपतिम्, मा) यज्ञ को, मत, नष्ट करो, यज्ञपति को, मत क्षतग्रस्त करो (अय, नः, शिवौ, भवतम्) । आज, हमारे निमित्त, कल्याणस्वरूप, हजिये ॥ ३ ॥
अमायग्निश्चरन्ति प्रविष्ट ऋषीणाम्पुत्रो अभिशस्तिपा
वा । स नः स्योनः सुयजा यज्ञेह देवेभ्यो हव्यं सद-
मप्युच्छन्स्वाहा ॥ ४ ॥

इस कापिडका के मन्त्र का ऋ० गोतम, छन्द आ० त्रि० और देवता अग्नि है । तुमसे आज्ञास्थाली में का पी लेकर ढाली हुई अग्नि पर इस मन्त्र से आहुति देय । मन्त्रार्थ—(अपीणाम्, पुत्रः, वा, अभिशस्तिपाः, अग्निः, अग्नौ, प्रविष्टः चरति, सः, नः, स्योनः, सुयजा, इह, सदम्, अप्युच्छन्, देवेभ्यः, हव्यम्, यज्ञ, स्वाहा) वेदवेत्ता ऋषियों के, उत्पन्न किये हुए ऋषिकुमार, या, वैकल्याण-मित्तक अभिशाप से या दुष्टों के आक्रमण से रक्षा करने वाला, मथित अग्नि, आहवनीय अग्नि में प्रविष्ट हुआ, इवि को भक्षण करता है, वह अग्नि तुम, हमको, सुखरूप होकर, सुन्दर याग से, इस स्थान में, सदा समादरहित होकर, इन्द्रादि देवताओं के अर्थ, इवि, तेजाओ, तुम्हारे निमित्त घृतका श्रेष्ठ होम हो ॥ ४ ॥

आपतये स्वा परिपतये गृह्णामि तनूजघ्ने प्रास्वराय

शक्वेन्न ओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्यन्देवाना-
मोजोनंभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यमञ्जसा
सत्यमुपेगेयः स्थिते मा धाः ॥ ५ ॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, ऋषि दोनों का गोतम छन्द पहिले का
आप्युष्णिक्, दूसरे का भुरिगार्पी पंक्ति, देवता पहिले का वायु और
दूसरे का आज्य है । पहिले को पढ़कर व्रतप्रदान पात्र में सुबे से दो
बार आज्य लेय । मन्त्रार्थ— (त्वा, परिपतये, तनूनप्ते, शाकराय,
शक्ने, ओजिष्ठाय, आपतये, परिपतये, गृह्णामि) हे आज्य । तुभ
को, सर्वज्ञ, सब जगत् के विस्तारकर्त्ता आत्मा के पौत्र, आकाश के
पुत्र, सब कर्मों में समर्थ, बलवान्, सदागति वायुदेवता के लिए, ग्रहण
करता हूँ । वेदी की दक्षिण ओरिण अर्थात् नैऋत्य कोणपर आज्यपात्र
रखकर ऋत्विक् और यजमान सब मिलकर पात्र को स्पर्श करतेहुए
इसदूसरे मन्त्र को पढ़ें । मन्त्रार्थ—(अनाधृष्टम्, अनाधृष्यम्, देवानाम्,
ओजः, अनभिशस्ति, अभिशस्तिपम्, असि, आअञ्जसा, अनभिशस्ते
नम्, सत्यम्, उपेगेयम्, स्थिते, मा, धाः) हे आज्य तुम आज तक
किसी से तिरस्कार न पानेवाले, न आगे किसी से तिरस्कार पाओगे,
तुम देवताओं के, सारपदार्थ, स्वयं अनिन्दनीय, निन्दित कर्म से हमारी
रक्षा करने वाले, हो । इस कारण हे आज्य सीधे मार्ग से, अनिन्दित
मोक्ष के प्राप्त करनेवाले हो आज हम सरल अन्तःकरण से तुम
को स्पर्श कर शपथपूर्वक, यज्ञ करने का भार लेते हैं । अब शोभन
मार्ग वाले यज्ञानुष्ठान में, तुभ को, स्थापन करो ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनुरियः सा मयि यो
भम तनुरेपा सा त्वर्यि । सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे
दीक्षान्दीक्षापन्तिर्भन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

इस मन्त्र का ऋषि गोतम, छन्द विराट्, ब्राह्मी पंक्ति और देवता
अग्नि है । इस को पढ़कर आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि में समिधा
छोड़ें । मन्त्रार्थ—(व्रतपाः अग्ने, त्वे, व्रतपाः तव, या, तनूः, सा, इय
म्, मयि, या, भम, तनूः, सा एपा, त्वर्ये, व्रतपते, नौ व्रतानि, सह,

दीक्षापतिः, मे, दीक्षाम्, अनुमन्यताम्, तपस्पतिः, तपः, अनु) हे सब
 अतों के रक्षक, अग्निदेव, तुम, हमारे व्रतकी रक्षाकरो । तुम्हारा,
 जो, शरीर है, वह, यह, मुझ में हो । जो, मेरा शरीर है, वह, यह,
 तुममें, हो । हे व्रतरक्षक, हम दोनों के, अनुष्ठित कर्म, साथ हों । दीक्षा
 का रक्षक सोम, मेरी, दीक्षाको, मानै । उस सद्रूप तप का रक्षक सोम
 देवता, मेरे सद्रूप तपको, मानै ॥ ६ ॥

अ० शु० गु० दे० सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे ।

आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामात्वमिन्द्राय प्यायस्व । आ-
 प्यायतास्मान्त्सखीन्त्सन्धा मेधया स्वस्ति ते देव सोम
 सुत्यामंशीय । एष्टा रायः प्रेषे भगाय श्रुतमृतवादिभ्यो
 नमो यावांष्टिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, ऋषि पहिले का गोत्रम, दूसरे का
 वेत्स । छन्द पहिले का आ० वृहती, दूसरे का आ० जगती । देवता
 पहिले का सोम और दूसरे का लिङ्गोक्त है । पहिले मंत्र से ब्रह्मा
 उद्गाता, होता, अध्वर्यु, अग्नीध्र यह पाँचों अतिवक्त्र और बड़ा
 यज्ञेमान सोमको जल से सजीव करें । मंत्रार्थ—(देव, सोम, ते,
 अ० शु०, अ० शु०, एकधनविदे, इन्द्राय, आप्यायताम्, तुभ्यम्, इन्द्र, आप्या-
 यताम्, त्वम्, इन्द्राय, आप्यायस्व, सखीन्, अस्मान्, सन्धा, मेधया,
 आप्यायस्व, सोम-देव, ते, स्वस्ति, सुत्याम्, अशीय) हे सोम-देवता,
 तुम्हारे, सब अवयव, गाँठ, मुख्य धन प्राप्ता करने वाले, इन्द्रदेव
 की प्रीति के लिये, वृद्धि पाओ । तुम्हारे पान के लिये, इन्द्र, प्रादु-
 र्भूत हों । तुम, इन्द्रके पान के लिये, सब ओर से वृद्धि पाओ । हे
 सोम-सत्ता की समान प्रीति के प्राप्त, हम अतिवक्त्रों को, धनदान,
 और धारणशक्ति से, बढ़ाओ । हे सोम, देवता, तुम्हारा, कल्याण
 हो । तुम्हारी कृपा से मैं-सोमयज्ञ के अन्तस्मान् दिनको, पाऊँ ।
 दूसरे मंत्रसे सब अतिवक्त्र प्रसार के ऊपर दोनों हाथों को ऊँचा कर
 के बाँ दाहिने हाथको ऊँचा रखकर रक्षा के लिये सोम की परिचर्या
 करें । मंत्रार्थ—(एष्टा, रायः, प्रेषे, भगाय, श्रुतवादिभ्यः, श्रुतम्,

धावापृथिवीभ्याम्, नमः) हे सोम-हमारे इच्छित, धन, जिसे तुम
अवश्य भेरेगा करो ऐसे, ऐश्वर्यादि हमको प्राप्त हों। सत्य बोलने
वाला हमारा अवश्यमाविद्युक्त कर्म सम्पादन करो, स्वर्गपृथिवी के
अभिमानि देवताओं को, नमस्कार है ॥ ७ ॥

या ते अग्ने यः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अ-
पावधीत्त्वेपं वचो अपावधीत्स्वाहा । या ते अग्ने रजः-
शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत्त्वेपं
वचो अपावधीत्स्वाहा । या ते अग्ने हरिशया तनूर्व-
र्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत्त्वेपं वचो अपाव-
धीत्स्वाहा ॥ ८ ॥

इस काण्डिका में ३ मंत्र हैं, ऋषि पहिले का गोतम, दूसरे तीसरे
का वत्स । छन्द पहिले का वि० आ० वृहती, दूसरे तीसरे का नि०
आ० वृ० । देवता तीनों का अग्नि है । पहिले मंत्र से जुहुआदिमें
मस्तर को लगाकर परिधिस्थापन पूर्वक सुनेसे उपसद अग्नि में हवन
करै । मंत्रार्थ—(अग्ने, या, ते अयः शया, तनूः वर्षिष्ठा, गह्वरेष्ठा,
उग्रं, वचः, अपावधीत्, त्वेपम्, वचः, अपावधीत्, स्वाहा) हे उपसद
नामक अग्ने, जो, तुम्हारा, लोहपुरवासी, शरीर, देवताओं को इ-
च्छित फल देनेवाला, और असुरों के विषम देश में स्थित रहने
वाला है उसने, दैत्यों की कठोर, बाणीको, भतिकरूप में नष्ट किया
है । असुरों के कहे देवताओं पर आक्षेपरूप, वाक्यको, नष्ट किया,
ऐसे उपकारक तुझ अग्नि के लिये श्रेष्ठ होम हो । दूसरे दिन दूसरी
उपसद नामक अग्नि में आहुति देय । मंत्रार्थ—(अग्ने, या, ते,
रजः शया, तनूः, वर्षिष्ठा, गह्वरेष्ठा, उग्रम्, वचः, अपावधीत्, त्वेपम्,
वचः, अपावधीत्, स्वाहा) हे उपसद अग्ने, जो, तुम्हारा, रजत-
पुरवासी, शरीर, देवताओं को इच्छित फलदाता, और असुरों के
विषम देश में स्थितिशील है उसने, दैत्यों की छिन्धि भिन्धिरूप
उग्र, बाणीको, नष्ट किया था, उनके आक्षेपरूप, वचन को, नष्ट किया
था, ऐसे उपकारक अग्नि के लिये श्रेष्ठ होम हो । तीसरे दिन तीसरे

मंत्र से आहुतिदेय । मन्त्रार्थ—(अग्ने, या, ते, हरिशया, तनूः वर्षिष्ठा, गंधरेष्ठा, उग्रम्, वचः अपानधीत्, त्वेषम्, वचः, अपावधीत्, स्वाहा) हे अग्ने, जो, तुम्हारा, सुवर्णपुरवासी, शरीर, देवताओं को इच्छित फलदाता, और असुरों के विषमदेश में स्थितिशील है उसने, असुरों के तीव्र, वचनों को, विनष्ट किया है । असुरों के आक्षेपरूप, वचनों को, नष्ट किया है, ऐसे उपकारक अग्नि के लिए श्रेष्ठ होम हो ॥

आख्यायिका—ततोऽसुरा एषु लोकेषु पुरंधाक्रौ अयस्मयीमेवास्मिन् लोके रजतामन्तारिक्षे हरिणीं दिवि [१।४।४।१ शतपथ] इत्यादि श्रुतियों में लिखा है कि—मजापति के पुत्र देवता और असुरों में परस्पर वैर था अतः असुरों ने तप करके त्रिलोकी में ३ पुर बनाये, पृथिवी में लोहे का, अन्तारिक्ष में चाँदी का और स्वर्ग में सुवर्ण का । तब देवताओं ने अग्नि की उपासना करी वह अग्नि 'उपेसद' नामवाला हुआ, उसने देवताओं के हितार्थ उन पुरों में प्रवेश कर उनको भस्म कर डाला तब वह तीनों पुर अग्नि के शरीर कहाँ और देवताओं की विजय हुई, इसी प्रकार जो कोई उन अग्नियों की उपासना करेगा वह शत्रुओं के किले आदि तोड़कर जय पावेगा ॥ ८ ॥

। तृतायनी मेसि विसायनी मेस्पर्वतान्मा नाधिताद्व-
तान्मा व्यधितात् । विदेदग्निर्नभोनामागने अद्भिर-
आयुना नाम्नेहि योस्याम्पृथिव्यामसि यस्तेनाधृष्टन्नाम-
यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामागने अद्भिर-
आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यस्ते-
नाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो-
नामागने अद्भिर आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्याम्पृथि-
व्यामसि यस्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे । अनु-
त्वा देववीतये ॥ ९ ॥

। इस ण्डिका में १४ मंत्र हैं, ऋषि १ से ४ तक का गोतम, ५ से ४ तक का वत्स छन्द १ से ४ तक का भुरिगार्षी गायत्री, ५वें का

भुरिग्राह्मी वृहती, षष्ठे का निच्युद्ग्राह्मी जगती, ७ वें का यजुः, ८ वें का भु० ब्रा० वृ०, ९ म का नि० ब्रा० ज०, १० वें का यजुः, ११ वें का भुरि०, १२ वें का नि० ब्रा० ज०, १३ वें का यजुः, १४ वें का याजुषी अनुष्टुप् है। देवता-१ से ४ तक का पृथिवी, ५, ६, ११ वें का अग्नि, ६।७।९।१०।११।१२।१३।१४ वें का लिङ्गोक्त है। चारोंदिशा में शम्भा गाढ़कर स्फ्य से चौकोण रेखा करे उन चारों रेखाओं को करतेसमय पहिले चारों मंत्र पढ़े। मंत्रार्थ—(मे, तप्तायनी, असि) हे भूमि तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करने को, निर्धनतासे दुःखी पुरुषों को शरण देनेवाली, हो (मे, विचायनी, असि) हे भूमि—मेरे निमित्त, धनार्थियों को धनकी खानि, हो (मा, नायितात्, अवतात्) हे भूमिदेवि—भुक्त को, याचना से, रक्षाकरो (मा, व्य-धितात्, अवतात्) हे भूमि—भुक्त, मन की पीड़ासे, रक्षाकरो। ५ वें मंत्र से उन रेखाओं के आगे को स्फ्य से चत्वाल खोदें, जिस स्थानमें से वेदी बनाने के लिए मट्टी खोदीजाय उसको चत्वाल कहते हैं। मंत्रार्थ—(नमः, नाम, अग्निः, विदेत्) हे चत्वालमें की मृत्तिके—नम, नामवाला, तेरा अधिष्ठाता अग्नि, भुक्तसे खो-दीहुई तुम्हको जानै। छठे मंत्रसे गढ़े में से खोदीहुई मिट्टी निका-लै। मंत्रार्थ—अद्भिरः, अग्ने, आयुना, नाम्ना, एहि) हे गतिमान्, अग्ने, आयु, नामसे—तुम इस स्थानमें, आओ। ७ वें से उत्तर वेदी के स्थानमें उस मृत्तिका को डालै। मंत्रार्थ—(अस्याम्, पृथिव्याम्, असि, ते, यत्, यज्ञियम्, अनाधृष्टम्, तेन, त्वा, आदधे) हे अग्ने जो तुम—इस, पृथिवी में, हो, इससे तुम्हारा, जो, यज्ञ के योग्य, अनिन्दनीय, नाम है, उससे, तुमको, इस स्थान में स्थापन करता हूं। ८ वें से दूसरी रेखाकी ओर चत्वाल खोदें। मंत्रार्थ—(नमः, नाम, अग्निः, विदेत्) हे मृत्तिके तुमको—नम, नामा, अग्नि, जानै। ९ वें से खोदी मट्टी गढ़े से निकालै। मंत्रार्थ—(अद्भिरः, अग्ने, आयुना, नाम्ना, एहि) हे गतिमान्, अग्ने, आयु, नाम से, आओ। १० वें से उत्तर वेदी के स्थान में सब मट्टी डालै। मंत्रार्थ—(यः, द्वितीयस्याम्, पृथिव्याम्,

असि) हे अग्ने क्योंकि तुम-दूसरी, पृथ्वी अर्थात् अन्तरिक्ष में, हो (ते, यत्, अनाधृष्टम्, यज्ञियम्, नाम, तेन, त्वा, आदधे) इसकारण तुम्हारा, जो, यज्ञके योग्य, अमिन्दनीय, नाम है, उससे, तुमको, यहाँ स्थापन करना हूँ । ११ वें से बीसरी, और खोदें मंत्रार्थ-(नभ-इत्यादि) अर्थ ५ वें की समान जानना । १२ वें से मृत्तिका निकालें । मंत्रार्थ-(अद्विर इत्यादि) अर्थ नवम की समान । १३ वें से मृत्तिका डालें । मंत्रार्थ-(यः, तृतीयस्याम्, पृथिव्याम्, असि, ते, यत्, यज्ञियम्, अनाधृष्टम्, नाम, तेन, त्वा, आदधे) हे अग्ने जिससे कि तुम ताँसरी, पृथ्वी धुलोक में स्थित, हो, शेष अर्थ १० वें मंत्रवत् जानना । १४ वें से चौथी ओर खोदकर मट्टी निकालना डालना आदि सब कार्य करें । मंत्रार्थ-(देववीतये, त्वा, अनु) हे मृत्तिके-देवताओं की प्रीति के निमित्त उंचरवेदी बनेगी अतः पूर्ववत्, तुमको, आहरणादि करता हूँ ॥ ९ ॥

सिंहसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिंहसि

सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिंहसि सपत्नसाही

देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ १० ॥

इसे कापिडका में ३ मंत्र हैं, तीनों का अ० गोतम, ब० ब्राह्मी उच्छिष्ट, और देवता वेदि है । पहिले को पढ़कर वेदी को शम्या से ढीककर चारों ओर मध्यभाग में समान करें । मंत्रार्थ-(सिंह, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, कल्पस्व) हे वेदी तुम-सिंह के समान शत्रुओं का विरस्कार करनेवाली, हो, देवताओं के उपकारार्थ, उत्तर धेद्रीरूप से समर्थ होजाओ । दूसरे को पढ़कर वेदी का प्रोक्षण करें मन्त्रार्थ-(सिंह, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, शुन्धस्व) सिंह समा न, शत्रुओं का पराभव करती, हो, देवताओं की प्रीति के अर्थ, शुद्ध होजाओ । तीसरे को पढ़कर वेदी के कंकर आदि दूर करें । मन्त्रार्थ-(सिंह, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, शुम्भस्व) हे उत्तर वेदी तुम-सिंह समान, शत्रुओं का विरस्कार करनेवाली, हो, देव-
ताओं की प्रीति के लिए सिकता पड़ने से शोभित होजाओ ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु अचेतास्त्वा रुद्रैः
 पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु वि-
 श्वकर्मा त्वादित्यैः उत्तरतः पातु विदसहन्तसं वार्षहिर्धा
 यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं, पाँचों का गोतम ऋ०, निचपृद्वाही
 त्रिषुप् छन्द और उत्तर वेदि देवता है। पहिले चार मंत्रों से उत्तर
 वेदी की पूर्वादि चारों दिशा में जलद्वारा हाथ से मार्जन करें।
 मंत्रार्थ—(इन्द्रघोषः, वसुभिः, त्वा, पुरस्तात्, पातु) हे उत्तर वेदी-
 इन्द्र नाम से प्रसिद्ध देवता, आठ वसुओं के साथ, तुमको, पूर्व-
 दिशा में, रक्षा करें। (अचेताः, रुद्रैः, पश्चात्, त्वा, पातु) वरुण
 देव, ११ रुद्रों के साथ, पश्चिम में, तुमको, रक्षा करें। (मनोजवाः,
 पितृभिः, दक्षिणतः, त्वा, पातु) मनकी समान बेगवाले यमदेवता,
 दिव्य पितरों सहित, दक्षिण में, तुम्हारी, रक्षा करें (विश्वकर्मा,
 आदित्यैः, उत्तरतः, त्वा, पातु) विश्वकर्मा, १२ आदित्यों के साथ,
 उत्तर में तुम्हारी, रक्षा करें। पाँचवें मंत्रको पढ़कर मार्जन से बचा
 जल वेदी के बाहर दक्षिण में लगाहुआ डालें। मंत्रार्थ—(अहम्,
 तप्तम्, इदम्, वाः, यज्ञात्, वार्षहिर्धाः, निःसृजामि) मैं, अग्नि-
 चारणार्थ जिससे प्रोक्षण किया था उस अग्निको, इस, जलको,
 यज्ञकी वेदी से बाहर, डालता हूँ ॥ ११ ॥

सिंक्ष्यसि स्वाहा सिंक्ष्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिं-
 क्ष्यसि प्रक्ष्यवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा । सिंक्ष्यसि सुप्र-
 ज्जावर्नी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिंक्ष्यस्यावह देवान्य-
 जमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥

इस कण्डिका में ६ मंत्र हैं, १ ले ५ तक का गोतम ऋ०, मुरिग्राही
 पंक्ति छ०, वेदि देवता । ६ ठें का गो० ऋ०, यजुः, और सुग देवता
 है। पहिले ५ मंत्रों को पढ़कर वेदी की दोनों ओरणी और दोनों
 अंश तथा नाभि में कुब्ज २ सुवर्ण स्थापन करके उसको देखते २
 अर्घ्य जुहु में आज्य लेकर पाँच आहुति देय। पहिली दक्षिण अंश

आग्नेय कोण में, मंत्रार्थ—(सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदी-
 असुरों का भक्षण करनेवाली, हो, तुमको यह हवि देते हैं सुन्दर रूपसे
 ग्रहण करो । दूसरी आहुति उत्तर श्रोणि वायुकोण में देया मंत्रार्थ—
 (आदित्यवनि, सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदि तुम आदित्यों
 को मसन्न करनेवाली, सिंहीरूप, हो, तुमको हवि देते हैं सुन्दर
 रूप से ग्रहण करो । तीसरी आहुति दक्षिण श्रोणी नैऋत-
 त्यकोण में देय । मंत्रार्थ—(ब्रह्मवनि, सिंही, असि, स्वाहा)
 हे उत्तरवेदी तुम—ब्राह्मण क्षत्रियों की प्रीति को देनेवाली, सिंही
 समान, हो, यह सुन्दर आहुति तुमको देने हैं । चौथी आहुति उ-
 त्तर अंश ईशानकोण में देय । मंत्रार्थ—सुप्रजावनि, रायस्पोषवनि,
 सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम, अच्छी मजा और,
 धन पुष्टि को देनेवाली, पराक्रममें सिंही, हो, यह आहुति देते हैं
 इसको श्रेष्ठरूप से स्वीकार करो । ५.वीं आहुति उत्तरवेदी कोम-
 ध्यबिंदु नाभि में देय । मंत्रार्थ—(सिंही, असि, यजमानाय, दे-
 वान्, आवह, स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम—सिंहीरूप हो, यजमान
 के उपकारार्थ, देवताओं को, यहां पहुँचाओ, यह हवि तुमको देते
 हैं । छठे से वेदीके ऊपर जुहू को ग्रहण करै । मंत्रार्थ—(भूतेभ्यः,
 स्वा) हे घृतयुक्त जुहू—सब प्राणियों की प्रीति के लिये, तुम को
 वेदी के ऊपर ग्रहण करता हूँ—तुम जरायुजादिभाग हो ॥ १२ ॥
 ध्रुवोसि पृथिवीन् दृष्ट्व ध्रुवक्षिदं स्पन्तरिक्षं दृष्ट्वा च्युत-
 क्षिदं सि दिवं दृष्ट्वाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

इस कण्टिका में ४ मन्त्र हैं, चारों का गोतम ऋ०, १ से ३
 तक का भुरिगार्ध्वनु० छन्द, ४ थे का दैवी जगती छ०, देवता १
 से ३ तक का परिधि और ४ थे का सम्भार है । पहिले ३ मंत्रों को
 पढ़कर देवदारु की बनी ३ परिधियों के द्वारा उत्तर वेदी की नाभि
 से, दर्श पौर्णमास इष्टिकी समान पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तीन दिशा
 ओं में परिधि करै । मंत्रार्थ—(ध्रुवः, असि, पृथिवीम्, दृष्ट्व ध्रुवसि
 असि, अन्तरिक्षम्, दृष्ट्व । अच्युतक्षित्, आसे दिवम्, दृष्ट्व) हे मध्य

मपरिधि तुम-स्थिर हो, यहां की पृथ्वी को, दृढ़ करो । हे दक्षिण
परिधि तुम-स्थिर, यज्ञ में निवास करती, हो, अन्तरिक्ष को, दृढ़
करो । हे उत्तरपरिधि ! तुम-अविनाशी यज्ञ में निवास करती, हो,
धुलोक को, दृढ़ करो । चौथे मंत्र से नाभि के मध्यविन्दु में समार
(शूल, तेजपात भेड़के बाल) स्थापन करै । मंत्रार्थ—(अग्नेः, पुरीषम्,
असि) हे सम्भार, तुम अग्नि के, पूर्णकर्त्ता हो ॥ १३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्राविप्रस्य धृष्टतो वि-
प्रश्चितः ॥ विहोत्रादधे वयुना विदेक इन्महीदेवस्य ।
संचितुः परिपुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का श्यावाश्व ऋ०, स्वराट्पार्षी ज० छ०
और सविता देवता है । हविर्धान मण्डप बनाकर, अध्वर्युशाला में
मवेशकर आज्य का संस्कार करके चार बार ग्रहण किए हुए आज्य
को परिस्तरणसमिदाधोनपूर्वक अग्नि में इस मंत्र से आहुति देय ।
मंत्रार्थ—(युञ्जते, विप्रश्चितः, विप्रस्य, विप्राः, होत्राः, मनः) युञ्जते,
उत, धियोः युञ्जते, वयुनावित्, एकः, इत्, विदधे, संचितुः, देवस्य
परिपुतिः, मही, स्वाहा) वेदपाठ से महत्त्व को प्राप्त, सर्वज्ञ, यज्ञ-
मान के वेदवेत्ता, होम करने वाले ऋत्विज, मनको, यज्ञानुष्ठान में
लगाते हैं, और इंद्रियों को, लगाते हैं, क्यों कि—सब प्राणियों के
मन बुद्धि की वृत्तियों को जाननेवाले, अकेले सृष्टिकर्त्ता मे, ही, इन
प्राणियों की मनोवशीकारादि सामर्थ्य को रचा है, क्योंकि—पेरक
अन्तर्यामी, परमात्मा देव की, सदा कीहुई श्रुति, बढी है, उस पर-
मेश्वर के निमित्त अष्ट होम हो ॥ १४ ॥
इदम्विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे इदम् ॥
संमूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥
इस मंत्र को मेधातिथि ऋ०, मु०, गाय० छ० और विष्णु देवता है ।
फिर धृत का संस्कार कर और ४ बार ग्रहण किए हुए को लेकर
दक्षिण हविर्धान के दक्षिण चक्रमार्ग में, सुवर्ण को रखकर शाला
द्वार की अग्नि में इस मंत्र से होम करै । मंत्रार्थ—(विष्णुः, इदम्,

विचक्रमे, त्रेधा, पदम्, निदधे, अस्य, पांसुरे, समूढम्, स्वाहा) सर्व-
व्यापी त्रिविक्रमावतारधारी विष्णुने, इस विश्व को, विभागपूर्वक
उल्लंघन किया, पहिला भूमि में दूसरा अन्तरिक्ष में तीसरा श्रुलोक
में ऐसे तीन प्रकार, पद, रक्त्वा, इस विष्णु के, पद में, सम्यक्प-
कार विश्व अन्तर्भूत है, उस परमात्मा को हवि देते हैं ॥

इस मंत्र में वामनावतार की कथा गर्भित है जिसका प्रमाण नि-
रुक्त का यह वचन है—“अदिदं किञ्च विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते
पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः । समारोहेण
विष्णुपदे गयाशिरसीत्यौर्णिनाम् । समूढमस्य पांसुरे ध्यायनेऽन्तरिक्षे
पदं न दृश्यतेऽपि वोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुर इव पदं न दृश्यते
इति पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरतः इति वा वसन्तीया
भवन्तीति वा” ॥ १५ ॥

इरावती धेनुमती हि भूतम् सूययसिनी मनवे दश-
स्या । व्यस्कन्ना रोदसी विष्णवे ते दार्धर्ष्यं पृथिवीम्-
भित्तौ मयूखैः स्वाहा ॥ १६ ॥

इस कण्विकका के मंत्र का वशिष्ठ आ० स्व० आ० त्रि० छ० और
विष्णु देवता है । आहवनीय अग्नि के ईशानकोण में रक्षित उत्तर
शकट (हविर्धान) के दक्षिण चक्रमार्ग में सुवर्ण रखकर प्रतिप्रस्थाता
और अध्वर्यु के दिये हुए सुवे और स्थाली को लेकर चारवार लिए
हुए घृत का हवन करे । मन्त्रार्थ—(रोदसी, इरावती, धेनुमती, सूय-
वसनी, मनवे, दशस्या, भूतम् विष्णो, पते, व्यस्कन्ना, पृथिवीम्
मयूखैः, अभितः, दार्धर्ष्य, स्वाहा) हे आवापृथिवी, इस यज्ञमान के
कल्याणार्थ अन्नजल वाली, बहुतसी धेनुओं से युक्त, बहुत से उत्तम
खाने के पदार्थवाली, ज्ञानी यज्ञमान के लिये, यज्ञसाधनों की देने
वाली, हो, हे सर्वव्यापी परमात्मन् !, इन स्वर्ग पृथिवी को, संभित
किये हो, पृथिवी को, अपने तेजःस्वरूप सूर्यचन्द्रादि के द्वारा, सब ओर
से, धारण कर रहे हो, उन विष्णु को यह आहुति देते हैं ॥ १६ ॥

देवभूतौ देवेष्वाधोवत्समाधी प्रेतमध्वरकल्पयन्ती ऊ-

ध्वं यज्ञन्नयत्तम्मा जिह्वरतम् । स्वहोष्ठमावदतन्देवी
 दुर्धे आणुर्मा निर्वोदिष्टमृजाम्मा निर्वोदिष्टमन्नं रमेधां
 चर्म्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥

इस काण्डिका में ४ मन्त्र हैं, ऋषिचारों का वशिष्ठ, छन्द पहिले चौथे का याजुषी पंक्ति, २ रे का निच्युदार्पी गायत्री, तीसरे का भुरिगार्पी गा० और देवता चारों का हविर्धान है। शाला के दक्षिण द्वार से लाई हुई पत्नी चारवार लिपहुण होम से शेषघृत को लेकर दोनों अक्ष के धुरों में इस मंत्र से लगावे। मन्त्रार्थ—(देवश्रुतौ, देवेषु, अघोपतम्) हे अक्षधुरों तुम-देवसमा में प्रसिद्ध, देवताओं में, उच्च स्वर से कहो कि—यजमान यज्ञ करता है। शकट के यथास्थान में आने पर यजमान इस मंत्र को पढ़कर पूर्वमुख हो इसकी दृढ़रूप से रक्षा करे। मन्त्रार्थ—(अध्वरम्, कल्पयन्ती, माची, भेतम्, यज्ञम्, ऊर्ध्वम्, नयतम्, मा—जिह्वरतम्) हे दोनों शकट-यज्ञ को, समर्थ कर लेहुए, पूर्वमुख, जाओ। यज्ञ को, ऊर्ध्वलोकवासी देवताओं के समीप, लेजाओ, कुटिल मतहोओ। तीसरे मंत्र से यजमान अक्ष को आघात कर शब्द करे। मन्त्रार्थ—(दुर्धे, देवी, स्वम्, गोष्ठम्, आवदतम्, आयुः, मा-निर्वादिष्टम्, मृजाम्, मा-निर्वादिष्टम्) हे गृहसमान, शकटरूप देवताओं, अपने, गोठ को, संव ओर से कहो, यजमान की आयु को, पशु आदि से रहित मत उच्चारण करो, पुत्रादि मजा को, शाप रूप दुर्वाक्य को मत कहो। चौथे मंत्र से उत्तर वेदी के पश्चिम में ३ परिक्रमा होजाने पर दोनों शकट को मध्यफलकाधारस्थ कर के स्थापन कर इस मंत्र से अभिमन्त्रण करे। मन्त्रार्थ—(पृथिव्याः, अन्नं, चर्म्मन्, रमेधाम्) पृथिवी के, इस, देवयजन रूप स्थान में, कीड़ा करो ॥ १७ ॥

विष्णोर्नुक्तं धीर्गुणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे र-
 जांसि । यो अस्मभ्यामुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रे-
 योऽस्मायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

इस काण्डिका में २ मंत्र हैं, दोनों का औतथ्य दीर्घतमा ऋ०,

छन्दः ३ ले, का, स्वरादापीं त्रि०, २ रे को यजु और देवता दोनो का विष्णु है। आध्वेयु दोनो हविर्धान को उत्तर और से परिक्रमण कर दक्षिण हविर्धान को इस मंत्र से स्तम्भ पर खड़ा करे। मंत्रार्थ— (विष्णोः, नुकम्, वीर्याणि, प्रबोचम्, यः, पार्थिवानि, रजांसि, विम मे, यः, जेधा, विचक्रमाणः, उरुगायः, उत्तरम्, सधस्यम्, अस्क भायत) सर्वव्यापी विष्णु भगवान् के, किन २ क्रमों को, कहूँ, अर्थात् परमात्मा की क्या स्तुति करूँ। उनकी महिमा असीम है, जिस परमात्मा ने, भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्गसम्बन्धी ज्योतिषियों को, रचा है, जो परमात्मा, तीन लोक में अग्नि वायु सूर्यरूप से, तीन पद धारण करता हुआ, महात्माओं से गाया गया है, ऊपर के देवताओं के स्थानरूप घुलोक को, स्तम्भित किया है। दूसरे मंत्र से अग्नि कोष में स्थूल गाँदे। मंत्रार्थ— (विष्णवे, त्वा) हे स्थूलकाष्ठ, विष्णु देव की असन्नता के लिए, तुझको गाढ़ता हूँ ॥ १८ ॥

॥ त्रिषो वा विष्णोः उत्त वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोः ॥ अन्तरिक्षात् ॥ उभा हि हस्ता वसुना पूणस्वाप्रयच्छ ॥ दक्षिणादौत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

॥ इस कण्डिका के मंत्र का अति० दीप० श्रु०, निच्युदापीं जग० छ० और विष्णुदेवता है। इस मंत्र से प्रतिपस्याता उत्तर शकटको खड़ा करता हुआ भूमि में पूर्ववत् स्तम्भको खननकर गाँदे। मंत्रार्थ (विष्णोः, विष्णोः, दिवः, वा, पृथिव्याः, उत्त वा, महः, उरोः, अन्तरिक्षात्, वा, वसुना, उभा, हि, हस्ता, पूणस्व, दक्षिणात्, उत्त, सव्यात्, आप्रयच्छ, विष्णवे, त्वा) हे सर्वव्यापिन्, परमात्मेन्, स्वर्गलोक से, वा, पृथिवीलोक से, भी, और, वड़े, विस्तीर्ण, अन्तरिक्ष से, भी, धन से, दोनो, ही, हाथ, पूर्णकरो, तब धनपूर्ण—दहिने, वा, वामहस्तसे, अनेक प्रकार के धनस्त्र हमको दो, हे काष्ठस्तम्भ, विष्णुदेव की शीति के लिए, तुझको गाढ़ता हूँ ॥ १९ ॥

प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण भृगो न भीमः कुचरो गिरि-
ष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमेणीष्वपिक्षियन्ति भुव-

॥ नानि विश्वा ॥ २० ॥ (विष्णोः, रराटमसि, विष्णोः, स्यूरसि, विष्णोः ध्रुवोसि) ।
 इस मंत्र का ओं दी० रु०, विरा० त्रि० छन्द और विष्णुदेवता है।
 मध्यम छंदी को स्पर्शकर इस मन्त्र को पढ़े। मन्त्रार्थ—(तत्, भीमः,
 कुचरः) मृगः—न, गिरिष्ठाः, विष्णुः, धीर्मेण, मस्तवते, यस्य, उरुपु,
 त्रिपु, विक्रमणेपु, विश्वा, भुवतानि, अधिक्षियन्ति) वह, जिसे
 चराचर भयमानते हैं, सिद्धकी—समान, पृथिवीपर मत्स्यादिरूप से
 विचरनेवाला, देह में अन्तर्यामीरूप से स्थित, सर्व व्यापी परमा-
 त्मा, असुरवध तथा भक्त और धर्मकी रक्षारूप पराक्रम से, स्तुति
 को प्राप्त होता है, जिस परमात्मा के, महान्, तीन, पाँदमक्षेपण स्थान
 तीनों लोकों में, सब, लोक, निवास करते हैं ॥ २० ॥
 (विष्णोः रराटमसि, विष्णोः, अन्त्रे स्थो, विष्णोः स्यूरसि,
 विष्णोः ध्रुवोसि) । विष्णवमसि, विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥
 इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं, क्रमि चारों का ओं दी०, छन्द १ले का,
 याजु० उ०, २। ३। ४ का, दे० पंक्ति, ५ वे का याजु० वृह०।
 देवता चारों का विष्णु है। दोनों हविर्धान शंकट को दक्षिणोत्तर
 स्थापन करके उनके ढकने को मण्डप बनावें और विष्णुदेवता होने
 से मण्डप को भी विष्णु कहते हैं और विष्णु के सब अवयव होने
 से जैसे ललाट उच्च अवयव है उसी प्रकार हविर्धान मण्डप के पूर्व
 द्वारवर्ती स्तम्भ के मध्य में एक कुशों की माला गुंथी जाती है
 उस माला वा उसके बन्धनाधार तिरछे बाँस को सम्बोधन
 करते हैं उसका मंत्र। मन्त्रार्थ—(विष्णोः, रराटम, असि) हे दर्भ-
 मालाधार वंश तुम—यज्ञरूप विष्णु के, ललाट, स्थानीय, हो। दूसरे
 मंत्र से उच्छाई ललाट के मान्तों को स्पर्श करे। मन्त्रार्थ—(विष्णोः,
 अन्त्रे, स्यः) हे ललाट के मान्त तुम दोनों—यज्ञरूप विष्णु के, ओं-
 ग्रसन्धिरूप, हो। तीसरे मंत्र से अध्वर्यु सूर में सुतली परोकर उस
 से रराटी के चारों दूख द्वारशाखाओं की सीवें। मन्त्रार्थ—(विष्णोः,
 स्यूर, असि) हे वृहत्सूची तुम—यज्ञीयमण्डप की, सूची, हो। चौथे
 मंत्र से सीवन के आरम्भ में रस्सी की जड़ में गाँठ देव। मन्त्रार्थ—

(विष्णोः, ध्रुवः, असि) हे ग्रन्थि तुम—यज्ञीय विष्णुरूप मण्डप की; अतिदृढ़ ग्रन्थि, हो । पाँचवें मंत्रसे पूर्वार्ध वाँसों के मण्डपको वनाकर स्पर्श करै । मन्त्रार्थ—(विष्णवम्, असि, विष्णवे, त्वा) हे हविर्धान तुम—विष्णु सम्बन्धी, हो, इस कारण विष्णु की प्रीति के अर्थ, तुम्हको स्पर्श करता हूँ ॥ २१ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेभिनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहं रक्षसां रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं, चारों का औ० दीर्घ० ऋ०; छंदः १ ले का मर्जा० बृह०, २ रे का याजु० गाय०, ३ रे का आसु० उष्टिणक्; ४ थे का आर्षीपक्ति । देवता पहिले और दूसरे का अग्नि, ३ रे का रक्षोघ्न और ४ थेका उपरव है । १ ले मंत्र से काठका कुदाल लेकर यूपवाटकी समान चार गड़ोंका चिन्ह करै । मन्त्रार्थ—(सवितुः देवस्य, प्रसवे, अग्निनोः, बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम्, त्वा, आददे) हे अग्नि—सविता, देवता की, प्रेरणा होनेपर, अग्निनीकुमार की, बाहुमावको प्राप्त अपनी भुजाओं से, पूषादेवता के, हस्तमाव को प्राप्त अपने हाथों से, तुम्हको, उपरवकार्य में ग्रहण करता हूँ । इस अग्नि को खतनोन्मुख करके दूसरे मंत्र से दृढ़मुष्टि करै । मन्त्रार्थ—(नारी, असि) हे अग्नि, तुम हमारा उपकार करनेवाली, हो । तीसरा मंत्र पढ़कर अग्निद्वारा अग्निकीण आदि चारों कोनों में चार गड़हे खोदने को आदेश भर गोल आकार में कुरेद । मन्त्रार्थ—(बृहन्, बृहन्, रक्षसां, ग्रीवा, अपि, कृन्तामि) यद, मैं अध्वर्यु, यज्ञविनाशक राक्षसों की, गर्दनो को, भी, काटता हूँ । चौथे मंत्र से परकण्डिका के प्रथम मंत्रतक चारों ओर लिखनेके अनुसार बाहु भर के चार गड़हे खोद । मन्त्रार्थ—बृहत्, बृहद्रवाः, असि, इन्द्राय, बृहतीम्, वाचम्, वद) हे घोरतर शब्दकारी उपरव, तुम—महान्, महाशब्द करते, हो, इन्द्रदेवता की प्रीति के लिए, ऐसी उच्चाध्वनि

वाली, वाणी को, बोलो ॥ २२ ॥
 रक्षोहर्णं बलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं बलगमुत्किरामि
 यस्मे निष्ठयो यममात्यो निचखानेदमहन्तं बलगमु-
 त्किरामि यस्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तं
 बलगमुत्किरामि यस्मे सर्वन्धुर्यमसंबन्धुर्निचखानेद-
 महन्तं बलगमुत्किरामि यस्मे सजातो यमसजातो नि-
 चखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

इस काण्डिका में ५ मंत्र है, पाँचों का औत० दी० ऋ०, छंद-
 १ले का. निच्यु० गाय०, २।३।४ थे का भुरि० गाय०, ५वें का
 यायुषीगा० । देवता सबका लिहोक्त है । पूर्वमंत्र का शेष-(रक्षो-
 हणम्, बलगहनम्, वैष्णवीम्) राक्षसवधविषयक, कृत्यानाशक, और
 यक्षराक्षक विष्णु से सम्बन्ध रखनेवाला है. यह इन्द्र से कहो ।
 १ले मंत्र से अग्निकोण के गढ़े में से मट्टी निकालो। मन्त्रार्थ-(निष्ठयः,
 यम्, अमात्यः, यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, बलगम्,
 उत्किरामि) अत्यन्त संघातरूप से वर्धमान चाण्डाल आदि या
 शरीर के सम्बन्धी आदि ने, जिसका, घर के कृत्यवाता सम्म-
 तिदाता ने, जिसका, मेरे, अनिष्ट के लिये, प्रयोग किया, मैं, उस,
 इस, अभिचार को, दूर करता हूँ । दूसरे मंत्र से नैऋत्यकोण के
 गढ़े से मट्टी निकालकर फेंकौ । मन्त्रार्थ-(समानः, यम्, असमानः,
 यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, बलगम्, उत्किरामि)
 धनकुल आदि समान ने, जिस कृत्यको, तथा जिसको, धनकुल
 आदि में न्यून वा अधिकने, मेरे वधके निमित्त, प्रयोग किया है,
 मैं, उस, इस, कृत्या को, उत्खात सदित निकालकर फेंकता हूँ ।
 तीसरे मंत्र से वायुकोण की मृत्तिका निकालौ । मन्त्रार्थ-(संबन्धुः,
 यम्, असंबन्धुः, यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, बलगम्,
 उत्किरामि) मातुलादि समान कुलवाले ने, जिसकृत्या को, तथा
 असम्बन्धीने, जिसको, मेरे निमित्त, प्रयोग किया, मैं, उस, इस
 कृत्याको, दूर फेंकता हूँ । ४ थे मंत्र से ईशानकोण के की

ऋषि सब का औत्तम्य दीर्घतमा है। बन्द ४ का आसुरी उष्णिक्,
 ५ का याजुषी जगती, ६ का याजुषी पंक्ति और ७ का दैवी ज-
 गती है। देवता ४। ५। ६ का यव, ७ का औदुम्बरी, ८। ९ का
 पितर है। २२ वीं कण्विका में प्रथम ३ मंत्रों का विनियोग और
 व्याख्या हो चुकी है। चौथे मंत्र से इस गर्त के चारों ओर जल
 बिड़ककर गीली भूमि में जाँ योवै। मंत्रार्थ—(यवः, असि, द्वेपः,
 अस्मत्, यवय, अरातीः, यवय) हे शस्य ! तुम यवहो, हमारे, शत्रु
 वा दुर्भाग्य को हमसे दूर करो, हमारे बैरियों को, दूर करो।
 ५ वें मंत्र से गूलड़ की शाखा के अग्र, मध्य और मूल में, जलपात्र
 में जाँ बालकर मोक्षण करै। मंत्रार्थ—(देवि, त्वा, अन्तरिक्षाय,
 त्वा, पृथिव्यै, त्वा) हे गूलड़ की शाखा के अग्रभाग ! पृथिवी की
 प्रीति के अर्थ, तुम्हको मोक्षण करता हूँ, हे मध्यभाग ! अन्तरिक्ष
 की प्रीति के अर्थ, तुम्हको मोक्षण करता हूँ, हे मूलभाग ! पृथिवी
 की प्रीति के अर्थ, तुम्हको मोक्षण करता हूँ। छठे मंत्र से बचेहुए
 जल को उस गर्त में डालै। मंत्रार्थ—(पितृपदनाः, लोकाः, शु-
 न्भताम्) पितरों के निवासस्थान, लोक, शुद्ध हों। ७ वें मंत्र से
 गर्त के चारों ओर उत्तराग्र कुशा बिड़ावै। मंत्रार्थ—(पितृपदनम्
 असि) हे कुशाओं ! तुम पितरों के बैठने का आसन, हो ॥ २६ ॥

चद्विंशं तस्तभानान्तरिक्षं पृणं दृढं ह्रस्व पृथिव्या न्यु-
 त्तानस्त्वा मांरुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा।
 अश्वनिस्त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म
 दृढं ह्रस्वं दृष्ट्वा युर्दृष्ट्वा प्रजान्दृष्ट्वा ॥ २७ ॥

इस कण्विका में ४ मंत्र हैं, ऋषि चारों का औत्तम्य दीर्घतमा।
 बन्द पहिले का शुरिक प्राजापत्यानुषूप, दूसरे का आप्युष्णिक्,
 तीसरे का शुरिक्षाम्नीहृती और चौथे का आसुरी गायत्री है।
 देवता चारों का औदुम्बरी है। प्रथम मंत्र से औदुम्बरी को खड़ा
 करै। मंत्रार्थ—(दिवम्, उत्तमान, अन्तरिक्षम्, पृण, पृथिवीम्,
 आदृष्ट्व) हे औदुम्बरी देवता ! पृथिवी को, स्ताम्भित करो।

अन्तरिक्ष को, पूरित करो । पृथिवी को, दृढ करो । दूसरे मंत्र से गूलद की शाखा को गढ़े में डाले । मंत्रार्थ—(मित्रावरुणौ, युतानः, मारुतः, ध्रुवेण, धर्मणा, त्वा.मिनोवु) हे गूलरकी शाखे मित्रावरुण नामक दोनों देवता, दीप्तिमान्, वायुदेवता, स्थिर, धर्म से, तुझको, गढ़े में डालै । तीसरे मंत्र से यूप की समान मट्टी डालकर जल से पूरित करै । मंत्रार्थ—(ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, रायस्पोषवनि, त्वा. पर्यहामि) हे गूलर की शाखे ! ब्राह्मणों से सेवनीय, क्षत्रियों से सेवनीय, धनपुष्टि के लिये सेवनीय । तुझ को, इस गढ़े में मट्टी डालकर दृढ करता हूँ । चौथे मंत्र से अध्वर्यु उस मट्टी से भरेहुए गढ़े को मित्रावरुण दण्ड से कूटै और मट्टी को गढ़े में डालै । मंत्रार्थ—(ब्रह्म, दृंह । तत्रम्, दृंह । आयुः, दृंह । मजाम्, दृंह) हे शाखा ! ब्राह्मणजाति को, दृढ कर । क्षत्रियजाति को, दृढ कर । जीवन को, दृढ कर । पुत्र आदि मजा को, दृढ कर ॥ २७ ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने मजया
पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्र-
स्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

इस काण्डिका में ३ मंत्र हैं । ऋषि तीनों का औत्तथ्यदी०, छन्द-
१ ले का निष्पृदार्षी गायत्री, २ रे का याजुषी त्रिपुष् और ३ रे का
साम्युष्णिक् है । देवता—१ ले का औदुम्बरी, २ रे का द्यावापृथिवी
और ३ रे का इन्द्र है । १ ले मंत्र को पढ़कर औदुम्बरी को स्पर्श
करै । मंत्रार्थ—(ध्रुवा, असि । अयम्, यजमानः, अस्मिन्, आय-
तने, मजया, पशुभिः, ध्रुवः, भूयात्) हे शाखा ! तू स्थिर, है । यह,
यजमान, इस, अपने स्थान में, सन्तान सहित, पशुओं सहित, स्थिर,
हो । दूसरे मंत्र से अध्वर्यु औदुम्बरी के, जहाँ से दो शाखा उत्पन्न
हुई हों उस प्रदेश में सुवे से घृत का होम करै । मंत्रार्थ—(घृतेन,
द्यावापृथिवी, पूर्येथाम्) होमेहुए घृत से, पृथिवी और स्वर्ग, पूरित
हो । तीसरे मंत्र से औदुम्बरी को गाढ़कर सदः नाम मण्डप को
बनाकर उसको बाने के लिये तृणों की चटाई को लगावै । मंत्रार्थ

(इन्द्रस्य, छदिः, विश्वजनस्य, छाया, आसि) हे तृण की चटाई
तू ऐश्वर्यवान् यजमान के, इसनण्डप को छानेवाली, सबजनों
की छाया रूप, हो ॥ १८ ॥

परित्वा गिर्वणो गिरं इमा भवन्तु विश्वतः ।

वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

इस का मधुच्छन्दा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है ।
इस मंत्र से छाने के परिवारको से छतको चारों ओर से आच्छादन
करे । मंत्रार्थ—(गिर्वणः, इमाः, अनुवृद्धयः, गिरः, त्वा, विश्वतः,
परिभवन्तु । वृद्धायुम्, जुष्टयः, जुष्टाः, भवन्तु) हे स्तुतियोग्य सभा
के अधिष्ठात्री इन्द्रदेव !, यह, सवनक्रम से वृद्धिपुक्त, स्तोत्र शास्त्र
रूप वाणी, तुमको, सब ओर से, ग्रहण करो, बड़े मन्त्रवान् तुमको
हमारी सेवा, भिय, हों ॥ २९ ॥

इन्द्रस्यस्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोसि । ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ३०

इस कण्विका में ४ मंत्र हैं । ऋषि—४ रों का मधुच्छन्दा ।
छन्द—१ । २ । ४ का याजुषी गायत्री और ३ रे का दैवी वृहती है
देवता १ । २ । ३ का इन्द्र और ४ थे का विश्वेदेवा है । १ ले मंत्र
को पढ़कर पूर्व द्वार के दक्षिण स्थण आदि के मदाक्षिण क्रम से
चारों दारों का परिपीवण करे अर्थात् रस्ती को भिलावे । मंत्रार्थ—
(इन्द्रस्य, सूरः, असि) हे रस्ती तू सभा के अधिष्ठात्री इन्द्रदेवता के
सम्बन्ध की, सीवन, है । दूसरे मंत्र से गाँठ देय । मंत्रार्थ—(इ-
न्द्रस्य, ध्रुवः, असि) हे गाँठ तू इन्द्र के सम्बन्धवाली, स्थिर, है
३ रे मंत्र से सभा को सम्बोधन करे । मंत्रार्थ—(ऐन्द्रम्, असि)
हे सभा तू इन्द्रदेवता की प्रसन्नता के लिये निर्मित, है । ४ थे मंत्र
से हविर्धान मण्डप के वायव्य कोण के उत्तरभाग में आग्निधि
नामक अग्निस्थान बनाकर उसको स्पर्श करे । मंत्रार्थ—(वैश्वदे-
वम्, असि) हे आग्निधि तुम सब देवताओं के आवाहनस्थान, हो ।

विभूरसि मुवाहंणो वह्निरसि हव्यवाहनः ।

आश्रोमि प्रचेतास्तुथोसि विश्ववेदाः ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र है । ऋषि-सवका मधुच्छन्दा । छन्द-
१ ले का प्राजापत्या गायत्री, दूसरे तीसरेका याजुषी गायत्री और
चौथे का दैवी जगती है । देवता चारों का अग्नि है, अध्वर्यु उत्तरमुख
बैठकर अग्नियों की आश्रय छोटी वेदीरूप धिष्ण्यों को मट्टी से
बनावे, उस में पाहिले आग्नीध्र की वेदी को प्रथम मंत्र पढ़कर
सम्हालै । मंत्रार्थ—(विभूः, प्रवाहणः, असि) हे आग्नीध्रीय धि-
ष्ण्य के अग्नि तुम नानारूपधारक; हवि के पहुँचानेवाले, हो ।
तदनन्तर पश्चिममुख अध्वर्यु पूर्व में सद के द्वार को, उसके उत्तर
में होता के धिष्ण्य को दूसरे मंत्र से सम्हालै । मंत्रार्थ—(बन्धिः,
हव्यवाहनः, असि) हे होतृधिष्ण्य के अग्नि तुम यज्ञकर्म के निर्वा-
हक, देवताओं को हव्य प्राप्त करानेवाले, हो । फिर उत्तरमुख अध्वर्यु
औदुम्बरी के अग्निकोण और होतृधिष्ण्य के दक्षिण में मैत्रावरुण
के धिष्ण्य को तीसरे मंत्र से सम्हालै । मंत्रार्थ—(श्वात्रः, प्रचेताः,
असि) हे मैत्रावरुण धिष्ण्य के अग्नितुम शीघ्रगामी मित्ररूप, श्रेष्ठ
ज्ञानवाले वरुणरूप, हो । होतृधिष्ण्य के उत्तर ब्राह्मणाच्छंसि, पोता,
नेष्टा, अच्छावाक् चारों ऋत्विजों के धिष्ण्यों को समानान्तर चौथे
मंत्र से सम्हालै । मंत्रार्थ—(तुथः, विश्ववेदाः, असि) हे ब्राह्मणा-
च्छंसि धिष्ण्य के अग्नितुम ब्रह्मरूप अथवा देवताओं में दक्षिणा
विभाग करनेवाले, सर्वज्ञ, हो ॥ ३१ ॥

इतिगांसि कविरंघारिरसि यम्भारिरयस्यूरसि
दुर्वस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशा
नुःपरिपद्योसि पर्वमानो नभोसि प्रतक्वा मृष्टोसि
हव्यसूदन अतर्धामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका में ९ मंत्र हैं । ऋषि-सवका मधुच्छन्दा, छन्द-१ ।
६ । ७ का याजुषी गायत्री, २ । ३ । ४ । ८ । ९ वें का याजुष्यनुष्टुप
और ५ वें का याजुष्युष्णिक् है । देवता—१ । २ । ३ । ४ का अग्नि,
५ वें का आहवनीय, ६ ठे का वहिष्पवमान, ७ वें का चत्वाल, ८
वें का शामित्र और ९ वें का औदुम्बरि है । ब्राह्मणाच्छंसि धिष्ण्य

के कुछ उत्तर में पोतृधिष्य बनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का प्रथम मंत्र से नामकरण करै । मंत्रार्थ (उशिक्ष, कविः, असि) हे पोतृधिष्यग्ने ! तुम कमनीय, और क्रान्तदर्शी होने से कविताम वाले, हो । पोतृधिष्य के कुछ दूर नेतृधिष्य बनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का दूसरे मंत्र से नामकरण करै । मंत्रार्थ—(अंधारिः, वन्भारिः, असि) हे नेतृधिष्य के अग्नि ! तुम पापनाशक होने से अंधारि, पोषक होने से वन्भारि, हो । ३ रे मंत्र से नेतृधिष्य के कुछ दूर मण्डप के मध्यगत आग्नीध्र से कुछ दक्षिण में अश्वावाक् धिष्य बनाकर उसपर स्थित अग्नि का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(अवस्यूः, दुवस्वान्, असि) हे अश्वावाक् धिष्य के अग्नि तुम अन्न चाहनेवाले, हविष्मान् हो । चौथे मंत्र से मार्जालीयधिष्य बनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(भुन्ध्युः, मार्जालीयः, असि) हे मार्जालीय धिष्य के अग्नि तुम पवित्र करनेवाले, मार्जन करनेवाले हो । ५ वें मंत्र से सभामण्डप के पूर्वभाग की उत्तरवेदी में स्थित आहवनीय अग्नि का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(सम्राट्, कृशानुः, असि) हे उत्तरवेदी के आहवनीय अग्ने तुम बहुतमकार की आहुति धारण करने से भलेप्रकार शोभायमान, और पयोधत आदि से कृश यजमान के अनुगामी, हो । ६ ठे मंत्र से पश्चिम में ऐष्टिक वेदी के उत्तर वहिष्पवमान धिष्य बना कर उसका नामकरण करै । मंत्रार्थ—(परिपद्यः, पवमानः, असि) हे वहिष्पवमान देश तुम स्तुतिकारक ऋत्विजों की सभा के योग्य और पवित्र करनेवाले, हो । ७ वें मंत्र से सभामण्डप के पूर्वद्वार में चत्वाल का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(नभः, प्रतका, असि) हे चत्वाल तुम द्विद्रुक्त होने से आकाशस्वरूप, और ऋत्विजों के प्रदक्षिण चलने से प्रतका नामवाले, हो । ८ वें मंत्र से चत्वाल के दक्षिण में शामित्रधिष्य का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(मृष्टः, हव्यसूदनः, असि) हे शामित्रनुम पवित्र, और हविषाक के कारण, हो । ९ वें मंत्र से सदोमण्डप के मध्य पश्चिम प्रान्त की औदुम्बरी

का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(ऋतधामा, स्वर्ग्योतिः, असि) हे श्रीदुम्बरि तुम उद्गाता की प्रधानकार्यस्थान, और स्वर्गमकाशक, हो ।

समुद्रोसि विश्वव्यचा अजोस्पेकपादाहिरसि बु-
ध्न्यो वागस्येन्द्रमासि सदोस्पृतस्य दारौ मा मा
सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्रमातिरस्वस्ति मे-
स्मिन् पृथि देवयाने ऋयात् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका में ६ मंत्र हैं । आपि सब का मधुच्छन्दा, छन्द
१ ले का प्राजा० गाय०, २ । १ कादै० पंक्ति, ४ का याजुषीवृ०
१ वें का याजुषी० प०, ६ ठे का निच्युदार्पीगा० है, देवता १ ले का
ब्रह्मासन, २ रे का अग्नि, ३ रे का गार्हपत्याग्नि, ४ थे का सदः,
५ वें का द्यौषिशाखे, ६ ठे का सूर्य है । १ । २ । ३ मंत्र से सदोमण्डप के
पूर्वद्वार के पूर्वभाग में स्थित होता, ब्रह्मासन शालाद्वार और प्राज-
हित को देखै मंत्रार्थ—(१ समुद्रः, विश्वव्यचाः, असि) हे ब्रह्मासन
तुम सब देवताओं, के सन्मुख आने के स्थान अथवा समुद्र तुम
ज्ञान से गम्भीर ब्रह्मा के आसन, यज्ञ में कृत अकृत देखने के स्थान
हो । (२ अजः, एकपात्, असि) हे शालाद्वार के अग्नि तुम आह-
वनीय रूप से यज्ञ में जानेवाले वा अजन्मा, अद्वितीय रक्षक वा
सब प्राणी जिस के एक चरण में हैं ऐसे, हो । (३ अहिः, बुध्न्यः,
असि) हे प्राजहितनाम गार्हपत्य अग्नि । तुम शालाद्वार के नए
गार्हपत्य के उत्पन्न होने परभी अक्षयरूप, और आधानकाल में
प्रथम स्थापित होने के कारण मूलरूप, हो । ४ थे मंत्र से सदोम-
ण्डप का मार्जन करै । मंत्रार्थ—(४ वाक्, असि । ऐन्द्रम्, असि,
सदः, असि) हे सभामण्डप तुम अपने मध्यवाक् से कर्म
होने के कारण वाणीरूप, हो, इन्द्र को देवता रखनेवाले,
हो । बैठने के स्थान, हो । ५ वें मंत्र से द्वार के दोनों ओर
स्थापित केले के खंभ आदिका मार्जन करै । मंत्रार्थ (५ ऋतस्य,
दारौ, मा, मा सन्ताप्तम्) हे यज्ञ के द्वार के शाखाओं तुम, मुझ
को, मत सन्तप्त करो । ६ ठे मंत्र से यजमान देवयानमार्ग के

संस्कार के लिये सूर्य का अभिमन्त्रण करै । मंत्रार्थ--(६ अध्वपते, अध्वनाम्, मा, मतिर । आस्मिन् देवयाने, पथि, मे, स्वस्ति भूयात्) हे मार्ग के रक्षक सूर्य, मार्गों में वर्तमान, मुझको बढ़ाओ । इस, देवयान, मार्ग में, मेरा, करवाए, हो ॥ ३३ ॥

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरास्थ

सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्नयः पिपृत

माघ्नयो गोपायत मा नमो वास्तु मा मा हिंसिष्ट ३४

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं । ऋषिदोनों का मधु०, छन्द-१ ले का याजुषीवृहती और २ रे का निष्युद्धाक्षी अनु० है । देवता १ ले का ऋत्विज और दूसरे का धिष्ण्य है । १ ले मंत्र से यज्ञमान सब ऋत्विजों का अभिमन्त्रण करै । मंत्रार्थ--(मित्रस्य, चक्षुषा, मा, ईक्षध्वम्) हे ऋत्विजों ! मित्र की, दृष्टि से, मुझको, देखो । दूसरे मंत्र से अध्वर्यु भाओं धिष्ण्यों को देखता हुआ प्रार्थना करै । मंत्रार्थ (सगराः, अग्नयः, सगरेण, नाम्ना, सगराः, स्थ । अग्नयः, रौद्रेण अनीकेन, मा, पातम् । अग्नयः, मा, पिपृत । मा, गो पायत । वः, नमः, वास्तु । मा, मा, हिंसिष्ट) हे स्तुतियुक्त, धिष्ण्यों की अग्नियों ! स्तुतियुक्त नामधिष्ण्य से, स्तुति कीहुई, हो । हे अग्नियों ! उग्र, सेवा वा मुख से मुझको, रक्षा करो । हे अग्नियों, मुझको, धनदि से, पूर्ण करो । मुझको रक्षा करो । तुम्हारे अर्थ, मणाम हो । मुझको मत मारना अर्थात् यज्ञ में कोई विघ्न न हो ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां तं समित् । त्वं

सोम तनूकृद्भ्यो देवोभ्योन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि

वरुणं स्वाहा । जुवाणो अप्तुराज्यस्य वेनु स्वाहा ॥ ३५ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं । ऋषि-१ ले का मधु०, २ । ३ का भृगु सुत क्रतु । छन्द-१ ले का साम्नी अनुष्टुप्, २ का अनवसानागाय०, ३ रे का एकपदा विराट् है । देवता १ ले का विश्वेदेवा, २ । ३ का सोम । १ ले मंत्र से ध्रुव में से ५ बार दधि मिला पृषदाभ्य लेयां मंत्रार्थ- (विश्वरूपम्, ज्योतिः, असि । विश्वेषाम्, देवानाम्, समित्) हे

आज्य । तुमरूप देने से विश्व के गूँ और दीप्ति देने से ज्योति, हो ।
सब देवताओं के, प्रकाशक हो । २ मंत्र से प्रज्वलित समिधा के
ऊपर एकबार लियेहुए घी का जुहु से होम करे । मंत्रार्थ—(सोम,
त्वम्, अन्यकृतेभ्यः, द्वेषाभ्यः, तनूकृद्भ्यः, यन्ता, उरु, वरुथम्, आसि
स्वाहा) हे सोम ! तुम हमारे विरोधियों से भेरित, शत्रुओं और
शरीरच्छेदक राक्षसों के लिये, दण्डदाता, और बड़े बलरूप, हो,
ऐसे के निमित्त यह होम हो । ३ मंत्र से फिर भी जुहु में एकबार
लियेहुए घृतको मदीस समिधा पर आहुति देय । मंत्रार्थ—(जुषाणः
अप्सुः, आज्यस्य, वेसु, स्वाहा) मसन्न सोम, मेरे दियेहुए घृत
का, पान करो, हमारी दीहुई आहुति सुन्दररूप से ग्रहण कीजाय ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विद्वानि देव वयु
नानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयि-
ष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

इसका अगस्त्य ऋ०, त्रिष्टुब्जन्द और अग्नि देवता है । इस मंत्र
को पढ़ताहुआ अध्वर्यु आग्नीध्र के समीप जाने को प्रवृत्त होनेपर
यजमान से कहै । मंत्रार्थ—(अग्ने, देव, विद्वानि, वयुनानि, विद्वान्
अस्मान्, राये, सुपथा, नय । अस्मत्, जुहुराणम्, एनः, युयोधि,
ते, भूयिष्ठाम्, नम उक्तिम्, विधेम) हे अग्नि, देव, सब, ज्ञानों
को जानने वाले तुम, हमको, धन और यज्ञफल के लिये, श्रेष्ठमार्ग
से प्राप्त करो । हमारी, इच्छित क्रिया के प्रतिबन्धक, पापको, दूर
करो । तुम्हारे अर्थ, बहुत, नमस्कार वचन को, हम, उच्चारण
करते हैं ॥ ३६ ॥

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वं यस्मृधः पुर एतु
प्रभिन्दन् । अयम्वाजाञ्जयतु वाजसाताव्यथै
शत्रूञ्जयतु जह्वापाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

इसका अगस्त्य ऋ०, आ० त्रि० छन्द और अग्नि देव० है ।
इसको पढ़ताहुआ सब को मण्डप के उत्तर भाग में लेजाकर
ग्नीध्रीय धिष्य में अग्नि को स्थापित करे, मंत्रार्थ—(अयम्

नः, वरिवः, कृणोवु) यह, अग्नि, हमारे, धनको, करै। (अयम् मृधः, अभिन्दन्, पुरः, एतु) यह अग्नि, संग्राम में, शत्रुसेनाओं को, छिन्नाभिन्न करताहुआ, आगे आवै। (अयम्, वाजसतौ, वाजान्, जयतु) यह अग्नि, अन्नविभाग करने में अन्नों को, हमें देने के निमित्त जीते। (जर्हपाण्यः, अयम्, जयतु, स्वाहा) अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ, यह अग्नि, शत्रुओं को, जीतो, वह हमारी आहुति को सुन्दर रूप से ग्रहण करै ॥ ३७ ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयांय नस्कृधि घृतं
घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतित्तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

इसका अग० ऋ०, भुरिण् आ० अनु० छन्द, विष्णोदेव० है। इस को पढ़कर उत्तरवेदी के आहवनीय अग्निकुण्ड में आहुति देय मंत्रार्थ—(विष्णो, उरु, विक्रमस्व) व्यापक आहवनीय, अग्निरूप परमात्मन्, बहुत पराक्रम करो, (सयाय, नः, उरु, कृधि) ब्रह्म में निवास के निमित्त, हमको, अधिकता, करो। (घृतयोने, घृतम्, प्रपिब) हेघृत से बढनेवाले, घृतको, पियो। (यज्ञपतिम्, पतिर, स्वाहा) यजमान को, षडाधो, तुमको यह आहुति देते हैं ॥ ३८ ॥

देव सवितरेपते सोमस्त रक्षस्व मा त्वा दभन्
एतत्त्वं देव सोम देवो देवानां उपांगा इदम्-
हम्मनुष्यान् सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वर्णस्य
पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं। आपि तीनों का अगस्त्य, छन्द-१ का आ० गाय०, २ का मा० त्रि०, ३ का याजु० त्रि० है। देवता—१ का सविता २ का सोम, ३ का लिङ्गोक्त है। जुहूआदि आज्यस्थालीपर्यन्त स्थापन करके, यजमान से सोम लेकर हविर्धान में प्रवेश करै फिर दक्षिण हविर्धान में मृगचर्म बिछाकर उसपर सोम रखगा हुआ पहिला मंत्र पढ़े। दूसरे मंत्र से सोम का उपस्थान करे। तीसरे मंत्र से हविर्धानमण्डप से निकले। मंत्रार्थ—(१ सवितः, देव, एष, सोमः, ते । तम्, रक्षस्व । त्वा, मा, दभन्) हे सब के भेरक दे-

वता यह सोम आप के अर्पण है । उसको रक्षा करो । तुम सोम के रक्षक को कोई उद्रपव माप्त न हो । (२ सोम, देव, त्वम्, देवः देवान्, एतत्, उपागाः । इदम्, अहम्, रायस्पोषेण, सह, मनुष्यान्) हे सोमदेव तुम देवता हो, अतः देवताओं को इस समय माप्त हो जाओ । यह मैं यजमान धन और पुष्टि के साथ अपने मनुष्यों को माप्त हूँ । (३ स्वाहा, वरुणस्य, पाशात्, निर्मुष्ये) सोमरूप अन्न देवताओं को पहुँचे, उस सोमदान के मभाव से मैं वरुण की पाश से छूटूँ ॥ ३९ ॥

अग्नेव्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूद्रेपा
सा त्वयि याममं तनुस्त्वय्यभूद्वियं सा मयि ।
यथायधमो व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षाप-
तिरप्यस्तानुतपस्तस्पतिः ॥ ४० ॥

इस का अगस्त्य ऋ०, नि० ब्रा० त्रि० छन्द और अग्नि दे-
वता है, इस मंत्र से आहवनीय में समिध रखकर मदन्ती का
स्पर्शकर गाढ़तर मुष्टि मेखला को करै । मंत्रार्थ — (अग्ने, व्रतपाः,
त्वे, व्रतपाः, तव, या, तनूः, मयि, अभूत्, सा, एषा, त्वयि) हे अग्निदेव !
तुम स्वभाव से सब व्रतों के रक्षक हो, अतः तुम मेरे व्रत के पालक होओ
। आपका जो शरीर मुझ में स्थित हुआ, सो यह तुम्हारा शरीर
तुम्हारा ही हो । (या, उ, मम, तनूः त्वयि, अभूत्, सा, इदम्,
मयि) और जो यह मेरा शरीर तुम में स्थित था, वह यह मेरा
शरीर मुझ में स्थित हो । (व्रतपते, नौ, व्रतानि, यथायधम्) हे
व्रतके पालक हम तुम दोनों के कर्म सम्बन्ध को न तोड़ें । (दी-
क्षापतिः, मे, दीक्षा, अन्वमंस्त) दीक्षा के स्वामी तुमने, मेरी
दीक्षाको अंगीकार किया है । (तपस्पतिः तपः अनु) उपसद् तप के
पालक अग्नि ने, मेरा व्रतपालन उपसदरूप तप स्वीकार किया ४०

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं
घृतयोने पितृ प्र प्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

गुप्त काटने के लिये वनको जाता हुआ, सफलता के लिये चार बार

सुवे में घी लेकर इस मंत्र से आहवनीय कुण्ड में दहन करे। इस की व्याख्या ३८ वें मंत्र में हो चुकी ॥ ४१ ॥

अत्यन्या ॥ अगन्नान्या ॥ उपागामूर्वाक्त्वा परे
भ्योविदम्परोचरेभ्यः। तन्त्वा जुपामहे देववनस्पते
देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुपन्तां विष्णो-
वेत्वा। औपधे त्रायस्व स्वधिते मैत्रं हि ॥ ४२ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं। ऋ० सब का अग०, बन्द० १। २ का यु० वा० वृ०, १ का याजु० गा०, ४ का दैवीज० है। हुतशेष घृत लेकर तक्षा (बड़ई) के साथ वन में जाने पर १-मंत्र से यूप के योग्य एक वृक्ष को पूर्वाभिमुख हो अभिमर्शन वा अभिमन्त्रण करे। २ मंत्र से सुवे में जो हुतशेष घी हो उससे वृक्ष को स्पर्श करे। ३ मंत्र से कुशतरुण को रखकर उसके ऊपर कुठार का प्रहार करे। ४ मंत्र से यूप के योग्य वृक्ष को काटे। मन्त्रार्थ—(१) अन्यान्य, अत्यगाम्, अन्यान्य, न, उपागाम्। त्वा, परेभ्यः, अर्वाक्, अवरेभ्यः, परः, अविदम्, वनस्पते, देव, देवयज्यायै, तम्, त्वा, जुपामहे, देवाः, देवयज्यायै, त्वा, जुपन्ताम्) हे आगे वर्तमान यूपवृक्ष मैं तुमसे अन्य वृक्षों को छोड़कर आया हूँ। यूप के योग्य अन्य वृक्षों के समीप नहीं गया। तुम्हको दूर के वृक्षों से निकट और निकटों से श्रेष्ठ पाकर आया हूँ। हे वन के पालक देव! देवयज्ञ के लिये ऐसे तुमको हम सेवन करते हैं। देवताभी देवयजन के कार्य के लिये तुमको सेवन करें। (२ त्वा, विष्णवे) हे यूपवृक्ष तुमको परमात्मा की प्रीति के लिये स्पर्श करता हूँ। (३ औपधे, त्रायस्व) हे औपध तुम बन्धनभय से मेरी रक्षा करो। (४ स्वधिते, एनम्, मा, हिंसाः) हे कुठार इस यूप के अन्य स्थान का मत व्याधात करो ॥ ४२ ॥

याम्मा लेखीरन्तरिक्षम्मा हिंसीः पृथिव्या स-
म्भव। अयं हित्वा स्वधितिं स्तेति जानः प्राणि-
नां महते सौमगाय। अतस्त्वन्देव वनस्पते
शतवल्गो विरोह सहस्रवल्गो विवय ५ रुहेम ॥ ४३ ॥

इस कणिकामें ३ मंत्र हैं। अपि सवका अगस्त्य है। छन्दः १ का नि० साम्नीष्ट०, २ का साम्नीत्रि०, ३ का आप्रीष्ट० है। देवता तीनों का वृहस्पति है। १ मंत्र से यूप के निमित्त कटकर गिरती हुई शाखा का अभिमन्त्रण करै। २ से उस शाखा के पत्ते आदि दूर करै। ३ से आज्यस्थाली में से एकवार लियेष्टुत को जुहू में लेकर, काटने के स्थान में आहुति देय, मन्त्रार्थ—(१ धाम्, मा, लेखीः । अन्तरिक्षम्, मा, हिंसीः । पृथिव्याः, सम्भव) हे यूप वृक्ष तुम धुलोक को मत बिगाड़ो। अन्तरिक्ष को पीटा मत दो। पृथिवी के साथ मिलो, अर्थात् तीनों लोकों में शान्ति हो। (२ हि, सेतिजानः, अयम्, स्वधितिः, महते, सौभगाय, त्वा, मणिनाय) क्योंकि—यह अति तीक्ष्ण कुठार, बड़ा भारी पेश्वर्य पाने के लिये तुमको यूप बनाता है। (३ वनस्पते, देव, अतः, त्वम्, शतवल्शः, विरोह । वयम्, सहस्रवल्शः, विरुहेम) हे वृक्षदेवता इस स्थाणु से तुम बहुत अङ्कुरवाले होतेष्टुप उपजो। हम पुनपौत्र आदि बहुतसी शाखा वाले हैं॥४३॥

इति धन्वपशुवेदान्तमंत्रा वाजसनेयिसंहिता का सातवादा पञ्चम अध्याय समाप्त.

अथ षष्ठोऽध्यायः

जिसमें सोम की वेदी प्रधान है ऐसे षष्ठम अध्याय में आतिथ्य से लेकर यूपनिर्माणपर्यन्त मन्त्र कहे। अब छठे अध्याय में यूपसंस्कार से लेकर सोमाभिषेक उद्योगपर्यन्त मन्त्र कहे जायेंगे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेदिवन्तो ब्राह्म्याः पूषणो
हस्ताभ्याम् आर्ददे नार्यमीदमहश्चरक्षसाङ्गीचा
अपि कृन्तामि । यचोसि यवयास्मद्वेपो यवया
रतिर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्ध-
न्ताँल्लोकाः पितृपदनाः । पितृपदनमसि ॥ १ ॥

पीछे पाँचवें अध्याय की २६ वीं कणिकामें इस मंत्र की व्याख्या कर चुके हैं। वहाँ लिङ्गशरीर का संस्कार था यहाँ स्थूलशरीर के संस्कार का वर्णन है।

अग्नेणीरंसि स्वावेश उन्नेतृणामेतस्य वितादधि
त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपि-
प्पलाभ्यस्तवौषधीभ्यः । धामग्रेणास्पृक्ष आन्त-
रिक्षम्मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृ ह्रीः ॥ २ ॥

इस क० में ४ मंत्र हैं । सबका साकल्य ऋ०, छन्द-१।१४ का नि०
गाय०, २ का याजु० प०, ३ का याजु० वृ० । देवता ? का शकल
१।४ का यूप, १ का चपाल है । १ से यूप के गढ़े में पाहेले यूप
के मूलभाग का खंभ डाले । २ से उसके ऊपर के भाग में घृत लेपे
३ से ऊपर घृत से लिप्त चपाल को यूप के अग्रभाग पर स्थापन करे ।
४ से ऊँचा करे । मंत्रार्थ- (१ उन्नेतृणाम्, स्वावेशः, अग्नेणीः,
अंसि । एतस्य, वितात्, त्वा, अधि, स्थास्यति) हे यूपखण्ड उठाने
वाले ऋत्विजों को, हलकी होने से सुख से गवेश करने योग्य
अग्रसर हो, तुम इस कर्मको जानो जो कि-तुम्हारे ऊपर दूसरा और
खण्ड स्थापित होगा (२ सविता, देवः, मध्वा, त्वा, अनक्तु) सब
के मेरक देव मधुर घृत से तुम को सींचें (३ सुपिप्पलाभ्यः, औष-
धीभ्यः, त्वा) हे चपाल ! शुभफल युक्त औषधियों के निमित्त तुम्ह
को यूपखण्ड पर स्थापित करता हूँ (४ अग्नेण, धाम, अस्पृक्षः,
मध्येन, अन्तरिक्षम्, अप्राः, उपरेण, पृथ्वीम् अदृ ह्रीः) हे यूप
तुमने अग्रभाग से भुलोक को स्पर्श किया है, मध्यभाग से अन्तरिक्ष
को पूर्ण किया है, अधोभाग से पृथिवी को दृढ़ किया ॥ २ ॥

या ते धामान्युश्मन्निगमध्वै यन्न गावो भूरिशृङ्गा
अयासः । अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परम
स्पदमवभारि भूरि । ब्रह्मवर्नित्वा क्षत्रवर्नि राय
स्पोषवनि पर्युहामि ब्रह्म दधुह क्षत्रन्दुहायुर्दधुह
प्रजान्दधुह ॥ ३ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं । अपि सबका दीर्घित०, छन्द-१ले
का नि०, २ का सामन्यु०, ३ का नि० मा० वृ० । देवता तीनों
॥ यूप है । १ से गढ़े के मध्य में यूपकी जड़ को प्रविष्ट करे ।

२ से उस गढ़े को मट्टी से भरे । ३ से भरेहुए गढ़े को चारों ओर दण्डे से कूटे । मंत्रार्थ—(१ या, ते; धामानि, गमध्यै, उश्मसि, यज्ञ भूरिशृङ्गाः, गावः, अयासः, अन्न, उरुगायस्य, विष्णोः, परमम्, पदम्, आह, तत्, भूरि, अवभारि) हे यूप ! जो तेरे स्थान परगमन करने को हम कामना करें, जहाँ सूर्यदेवता की अति प्रकाशवान् किरणें विस्तृत होती हैं, इस स्थान में महात्माओं से स्तुति किये हुए व्यापक परमात्मा के उत्तम स्थान को कहते हैं, वह बहुत प्रकार से प्रकाश करता है । (ब्रह्मवनि, अन्नवनि, रायस्पोषवनि, त्वा, पर्यु हाभि) हे यूप ! ब्राह्मणों से स्वीकारयोग्य, क्षत्रियों से चाहनेयोग्य धन पुष्टि के निमित्त स्वीकृत तुझपर चारों ओर से मट्टी ढालता हूँ (ब्रह्म, दंड, अन्नम्, दंड, आयुः, दंड, मजाम्, दंड) हे यूप ब्राह्मण जाति को दृढ़कर, क्षत्रिय जाति को दृढ़कर, आयु को दृढ़कर, सन्तान को दृढ़कर ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यन् यतो व्रतानि पश्यते ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

इस का मेधा तिथिऋ०, नि० चृदा० गा० छन्द और विष्णु देवता है। अध्वर्यु यूप का मध्यभाग यजमान को छुवाकर इस मंत्रको पढ़वावै मंत्रार्थ—(विष्णोः, कर्माणि, पश्यतायतः, इन्द्रस्य, युज्यः, सखा, व्रतानि, पश्यते) हे ऋत्विजों परमात्मा के, सृष्टि संहार आदि कर्मों को देखो, क्योंकि—वह इन्द्रका अनुरूप मित्र है, उसने लौकिक वैदिक कर्मों को रचा है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोः परमम्वपदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीच चक्षुरार्ततम् ॥ ५ ॥

इस का मेधा० ऋ०, नि० आ० गा०, छन्द और विष्णु देवता है । अध्वर्यु यजमान को चपाल दिखाता हुआ यह मंत्र पढ़वावै । मंत्रार्थ—(सूरयः, विष्णोः, तत्, पदम्, सदा, पश्यन्ति, दिवि, चक्षुः, इव, आगतम्) वेदान्त के वेत्ता योगी सर्वव्यापक परमात्मा के उस मोक्ष स्वरूप परम पदको सदा देखते

हैं, निरावरण आकाश में चक्षु की समान व्याप्त है ॥ ५ ॥

परिर्वीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परिमं
यजमानं रायो मनुष्याणाम् । दिवःसूनुंरस्येपते
पृथिव्याल्लोक आरुण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

इस क० में ३ मंत्र हैं । स्वका दीर्घ० ऋ०, छन्द-१ का मा-
जा० त्रि०, २ का दे० त्रि०, ३ का साम्यु० है । देवता-१ । ३
का रूप, १ का स्वरु है । १ मंत्र से तीन लटवाली कुशा की रस्सी
बनाकर पूष की नाभि में लपेटे । २ से अग्निष्ट के उत्तरभाग में स्वरु
का अवगूहन करे ३ से वर्षाष्ट पूष के दक्षिण में बिना छिले
११ रूप स्थापन करे । मन्त्रार्थ-(१ परिर्वीः, असि, दैवीः, विशः,
त्वा, परिर्वययन्ताम् । मनुष्याणाम् रायः, इमम्, यजमानम्, परि)
हे यूप तुम चारों ओर रस्सी से घेरेण वा हम से घिरे हो, देवता
ओं की मरुत्पण आदि मजा अथवा पशु तुमको चारों ओर से
घेरें, मनुष्य सम्बन्धी धन इस यजमान को चारों ओर से घेरें
(२ दिवः, सूनुः, असि) हे स्वरु ! तुम, स्वर्ग के पुत्र हो । अ-
र्थाष्टलोक से वर्षा से वृक्ष, उग से यूप और यूप से स्वरु होता है, इस
कारण पुत्र कहा है । (पृथिव्याम्, पपः, ते, लोकः, आरुण्यः,
पशुः, ते) हे यूप पृथिवी पर यह तेरा आश्रयस्थान है, वनस-
म्बन्धी पशु तेरा ही है ॥ ६ ॥

अग्निपोमीय पशुप्रयोग

मीमांसादर्शन में बताई हुई परिसंख्याविधि के अनुसार, जो
सोनियजति आखेट में अत्यन्त मत्त होकर तामसप्रवृत्ति में को
भुक्ती चलीजारही है, उसको निवृत्ति मार्ग में लाने के लिये
वेद में अग्निपोमीय पशुप्रयोग देखने में आता है । यह अग्नि-
पोमीय यज्ञ सोमयाग का अङ्गभूत है, इस में पशु का संस्का
किया जाता है । तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद काण्ड ६ मपाठक १ अ-
नुवाक ९ में लिखा है—“आंसोमं वहन्त्यग्निना प्रतिष्ठते
तौ सम्भवन्तौ यजमानमाभिसम्भवतः । यदग्निपोमीयं

पशुमालभते, आरामनिष्कय एव सः ।” जिस समग ऋत्विक् यज्ञशालामें अग्निके पास सोमको लाते हैं उस समय यज्ञ क्रियामें दीक्षितहुआ यजमान अपने शरीरको यज्ञकोनिमित्त समर्पित मानता है, उससमयजो अग्निष्टोम देवताके निमित्त पशु दिया जाता है सो मानो यजमान अपने शरीरका मुख्य देता है, इसप्रकारके पशुप्रयोगके द्वारा, स्वाभाविक हिंसा करनेवालोंके कामाचारका संकोच किया है, अर्थात् राज्यरक्षाकोनिमित्त आखेटआदि करनेपर स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार पशुमें अत्यन्त प्रीतिवाला क्षत्रिय पादे स्वर्द्ध सुख चाहै तो इन हिंसाप्रधान कर्मोंको सर्वथा त्यागदेय और यदि एकसाथ इन्द्रियोंको रोकनेमें असमर्थ होता उनके रोकनेकी शास्त्रमें यह युक्ति कही है कि-यज्ञमें ही ऐसा करै और वह भी केवल सोमादि में ही और वह भी क्षत्रिय ही, इससे यह नहीं समझलेना कि-वेद मांसमक्षणके लिये पशुबागकी आवा देता है, किन्तु इसका भी एकप्रकारसे हिंसाके निषेधमें ही तात्पर्य है, जैसे-यदि कोई बालक अत्यन्त खेलकूदमें लगा हो और खेलमें गुथीहुई उसके मनकी प्रवृत्ति यदि एकसाथ न रोकीजासके, तो कुछ नियम कर दिया जाता है कि-हे बालक ! यदि तुझसे खेलविना रहा ही नहीं जाता तो अपने पड़ेहुएकी बुद्धिस्थ करलेनेके अनन्तर खेलालिया कर और वह भी अच्छे लड़कों के साथ तथा थोड़े ही समय, इस प्रकार खेलनेका संशोधन करते २. विद्या और संगति के प्रभावसे वह स्वयं ही खेलको, अमूल्य समय और अभिप्य जीवनका विनाशक समझकर त्यागदेगा, इसीप्रकार यदि उपकारक शास्त्रग्रंथ अनेकोंप्रकारकी प्रवृत्तियोंमें आसक्त पुरुषों को उन हानिकारक प्रवृत्तियों से एक साथ निवृत्त करै तो कुछ भी परिणाम न निकलै, इसकारण कुछ नियम लिखकर संकोच किया है । इसप्रकार जैसे बालकके खेलनेका नियम बाँधनेसे उसकी माताका तात्पर्य खेलनेमें नहीं होता है, किन्तु खेलनेका स्वभाव बुझानेमें होता है । वैसे ही आखेटासक्त क्षत्रियोंके लिये

पशुयाग आदिके नियम, धीरे-२ हिंसामें अरुचि कराकर उस अनर्थकारी स्वभावसे सर्वथा बचाने के ही लिये हैं। इसी कारण पशुयाग आदिका वेदमें विधानसा दीखनेपर भी वास्तवमें वह निवृत्तिमार्गमें ही पहुंचानेका उपाय है, क्योंकि—यहां तक संकोच किया है कि—यज्ञ करनेवाला भी उसको मंचर ही छोड़ देय। और सच्चा सुख तो सर्वथा अहिंसा आदि नियमोंके पालनमें ही है, यह के निमित्त कीहुई हिंसाका भी शास्त्रमें दुःखरूप फल ही कहा है। इस कारण पशुयाग आदि विषयके वाक्य विधि नहीं हैं, किन्तु अगस्तिकगति हैं, कि—जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य न होसकै वह अतुकालमें स्वभार्यागमन करनेके लिये वेदविधिसे विवाह करलेय जिसको मांसविना न सरे वह हुतशेषको स्वीकार करे, और जिसको मद्यविना न सरे वह यज्ञ करके ऋत्विजोंके निमित्त महौषधियों के रसका सेवन करे, वास्तवमें तो जहां तक होसकै तहां तक मधुरता के साथ इनके त्यागमें ही वेदका तात्पर्य है, वेद यह नहीं कहता कि—सबको ऐसा करना ही चाहिये, इस कारण जो हिंसादियुक्त कर्मोंसे स्वयं निवृत्त हैं, वह तो यज्ञादि करनेवालोंसे उदाकोटिके जीव हैं, उनको ऐसे यज्ञ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि—इस कर्मकी वेद भी प्रशंसा नहीं करता, किन्तु २० वीं कण्विकका में कहा है यज्ञमान कहै कि—मैंने जो पशुके साथ घुरा व्यवहार किया है वह मेरा पाप दूर हो तथा मेरे घर पशु आदि बहुत बढ़ें इससे सिद्ध है कि—इसप्रकारके उपदेशसे यज्ञकर्त्ता मांसमेमी भी सचेत होकर अवश्य ही हिंसाप्रधान कर्मों को त्याग देगा, क्योंकि—उस प्रवृत्तिमें परममग्न यज्ञमानको निवृत्तिमार्गमेंको लेजाने के लिये यह यागादिकर्म सोपानरूप हैं, इससे आगे उपासना और ज्ञानकी भूमिकामें को बढ़नेपर तो इसका सर्वथा ही निषेध है, देखो राजा जो अफीम भोग आदि मादक वस्तुओंपर कर लगाता है, और उनके बेचनेके नियम बनाता है, तो इसका तात्पर्य मादकवस्तुओंके प्रचारके लिये नहीं होता किन्तु रोकनेके लिये होता है यादि

ऐसा न होतो उनके प्रचारका कुछ ठिकाना न रहै, यह ही आभि-
 प्राय यागादिके विषयमें है, बहुत सूक्ष्म रीतिके साथ विचार करने
 पर विद्वानोंने यह ही तत्त्व निकाला है। धर्म अधर्मका ज्ञान हमको
 वेदसे ही होता है, इसकारण वेदमें जो कर्त्तव्य लिखा है वह धर्म है
 जिसका निषेध किया है वह अधर्म है, उसमें अल्पज्ञ मनुष्यको
 ननु नच करनेका अधिकार नहीं है।

वेदमें जो कर्त्तव्य है वह, सांसारिक अल्पज्ञ पुरुषों की दृष्टिमें
 अशुद्ध प्रतीत होता हो तब भी वह शुद्ध है, उससे अन्य संस्कार-
 शून्य होनेके कारण अशुद्ध है जैसे उबरकी औषध रोगीकी दृष्टिमें
 घृणास्पद होनेपर भी शास्त्र की दृष्टिसे वह उबर को दूर करनेवाली
 है, परन्तु वह ही औषध संग्रहणके लिये अनुपयोगी है, इसीप्रकार
 वेद जिसकर्मको कल्याणकारक बताता है, वह वेदविधिसे प्रतिकूल
 किया जाय तो शुभदायक न होकर उलटा हानिकारक होजायगा।

अथवा इस पशुयागके विषयमें एक प्रकार का तत्त्व और भी
 है, वह यह कि इस संसारक्षेत्रमें तिसमें भी भारतवर्षमें मनुष्य
 शरीरको पाकर तिसपर भी मोक्षसाधन मार्गके द्वारपर्यन्त पहुँच
 हुए द्विजशरीरको पाकर अपने उद्धारका उपाय करतेहुए, अतिदूर
 अन्धकारमें पड़कर कष्ट पानेवाले पशु आदिका भी उद्धार करके
 उनको भी निरतिशय सुखका भागी बनाना चाहिये, अन्यथा पशु-
 ओसे स्वयं तो अपनी उस योनिमेंके दुःखसे उद्धारका उपाय बन
 नहीं सकता, अतः महात्माओंका कर्त्तव्य है कि वह कृपाकर उनके
 उद्धारका उपाय करें। तुरीयावस्थांमें पहुँचने पर ही प्राणीको
 निरतिशय सुख वा मुक्तिकी प्राप्ति होती है, जो तुरीया मनुष्योंके
 परमसाधन करनेपर प्रकट होती है वह पशु शरीरोंमें नादसे ही प्रकट
 होनेलागती है, इसीकारण सर्प मृग आदि वीनके नादको सुनतेही
 अपने शारीरिक मानको भूलजाते हैं, उससमय सांसारिक सुख
 दुःखका मान दूर होकर एक अतिवर्चनीय सुखका प्रवाह वहने
 लगता है, जिससमय यज्ञमें सामवेदका नाद होनेपर पशु तुरीया-

वस्थामें आते थे उसी समय मन्त्रा ऋत्विक् आदि यथोचित मन्त्र प्रयोगसे उसके परलोकगमन का विधान करते थे, यह मानो पशुके संसाररोगकी चिकित्सा है। चिकित्साके निमित्त शरीरका खण्डन होनेमें चिकित्सकको कुछ दोषन होकर उसको दुःखसे छुटानेके कारण कुछ पुण्यही होता है और रोगीभी रोगमुक्त होनेपर अनेकों आशीर्वाद देता है, इसी प्रकार यज्ञीय पशु, पशुशरीरसे शूटनेके अनन्तर मन्त्र के प्रभावसे दिव्यशरीरको पाकर स्वर्गादि सुखप्रधान लोकोंमें गमन करते थे, परन्तु तुरीयाको मकट करनेकी योग्यता और तपका प्रभाव न रहनेसे कलियुगमें पशुयागोंके करनेका स्मृतियोंमें निषेध कर दिया है तथा उपासना और ज्ञानकी भूमिकामें पहुँचनेपर एवं ब्राह्मण वैश्योंके निमित्त तो इन पशुयागादिका विधान है ही नहीं इसकारण आगेके पशुयागविषयक मंत्रोंका पशुयागविषयक विनियोगोंके अनुसार अर्थ लिखकर हम निवृत्तिमार्गोन्मुख धार्मिकों के चित्तको, प्रवृत्तिमार्गकी उत्तमभूमिमें नहीं डालना चाहते। किन्तु, वेदकी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन त्रिभिन्नप्रकारकी व्याख्याओंमें से आध्यात्मिक व्याख्या लिखना सङ्गत समझते हैं। और मन्त्रवशा पशुयाग के विषयपर जो यह इतना आन्दोलन किया इसका कारण यह है कि—संस्कृत तथा भाषा आदिमें जो अन्य व्याख्याएं पशुयागविषयक विनियोगोंके अनुसार लिखी जा चुकी हैं, उनको पढ़नेपर वास्तविक तत्त्वके न जानने से वा वैदिक नामधारी मन्त्रज्ञ वेदश्रुओंके बहकानेसे धार्मिकों के चित्तमें उत्पन्न हुए सन्देहामास दूर हो जायें।

यजुर्वेद अ० २३ । ११ में लिखा है, कि—‘इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।’ अर्थात् वेदी ही पृथ्वीका अन्त है जहाँ सर्वत्र यज्ञ किया हो रही है वह यज्ञ भुवनकी नाभि है, जिसमें सब क्रियाएं सूक्ष्मरूप में होती हैं। ऐसे प्राकृतिक यज्ञमें दीक्षितहुए पुरुषको उचित है कि—योगाग्नि ज्ञानाग्निमें प्राणरूप पशुका बलिदेव क्यों कि—‘अग्निः

पोमात्मकं जगत् ।' अर्थात् यह जगत् अग्निपोमात्मक है और ऐसा जगत् जिसका देवता है वह पशु अभिमान एवं प्राण ही है, उसी का बलिदान करनेपर आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, अतएव आगे के पशुपागविषयक मन्त्रोंका आध्यात्मिक अर्थ ही लिखते हैं—

उपावीरस्युपदेवान्देवीर्विशः प्राशुकुशिजो व-
न्हितमान् । देव त्वष्टृर्वसुरं हव्या ते
स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

(उपावीः, असि) हे सुषुम्नाके अधिष्ठातृदेव ! तुम प्राणपशुके निकटमें रहकर उसके रक्षक सत्वा हो (देवीर्विशः, उशिनः, वन्हि-
तमान् देवान्, उप, प्रागुः) योगसाधना करनेवाले के प्राण, योग-
युक्तों को चाहनेवाले, श्रेष्ठ अग्नि की समान प्रकाशस्वरूप नर
नारायण को प्राप्त हों (देव, त्वष्टः, वसु, रम) हे दिव्यस्वरूप
भगवन् ! योगीके आत्मप्रतिबिम्ब वा प्राणरूप धनमें रमण की-
जिये (ते, हव्या, स्वदन्ताम्) हे भूतात्मन् ! तुम्हारी प्राणरूप
हाथि तुमको रुचै ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वम्बृहस्पते धा रया वसूनि ।
अतर्प्य त्वा देवहाविः पारोऽन प्रतिमुञ्चामि
धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

(रेवतीः, रमध्वम्) क्षीर आदि धनवाली गौओंकी समान
शम दम आदि धन से युक्त इन्द्रियेंद्रिय पशु आत्मस्वरूप यज्ञ-
मानके शरीरमें फीड़ा करें (बृहस्पते, वसूनि, रया, धाः) हे
परमात्मन् ! प्राण और इन्द्रियोंको योगलक्ष्मी के द्वारा पुष्ट करो
(देवहाविः, अतर्प्य, पारोऽन, त्वा, प्रतिमुञ्चामि) हे भूतात्मन् !
योगयज्ञके पाशसे तुम्हको बांधता हूं और कर्मबन्धनके पाशसे
तुम्हको योगयज्ञकेद्वारा मुक्त करता हूं (मानुषः, धर्षा) विष्णुरूप
प्राणाभिमानि देवता तुम्हको शमन करनेमें समर्थ है ॥ ८ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहृभ्याम्पूष्णो
हस्ताभ्याम् । अग्नीपोमाभ्याञ्जुष्टान्निपुनजिमाः

अद्भ्यस्तपोषधीभ्योनु त्वा माता, मन्यतामनु
पितानु भ्राता सगृभ्योनु सखाः सयूथ्यः ।

अग्नीपोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

प्रतिबिम्बके हवनसे पहिले भूतात्माके हवनको कहते हैं, कि-
हे भूतात्मन् (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अग्नीपोमाभ्याम्, जुष्टम्,
त्वा, अश्विनोः, बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम्, नियुनजिम)
आत्मविचारकी ओरको मेरणा करनेवाले गुरु देवकी मेरणा करने
पर मैं प्रकृति पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको मनःहृदयकी ग्रहण
करनेकी शक्तिरूप बाहुओंसे और मानससूर्यकी ग्रहण करनेकी
शक्तिरूप हाथोंसे, निश्चल करता हूँ (अग्नीपोमाभ्याम्, जुष्टम्,
त्वा, अद्भ्यः, ओषधीभ्यः, प्रोक्षामि) हे भूतात्मन् ! प्रकृति
पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको ज्योति रसरूपजल और जन्म-
रूप रोग का नाश करनेवाला ज्ञानस्वरूप औषधियों से प्रोक्षण
करता हूँ (त्वा, माता, अनुमन्यताम्) ऐसे प्रोक्षित तुझको प्रकृति
आज्ञा देय (पिता, अनु) पुरुष आज्ञा देय (भ्राता, अनु) सहोदर
भ्रातासमान जीवात्मा अनुमति देय (सयूथ्यः, सखा, अनु)
समान यूथवाला ईशरूप मित्र आज्ञा देय ॥ ९ ॥

अपाम्पेरुःस्वापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तांश्चिदसः
देवहविः । संन्ते प्राणो वातेन गच्छताम् सम-
ज्ञानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिपा ॥ १० ॥

हे भूतात्मन् ! तू (अपाम्, पेरुः, असि) ब्रह्मज्योतिके रसरूप
अमृतका पान करनेवाला है (देवीः, आपः, स्वदन्तु) ब्रह्मज्योति
के रसरूप जल तुझको स्वीकार कर (देवहविः, स्वाम्, सत्,
चित्) क्योंकि ईशका हवि, भलीप्रकार मक्षित होता हुआ ब्रह्मरूप
होजाता है (ति, प्राणः, वातेन, सद्गच्छताम्) हे भूतात्मन् ! तेरा
प्राण समष्टिप्राणसे संयुक्त हो (अज्ञानि, यजत्रैः, सम्) तेरे अद्भ्य
योग्यज्ञकी साधनामें तू (यज्ञपतिः, आशिपा, सम्) आत्मा-
रूप यज्ञमान योग्यज्ञके फलरूप आशीर्वादसे युक्त हो ॥ १० ॥

घृतेनाक्तौ पशून्प्रायेथां रेवन्ति यजमाने प्रि-
यन्धा आविश उरोगन्तरिक्षात्सजुर्देवेन वाते-
नास्य हविषस्तमना यज समस्य तन्वा भव ।
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिन्धाः स्वाहा देवेभ्यो
देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

(घृतेन, अक्तौ, पशून्, प्रायेथाम्) हे बुद्धि मन, तुम दोनों
अग्निकी समीपतासे घृतकी समान विषयोंकी समीपतासे पिंकघने
वाली इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंसे लित हो, भूतात्माके अङ्गप्राण
आदिकी रक्षा करो (रेवन्ति, यजमाने, प्रियन्ध्वाः) हे महाबाणी !
आत्मरूप यजमानमें इसके इच्छित मोक्षको धारण करो (देवेन
वातेन, सजुः, उरोः, अन्तरिक्षात्, आविश) प्रकाशवान् माणिक्यके
साथ प्रीतिवाली होकर गुरुके हृदयाकाशसे ज्ञानदानके द्वारा यज-
मानमें प्रवेशकर (अस्य, हविषस्तमना, यज) इस भूतात्माके
हविर्रूप शरीरका हवन कर (अस्य, तन्वा, सम्भव) इस भूतात्मा
के शरीरसे 'अहं ब्रह्मास्मि' इस आकारसे प्रकट हो (वर्षो, वर्षी-
यसि, यज्ञे, यज्ञपतिम्, धाः) हे विस्तारवाली सुषुम्ना ! अति वि-
स्तारवाले विष्णुपरमात्मामें योगयज्ञके कर्त्तव्यको स्थापन कर (देवे-
भ्यः, स्वाहा) कर्मेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओंके अर्थ कर्मेन्द्रियों
का हवन हो (देवेभ्यः, स्वाहा) ज्ञानेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओं
के अर्थ ज्ञानेन्द्रियोंका होम हो ॥ ११ ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त आतानानुर्वा मेहि ।
घृतस्य कुल्या उर्ध्वं श्रुतस्य पथ्या अनु ॥ १२ ॥

(अहिः, पृदाकुः, मा, भूः) हे सुषुम्ना ! तू सर्पकी समान
कुटिल चाल चलनेवाली और वीहूके समान मर्मस्थान को पीड़ा
देनेवाली मत हो (आतान, ते, नमः) हे योगयज्ञ ! तुम्हारे लिये
भूतात्मारूप अन्न है (अनुर्वा, मेहि) हे योगयज्ञके साधक !

तुम काम आदि शत्रुओं से रहित होते हुए सुपुम्नाके द्वारा गमन करो (ऋतस्य, पथ्याः, घृतस्य कुल्याः, अनु उपप्रेहि) प्रहमार्धमें हितकारी इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंके प्रवाहरूप नदियोंको देख कर त्रिदेवरूपधारी महाविष्णुको प्राप्त करो ॥ १२ ॥

देवीरायः शुद्धा बोद्धव्यः सुपरिविष्टा देवेषु सु-
परिविष्टा व्यम्भरिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

(देवीः, आपः, शुद्धाः, सुपरिविष्टाः, देवेषु, बोद्धव्यम्) हे इन्द्रियसम्बन्धी गोलकरूप अन्तरिक्षो) सांसारिक सुख और शयनका दाता जो सुख है उसके धारण करनेवाले, देहमें प्रविष्ट हुए तुम भूतात्माको देवताओंमें पहुँचाओ अर्थात् उसकी ज्ञान-दशाकी प्राप्तिके साधन बनो (सुपरिविष्टाः, व्यम्भ, परिवेष्टारः, भूयास्म) और तुम्हारे प्रसादसे सबप्रकार योगयज्ञमें प्रविष्ट होकर वृक्षरूप हम बाक् आदि अस्तिवज् देवताओंको ही कर्मका फल अर्पण करनेवाले हों ॥ १३ ॥

वाचन्ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शु-
न्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि । नाभिन्ते शुन्धामि
मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चारित्रांस्ते
शुन्धामि ॥ १४ ॥

शुद्धि कहती है कि—हे भूतात्मन् (ते, वाचम्, शुन्धामि) मैं तेरी बाक् इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, प्राणम्, शुन्धामि) तेरे प्राण को शुद्ध करती हूँ (ते, चक्षुः, शुन्धामि) तेरी चक्षु इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, श्रोत्रम्, शुन्धामि) तेरी श्रोत्रेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, नाभिम्, शुन्धामि) तेरी नाभिको शुद्ध करती हूँ (ते, मेढ्रम्, शुन्धामि) तेरी लिङ्गेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, पायुम्, शुन्धामि) तेरी गुदेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, चारित्रां शुन्धामि) तेरे चरणोंको शुद्ध करती हूँ ॥ १४ ॥

मनस्त आप्यायताम् वाक् आप्यायताम् आ-
 आप्यायताम् चक्षुस्त आप्यायताम् श्रोत्रं तं आ-
 प्यायताम् । यत्तं क्रूरं यदा स्थितन्तत्तं आप्या-
 यतामिष्टया यतान्तत्तं शुद्धयतु समहोभ्यः ।
 ओषधे प्रायस्व स्वधिते मेनं हिंसीः ॥ १५ ॥

हे भूतात्मन् (ते, मनः, आप्यायताम्) तेरा मन साक्षुष्य मोक्ष
 को पानेके लिये समष्टिमनके भावको पानारूप वृद्धिको पावै (ते,
 वाक्, आप्यायताम्) तेरी वाक् इन्द्रिय समष्टिभावको पावै (ते,
 प्राणः, आप्यायताम्) तेरा प्राण समष्टिभावको पावै (ते, चक्षुः,
 आप्यायताम्) तेरा चक्षु समष्टिभावको पावै (ते, श्रोत्रम्, आप्या-
 यताम्) तेरी श्रोत्रेन्द्रिय समष्टिभावको पावै (ते, यत्, क्रूरम्,
 अस्थितम्, ते, तत्, आप्यायताम्) तेरा जो कष्टदायक संसार
 बन्धन है वह तेरा शान्त हो (निष्टया यताम्) द्वैतभाव रहित होकर
 एकीभावरूप प्रह्लादभावको पावै (ते, तत्, शुद्धयतु) तेरा वह सब
 शुद्ध हो (अहोभ्यः, शम्) देवयानके सम्बन्धी दिनोंके निमित्त
 कल्याण हो (ओषधे, प्रायस्व) हे इन्द्रियोंकी शक्तियों ! रक्षा करो
 सन्मार्गमेंको न जाओ (स्वधिते, एनम्, मा हिंसीः) हे मन इस
 भूतात्माको संसारबन्धनसे नष्ट न करो ॥ १५ ॥

रक्षसाग्नागोसि निरस्तम् रक्ष इदम् रक्षो-
 भित्तिष्ठाग्नीदम् रक्षोर्ववाध इदम् रक्षो-
 धमन्तमो नयामि । घृतेन आवापृथिवी मोर्षु-
 वाथां चापो वेस्तोकानां मग्निराज्यस्य चेतु
 स्थाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसम्माकृतं चक्षुः ॥ १६ ॥

हे क्रोध आदिके समूह तुम (रक्षसाम्, आगः, असि) राजस
 समान काम आदिके भाग हो (रक्षः, निरस्तम्) योगयज्ञमें विघ्न
 करनेवाले अज्ञानका त्याग किया गया (अहम्, इदम्, रक्षः अभि-
 तिष्ठामि) मैं इस राक्षसरूप अज्ञानको पाँव से दबाकर स्थिर
 होता हूँ (अहम्, इदम्, रक्षः, अववाधे) मैं इस अज्ञानको नष्ट

करता हूँ (अहम्, इदम्, रसाः, अधमम्, तमः, नयामि) मैं इस
अज्ञानको असितिकुष्ट बसके उत्पत्तिस्थान तमोगुणमें पहुँचाता हूँ
(यावापृथिवी घृतेन ओर्णवायाम्) मेरे हृदयमें तुम दोनों
इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहसे अपने आत्माको आच्छादनकरो
(वायो, स्तीकानाम्, येः) हे माँगावायो ! मक्षरन्ध्रसे बपकने-
वाले अमृतरसकी बूँदोंका ज्ञान पाकर उसकी पियो (अग्निः, आज्य-
स्य, घेतु स्वाहा) आत्माग्नि इन्द्रियोंकी शक्तियों के समूहको पिये
और मलीषकार स्वीकार करे (स्वाहाकृते, ऊर्ध्वममसम्, मास्तम्,
गच्छतम्) प्रसन्नज्ञानका उपदेश होनेपर तुम दोनों अपि और स-
मष्टिमातिविम्ब मक्षरन्ध्राकाशमें ऊपर वर्धमान समष्टिवायुको पाओ ।

इदमापः पर्वहतायुश्च मलञ्च यत् । यच्चा-

भिदुद्रोहानृतं यच्च ओषं अभीरुणम् । आपो मा-

तस्मादेनसः पर्वमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

(आपः, इदम्, मरुहत्) हे उपोत्तरसामृतरूप जलों इस
कामनाओंके दाता अज्ञानको दूर करो (च, यत्, अवधम्, च,
मलम्, च, यत्, अनृतम्, अभिदुद्रोह) और जो निन्दित विषय
भोगहै और जो ज्ञानका आवरण मल है तथा जो अहंकार ममता
युक्त मिथ्यामोह है उसकी मारदियो (च, यत्, अभीरुणम्, शेषः,
आपः, च, पर्वमानः, तस्मात्, एनसः, मा, मुञ्चतु) और जो अद्वैत
आत्माको तलसे पृथक् जानकर बसकी अवबेलनाकी प्रज्ञामृतरूप
जल और समष्टिवायु उस पापसे मुक्त सुझाओ ॥ १७ ॥

सन्ते मनो मनसा सम्माणः प्राणेन गच्छताम् ।

रेहस्पग्निपृष्ठाः शोणित्वापस्तवा समीरेणन्वा-

सस्पत्वा आज्यैः पूषो रथेषां ऊक्षणां व्यधि-

प्रत्ययुतन्द्रेषः ॥ १८ ॥

हे भूतात्माके हृदय (ते, मनः, मनसा, संगच्छताम्) तेरा मन
समष्टि मनसे संयुक्त हो (प्राणः, प्राणेन, सम्) प्राण समष्टिप्राण
से संयोगको पावे (रेहः, असि) हे मानसमूर्त्य ! तुम परिच्छिन्न-

होनेसे नष्ट हो (अग्निः, त्वा, श्रीणातु) । ब्रह्माग्नि तुभको स्वीकार करके बढ़ावै (आपः, त्वा, संमीरणम्) । ज्योतिरसामृत तुभको भलेप्रकार बढ़ावै (वातस्य, धाज्यै, पूष्यः, रंही, त्वा) । प्राणको दहराकाशमें पहुँचानेके लिये और मानससूर्यकी भृकुटी में गतिके लिये तुभको स्वीकार करता हूँ (ऊष्मणः, व्यधिपत्) । ब्रह्माग्निकी धुधारूप व्याप्ति प्रकट हो (द्रेषः, प्रयुतम्) । कामनारूप राक्षस दूर हुआ ॥ १८ ॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः
पिषतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः
प्रदिश आदिश विदिश उदिश दिग्भ्यः
स्वाहा ॥ १९ ॥

(घृतपावानः, घृतम्, पिबत) हे इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहको पीनेवाले समष्टिरूप मन-बुद्धि-प्राण ! इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंके समूहको पियो (वसापावानः, वसाम्, पिबत) हे मानससूर्यका पान करनेवाले ब्रह्मपरा नारायण नामक देवताओ ! मानससूर्यको पियो (अन्तरिक्षाय, हविः, आसि, स्वाहा) हे मानससूर्य ! तुम हार्दान्तरिक्षके हवि हो तुम्हारा भेष्ट होम होय (दिशः, विदिशः, प्रदिशः, आदिशः, उदिशः, दिग्भ्यः, स्वाहा) विशेषरूपसे शास्त्रका उपदेष्टा ब्रह्मपराका उपदेष्टा तीन प्रकारका है—सांख्यिका उपदेष्टा, निर्गुण और सगुणका उपदेष्टा एवं उत्तम योगमार्गका उपदेष्टा, इन ब्रह्मा विष्णु महेशरूपे गुरुओंसे उपदेश किया गया है ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निर्दीध्य ऐन्द्र उदानो
अङ्गे अङ्गे निधीतः । देवत्वष्टृर्भूरिते सधु समेतु
सलक्ष्मा यद्विपुलं भवति । देवप्रायन्तमवसे
सखायोनं त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

(ऐन्द्रः, प्राणः, अङ्गे, अङ्गे निर्दीध्यत) भूतात्माका प्राण ईश्वरके अङ्ग २ में स्थित हुआ (ऐन्द्रः, उदानः, अंगे, अंगे, निधीतः) । भूतात्माका उदान ईश्वरके अंगोंमें धारित हुआ (देवः, त्वष्टः, ते, समु, भूरि) हे ज्योतिःस्वरूप ईश्वर ! तुम्हारा विष्णु

रूप परिपूर्ण है (अ, यत्, नः, इषुरूपम् भवति; सलक्ष्मा, सम, पत्) हे सर्वव्यापिन् ! क्योंकि-निवृत्तात्मा वायुरूप होता है, अतः अंगुष्ठस्वरूप आत्मा विष्णुको प्राप्त हो (देव, अवसे, अ, आपन्तम्, स्वा, सत्वायः, मात्रा, पितरः, अनुमदन्तु) हे सामुज्य के योग्य आत्मन् ! संसारसे रक्षा पानेके निमित्त विष्णुरूप अभिनमें जाने वालो तुम्हको प्राण आदि प्रकृति और देवता आश्वादे ॥ २० ॥

समुद्रं च स्वाहान्तरिक्षं च स्वाहा देवस्य स-
वितारं च स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा-
होराग्रे गच्छ स्वाहा छन्दांसि गच्छ स्वाहा
द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं च स्वाहा
सोमं च स्वाहा दिव्यन्नमो गच्छ स्वाहाग्नि
धैश्वानरं च स्वाहा मनो मे हाविष्यं च दि-
वन्ते धूमो गच्छतु स्तुज्योतिः पृथिवी भस्मना
पूज स्वाहा ॥ २१ ॥

देहके अवयवोंमें हर एक अवयवको उपदेश करता है कि- (समुद्रम् गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्मा के जल ! तुम अपनी समग्ररूप समुद्रमें लीन हो जाओ, अष्ट होम हो (अन्तरिक्षम्, गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्मा के वायु ! तुम अन्तरिक्षमें जाओ, अष्ट होम हो (देवम्, सवितारम्, गच्छ, स्वाहा) हे आत्मपतिविम्ब ! तुम सूर्य देवताको पहुँचो, अष्ट होम हो (मित्रावरुणौ, गच्छ, स्वाहा) हे जीवात्मा तुम नर मारायणको पहुँचो, अष्ट हवन हो (अहो-
रात्रे, गच्छ, स्वाहा) हे जन्म मरणकाल ! अहोरात्रिको पहुँचो अष्ट हवन हो (छन्दांसि, गच्छ, स्वाहा) हे शरीरके अवयवों ! तुम समष्टि शरीरके अङ्गोंको पहुँचो सुन्दर हवन हो (द्यावापृथिवी गच्छ, स्वाहा) हे मन, हृदय आदिके कमलों ! तुम पृथिवी और स्वर्गके अधिष्ठातृदेवोंको पहुँचो, अष्ट होम हो (यज्ञम्, गच्छ, स्वाहा) हे यज्ञक्रियाओ ! तुम यज्ञ पुरुष विष्णु को पहुँचो, अष्ट होम हो (सोमम्, गच्छ, स्वाहा) हे अन्न पान

आदि भोगके समूह तुम सोमदेवताको पहुँचो, उत्तम होम हो (दिव्यम्, नमः, गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्मामें के आकाश ! तुम दिव्य आकाशमें जा मिलो, श्रेष्ठ होम हो (वैश्वानरम्, अग्निम्, गच्छ, स्वाहा) हे जठराग्ने ! तुम वैश्वानर अग्नि देवताको प्राप्त होओ श्रेष्ठ होम हो (मे, हार्दि, मनः, गच्छ) हे योगशक्ते ! मेरे हृदय-सम्बन्धी मनको रोको (ते, धूमः, दिव्यम्, गच्छतु) हे भूतात्मन् ! तेरा धूम स्वर्ग को जाय (ज्योतिः, स्वः) आत्मज्योतिः सूर्यको प्राप्त हो (भस्मना, पृथिवीम्, आपूण, स्वाहा) भस्मके द्वारा पृथिवीकी पूर्ण कर, इसप्रकारका माकृतिक होम हो ॥ २१ ॥

मापो औपधीर्हिंसाधाम्नो धाम्नो राज्ञस्ततो
वरुण नो मुख । घृणाद्वृण्वा इति वरुणेति शपा
महे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया न आप
औपधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तसौ सन्तु योसा
न्द्रेष्टि यथ ययन्दिष्मः ॥ २२ ॥

वाणीसे भूतात्मा का हवन करके अब प्रारब्ध समाप्तिपर्यन्त फिर मार्यता करता है कि—हे मन ! तू (आपः, मा, हिंसी,) इन्द्राग्नियों के अन्तरिक्षों को मत नष्ट करो (औपधीः मा) इन्द्रियोंकी शक्तियोंको मत नष्ट करो (राजन् वरुण, ततः, धाम्नः, धाम्नः, नः, मुञ्च) हे राजन् मन अपने पाशकप प्रत्येक इन्द्रिय से हमको छोड़ो (अघ्न्याः, इति, यत्, आहुः, वरुण, इति, शपामहे, घृणां, ततः, नः, मुञ्च) ईश्वरके पूजक देहके अवयव अवध्य हैं, ऐसा जो शास्त्र कहते हैं, हे मन हमतो इस योगकी विधिसे इनका बध करते हैं, हे मन उस पापसे हमको मुक्त कर (आपः, औपधयः, नः, सुमित्रियाः, सन्तु) इन्द्रियों के अन्तरिक्ष और इन्द्रिय हमारे श्रेष्ठ मित्र हों (यः, अस्मान्, द्रेष्टि, च, वयम्, यम्, द्विष्मः, तस्मै, दुर्मित्रियाः, सन्तु) जो काम हमारे प्रतिकूल होता है और हम योगी जिस काम को शत्रुदृष्टि से देखते हैं उस कामके लिये इन्द्रियान्तरिक्ष और इन्द्रिय शत्रुरूप

हो अर्थात् हमारी इन्द्रियों में किसीप्रकारकी विषयवासना उत्पन्न न हो ॥ २२ ॥

इति अग्निषोमीय ब्रह्मयोगकी भाष्यारम्भिक व्याख्या समाप्त
प्रथम प्रयोग अ० ५ की क० ७ तक पूर्ण किया, अवशेष कुछ लिखते हैं कि-सूर्यास्तसे पहिले नदी आदिमें जो बहतेहुए वस्तीवरी नाम जलको ग्रहण करे तिसका मंत्र—

हविष्मन्तीहिमा आपोः हविष्मान् आविधासति ।

हविष्मान्देवो अश्वरो हविष्मान् अस्तु सूर्य ॥२३॥

(हविष्मान्, इमाः, हविष्मतीः, आपः, आविधासति) हविसे युक्त यजमान इन हविसे युक्त वस्तीवरी नाम जलोंकी परिचया करता है अर्थात् जलके समूहमें से पुष्पक करके लेता है (देवः अश्वरः हविष्मान्, अस्तु) प्रकाशवान् यज्ञ हविसे युक्त हो (सूर्यः, हविष्मान्) सूर्य भी हविष्मान् हो । क्योंकि-सूर्य जलको अन्य सब देवताओंके लिये ग्रहण करता है, सब देवता इस विराडात्मा सूर्य की किरणें हैं ॥ २३ ॥

अग्नेर्वोपसृगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्यो
भागधेयीं स्य मित्रावरुणयोर्भागधेयीं स्थ वि-
श्वेषाभ्येक्षानां भागधेयीं स्थ असूर्या उपसूर्ये
पाभिर्षु सूर्यः सह । तानो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

इस कण्टिकमें ५ मंत्र हैं । सबका मेधातिथि म० । अं० १
आसुरीगा० १ प्राजापत्या, गा० १ याजुषी त्रि० ४ या० त्रि० ५
आर्युष्टिष्क और देवता, सबका आप है । मंत्रार्थः—(यः अपन्न-
गृहस्य अग्नेः सदसि सादयामि) हे वस्तीवरी जलो ! तुमको
अपिनरवर परबाले अग्निके निकट स्थापन करता हूँ (इन्द्राग्न्योः
भागधेयी, स्य) तुम इन्द्र और अग्निदेवता के भाग हो (विश्वेषां
देवानां भागधेयी, स्थ) तुम सम्पूर्ण देवताओंके भागरूप हो (अ-
सूर्याः, उपसूर्ये, वा, सूर्यः, यागमेः, सह, ताः, नः अध्वरम् हिन्वन्तु)
जो सम्पूर्ण जल बहुत कालतक रहनेके कारण सूर्यकी किरणोंसे

अदृश्य सूर्यके समीप स्थित हैं अथवा जिनके साथ सूर्य गमन करते हैं वे जल हमारे यज्ञको परितृप्त करो ॥ २४ ॥

हृदेस्त्वा ममसे त्वा दिवेस्त्वा सूर्याय त्वा ऊर्ध्व

मिममध्वरन्ट्रिषि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

इसका मेधाति० अ० धिराठनुष्टुप्छन्द, सोमो दे० । मंत्रार्पणः (मनसे, त्वा, हृदे, त्वा, दिवे, त्वा, सूर्याय, त्वा, होत्रा, इमम्, अध्वरम्, ऊर्ध्वम्, दिवि, देवेषु, यच्छ) हे सोम । हृदयवान् मनुष्योंके निमिषा, संकल्प विकम्पात्मक मनके निमिषा, तुमको सुलोककी प्राप्तिके निमिषा सूर्यदेवताके निमिषा उपाहरण करता है इस यज्ञ को, उन्नत करके, यज्ञके वषट्कर्ता साथ होताओं तो देव-लोकमें देवताओंके मध्य देवत्व प्रदान करो ॥ २५ ॥

सोमराजन्विश्यास्त्यम्भजा उपाधरोह विश्वा-

स्त्वाग्मजा उपाधरोहन्तु । शृणोरेष्टग्निः समिधा

हव्यस्मे शृण्वन्त्वापो, धिपणाश्च देवीः श्रोता

ग्रावणो विदुषो न यज्ञथ शृणोतु देवः सविता

हव्यस्मे स्वाहा ॥ २६ ॥

इस कं०, ३ मंत्र हैं । सबका मेधातिथि अ० । छं० । १ का साम्पु-ष्णिक, २ याजुषी, त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टु० मंत्रार्थः—(सोमराजन, त्वं विश्वाः, भजाः उपाधरोह, विश्वाः, भजाः त्वा, उपाधरोहन्तु) हे राजा सोम तुम इन सम्पूर्ण अग्निष्वा गणोंको अपनी भजा जानकर कृपा करो, हे सोम सम्पूर्ण भजा तुमको भजामद्वारा प्राप्त हो (अग्निः, समिधा, मे, हव्य, त्वापो, च, धिपणा, देवी, च, ग्रावणा, विदुषः, न, यज्ञम्, आश्रोत, सविता, देवः, मे, हव्य, शृणोतु) अग्निदेवता समिधापूर्वक मेरी इस आहुतिसे मेरे आवा-गको सुने । हे ग्रावासमूहः आपिपवके निमिषा प्राप्त हुए तुम विद्वानों की समान एकाग्र चित्तसे मेरे यज्ञ के आह्वान को सब प्रकार सुनो, सबका प्रेरक परमात्मा देवता मेरे आह्वानको अवगण करो यह आहुति मलीप्रकार गृहीत हो ॥ २६ ॥

देवीरापो अपान्तपापो धुर्मिहविष्य इन्द्रिया-
वान् मदन्तमः । तन्वेभ्यो देवत्रा शुक्रपेभ्यो
येषां भागस्य स्वाहा ॥ २७ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । सबका मेधातिथि श्रु० । छं० १
भुरिगार्पी पं० २ दैव्युष्णिक् और देवता १, २ का आप् । मंत्रार्थ-
(आपो, देवीः, वः, अपान्ति, नपात्, हविषः, इन्द्रियावान्, मदन्तमः,
ऊर्मिः) हे जलदेवियो तुम्हारे जलों के, अपत्यरूप, हविषोम्ब,
वीर्यवान्, वृत्त करनेवाली, लहर है (देवत्रा, तप्त, शुक्रपेभ्यः,
देवेभ्यः, दत्त) देवताओं के प्रति जानेवाली, उस ऊर्मिको शुक्रादि
सौम्य ग्रह पीनेवाले देवताओं को मदान करो (येषां, देवानां, भागः,
स्यः) जिस देवताओं के तुम भाग हो इन सबके उद्देश्य से तुमको
हवि देते हैं (स्वाहा) यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २७ ॥

कार्ष्णिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्वा वन्नयामि ।

समापोऽद्भिरंगमत् समोषधीभिरोषधीः । २८ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र । सबका मेधा० ऋ० । छं० १ देवी
वृ० २ याजु० त्रि० ३ साम्यनु० और देवता १ का आज्य १, ३
का आप् । मंत्रार्थ-हे पृत तुम (कार्ष्णिः असि) देव उष्यष्ट
पापके दूर करनेवाले हो (समुद्रस्य, अक्षित्यै, त्वा, वन्नयामि)
हे जलो वस्तीवरी लक्षणवाले सागररूप जलके अधीणताके
निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (आपः, अद्भिः, समगमत, औषधीः,
औषधीभिः, सम्) हे मित्रावरुण चमसमें स्थित जलो तुम इस
वस्तीवरी के जलके संग भलीप्रकार मिश्रित हो, सम्पूर्ण औषधी
औषधियों के साथ भलीप्रकार से मिश्रित हो ॥ २८ ॥

यमग्ने पृतस्तु मर्त्यमवा वाजेषु यमजुताः । स-

यन्तां शम्बन्तीरियः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० भुरिगार्पी गायत्री छं० अग्निदेवता है
मंत्रार्थ-(अग्ने, पृतस्तु यम्, मर्त्यम्, अवाः, वाजेषु, यम् जुताः, सः
शश्वतीः इयः, यन्ता, स्वाहा) हे अग्निदेव, बड़े संगामों में जिस

मनुष्यको तुम रसा करते हो, किञ्च हविलक्ष्यवाले अन्तों में अन्न के निमित्त जिस मनुष्यके निकट तुम हविग्रहण करनेकी उपस्थित होतेहो वह मनुष्य तुम्हारे प्रसादसे निरन्तर अन्नय अन्तों तथा धनोंको पाता है, हमारी यह आहुति भक्षीप्रकार गृहीत हो २९

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेभ्यिनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आदेदे राधासि गभीरमिममध्वर इधीन्द्राय सुपूतमम् उत्तमेन पविनोर्ज्यस्वन्तम् मधुमन्तस्वयस्वन्तन्निग्राभ्या स्थ देव धृतं स्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

इस कण्विकामें २ मंत्र हैं । सवका मधु० ऋ० । छं० १ आ० पं० १ आ० अ० और देवता १ अग्नि २ आप । मंत्रार्थ-हे सपांशु सवत (सवितुः देवस्य, मत्सवे, अश्विनोः बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम् त्वा, आदेदे) सविता देवताकी प्रेरणासे अश्विनी-कुमार की बाहु, पूषा देवता के हाथों से तुझको ग्रहण करताहूँ (राधा, असि) अभीष्ट फल के देनेवाले हो (इमम्, अध्वरम्, गभीरम्, कृधि, उत्तमेन, पविना, इन्द्राय, सुपूतमम्, ऊर्जः-स्वन्तम्, मधुमन्तम्, पयस्वन्तम्) -इस हमारे यज्ञको महान् करो उत्कृष्ट श्रेष्ठ वज्रसदृश तुम्हारे द्वारा । इन्द्रदेवता के निमित्त भीतिवर्द्धक बलयुक्त स्थादिष्ट मधुर रसयुक्त दुग्ध के स्वादुरससे युक्त सोमको अभिपुनतम करताहूँ (निग्राभ्याः, स्थ, देवभुताः, मा, तर्पयत) हे जलो तुम हमसे सम्बन्धकार से ग्रहण किये हो देवताओंके मध्यमें घिरप्रसिद्ध हो इसप्रकार बहुत मानसे युक्त तुम इस समय इस यज्ञमें मुझको वृत्त करो ॥ ३० ॥

मनो में तर्पयतु वाचं मे तर्पयतु प्राणम् मे तर्पयतु चक्षुर्मे तर्पयतु श्रोत्रं मे तर्पयतु आत्मानं मे तर्पयतु प्रजां मे तर्पयतु पृथूश्च मे तर्पयतु गुणान् मे तर्पयतु गुणा मे मा वितृपन् ॥ ३१ ॥

इसका मधु छं० ऋ० वाहवा० ज० छं०, आप देवता है ।

मन्त्रार्थ—हे निशाभ्य (मे, मनः, तर्पयत, मे, वाचं, तर्पयत, मे, प्राणं, तर्पयत, मे, चक्षुः, तर्पयत, मे, श्रोत्रं, तर्पयत, मे, आत्मानं, तर्पयत, मे, प्रजां, तर्पयत,) मेरे मनको तृप्त करो, मेरे प्राणको तृप्त करो, मेरी नेत्रइन्द्रियको तृप्तकरो, मेरे कर्णों को तृप्त करो, मेरी आत्माको तृप्त करो, मेरी प्रजाको तृप्त करो, (मे, पशून्, तर्पयत, मे, गणान्, तर्पयत, मे, गणाः, मा, भितृपन्,) मेरे पशुओंको तृप्त करो, मेरे मनुष्यसमूहोंको तृप्त करो, मेरे आत्मीयजन किसीप्रकारसे तृष्णासे कातर नहीं ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवन्त इन्द्राय त्वादित्य-

वन्त इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने । श्येनाय त्वा सोम-

भृतेऽग्नये त्वा रायस्पोपदे ॥ ३२ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं। सबका मधुच्छन्दा ऋ० । छं० १ सा० गा०, २, ३, ४ प्रा० गा०, ५ या० वृ०, और दे० सबका सोम है। मन्त्रार्थ—हे सोम ! (वसुमते, रुद्रवन्ते, इन्द्राय, त्वा, आदित्यवन्ते, इन्द्राय, त्वा, अभिमातिघ्ने, इन्द्राय, त्वा, सोमभृते, श्येनाय, रायस्पोपदे, अग्नये, त्वा) वसुनाम देवता से युक्त माध्यन्दिन सवनके रुद्रदेवतासे युक्त इन्द्रदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ, हे सोम सीसरे सवनके आदित्य देवताके सहित वर्त्तमान इन्द्रदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ, हे सोम शशुघाती इन्द्र देवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ, हे सोम धन और पुष्टि देनेवाले अग्निदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ ॥ ३२ ॥

यस्यै सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरा-

धन्तरिक्षे तेनास्मै यजमानायोरुग्राये कृधयधि-

दात्रे धाँचः ॥ ३३ ॥

इस मंत्र का मधुच्छं० ऋ०, अुरिगा० वृ० छं० सोम देवता है। मन्त्रार्थ—(सोम, दिवि, यत्, ते, ज्योतिः, पृथिव्याम्, यत्, उरौ, अन्तरिक्षे, यत्, तेन, अस्मै, उरु, कृधि,) हे सोम ! पुलोक में जो तुम्हारी ज्योति है, पृथ्वी में जो ज्योति है, विस्तीर्ण,

अन्तारिक्षमें जो ज्योति है, उस ज्योति के प्रभावसे इस यजमानके निमित्त इष्टधन विस्तार करो अथवा इसके यज्ञ में अपने शरीर को विस्तार करो) राये, उरु कृधि, दात्रे, अधिवोचः,) ऋत्विग्गणों को धनप्राप्ति के निमित्त अपने शरीरका विस्तार करो, दाता यजमानके निमित्त मैं सम्पूर्ण ज्योतिसे प्राप्त हुआ ऐसा कहो॥

इवात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता अमृतस्य पत्नीः ।

ता देवीर्देवध्रेमं यज्ञन्नयतोपहृताः सोमस्य पिवत ॥ ३४ ॥

इसका मधुच्छं० ऋ०, सुराढार्यो प० वृ० छं०, आपो देवताहै मंत्रार्थ-हे जलो ! तुम (इवात्राः, वृत्रतुरा, राधोगूर्त्ता, अमृतस्य, पत्नीः, स्थ) शीघ्रकार्यकारी, शत्रुहृदयमर्दनकारी, इष्ट कामनाके देने वाले, सोमके पालक हो (देवीः, ताः, इमम्, देवप्रात्र, नयत) हे सम्पूर्ण निग्राभ्यदेवता इसप्रकारके तुम इस यज्ञको देवताओंके प्रति प्राप्त करो (उपहृताः, सोमस्य, पिवत) अनुज्ञा को प्राप्त हुए तुम सोमको पियो ॥ ३४ ॥

माभ्रेर्मा संविक्थ्या उर्जन्धत्स्व धिपणे वीद्वी
सती वीद्वेधामूर्जन्धधायाम् । पाप्मा हतो
न सोमः ॥ ३५ ॥

इसमें मधुच्छंदां ऋ० । भुरिगार्यनु० छं० । अर्द्धस्य धावा पृथिवी दे० । मंत्रार्थ-हे सोमसमूह तुम (माभ्रेः, मासंविक्थ्याः उर्जन्धत्स्व) आघातसे भय मत करना, कम्पित मत होना, रस को धारण करो (धिपणे वीद्वी सती वीद्वेधायाम्, उर्जन्ध धधायाम्) हे धावापृथिवी दृढ़ताको प्राप्त हुई इस उपांशु सवनके आघात और सोम सवनको दृढ़ करो, इस सोमके रसको दृढिकर बलप्रदान करो इस वज्राघातसे यजमानके सम्पूर्ण (पाप्मा, हतः सोमः न) पाप नष्ट होते हैं और सोम नहीं हत होता किन्तु संस्कारयुक्त होता है ।

प्रागप्रागुदंगधराफसर्वतस्तथा दिश आधावन्तु ।

अम्य निष्पर समरीषिदाम् ॥ ३६ ॥

इसका मधु० छं० ऋ० आर्षुणिक् छं० सोमदेवता है मंत्रार्थ-
(भाक्, अपाक्, उक्, अपराक्, दिशः सर्वतः त्वा आधावन्तु)
पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणादि सम्पूर्ण दिशा सब ओर से तुम्हारे
सन्मुख धावमान हों (हे अम्य निप्पर अरीः सम्बिदाम्) हे माता
अपने भागोंसे सोमको पूर्ण करो, सब मजा इस यज्ञ को जानें ३६

त्वमङ्ग मशंसिषो देवधं शंघिष्ठ मर्ष्यम् । न
त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्द्धितेन्द्रं वीमि ते वयः ॥

इसका गौतम ऋषि-पठ्या वृत्ति यदा भुरिगार्प्यन्तु० छं० इन्द्र
देवता । मंत्रार्थ- (अङ्ग, शंघिष्ठ, मघवन, इन्द्र, देव, त्वं मर्ष्यम् मशं-
सिपः) हे सर्वत्र प्राप्त, अतिशय बलवान् सुखकारी धनवान् पर-
मैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् आप इस मनुष्य यज्ञमान को मशंसा
देते हो (त्वत् अन्यः मर्द्धिता न अस्ति) आपके सिषाय और
कोई सुख देनेवाला नहीं है (ते वचः वीमि) आपका, आपही
सुखरूप हैं, यह वचन कहता हूँ ॥ ३७ ॥

इति छन्दोपठ्यैकान्तर्गतं वाजसनेयि संहिता का सातवाह पत्र अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

छठे अध्यायमें यूपसंस्कारसे सोमाभिषेक तक मंत्र कहे अब
सातवें अध्यायमें ग्रहग्रहणके मंत्र कहताये हैं ।

॥ हरिःॐ ॥ वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अथ शु-
भ्याङ्गमस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां
भागोसि ॥ १ ॥

इस कण्टिकामें २ मंत्र हैं । सबका गौतम ऋषि है, इन्द्र ?
का साम्नी वृ० २ आसुर्वे० और देवता प्राण है । मंत्रार्थ-हे
सोम तुम (वृष्णः, अथ शुभ्याम्, गमस्तिपूतः, वाचस्पतये पवस्व)
सम्पूर्ण कामनाके फलवर्षी, अंगुष्ठय तथा हमारे हाथ से पवित्र
हुए तुम प्राणोंकी प्रीतिके निमित्त इत्त पात्रमें गमन करो, हे सोम
(देवः, देवेभ्यः, पवस्व, येषाम्, भागः अस्ति) देवतारूप तम

देवताओं की भीतिके निमित्त इस पात्रमें गमन करो, जिन देवताओं का भाग हो ॥ १ ॥

मधुमतीर्न हपस्क्रुधि यस्ते सोमादाभ्यन्नाम जा-
गृधि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्ध्व-
न्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

इस सं० में ३ मंत्र हैं । सबका गो० ऋ० । छन्द १ या० वृ०
आर्ष्य० ३ आसु० ज० और देवता सबका लिङ्गोक्ता है । मंत्रार्थ-
हे सोम (नः, इयः, मधुमतीः कृधि) हमारे अन्न मधुर रसयुक्त
सुस्वादु करो, (सोम ते यत्, अदाभ्यम्, जागृवे, नाम, सोम,
तस्मै, ते, स्वाहा) हे सोम ! तुम्हारा जो हिंसा शून्य, जागरणशील
नाम है, (हे सोम तस्मै ते स्वाहा, स्वाहा उरु अन्तरिक्षम् अन्वेमि)
हे सोम उस तुम्हारे निमित्त यह अंधुद्वय फिर प्रदान करते हैं
उद्देश्य देवताओं की भीतिके निमित्त यह भलीप्रकार आहुत होता है,
इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें मध्यमें गमन करता हूँ ।

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः
पार्थिवेभ्यो ममस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभय
सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाँश्चो
यस्मै त्वेहे तत्सत्पुंपरि मुता भक्षेन हतोसौ
फेद प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं । सबका गो० ऋ० । छं० १ भू० मा० ज० २
या० वृ० ३ सा० मि०, ४, ५ दै० वृ० है और देवता १ उपांशु २
देवा ३ लिङ्गोक्ता ४ ग्रह ५ उपांशु हैं । मंत्रार्थ-हे प्राणरूप
उपांशुग्रह (विश्वेभ्यः, इन्द्रियेभ्यः, पार्थिवेभ्यः, दिव्येभ्यः,
स्वाङ्कृतः, असि) सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे सम्पूर्ण पार्थिव द्विपद चतु-
पद और दिव्य प्राणियोंसे स्वयं मादुर्भूत हो (मनः, त्वा, अष्टु)
मन प्रजापति तुम्हारे प्रति आधिपत्य करे (सुभय, सूर्याय, त्वा,
स्वाहा) हे प्रशंसितजन्मन् सूर्यरूप प्रजापतिकी भीतिके निमित्त
तुमको आहुत करता हूँ यह आहुति सुन्दररूपसे गृहीत हो, पहिले २

पात्र (मरीचिपेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) मरीचिपालक देवगणकी वृत्तिके निमित्त तुमको मार्जन करता हूँ (देव, अशो, यस्मै, त्वा, ईडे, तदः, सत्यं, उपरि, मुता, भङ्गेन, हतः, असौ, कट्) हे दीप्यमान अंशुदेव जिसके अभिचार मारणादिकी कामनाके निमित्त तुमको मार्जना वा साधन करता हूँ वह यह अमुकमेरा शत्रु सत्य ही अकस्मात् प्राप्त हुई महापीडासे निहत हुआ यह शत्रु विशीर्ण होजाय—हे उपांशुसवन (व्यानाय, त्वा) व्यान देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीतोऽयन्तर्येष्वस्य मघवन्पाहि सोमम् ।

उरुष्य राणु एषो यजस्व ॥ ३ ॥

इस मंत्रका गो-ऋ० । छ० प्राजा० वि० इन्द्रदेवता है । मन्त्रार्थ है अन्तर्यामि ग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः, असि, मघः वन, अन्तः, यच्छ, सोमम् पाहि,) धुद्र कलश द्वारा गृहीत हो, हेन्द्र ! तुम इस गृहीत सोम रसको अन्तर्ग्रह पात्रमें ग्रहण करो सोमरसको शत्रु आदि से रक्षाकरो तथा (रायः, उरुष्य, इषः, आ, यजस्व,) पशुओं को रक्षाकरो, अन्नोको सब प्रकारसे दो ॥ ३ ॥

अन्तस्ते पावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्व-
न्तरिक्षम् । सजूर्देवेभिरध्वैः परैश्चान्तर्यामि
मघवन्मादयस्व ॥ ४ ॥

इस मंत्रका गो० ऋ० । आर्षोप० छ० और मघवा देवता है । मन्त्रार्थ—हे मघवन (ते, पावापृथिवी, अन्तर्दधामि, उरु, अन्तरिक्षम् अन्तर्दधामि) आपके अनुग्रहसे स्वर्ग और पृथ्वी अन्तः स्थापन करता हूँ, विस्तीर्ण अन्तरिक्षको पावापृथिवीके मध्यमें स्थापन करता हूँ (मघवन अध्वैः परैः देवैः सजूर् अन्तर्यामि मादयस्व) हेन्द्र ! पृथ्वीके स्थानवाले द्युस्थाननिवासी देवताओं से समान प्रीतिवाले तुम अन्तर्यामि ग्रहमें अपने को वृत्तकरो ।

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः

पाथिवेभ्यो मनस्त्वाप्सु स्वाहा । स्वा सुभवा

सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥ ६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका गो० ऋ० है। छं० १ मुरिमा० २ या० वृ० ३ दै० पं० और देवता १ अन्तर्यामी २ देव ३ ग्रह हैं।
 मन्त्रार्थ—प्रथम दूसरे मं० की व्याख्या इस अध्यायके ३ मंत्रमें है
 हे अन्तर्यामि ग्रह (उदानाय त्वा) उदान देवता की प्रीति के निमित्त
 तुम्हको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ६ ॥

आ वायो ऋष शुचिषा उष नः सहस्रन्ते नि-
 युतो विश्ववार । उपो ते अन्धो मधमयामि
 यस्य देव दधिपे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥ ७ ॥

इस मंत्रका वशिष्ठ ऋषि निचृदापी ज० छं० वायुदेवता ।
 मन्त्रार्थ—(शुचिषाः, वायो, नः, उप, आभूष, विश्ववार, ते, सहस्र-
 नियुतः, मधम, अन्धः, ते, उप, आयामि) हे अग्ने ! पवित्र
 पानकारी वायुदेवता तुम हमारे समीप आगमन करो, वृत्तिका करने
 वाला सोम लक्षण अन्न तुम्हारे समीपमें समर्पण करके भिज-
 वाता हूँ (देव, यस्य, पूर्वपेयं, दधिपे) हे दीप्यमान वायो जिस
 सोमका प्रथम वषट्कार लक्षणवाला पूर्वपान तुम धारण किये हो
 उसीको इस समय तुम्हारे निकट उपस्थित करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रवायु इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्द्र-
 वामुशान्ति हि । उपयामगृहीतोसि वायव इन्द्र-
 वायुभ्यान्त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यान्त्वा ॥ ८ ॥

इस कं० में २ मं० हैं सबका मधु० ऋ०। छं० १, आर्षा गा० २
 सुराडा० गा० और देवता १ इन्द्रवायू २ इन्द्र । मन्त्रार्थ—(इन्द्रवायु
 इमे, सुताः, प्रयोभिः, उप आगतम्, हि, इन्द्रवः, वाम्, उशान्ति)
 हे इन्द्रवायू ! तुम्हारे निमित्त यह सोम प्रस्तुत किये हैं, इस
 सोमरसरूप अन्नपानके निमित्त हमारे समीप आइये, जिसकारण
 कि यह सोमरस तुम्हारे प्रिय होने की इच्छा करते हैं, हे तृतीय
 ग्रह सोमरस तुम (वायवे, उपयामगृहीतः, आसि) वायु देवता
 के उद्देश्यसे उपयामपात्र द्वारा ग्रहण किये गये हो (इन्द्रवायुभ्यां

त्वा) युगचर इन्द्रवायु देवताके संतोषके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ, इन्द्र वायु ग्रह (एषः, ते, योनिः, सजोषोभ्याम्, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, युगचर इन्द्र वायु देवताद्वयकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा ।

ममेदिह श्रुतः हवम् । उपयामगृहीतोसि मित्रा-

वरुणाभ्याम् त्वा ॥ ९ ॥

इस कं०में १ मं० है । सबका गृहसमद ऋ० है । छं० १ आपी गा० २ आसुरी गा० और देवता सबका मित्रावरुण है । मंत्रार्थ- (मित्रावरुणा, ऋतावृधा, चाम्, अयं, सुतः इष, ममेद हवम्, श्रुताम्) हे मित्रावरुण, हे सत्य, तुम्हारी प्रीतिके निमित्त यह सोमरस प्रस्तुत किया है इस यज्ञ में हमारे ही इस आह्वानको ध्वज करो हे चतुर्थग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः, आसि, मित्रावरुणाभ्याम्, त्वा) मित्रावरुण संज्ञक उपयामपात्रमें गृहीत हो मित्रावरुण संज्ञक देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ

राया वयसमुवांसो मदेम हव्येन देवा यव-

सेन गावः । ताग्धेनुर्मित्रावरुणा युवसो वि-

दवाहा घत्तमनपस्फुरन्तीमेप ते योनिर्ऋता-

युभ्यन्त्वा ॥ १० ॥

इस कं०में २ मं० है । सबका त्रिसदस्यु ऋ० । छं० १ आपी त्रि० २ याजुषी पं० और देवता १ मित्रावरुणी २ गृह है । मंत्रार्थ- त्रिस गौके घरमें होने से (वयं, राया, वसवांसः, मदेम, देवाः, हव्येन, गावः, यवसेन, मित्रावरुणा, युवम्, ताम्, धनपस्फुरन्तीम्, येन, नः, विश्वाहा, घत्तम्) हम धनसे सम्पन्न होकर प्रसन्न होते हैं, देवगण हविषानेसे जैसे प्रसन्न होते हैं, गौ जैसे घासादि से प्रसन्न होती है, हे मित्रावरुण देवताओं तुम वस दूसरे पुरुष के निकट न जानेवाली धेनु को हमारे निमित्त सर्वदा प्रदान करो (एषः, ते, योनिः, ऋतायुभ्याम्, त्वा) हे ग्रह यह तुम्हारा स्थान

है, मित्रावरुण देवता ! ब्रह्म की संतुष्टि के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ १० ॥

या वाइशा मधुमत्पश्विना सूनृतावती तथा
यज्ञमिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोऽप्यश्विभ्या-
न्तैष ते योनिर्माख्योभ्यान्त्वा ॥ ११ ॥

इस कं० में १ मे० है । सबका मेधातिथिऋषि है । छं० १ भुरिगा-
र्षीगा० १ याजुषी त्रि० और देवता १ अश्विनौ २ ग्रह । मंत्रार्थ
(अश्विना, वाम्, या, कशा, मधुमती, सूनृतावती, तथा, यज्ञम्,
मिमिक्षतम्) है अश्विनीकुमारद्वय तुम्हारी जो प्रकाश करने
वाली वाणी प्रकाशती ब्राह्मण उपनिषद् मंत्रांसा से युक्त प्रिय
और सत्यतासे युक्त है उस वाणीसे इस पद को सींचकर पूर्ण
करो । हे पंचमग्रह ! तुम अश्विनी देवता की गीति के निमित्त
इस (उपयामगृहीतः, अस्ति, एषः, ते, योनिः, माख्योभ्यान्त्वा)
उपयाम पात्रमें ग्रहण किये हुए हो हे अश्विग्रह ! यह तुम्हारा
स्थान है, मधुमय मंत्र ब्राह्मण पढ़नेवाले अश्विनीकुमार के निमित्त
तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ११ ॥

तमृत्तथा पूर्वथा विरयधेमथा ज्येष्ठतातिम्ब-
र्हिपदं स्वर्धिदम् । मतीचरिं वृजनं दोहसे धु-
निमाशुज्यन्तमनु यासु वर्धसे । उपयामगृही-
तोऽमि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरताम्प्राप्यमृष्टः

शण्डो देवास्थां शुक्रपाः प्रशयन्त्यनाभृष्टास्ति ॥ १२ ॥

इस कं० में ५ मे० है । सबका वत्सार कारयण ऋषि है । छं० १
निचृ० ज०, १ आर्च्युष्णि० ३ या० गा० ४ या० पं० ५ दै० पं०
और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह ३ लिंगोक्ता ४ आभिचारक
५ शुक्रपा ६ वेदिश्रोणि । मंत्रार्थ—हे इन्द्र ! तुम (यासु, अनुवर्धसे
तम्, ज्येष्ठतातिम्, बर्हिपदम्, स्वर्धिदम्, धुनिं, आशुम्, जयन्तम्,
वृजनम्, दोहसे) जिन यज्ञक्रियाओंमें पुनः पुनः सोमरस पान
करके वृद्धि को प्राप्त होते हो वृत्त होते हो, उस उत्कृष्ट विस्तारवान्

सर्वज्येष्ठ यज्ञ में कुशासनके सेवी स्वर्गवेत्ता शत्रुओंको कम्पित करने वाले जेतव्य वस्तुओं को शीघ्र जीतनेवाले तुम बलपूर्वक यज्ञफल को यजमानके प्रति देवेहो (मत्तया, पूर्वया, विश्वया, इमया, ते) समस्त यज्ञके प्राचीन नियम की समान पूर्ववर्थाके अनुसार सब प्रकार इस समयके यजमानकी समान इस यज्ञका फल देते हो, ऐसे आपकी हम स्तुति करते हैं, हे षष्ठग्रह ! शुक्र (उपयामगृहीतः, असि, शण्डाय, स्वा) तुम उपयामपानमें गृहीत हुए हो, शण्ड नामक जनके निवासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः, ते योनिः, वीरतां, पाहि) यह तुम्हारा स्थान है इस स्थानमें अवस्थान करके यजमानके वीरत्वकी रक्षा करो (शण्डः, अपमृष्टः, शुक्रयाः, देवाः, त्वा, मीळयन्तु) असुरनेता अपमानित हुआ हे ग्रह शुक्रनामक ग्रह में स्थित सोमपान करनेवाले देवता तुमको निरापद आहवनीय स्थानमें प्राप्त करें, हे उत्तर, वेदे! ओष्णी तुम (अतापृष्टा, असि) अनुप्राप्त हो, अर्थात् तुम्हारे द्वारा इस ग्रहको क्षान्ति नहीं पहुँच सकती ॥ १२ ॥

सुवीरो धीरान्मज्जनयन्परिहाभिं रायस्पोषेण
यजमानम् । सज्जमानो दिवा पृथिव्या शुक्रः
शुक्रशोचिष्ठा निरस्तः क्षण्डः शुक्रस्पाधिष्ठा-
नमसि ॥ १३ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार काश्यप ऋ० छन्द १ सा० प्रि० २ साम्न्यनु०, १ देवी षं० ४ मा० गा० और दे० १, २ का शुक्र ३ अभिचारक ४ सकल । मंत्रार्थ—हे ग्रह तुम (सुवीरः, वीरान्, मज्जनयन्, रायस्पोषेण, यजमानम्, अभि, परीहि) सुन्दर वीरतासे युक्त हो इस यजमानके शूरतासे युक्त पुत्र भृत्यादिको उत्पन्न करते हुए, अनेक प्रकारकी धन पुष्टिद्वारा यजमानके ऊपर कृपाकर सब प्रकारसे प्राप्त करो (शुक्रः, शुक्रशोचिष्ठा, पृथिव्या, दिवा, सज्जमानः) यह शुक्रग्रह अपनी पावित्र्य कान्ति के साथ पृथिवी और पुलोकसे संगति को प्राप्त होकर दीक्षिमान हो रहा

है (शण्डः, निरस्तः, शुक्रस्य, अधिष्ठानम्, असि) शण्डमासकं
 असुर दूर हुआ, हे यूपकाष्ठ खण्ड । तुम शुक्रग्रहके अधिष्ठान हो १३
 अचिच्छन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्यो-
 पस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा संस्कृति-
 विश्वयांगी स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१४॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋ० छं० १ प्रा०
 पं० १ विराडापीं मि० और देवता १ सोम २ इन्द्र है। मंत्रार्थ-
 (सोमदेव, अचिच्छन्नस्य, सुवीर्यस्य, ते, रायस्योपस्य, ददितारः,
 स्याम) हे सोमदेवता खण्डराहित्य निरन्तर कल्याण प्रभाववाले
 बली, आपके प्रसादसे हम धनपुष्टिके देनेवाले हों (सा, विश्व-
 वारा, संस्कृतिः, प्रथमा, वरुणः, मित्रः, सः, अग्निः, प्रथमः) वह
 सन्पूर्ण ऋत्विग्मनों से वर्णीय यह संस्कार क्रिया, जिसकारण
 कि इन्द्रके निमिष कीजाती है, इससे यह मुख्य है और जगत्की
 उत्पत्ति का कारण होने से सोमका, वरुण, मित्र और वह अग्नि-
 देवता मुख्य भूत है ॥ १४ ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा इन्द्राय सु-
 तमाजुहोत स्वाहा । तृप्यन्तु होत्रा मध्वो याः

स्विष्टा याः सुप्रतीताः सुहुता यत्स्वाहायाहुनीत् ॥१५॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वत्सार काश्यप ऋ० । छं०
 १ प्रा० पं० २ दै० वृ० और सबका होत्रा देवता है मंत्रार्थ—(सः,
 चिकित्वान्, बृहस्पतिः, प्रथमः, तस्मै, इन्द्राय, सुतम्, स्वाहा,
 आजुहोत) वह अनुषम चेतनावान् महाबुद्धितम्पन्न बृहस्पति
 मुख्यमंत्री है, उस इन्द्रके उद्देश से यह प्रस्तुत सोमरस आहुत
 होता है यह आहुति भलीप्रकार स्वीकार हो, इस प्रकार स्वाहा-
 कार कर हवन करो (होत्राः, तृप्यन्तु, याः, मध्वः, स्विष्टाः, याः, सु-
 प्रतीताः, यत्, स्वाहा, सुहुताः, अग्निः, अयाह) इन्द्रो के अभिमानी
 वे देवता तृप्त हों जो मधुस्वादवाले सोम को इष्टवाले भोग करने
 वाले जो अत्यन्त प्रसन्न हैं, जिसकारणसे स्वाहाकार द्वारा होम

के निमित्त नियुक्त हुए हैं, शुक्रग्रह सोमसम्पन्न हुआ ॥ १५ ॥

अपं येन अचोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो
विमाने । इममपाथसंगमे सूर्यस्य शिशुन्न
विषां मातिर्भां रिहन्ति । उपयामगृहीतोसि
मर्कतीयत्वा ॥ १६ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । ऋ०
२ निष्पृ० त्रि०, २, साम्नीगा० और देवता १, २ सोम है । मंत्रार्थ-
(अपं, ज्योतिर्जरायूः, रजसः, पृश्निगर्भाः, अचोदयत्)
यह विद्युत् लक्षणवाली ज्योतिसे वेष्टित कान्तिमान् चंद्र जलके
निर्माण करने में जलों को मेरणा करता है (विषाः, सूर्यस्य, अपां
संगमे, इमं, शिशुं, न, मातिर्भाः, रिहन्ति) बुद्धिमान् ब्राह्मण
सूर्य के जलकी सङ्गतिके समयमें इस सोम को विषपुष्पकी समान
बुद्धिपूर्वक वाणियों से स्तुति करते हैं हे सप्तग्रह तुम (उपयामग्र-
हीताः, असि, मर्कतीय, त्वा) उपयाम पात्रद्वारा ग्रहण कियेगये हो
मर्क असुरके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ १६ ॥

मनोनपेषु हवनेषु तिग्मं विषः शर्यां वनुधो
व्रवन्ता । आ यः शर्याभिस्तुविनृग्णो अस्या
अंणीतादिशुं गभरतावेष ते योनिः प्रजाः पा-
थर्षमृष्टो मर्को देवास्त्वामन्थिपाः प्रणयुध्वना
घृष्टासि ॥ १७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । ऋ०
१ आ० पं० २ या० वृ० ३ या० पं० ४ या० गा० और देवता
१ सोम २ ग्रह ३ मन्थि ४ आभिषारक । मंत्रार्थ- (व्रवन्ता, विषः,
शर्या, मनोनपेषु, हवनेषु, तिग्मं, वनुधः, यः, तुविनृग्णः, गभस्तौ
अस्य, शर्याभिः, आदिशम्, अथीणीत) लघुहस्त, क्षिप्रकारी,
बुद्धिमान् कर्मद्वारा मनके उत्साहपूर्वक जिन सोमरसके हवनोंमें
मनकी समान तीक्ष्ण उत्साहसे विशेष मन लगाये रहे हैं जो बहुत
धनवाला ऋत्विक्, हाथोंमें स्थित इसको अङ्गुली समूह के द्वारा

सब ओरसे सक्तुओंसे मिश्रित करता है, हे मन्थीग्रह (ते, एषः, योनिः, प्रजाः, पाहि, मर्कः, अपमृष्टः) तेरा यह स्थान है, इस स्थानमें स्थित करते यजमान की प्रजाकी रक्षा करो, मर्क अतुर अपमार्जित हुआ है मन्थीग्रह (मन्थिपाः, देवाः त्वा, मण्यन्तु, अनाष्टृष्टा, असि) मन्थीग्रहके पान करनेवाले देवता तुम्हको यह स्थानमें प्राप्त करें हे वेदिधोणी अनुपाहंसित हो ॥ १७ ॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीष्टाभि रायस्पोषेण
यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी
मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्क मन्थितोधिष्ठा-
नमसि ॥ १८ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । छं० १ सा० वि०, २ साम्न्यनु०, ३ दैवी पं०, ४ राजपत्या गा० और १, २, मन्थि दै०, ३ आभिचारिकं, ४ शकलं । मंत्रार्थ—हे ग्रह (सुप्रजाः, प्रजाः, प्रजनयन्, रायस्पोषेण, यजमानं, अभि परीहि) तुम सुप्रजा हो यजमानसम्बन्धिनी प्रजाको उत्पन्न करतेहुए धनकी पुष्टिके साथ यजमान के समुत्पन्न आगमन कीजिये (मन्थी, मन्थिशोचिषा, दिवा, पृथिव्या, सञ्जग्मानः) यह मन्थी नाम ग्रह अपनी वीर्यसे धुलोक और भूलोक के सहित संगतिको प्राप्त होकर यूपकी पालना करता है (मर्कः निरस्तः, मन्थिनः अधिष्ठानम् असि) मर्क निरस्तहुआ दूर हुआ, हे यूपकाष्टखण्ड तुम मन्थीग्रहके अधिकरण हो ॥ १८ ॥

ये देवास्तो द्वियेकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश
स्थ । अस्माक्ष्णतो महिनैकादश स्थ, त देवास्तो
यज्ञमिन्द्रं यज्ञम् ॥ १९ ॥

इसका परुष्मेप ऋ० भुरिगार्पा पं० छं० विश्वेदेवा देवता है । मंत्रार्थ—(देवास्तः, ये, महिमा, दिवि, एकादश, स्थ, पृथिव्यां, अधि, एकादश स्थ) हे देवताओ ! जो तुम अपनी महिमा क मभावसे धुलोक में स्वारह हो तथा महामाग्य होनेसे पृथिवी के

ऊपर ग्यारह हो (अप्सुक्षितः, एकादश स्य, देवासा, ते, इमम्, यज्ञम्, जुषध्वम् :) अंतरिक्ष में भी ग्यारह स्थित हो हे देवताओं इस यज्ञको सेवन करो ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोस्यागूयणोमि स्वाग्रयणः । प्रा-
क्षिप्यज्ञम्पाहि यज्ञपतिं बिष्णुस्त्वामिन्द्रियेण
पातु बिष्णुन्त्वम्पाद्याभि सवन्नानि पाहि ॥ २० ॥

इसका परछेप अर्थ है, पं० निचृदार्पण० छं० आग्रयण
देवता है । मंत्रार्थ—हे ग्रहः तुम (उपयामगृहीतः, असि, आग्रयणः
स्वाग्रयणः, असि, यज्ञं, पाहि, यज्ञपतिं, पाहि,) उपयाम पात्र
द्वारा गृहीत हो आग्रयण नामवाले धेनुताके प्राप्त करनेवाले हो,
इस यज्ञकी रक्षा करो यज्ञपति यज्ञमानकी रक्षाकरो (बिष्णुः,
इन्द्रियेण, त्वां, पातु, त्वं, बिष्णुं, पाहि, सवन्नानि, आभि, पाहि)
यज्ञके अधिपति बिष्णुदेव, अपनी सामर्थ्य से तुमको रक्षा करें
तू भी यज्ञदेवको रक्षाकर मातरादि तीन सवनको सब ओर से
रक्षा कर ॥ २० ॥

सोमः पवते सोमः पवतेसौ ब्रह्मणेस्मै क्षुद्रायास्मै
सुन्वते यजमानाय पवते इष ऊर्जे पवतेद्भ्यः
ओषधीभ्यः पवते घाघांषुधिवीभ्यांस्पवते सु-
भूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः । एय ते
योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

इस कं० में ३ मं० है । सबका परछेप प्रा० है । छं० १ ब्र०
जा० प०, २ दे० ज० ३ याजु० ज० और देवता विरेवेदेवा, १,
३, ग्रह । मंत्रार्थ—(सोमः, असौ, ब्रह्मणे, सोमः, असौ, क्षुद्राय,
पवते, असौ, सुन्वते, यजमानाय, पवते, अद्भ्यः, ओषधीभ्यः,
पवते,) यह सोम, इस ब्राह्मण जाति की मीति के निमित्त ग्रह-
प्राप्तमें क्षुरित होता है, सोम इस सप्त जातिकी तुष्टिके निमित्त
ग्रहप्राप्तमें क्षुरित होता है इस सोमाभिषेक करनेवाले यज्ञमान के

निमित्त ग्रहपात्रमें क्षरित होता है, अर्द्धो वर्षाके निमित्त ओषधियों से क्षरित होता है (आवापुषिर्वाभ्याम्, पवते, सुभूताय, पवते विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) दोनों लोक की सन्तुष्टताके निमित्त क्षरित होता है, लोकत्रय और समस्त धराचर की संतुष्टताके निमित्त क्षरित होता है, समस्तके ही आनन्द के निमित्त यह सोमग्रह पात्रमें क्षरित होता है, हे ग्रह (एषः, ते, योनिः, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा,) यह तुम्हारा स्थान है सम्पूर्ण देवताओं की प्रीति के निमित्त तुम्हें स्थापन करता हूँ ॥ ११ ॥

उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा वृहद्वते वयस्वते
उक्ष्याव्यङ्गृह्णामि । यत्त इन्द्र वृहद्वयस्तस्मै त्वा
विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्तवा देवेभ्यस्तवा
देवाव्यङ्ग यज्ञस्यार्थुपे गृह्णामि ॥ २२ ॥

इक कं० में ३ मं० हैं। सबका परुच्छेप ऋ०। अ० १ आर्षी पं०-२ दै० ज० १ आर्षी गा० और सबका लिङ्गोक्ता देवता। मन्त्रार्थ-हे उक्षयग्रह ! (उक्ष्याव्यम्, त्वा, वृहद्वते, वयस्वते, इन्द्राय, गृह्णामि) उक्षयके साहित्य देवताओंका वृत्तिकारक जानकर तुमको वृहत्साम सोमरूप अन्नवाले इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ (इन्द्र, यत्, ते, वृहत्, वयः, तस्मै, त्वा, विष्णवे, त्वा) हे परम भाग्यवान् इन्द्र जो तुम्हारा महान् सोमरूप अन्न है उसके पात्र के निमित्त तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, हे सोम यज्ञके अधिष्ठात्री देवता विष्णुकी प्रीति के निमित्त तुम्हें स्थापन करता हूँ हे उक्षयग्रह (एषः, ते, योनिः, उक्थेभ्यः, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, उक्षयमियदेवताओं की प्रीति के निमित्त तुम्हें इस स्थान में स्थापन करता हूँ हे सोम (देवाव्यम्, देवेभ्यः, त्वा, यज्ञस्य, आर्थुपे, गृह्णामि) मित्रावरुणादि देवताओंके प्रीतिकारक जानकर देवताओंकी सन्तुष्टिके अर्थ तुम्हें स्थापन करता हूँ, यज्ञकी समाप्ति के फल पर्यन्त ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णा-
मीन्द्राद्य त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
ग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
वरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
वृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णा-
मीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृ-
ह्णामि ॥ २३ ॥

इस कं० में ६ मं० हैं । सबका परुच्छेप ऋ० । छं० १ आर्ची
गा०, २ आसुरी गा०, ३ प्राजापत्यानु० ४ आर्ची गा०
५ निर्युद्ध मा० ६ भुरिगु सामन्यनु० और सबका लिंगोक्त दे० ।
मंत्रार्थ (देवाव्यम्, मित्रावरुणाभ्यां, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा,
देवाव्यम्, इन्द्राय, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा,) देवगणों की वृत्ति
कारक जानकर मित्रावरुण देवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञ की निर्विघ्न
समाप्तिके निमित्त तुम्हें अंश को ग्रहण करना है देवगणों की वृत्ति
कारक जानकर इन्द्रदेवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञ समाप्ति के
निमित्त तुम्हें ग्रहण करना है (देवाव्यम्, इन्द्राग्निभ्याम्, यज्ञ-
स्यायुषे, त्वा, देवाव्यम्, इन्द्रावरुणाभ्याम्, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा,
देवाव्यं, इन्द्रावृहस्पतीभ्याम्, त्वा, यज्ञस्य, आयुषे) देवसमूहों का
वृत्तिकारक जान इन्द्र अग्निदेवता के निमित्त यज्ञ की समाप्ति के
निमित्त तुम्हें ग्रहण करना है, देवगणों का वृत्तिकारक जानकर
इन्द्रावरुण देवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञ की निर्विघ्न समाप्तिके
निमित्त तुम्हें ग्रहण करना है, देवगणों का वृत्तिकारक जानकर
इन्द्र और वृहस्पति देवता की प्रीतिके निमित्त तुम्हें ग्रहण करना
है, यज्ञ की निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुम्हें ग्रहण करना है,
(देवाव्यं, इन्द्राविष्णुभ्याम्, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा) देवताओं का
वृत्तिकारक जानकर इन्द्र और विष्णुदेवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञ
की निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुम्हें तीसरे अंश को ग्रहण करना है ॥ २३ ॥

मूर्द्धानं दिवो अरतिमृथिव्या वैश्वानरमृत आ-
जातमग्निम् । कविं स्रम्राजमतिथिञ्जनाना-
मासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० आर्षां त्रि० छं० वैश्वानर दे० । मंत्रार्थ-
(देवाः, दिवः, मूर्द्धानं, पृथिव्याः, अरतिम्, वैश्वानरम्, ऋते,
आजातम्, कविं, सम्राजम्, जनानां, अतिथिं, अग्निं, आपात्रं,
अजनयन्त) देवताओंने सुलोकके मस्तकस्वरूप सूर्यरूपसे प्रका-
शित पृथिवीके सीमास्वरूप जाठराग्निरूपसे समस्त नरलोक के
हितकारी यह में अरणीद्वयसे उत्पन्न, अविचल तथा दीप्तिमान्,
क्रान्तदर्शी, भक्तों के सम्मुख होनेवाले, नक्षत्रमण्डलीमें सम्राट्
यज मानादि समस्तजनोंके अतिथिवत्, इविसे आदरणीय इस-
क्षाग्निकी मुख्यपात्र चमस करके प्रकट किया ॥ २४ ॥

उपयामगृहीतोसि ध्रुवोसि ध्रुवाक्षितिर्ध्रुवाणां-
ध्रुवतमोच्युतानामच्युतक्षित्तम एव ते योनि-
वैश्वानराय त्वा । ध्रुवध्रुवेण मनसा वाचा
सोममवनयामि । अथान इन्द्र इन्द्रिशां सपत्नाः
समनसस्करन्तु ॥ २५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ निर्वृ-
दार्प्यनु० २ या० त्रि० १ निच्युद्दसाम्नीवृ० ४ निच्युदार्पीगा०
और दे० १, २, ३, ध्रुव, ४ इन्द्र है । मंत्रार्थ-हे सोम । तुम
(उपयामगृहीतः, असि, ध्रुवक्षितः, ध्रुवाणां, ध्रुवतमः, अच्युतानां
अच्युतक्षित्तमः, ध्रुवः, अति) उपयामपात्र में गृहीत हो स्थिर
निवासवाले समस्त गृह नक्षत्र मण्डलकी अपेक्षा अत्यन्त अचल
तथा च्युतिरहित पात्रमें निवास करनेवाले, ध्रुवनामसे प्रसिद्ध हो
ध्रुवदेवके प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ । हे ध्रुवग्रह !
(एव, ते, योनिः, वैश्वानराय, त्वा, ध्रुवेण, मनसा, वाचा,
ध्रुवसोमं, अवनयामि) यह तेरा स्थान है, समस्त नरलोक के
हितकारी देवकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन

करता हूँ, स्थिर मन और बाणीसे इस ध्रुवणहमें स्थित सोमको होतुमचस पात्रान्तरमें सिंचन करता हूँ, (अथ, आ, इन्द्रः, इव नः, विशः, असपत्नाः, समनसः, करव) इसके अनन्तर इन्द्र देवता ही हमारी प्रजाको शत्रुशून्य स्थिरमन्न करे ॥ २५ ॥

यस्तै दृप्स स्कन्दति यस्तै अथशुश्रुर्वच्युतो
धिपण्योरूपस्थात् । अध्वर्योर्वा परि वा यः
पवित्रास्तन्ते जुहोमि मनसा वषट्कृतं स्वाहा
देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका देवश्रवा ऋ० है । छं० १ मूरिगा० त्रि० २ दैव्यु०, ३ आसु० जाग० और देवता १, सोम २ अग्नि, ३ चत्वाल मंत्रार्थ—दे सोम (ते, यः, द्रप्सः, स्कन्दति, यः ते, अंशुः, आवच्युतः, धिपण्योः, उपस्पान्, वा, अध्वर्योः, वा, यः, पवित्रात्, परि, मनसा, वषट्कृतं, स्वाहा, जुहोमि) तुम्हारा, जो, किञ्चित् रस, पात्र में करते समय भूमि में पतित होता है, और जो तुम्हारा खण्ड अभिषेककाल में पत्थर द्वारा कण्ठन करते करते आवच्युत होकर इधर उधर उड़ता है और जो तुम्हारा अंश रस अभिषेक फलक के मध्य से गिरता है या शैर्धर्यु के व्यवहार समयमें जो कुछ नष्ट हुआ है, या जो पवित्रता से रिकल रसविन्दु भूमिमें पतित हुई है, हे सोम तुम्हारे यह सब अंश मनसे ग्रहण कर वषट्कारपूर्वक स्वाहाकारपूर्वक आहुति प्रदान करता हूँ हे चत्वाल तुम (देवानां, उत्क्रमणम्, असि) देवताओंके स्वर्गगमनके सोपान हो ॥ २६ ॥

माणार्य मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानार्य मे
वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानार्य मे वर्चोदा वर्चसे
पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतू द-
क्षाभ्याम्मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ओत्राय मे
वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुभ्याम्मे वर्चोदमौ व-
र्चसे पवेधाम् ॥ २७ ॥

इस कं० में ७ मं० हैं । सबका देवथवा ऋ० छं० १ आसुर्यनु० २, आसुर्यनु० ३, आसुर्युणिक्, ४ साम्नी, गायत्री ५ आसुरी गा० ६ आसु० ७ आसुर्यु० । मंत्रार्थ—यह ग्रह यज्ञ के प्राण हैं इसकारण प्राणरूपसे स्तुति करते हैं, हे उपांशुग्रह ! जिस कारण से कि तुम स्वभावसे (वर्चोदाः, मे, प्राणाय, वर्चसे, पवस्व) तेजके देनेवाले हो इसकारण मेरे हृदयमें स्थित प्राणवायु में तेज बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ । हे उपांशु सवन ! तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, व्यानाय, वर्चसे, पवस्व) कान्ति देनेवाले हो, मेरे व्यानवायुसम्बन्धी कान्तिके बढ़ाने के निमित्त प्रवृत्त होओ, हे अन्तर्याम ग्रह जिसकारणसे कि तुम (वर्चोदाः मे, उदानाय, वर्चसे) कान्ति देनेवाले हो मेरी उदानवायुसम्बन्धी कान्तिको बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ, हे इन्द्रवायव ग्रह तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, वाचे, वर्चसे) कान्तिप्रद हो, मेरी वायवसम्बन्धी कान्तिके बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ, हे मैत्रावरुण ग्रह तुम स्वभावसे (वर्चोदाः, मे, ऋतू, दक्षाभ्यां, वर्चसे पवस्व) कान्ति देनेवाले हो मेरे कामना और समृद्धितया कार्य निपुणता सम्बन्धी कान्तिके बढ़ाने के निमित्त प्रवृत्त होओ । हे आश्विन ग्रह तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, श्रोत्राय, वर्चसे, पवस्व) कान्ति देनेवाले हो मेरे श्रोत्रेन्द्रियकी कान्तिदानके निमित्त प्रवृत्त होओ हे शुक । और मंथिग्रह जिसकारण कि तुम (वर्चोदाः, मे, चक्षुर्भ्याम्, वर्चसे, पवेयाम्) स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो मेरी नेत्रसम्बन्धी कान्तिको बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ २७

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा

वर्चसे पवस्वार्युपे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वि-

द्वर्षाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदमौ वर्चसे पवेयाम् ॥ २८॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं । सबका देवश्रवां ऋ० है । छं० १, २, ३ का आसुर्यनु० ४ भुरिगसाम्न्यु० और देवता सबका लिंगोक्त है । मंत्रार्थ—हे आश्रयण ग्रह ! (वर्चोदा, मे, आत्मने,

पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिपद हो, मेरी आत्मसम्बन्धी कान्तिके देने को प्रवृत्त होओ हे सव्यग्रह ! (वर्चोदाः, मे, आजसे वर्चसे, पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिपद हो मेरे शरीरादिवल सम्बन्धी कान्तिकी वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ, हे ध्रुवग्रह ! (वर्चोदाः मे, आयुषे, वर्चसे, पवस्व) स्वभावसे कान्ति देनेवाले हो मेरी आयुःसम्बन्धी कान्ति की वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ हे पूतभृत् ! आहवनीय ग्रह ! तुम स्वभावसे (वर्चोदसौ, मे, विश्वाभ्यः, प्रजाभ्यः वर्चसे, पवस्व) कान्तिपद हो, मेरी सम्पूर्ण प्रजादर्थ को कान्ति देने को प्रवृत्त होओ ॥ २८ ॥

कौंसि कत्तमोसि कस्यांसि को नामांसि । यस्य
ते नामान्मन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृषाम भूर्भुवः
स्यः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याधंसुवीरौ वीरैः सु-
पोषः पोषैः ॥ २९ ॥

इस सं० में २ मं० हैं । सवकां देवभुवा ऋ० है । छं० आर्ची पं० २ भुरिगसा० पं० और सवका प्रजापति देवता है । मनार्थ-हे द्रोणकलश ! तुम (कः, कंसि, कश्मः, असि, कस्य, आसि, कः, नामांसि, यस्य, ते, नाम, अमन्महि, यं, त्वा, सोमेन, अती-तृषाम) कौन प्रजापति हो कौनसे अतिशय वा बहुतों के मध्यमें हो किस प्रजापति के हो, क्या नाम है, जिस तेरे नामको हमजानें जिस तुमको जानकर सोमरस से वृत्त करचुके हैं, क्या तुम बड़ी हो, तुम हमको नाम बताकर कामभासे वृत्त करो (भूर्भुवः, स्वः, प्रजाभिः, सुप्रजाः, स्याम्) हे अग्नि ! वायु और सूर्य ; आपके प्रसादसे मैं प्रजाओंसे अच्छी प्रजावाला होऊँ (वीरैः, सुवीरैः, पोषैः, सुपोषः) वीरतायुक्त पुत्र पौत्रादि लाभ करके सुपुत्रवान्, विख्यात होऊँ, उत्कृष्ट धन संपत्तिसे प्रसिद्ध होकर अच्छी संपत्ति वाला विख्यात होऊँ ॥ २९ ॥

उपयामगृहीतोमि मध्वे त्वोपयामगृहीतोमि
माधवाय त्वोपयामगृहीतोमि अक्राय त्वोप-

यामगृहीतोसि शुचये त्वोपयामगृहीतोसि न-
 भसे त्वोपयामगृहीतोसि नभस्याय त्वोपयाम-
 गृहीतोसीपे त्वोपयामगृहीतोस्यूर्जे त्वोपयामगृही-
 तोसि सहसे त्वोपयामगृहीतोसि सहस्याय त्वो-
 पयामगृहीतोसि तपसे त्वोपयामगृहीतोसि
 त्वपस्याय त्वोपयामगृहीतोस्यध्वसस्पतये त्वा ॥३०॥

इस कं० में १६ मं० है, सबका देवधवा ऋषि है । छं० १,
 २, ३, ४, ५, ६, ११ का साम्नी गा० ६, १०, १२, का आसु-
 र्यनु० ७, ८ का याजुषी पं०, ११, का आसुर्युष्टिण्क और सबका
 देवता ऋतु है । मंत्रार्थ-हे मयम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, आसि
 मधवे, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो मधु देवताकी प्रीति
 के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे द्वितीय ऋतुग्रह (उपयाम
 गृहीतः, आसि, माधवाय, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए
 हो, वैशाख की सन्तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे
 तृतीय ऋतुग्रह ! (उपयामगृहीतः, आसि, शुक्राय, त्वा) तुम
 उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो ज्येष्ठके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ
 हे ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, शुचये, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत
 हुए हो, आपाद मासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे पंचम ऋतु-
 ग्रह (उपयामगृहीतः, आसि, नभसे, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो
 भाद्र मासके निमित्त ग्रहण करता हूँ-हे षष्ठ ऋतुग्रह ! तुम (उपयाम
 गृहीतः, आसि, नभस्याय, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो भाद्र-
 सासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे सप्तमग्रह (उपयामगृहीतः,
 आसि, इपे, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो आश्विन मासके निमित्त
 तुमको ग्रहण करता हूँ-हे अष्टमग्रह (उपयामगृहीतः, ऊर्जे, त्वा,)
 तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो कार्तिकमासके निमित्त तुमको
 ग्रहण करता हूँ हे नवम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, आसि, सहसे,
 त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो मार्गशीर्ष के निमित्त
 तुमको ग्रहण करता हूँ हे दशमग्रह (उपयामगृहीतः, आसि, सह-

स्याय, त्वा) तुम उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो पौषमासके निमित्त
 तुमको ग्रहण करताहूँ—हे एकादशग्रह (उपयाम गृहीतः, असि,
 तपसे, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो माघमासके निमित्त
 तुमको ग्रहण करताहूँ हे द्वादश ऋतुग्रह ! (उपयाम गृहीतः, असि,
 तपस्याय, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो फल्गु मासके
 निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ हे त्रयोदश ग्रह उपयाम गृहीतः,
 असि, अधेइतस्तपे, त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो
 पापके अधिपति मत्तमासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नी आगतधेमुतङ्गीभिर्नभो वरेण्यम् ।

अस्य पातन्धियेष्टिता । उपयामगृहीतोऽग्नीन्द्रा-

ग्निभ्यान्त्वैप ते योनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा ॥ ३१ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । छं० १ निचृदा०
 गा० २ शार्पधनु० और देवता १ इन्द्राग्नी, २ ग्रह । मंत्रार्थ—(इन्द्राग्नी
 सुतम्, गीर्भिः, नभः, वरेण्यम्, आगतम्, धिया, अस्य, पातम्)
 हे इन्द्राग्नी देवताओ तुम अभिषवण ऋक् यजुःसाम के मंत्रोंसे
 आदित्य की समान प्रार्थनीय, सोमरस पानके निमित्त आओ,
 यज्ञपान की बुद्धि से प्रार्थनीय होकर तुम इस सोमरसके स्वभाग
 को पान करो, (उपयामगृहीतः, असि, इन्द्राग्निभ्यान्त्वा) हे
 चौबीसवें ग्रह तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो इन्द्राग्नी देवता की
 प्रीतिके के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ हे इन्द्राग्नी ग्रह (उपयाम,
 ते, योनिः, इन्द्राग्निभ्यां त्वा) यह तुम्हारा स्थान है इन्द्राग्नी
 देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करताहूँ ?

आ घ्रा ये अग्निभिर्न्यते स्तृणन्ति वह्निरानुपक् ।

येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोऽग्नीन्द्रा-

ग्निभ्यान्त्वैप ते योनिरग्नीन्द्राभ्यान्त्वा ॥ ३२ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका विशोक ऋषि है । छं० १
 आपी गा० २ आर्चुणिष्णु और दे० १ अग्नीन्द्र २ ग्रह है । मंत्रार्थ—
 (ये, आग्नेम्, आइन्वते, आनुपक्, वह्निः, स्तृणन्ति, येषाम्,

युवा, इन्द्रः, सखा, अघा) जो यजमान अग्निको इष्टि आदि-
यज्ञों में पञ्चलित करते हैं और क्रमसे कुशाओंको विद्याते हैं
और जिनके सदा तरुण इन्द्रनारायण सखा हैं वह सदा निष्पाप
हैं (उपयामगृहीतः, असि, अग्नीन्द्राभ्याम्, त्वा, एपः, ते, योनिः,
अग्नीन्द्राभ्याम्, त्वा,) हे सोम उनके यज्ञमें तुम उपयामपात्र से
गृहीत हो, अग्नि इन्द्रदेवताओंके लिये तुम्हें स्वीकार करता हूँ,
हे सोम यह तेरा स्थान है अग्नि इन्द्र देवताओंके निमित्त तुम्हें
स्थापन करता हूँ ॥ ३२ ॥

ओमासश्चर्पणीधृतो विश्वेदेवासु आगत ।

दाशुवाँसो दाशुपः सुतम् । उपयामगृहीतोसि

विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एप ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा

देवेभ्यः ॥ ३३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका मधुच्छंदा ऋ० । छं० १
आर्षी गा० २ आर्ची वृ० और देवता १ विश्वेदे० २ प्रह ।
मंत्रार्थ—(विश्वेदेवासः, ओमासः, चर्पणीधृतः, सुतम्, दाशुपः,
दाशुवाँसः, आगत) हे विश्वेदेवा ! तुम सब, हमारे सबकार
से रक्षक हो तथा मनुष्यों को पुष्ट करनेवाले हो मनुष्य तुम्हारे
मसाद से ही पुष्ट होते हैं अभिपुनसंस्कार किये सोम को देनेवाले
यजमान को फल देनेवाले तुम सोमगान् के निमित्त आओ हे
पंचविंशगृह (उपयामगृहीतः, असि, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा,)
तुम उपयामपात्र में गृहीत हो विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीति के नि-
मित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे वैश्वदेवगृह (एपः, ते, योनिः,
विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) यह आपका स्थान है विश्वेदेवा देव-
ताओं की प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ३३

विश्वेदेवासु आगत शृणुता मं इमं हवम् ।

एदम्वर्हिर्निर्पीदत । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्य-

स्त्वा देवेभ्य एप ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका गृत्समद ऋ० छं० १ आर्ची
गा० २ आर्ची वृ० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह मंत्रार्थ-(विश्वे-
देवासः, आगत, मे, इमं, हवं, आशृणुत) हे विश्वेदेव देवताओं !
हमारे इस यज्ञ में आओ मेरे आह्वानको सब प्रकार से श्रवण करो
(इदम्, वहिः, आनिपीदत) इस विस्तीर्ण कुशापर स्थित होओ,
शेषं पूर्ववत् ॥ १४ ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाहिं सोमं यथा शार्याते अ-
पिवः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना-
विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतो-
सीन्द्राय त्वा मरुत्वत एव ते योनिरिन्द्राय
त्वा मरुत्वते ॥ १५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १
आर्ची त्रिष्टुप् १ आपर्ण्यष्टिण्क और देवता, १ विश्वेदेवा, २ ग्रह
मंत्रार्थ-(मरुत्वः, इन्द्र, यथा, शार्याते, सुतस्य, अपिवः) मरुत
देवताओंवाले हे इन्द्र ! जिस प्रकार वड़े परित्यक्त करनेवाले शर्याति
यज्ञमें अभिपुत्र सोमकं अंशोंको तुमने पिया था, इसी प्रकारसे
(इह, सोमं, पाहि, शूर, तव, प्रणीती, सुयज्ञाः, कवयः, तव, शर्मन्
आविवासन्ति) इस हमारे यज्ञ में सोमकी रक्षा करो और पियो
हे विक्रान्तवीर तुम्हारी सुनीति और अनुज्ञा से श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले
दूरदर्शी, तुम्हारे मुखपद स्थानमें चिरकालतक तुम्हारी परिचर्या
करते हैं, हे प्रथमग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, मरुत्वते, इन्द्राय
त्वा) तुम इस उपयामपात्र में गृहीत हो, मरुत देवताओंसे युक्त
इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त तुमको गृहण करता हूं । हे प्रथम
मरुत्वतीय ग्रह ! (एव, ते योनिः, मरुत्वते, इन्द्राय, त्वा) तुम
इस उपयामपात्रमें गृहीत हो मरुत देवताओंसे युक्त इन्द्रदेवताकी
प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूं ॥ १५ ॥

मरुत्वन्तं वृषभं, वाष्टधानमकवारिन्दिव्यं
शासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नृतनाद्योयं
सहोदामिह तथैवेमा उपयामगृहीतोसीन्द्राय
त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्व-
ते । उपयामगृहीतोसि मरुतान्त्यौजसे ॥ ३६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । छं० १
विराडापी २ आर्घ्युष्णिक् ३ साम्युष्णिक् और देवता १ इन्द्र २
३ ग्रह है । मंत्रार्थ—(मरुत्वन्तं, वृषभं, वाष्टधानं, अकवारिम्,
दिव्यम्, शासं, विश्वासाहं, सहोदां, नृतनाय, अवसे, उग्रं, तं,
इन्द्रं, इह, आहुवेम) मरुद्गणोंसे युक्त उचित समय जल वर्षानि
वाले, ग्रीहि धान्वादिक बढ़ानेवाले, उत्कृष्ट ऐश्वर्यवान्, दुलोक
में रहनेवाले, दुष्टों के शासक, आलस्यरहित, विश्व के पालक,
बल देनेवाले, नूतन यजमान का रक्षण करने के निमित्त निरन्तर
उद्यत वज्रवाले उस इन्द्रको इस यज्ञमें रक्षा के निमित्त आह्वान
करते हैं । हे द्वितीय ग्रह तुम (उपयामगृहीतः, असि, मरुत्वन्ते,
इन्द्राय, त्वा, एष, ते, योनिः, मरुत्वते, इन्द्राय, त्वा, उपयाम-
गृहीतः, असि) उपयाम पात्रम गृहीतहो, शेष अर्थ पूर्ववत् । हे
तृतीय मरुत्वतीय ग्रह ! (मरुत्वतां, योजसे, त्वा) मरुत देव-
ताओं के बलसम्पादन के निमित्त तुमको इस ऋतुग्रह में ग्रहण
करता हूँ ॥ ३६ ॥

सजोपा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं न्यय वृत्रहा
शूर विद्वान् । जहि शत्रून् उपसृधो नुदस्वाथा-
भपङ्कृणु हि विश्वतो नः । उपयामगृहीतोसी-
न्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा
मरुत्वते ॥ ३७ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १ नि-
चूदापी त्रि० २ माजापत्या त्रि०, और देवता १ इन्द्र २ ग्रह
मंत्रार्थ—(शूर, इन्द्र, सजोपः, सगणः, वृत्रहा, विद्वान्,

सोमं, पिव, शम्नु, जहि) हे विक्रान्त इन्द्र तुम हमारे यज्ञको प्रीतिसे सेवन करो वृष के मारने वाले सबकुछ जानने वाले मरु दुग्धों के परिवारसहित सोमको पानकरो शत्रुओं को मारो (मृषः, अपनुदस्व, अय, नः, विश्वतः, अभयम्, कृणुहि) संग्रामसे शत्रुओंको निवृत्त करो, शत्रुनाशके अनन्तर हमको सब प्रकार से अभय कीजिये (उपयामगृहीतः, इत्यादि पूर्ववत्) हेगृह इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् ॥ ३७ ॥

मरुत्वान् इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्व-
धन्मदाय । आसिष्वस्व जठरे मध्वं ऊर्मि-
न्त्यधराजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृही-
तोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एव ते योनिरिन्द्राय
त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १ निचूदापीं मि०, २ माजापत्या मि० । देवता १, इन्द्र, २ ग्रह मंत्रार्थ—(इन्द्र, मरुत्वान्, वृषभः, अनुष्वधम्, सोमं, मदाय, रणाय, आपिव, मध्वः, ऊर्मि, जठरे, आसिष्व) हे इन्द्र मरुद्गणों से संयुक्त जलके वर्षानेवाले तुम स्वधापूर्वक पुरोडाश धान्यमन्य दाधि पय लक्षणवाले सोमरसको वृषि के निमित्त और दैत्यों से युद्ध के निमित्त पान कीजिये, इस मधुररसकी कवलोलको उदर में आसिष्वन करो (त्वं, प्रतिपत्सुतानां, राजा असि) तुम प्रतिपद् प्रभृति तिथियोंमें अभिषुग हुए सोमके राजा हो, हे ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः) उपयाम पानमें गृहीत इत्यादि पूर्ववत् १८

महार इन्द्रो नृचदार्षपिणिप्रा उत्तस्त्रिष्वर्हा अग्निनः
सहोभिः । अस्मद्रयग्यायुषे वीर्यायोरुः पृथुः
सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोसि
महेन्द्राय त्वेष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका यरद्वाज ऋ० है । छं० १ भुरि गा०, २ साम्नी मि० और देवता १ माहेन्द्र २ ग्रह है । मंत्रार्थ—

राजा जिस प्रकार मजावर्ग की अभिलाषा पूर्ण करता है, तद्वत् (आचषिवाः, द्विवर्हाः, संहोभिः, अमिनः, उत्त, अस्मद्द्रवक, महान्, इन्द्रः, वीर्याय, वावृषे, चरुः, पृथुः, कर्तृभिः, सुकृतः, अभूत्) मनुष्योंके अभीष्ट पूर्ण करनेवाले, मकृति विकृतिरूप सोमयाग के बढ़ानेवाले, बलों करके उपमारहित तथा हमारे प्रति अनुकूल महा प्रभावशाली इन्द्र वीरकर्मके निमित्त वृद्धि को प्राप्त होता है, तथा यहसे विस्तोर्णि, बलसे विस्तृग इन्द्र यजमानों द्वारा सत्कारित हुआ हमारी बलवीर्य की वृद्धि करे । हे चतुर्थ ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, आसि, महेन्द्राय, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, महेन्द्रदेवता की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ, हे माहेन्द्र ग्रह ! (एषः, ते, योनिः, महेन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है महेन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त तुम्हको इस स्थान में स्थापन करता हूँ ॥ ३९ ॥

महार् इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमा इव ।

स्तोमैर्वत्सस्य वावृषे । उपयामगृहीतोसि महे-

न्द्राय स्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥

इस क० में २ मंत्र हैं । सबका वत्स अ० है । छं० १ आर्षी गा० २ विराडार्षी गा० । देवता १ महेन्द्र २ ग्रह है मन्त्रार्थ-(यः महान्, इन्द्रः, ओजसा, वृष्टिमान्, पर्जन्य, इव, वत्सस्य, स्तोमैः, वावृषे) जो महा प्रभावशाली इन्द्र तेजसे महान् वर्षावाले मेघ के समान मनसे कीहुई स्तुतियोंसे वृद्धि को प्राप्त होता है, हे ग्रह (उपयामगृहीतः) तुम उपयाममें गृहीत हो । पूर्ववत् ॥ ४० ॥

उदुत्पञ्जातवेदसन्नेवं वहन्ति केतवः दृशो त्रि-

स्वाय सुर्वेय स्वाहा ॥ ४१ ॥

इसका मन्त्रकण्व अ०, भुरिगार्षी गा० छं०, सूर्य देवता है ॥ मन्त्रार्थ (केतवः, त्वम्, जातवेदसं, देवं, सूर्यम्, विश्वाय, दृशे, उ, उदहन्ति, स्वाहा) किरणसमूह, उस प्रासिद्ध, सब पदार्थों को जानने वाले, प्रकाशात्मक, सूर्यदेव को, इस समस्त विश्व के, प्रकाश

करने के निमित्त, वितर्क के साथ, प्रतिनियत ऊर्ध्व बहन करती हैं
अर्थात् स्वर्ग में पहुँचाती हैं इन्हीं देव के उदर से दिया हुआ
यह हावि भलीप्रकार गृहीत हो ॥ ४१ ॥

चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्य वरुण-
स्याग्नेः आपा यावापृथिवी अन्तरिक्षस्य
आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भुरिता० वि० छं०, सूर्य दे० । मन्त्रार्थ—
(चित्रं, देवानां, अनीकं, मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः, चक्षुः, जगतः,
तस्थुषः आत्मा, सूर्यः, उदगात्, यावापृथिवी, अन्तरिक्षं, आपाः,
स्वाहा) यह कैसा आश्चर्य है कि देवताओं के जीवनधार ग्रहा
विष्णु महेश रूपधारक परमेश्वर के नेनवत् प्रकाशवान् जंगम
और स्थावर जगत्के अनार्यामी सूर्य उदय को प्राप्तहुए, भूलोक
से सुलोक पर्यन्त अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूर्ण करवा है उन
सूर्यदेव के निमित्त दी हुई आहुति भलीप्रकार से स्वीकृत हो ॥ ४२ ॥

अग्ने नयं सुपथां णये अस्मान्विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान् । युयोद्धस्मजुहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ॥ ४३ ॥

इस मंत्र की व्याख्या ५ अ० १६ में मन्त्र में होगई ॥ ४३ ॥

अयन्तो अग्निर्वरिषस्कृणोत्ययम्भृधः पुर एतु
प्रभिन्दन् । अये याजाञ्जयतु वाजस्तातावपथे
शश्वजयतु जह्विपाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

इस मन्त्र की व्याख्या अ० १ में १७ में होगई ॥ ४४ ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागान्तुथो वो विद्वधेदा वि-
भेजतु । अतस्य पथा मेतं चन्द्रदाक्षिणा वि स्वः
पश्यन्पुनरिंक्ष यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं । सबका आह्निरस ऋ० । छं० १. प्र-
जाप० ज०, २ याजुष्यनुष्टुप्, ३ देवी त्रि०, और सबका दक्षिणा
देवता है । मन्त्रार्थ—(चन्द्रदाक्षिणाः, रूपेण, वोः, रूपं, अभ्यागां,
विद्वधेदाः, तुयः, विभजतु,) सुवर्ण दक्षिणावाली हे गौओं में,

यजमानकी मूर्ति से, तुम्हारे, रूप को, प्राप्त हुआ हूँ, सर्वज्ञ, प्रज्ञा तुमको यथायोग्य विभाग करके ऋत्विजों के निमित्त प्रदान करै (ऋ-तस्य, यथा, प्रेत) यज्ञ के, मार्ग से, गमन करो । हे दक्षिणा रूप संपूर्ण गौश्रो ! आज हम तुमको प्राप्त करके (स्वः विषय, अन्तारिक्ष, वि) स्वर्ग के देवयान मार्गको देखते हैं, अन्तारिक्ष पितृयान मार्ग को देखता हूँ । हे ऋत्विग्गण ! तुम इसप्रकार (यतस्व, सदस्यैः) यत्न करो कि जिसप्रकार समासदों को यथाभाग पूर्ण होकर भी कुछ गोदक्षिणा शेष रहनाया । ४५ ॥

ग्राह्यणमुच विदेयम्वितृमन्तस्पैतृमत्यमृपिंमार्पे-
यधुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छ
प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका आक्षिप्त अपि है । छं० १ आर्ची वृ०, २ आर्चीगा० और देवता १ लिंगोक्ता, २ दक्षिणा देव है । मंत्रार्थ—मैं (अथ, पितृमन्तम्, पैतृमत्यं, ऋपिं, आप्येयं, सुधातुदक्षिणं, ग्राह्यणं, विदेयम्) आज विरूपात विद्वान् यशस्वी पितावाले, जनमान्य पितामहवाले, मंत्रों की व्याख्या करनेवाले ऋषियों में विरूपाग, जिसके निकट सम्पूर्ण सुधर्णदक्षिणा संचय कीजाय ऐसे सर्वकुलगुणसंपन्न ग्राह्यण को मैं प्राप्त करूँ । हे सम्पूर्ण दक्षिणा ! तुम (अस्मद्राताः, देवत्रा, गच्छत, दातारं, प्राविशत,) हमारे द्वारा दीहुई । देवताओं से अधिष्ठित ऋत्विग्गण के समीप यथाभाग उपस्थित होओ और देवताओं को हृष्टकर, इस यज्ञ का फल देने के लिये दाता यज-
मान में प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमंशी-
यायुर्वाग्नि एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे । रुद्राय
त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय माणो
दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे । बृहस्पतये
त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय त्वग्नात्र

एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमायत्वा मह्यं
वरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय हयो दान्न एधि
वयो मह्यंप्रतिग्रहीते ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका आङ्गिरस ऋ० है । छं० १
आर्चो त्रि० १ भुरिगार्चो त्रि० ३ निचृदार्चो ज०, ४ भुरिगार्चो
त्रि० और देवता १ हिरण्य, २ गौ ३ वज्र, ४ अश्व है । मंत्रार्थ-
हे सुवर्ण ! (वरुणः, अग्नये, मह्यं त्वा, ददातु) वरुण देवता
अग्निरूपको प्राप्त हुए मेरे निमित्त तुमको प्रदान करें, इसप्रकार
से ग्रहण किये हुए सुवर्ण से (सः, अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, आयुः
एधि, प्रतिग्रहीत्रे, मह्यं, मयः) वह मैं आरोग्यता प्राप्त करूं, हे
सुवर्ण तुम दाताकी परमायुकी वृद्धि करो, प्रतिग्रह करने वाले
मुझको सुखकी प्राप्ति हो हे गौ ! (वरुणः, रुद्राय, मह्यं, त्वा, ददातु
सः, अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, प्राणः, एधि मह्यं प्रतिग्रहीत्रे वयः)
वरुण देवता रुद्ररूप मुझे तुमको प्रदान करता है, वह मैं आरो-
ग्यता को प्राप्त हूं तुम दाता के चल प्राणकी वृद्धि करो मुझ प्रति-
ग्रहीता के अन्नपशुकी वृद्धि करनेवाले हो, हे वज्र ! (वरुणः,
वृहस्पतये, मह्यं, त्वा, ददातु, सः, अमृतत्वम्, अशीय, दात्रे, त्वक्
एधि, प्रतिग्रहीत्रे, मयः) वरुण देवता वृहस्पतिरूप मेरे निमित्त
तुमको देता है, वह मैं तुमको प्राप्त करके अमृतत्व को प्राप्त करूं,
तुम दाता की त्वग्निन्द्रियशक्तिकी वृद्धि करो, प्रतिग्रहीता मेरे सुख
की वृद्धि करो । हे अश्व ! (वरुणः, यमाय, मह्यं, त्वा, ददातु, सः
अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, हयो, एधि, प्रतिग्रहीत्रे, मह्यं, वयः) वरुण
देवता यमरूप धर्मरूप मेरे निमित्त तुमको देता है वह मैं तुमको
प्राप्तकर आरोग्यताको प्राप्त करूं दाता के यहां घोड़ोंकी वृद्धि करो
प्रतिग्रह करनेवाले मेरी पशुसम्पत्ति की वृद्धि करो ॥ ४७ ॥

कौट्रात्कस्मा अट्रात्कामोदोत्कामायादात् ।

कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्तै ॥ ४८ ॥

इसका आङ्गिरस ऋषि माजापत्या त्रिष्टुप् छं० कामो देवता ।

मन्त्रार्थ (कः, अदात्, कस्मै, अदात्, कामाय, अदात्, कामः, दाता, कामः, प्रतिग्रहीता, काम, एतत्, ते,) कौन महात्मा ने दान किया किसके निमित्त प्रदान किया। यज्ञफल कामना ही के निमित्त दान किया कामना ही देनेवाली है, अभिलाषा ही प्रतिग्रह करनेवाली है, हे अभिलाष अभिलाषा करनेयोग्य यह समस्त वस्तु तुम्हारी ही है ॥ ४८ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत बाजसनेयि संहिता का सातवाह
सप्तम अध्याय समाप्त.

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

जिसमें उपशुग्रहआदि प्रधान हैं ऐसे सप्तम अध्याय में दक्षिणादान तक मन्त्र कहे। अब आठवें अध्यायमें तीसरे सवन के आदित्य यह आदि सम्बन्धी मंत्र कहे जायेंगे ॥

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्तथा । विष्णोऽवरु-
गायैप ते सोमस्तथैरक्षस्य मा त्वा दधन् ॥१॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका आक्षिरस ऋ० है। छं० १ याजुष्यनु०, २ दैवीपं० ३ साम्नीवृ० और देवता १, २, सोम, ३ विष्णु है। मन्त्रार्थ—हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः, आसि) उपयाम पात्र में गृहीत, हो। हे सोम ! (आदित्येभ्यः, त्वा) आदित्यगणों की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ (विष्णो, अरुगाय, एषः, सोम, रक्षस्व, मा, दधन्) हे यक्षस्तुत यज्ञपुरुष हे वही स्तुतिको प्राप्त होने वाले यह सोम, तुम्हारे निमित्त अर्पित है उस सोमको रक्षा करो रक्षा करने में तुमको अपुरदल पीडा न, देय ॥ १ ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्रं सश्वसि द्वाशुपे । उ-
पोपे भगवन्तु श्रुयन्तु ते दानन्देयस्य पृच्यत
आदित्येभ्यस्तथा ॥ २ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका आक्षिरस ऋ० है। छं० १

दार्षी ऋ०, २ विराट् ब्राह्मणनु० और देवता सबका सविता है ।
 मंत्रार्थ (सवितः, अथ, अस्मभ्यम्, वामं साधीः श्वः, उ, वामप,
 उ,) हे जगत् के उत्पन्न करनेवाले ! आज, हमारे निमित्त, व-
 रणीय यज्ञफल को, मेरणा करो, अगले दिन भी, यज्ञफल को
 दीजिये (दिवे, दिवे, वामम्, वामस्य, भूरे, सपस्य, हि, देव;
 अया, धिया, वामपाजः स्याम) प्रतिदिन यज्ञफल को दीजिये
 संमजनीय विस्तीर्ण स्वर्गलोकनिवास की, सिद्धि के निमित्त,
 जिस से, हे देव, हम इस यज्ञायुक्त बुद्धि से यज्ञफल के
 भोगनेवाले होवें ॥ ६ ॥

उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि चनोधाश्चनोधा
असि चनो मयि धेहि । जिन्वं यज्ञजिज्जिन्धं
यज्ञपतिम्भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, विराट् ब्राह्मणनुपुञ्जं०, सविता देवता
 है । मंत्रार्थ—हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, सावित्रः,
 असि, चनोधाः चनोधाः चनः, मयि धेहि) उपयाम पात्र में गृ-
 हीत हो, हे सोमग्रह तुम सवितादेवतासम्बन्धी हो, अन्न के
 धारण करनेवाले अधिकतर अन्न के धारण करनेवाले हो इस
 कारण अन्न मुझको दो (यज्ञं, जिन्वं, यज्ञपतिं, जिन्धं, भगाय,
 सवित्रे, देवाय, त्वा) यज्ञ को प्रीति करो यजमान को प्रीति करो
 ऐश्वर्यादि गुणयुक्त, सब के उत्पादक सविता देवता के निमित्त
 तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो
ग्रहदंक्षाय नमः । बिभ्वैभ्यस्त्वा देवेभ्यं ण्य ते-
पोनिर्विभ्वैभ्यस्त्वा देवेभ्यं ॥ ८ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । कं० १ नि-
 चूट प्राजाप० ज०, २ याजु० ज० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह
 है । मंत्रार्थ—हे महावैश्वदेव ग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, सुशर्म
 सुप्रतिष्ठानः, नमः असि) उपयामपात्र में गृहीत हो, अष्ट कल्याण

की खान भलेमकार पात्र में स्थित यह अन्न है (विश्वेभ्यः दे-
वेभ्यः त्वा) विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त तुमको
उपयामपात्र में ग्रहण करता हूँ । हे महावैश्वदेव ग्रह ! (एषः,
ते, योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (विश्वेभ्यः, देवेभ्यः त्वा)
विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त तुम को इस स्थान में
स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम
इन्दोरिन्द्रियायतः पत्नीवतः ग्रहां ऽ अश्रद्ध्या-
सम् । अहस्पस्तादहमवस्तापदन्तरिक्षन्तर्धु मे
पिताभूत् अहसूर्यमुभयता ददर्शाहन्देवानां-
स्परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । छं० १ प्राप्ता
गा० २, ३, आर्च्युष्णिक् और देवता १ सोम २, ३ का मजापति
रूपात्मा है । मंत्रार्थ—(देवसोम, उपयामगृहीतः, असि, बृहस्पति,
सुतस्य, ते, इन्दोः, इन्द्रियायतः, पत्नीवतः, ग्रहान् आश्रद्ध्यासम्)
हे दीप्यमान देव सोम तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो, इसकारण
यज्ञकर्मवाले यजमानसे अभिपुत्र, तुम्हारे सम्बन्धी रसयुक्त वीर्य-
वान्, पत्नीसंयुक्त तुम्हारे अनुग्रहसे, अन्यान्य उपांशु मभूति ग्रहों
को पूर्ण करता हूँ । (अहं, परस्तात्, अहं, अधस्तात्, यत्, अन्त-
रिक्षं, तत्, उ, मे, पिता, अहं, उभयतः, सूर्य, ददर्श) मैंही नीचे
भूलांकादि में स्थित हूँ, जो मध्यवर्ती लोग हैं वह ही मुझ देह
धारी का पितृवत् पालक होता है, मैं परमरूप हुआ ऊपर नीचे
स्थित होकर, सूर्य को देखता हूँ (देवानां, यत्, परमं, गुहा, अहं)
देवताओं का जो अत्यन्त गोप्य हृदय है सो मैं हूँ ॥ ९ ॥

अग्नान्नह पत्नीवत्सुजुर्देवेन त्यष्टां सोमं पिब-
स्थाहा । प्रजापतिर्वपांसि रेतोधा रेतो मायि
धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णा रेतोधसो रेतोधामशीय १०

इस कं० में २ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ भुरि-

तुम शुभ यजमानमें धन पुष्टिको धारण करो हम ऋत्विगादिको सुन्दर सामर्थ्य से युक्त ब्रह्मतेज दो । हे प्रथम अतिग्राह्य ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, वर्चसे, अग्ने, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो कान्तिमद अग्नि देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ । हे प्रथम अतिग्राह्यग्रः (एषः ते, योनिः, वर्चस्विने, अग्नेये त्वा) यह तुम्हारा स्थान है तेजःमद अग्निदेवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ (वर्चस्विन, अग्ने, त्वं, देवेषु, वर्चस्वान्, असि, अहं, मनुष्येषु, वर्चस्वान्, भूपासम्) हे विशिष्ट तेजोयुक्त अग्निदेव तुम देवताओं में अति दीप्तिमान् हो इस कारण तुम्हारे मसादसे मैं मनुष्यों में कान्ति युक्त आतितेजस्वी होजाऊँ ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिमे अवेपथः ।
सोममिन्द्र चमूसुतम् । उपयामगृहीतोऽसिन्द्राय
त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रो-
जिष्टौजिष्टस्त्वन्नेवेष्टस्पोजिष्टोहममनुष्येषु
भूपासम् ॥ १९ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । सरका कुरुस्तुति ऋ० । छ० १ आर्षी गा०, १ आसुर्पनुष्टु० ३ याजुषीत्रि० ४ आर्च्युष्णिक् और देवता १ इन्द्र, २, ३ सोम०, ४ इन्द्र है । मन्त्रार्थ (इन्द्र, ओजसा, सह, उत्तिष्ठन्, चमूसुतम्, सोमं, पीत्वी, शिमे, अवेपथः) हे इन्द्र ! तुम अपने बलके साथ बैठते हुए अधिपवण में अभि-
पुत हुए सोमको पान करके अपनी ठोड़ी और नासिकाको कम्पित करो हे द्वितीय अतिग्राह्य ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, ओजसे, इन्द्राय, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो बलवान् इन्द्र देवकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ—हे द्वितीय अति-
ग्राह्य ग्रह ! (एषः, ते, योनिः, ओजसे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है बलवान् इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको आसादन करताहूँ (ओजिष्ठ, इन्द्र, त्वं, देवेषु, ओजिष्ठः, असि,

मनुष्येषु, अहं, योजिष्ठः, भूयासम्,) हे बलवत्तम । इन्द्र देव !
तुम सब देवताओं में बलवान् हो तुम्हारे प्रसाद से मनुष्यों में
मैं अति बलवान् होऊँ ॥ ३९ ॥

अदृशमस्य केतव्यो विरश्मयो जनोऽनु आजं-
न्तो अग्नयौ यथा । उपयामगृहीतोसि सूर्याय
त्वा भ्राज्यायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राज्याय ।
सूर्ये आजिष्ठ आजिष्ठस्त्वष्टेवेष्वासि आजि-
ष्ठोहममनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं । सबका प्रस्कण्व ऋ० । छं० १
आर्षी गा०, २ आसुरी गा०, ३ साम्नी गा०, ४ आर्षी गा० और
देवता १ सूर्य, २, ३, सोम, ४ ग्रह है (अस्य, केतवः, रश्मयः,
जमान्, अनु, वि, अदृशम्, यथा, आजन्तः अग्नयः) इस सूर्य
की, भद्राके हेतु सम्पूर्णपदार्थका ज्ञान करानेवाली संपूर्ण किरणें
प्राणियों के अनुगत विशेष कर दीखती हैं जिसप्रकार प्रवर्तित
अग्नि सर्वत्र भासती है । हे तृतीय अतिग्राह्यग्रह । (उपयाम
गृहीतः, असि, भ्राज्याय, सूर्याय, त्वा) उपयामपान में गृहीतहो
दीप्तिमान् सूर्य की भीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ । हे
तृतीय अतिग्राह्यग्रह (एषः, ते, योनिः, भ्राज्याय, सूर्याय, त्वा)
यह तुम्हारा स्थानहै दीप्तिमान् सूर्यदेवकी तुष्टिके निमित्त तुमको
इस स्थानमें आसादन करताहूँ (आजिष्ठ, सूर्य, त्वं, देवेषु,
आजिष्ठः, असि, मनुष्येषु, अहम्, आजिष्ठः, भूयासम्) हे
प्रदीप्त सूर्य तुम सब देवताओंमें अतिदीप्तिमान् हो तुम्हारे प्रसाद
से मनुष्यों में मैं अतिशय दीप्तिमान् होऊँ ॥ ४० ॥

उदृत्य ज्ञातव्यं दत्तं देवं ब्रह्मन्ति केतव्यः । दृशे
विश्वाय सूर्यम् । उपयामगृहीतोसि सूर्याय
त्वा भ्राज्यायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राज्याय ॥ ४१ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका प्रस्कण्व ऋ० । छं० १ मितृ-
दार्षी गा०, २ आसुरी गा०, ३ साम्नी गा० और देवता

सूर्य, २, सोम हैं । मंत्रार्थ- (केतवः, त्वं, जातदेसं, यं, देवं सूर्यम् विश्वाय, दशा, सद्वहन्ति) मन्त्राकी हेतु किरणें, उस, सबके देखनेवाले, जिस देव, सूर्यको समस्तजगत्की दृष्टिदेने के निमित्त सद्वहन करती हैं (उपयामष्टीतः) पूर्ववत् व्याख्या जाननी ॥ ४१ ॥

आजिष कलशममहा त्या विशन्तिवन्दयः पुन-
रूर्जा निर्वर्त्तस्व सा नः सत्सन्धुस्वोरु धात्रा
पर्यस्यती पुनर्मा विशतादृषिः ॥ ४२ ॥

इसका कुरुविन्दु ऋ० है । स्वराह माछयुष्टिण्क छ० । गौ देवता है । मंत्रार्थ (महि, कलशं, आजिष, इन्दवः, त्वा, आ-
विशन्तु, सा, ऊर्जा, पुनः, निर्वर्त्तस्व, नः, सत्सं, धुस्व) हे पूज-
नीय, गौ ! तुम इस द्रोण कलशको घुंयो, यह सोम के सार तुम्हारी
नासारन्ध्र में प्रवेश करें, वह तुम थेष्ठरस दुग्ध के साथ फिर
हमारे भाति निवृत्त हो, इसप्रकार से स्तुति को प्राप्त हुई तुम, हम
को सदस्र संख्या के धन से पूर्ण करो, (उरुधारा, पर्यस्यती, रायिः,
पुनः, मा, आविशतात्) बहुत दूध की धारावाली दुधारी गायें
सपा, धन सम्पत्ति, फिर हमारे घरको, प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

इडे रन्ते इव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेदिते सरस्वति
महि विश्रुति । एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो
मा सुकृतमभूतात् ॥ ४३ ॥

इसका कुरुविन्दु ऋ० । आर्षी पं० छं० और गौ देवता है ।
मंत्रार्थ (इडे, रन्ते, इव्ये, काम्ये, चन्द्रे, ज्योते, अदिते, सरस्वति,
महि, विश्रुति, अघ्न्ये, ते, एता, नामानि, देवेभ्यः, सुकृतम्,
मा, भूतात्) हे सबसे स्तुति को पानेवाली, सबकी दृष्टि में
रमणीय, यह मैं सब मनुष्य जिसका आह्वान करते हैं, देव
मनुष्य जिसकी कामना करते हैं, जिसको देख आन्हाद होता है,
प्रकाशमान पूर्ण अवयववाली अदीन दुग्धवती महामान्य अनेक
प्रकार की स्तुतिवाली अवध्य मारने के अयोग्य हे धेनु तुम्हारे
यह अतिशय गुणयुक्त नाम हैं इन नामों से आन्धान कीहुई तम

देवताओं के निमित्त इस हमारे सुन्दर कर्म को और इस कर्म करनेवाले युक्तों को देवताओं से कपन करो देवता हमारे इस कार्य को जानें ॥ ४३ ॥

यि न इन्द्र मृषो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरद्मया तमः उपया-
मगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते योनि-
रिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

इस कं० में ३ मं० है । संवका भरद्वाजशास ऋ० । छं० १ भुरिगनु०, २ आसुर्युष्णिक्, ३ याजुषीजं और देवता १ इन्द्र, २ ३ ग्रह हैं । मंत्रार्थ—(इन्द्र, नः, मृषः, विजहि, पृतन्यतः, नीचा, यच्छ, यः, अभिदासति, अधरं, तमः, आगमय) हे इन्द्र ! हमारे संग्राम में शत्रुओं को विशेषकर जोधो, संग्राम की इच्छा कर सेना संग्रह करनेवाले शत्रुओंको नीचोंकी समान निग्रह करो, जो हमको क्लेश देता है उसको निकृष्ट अन्धकाररूप नरक को प्राप्त करो । हे महाप्रतीय इन्द्र ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, आसि, विमृध इन्द्राय त्वा) उपयाम पानमें गृहीत हो विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवता की सन्तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे महाप्रतीय इन्द्र ग्रह ! (एषः, ते, योनिः, विमृधे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको आसादन करता हूँ ॥ ४४ ॥

वाचस्पति विश्वकर्माणमुत्तये मनोजुषं पाजं
अद्याहुवेम । स नो विश्वानि हव्नानि लोप-
विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा । उपयामगृहीतो-
सीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय
त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४५ ॥

इस कण्डि० में १ मंत्र है । संवका शासऋ० । छं० १ का भुरि० नि०, २ का सा० उ०, ३ का सा० गा० देवता १ का इन्द्र, २ का ग्रह ३ का लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—(अद्या, वाजे, वाचस्पः

तिम्, ममोजुषं, विश्वकर्माणं, ऊतये, हुवेम, सः, विश्वशम्भूः, साधुकर्मा नः, विश्वानि, हवतानि, अवसे, जापेत्) आज हम महाप्रतीय अन्न के विषयमें वाणियोंके पालक मनकी समान वेग वाले सृष्टिकर्ता को रक्षाके निमित्त पुकारते हैं, वह संसारका कल्याणकर्ता, सुन्दर कर्म करने वाला हमारे सकल हवगों को रक्षा के निमित्त सेवन करे (उपयामगृहीतः, आसि, विश्वकर्मणे, इन्द्राय, त्वा) हे इन्द्रग्रह तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो, विश्वकर्मा इन्द्र की तुष्टि के निमित्त तुमको अहण करताहूँ (एपः, वे, योनिः, विश्वकर्मणे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, विश्वकर्मा इन्द्रके निमित्त तुमको आसादन करताहूँ ॥ ४५ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन वातारमिन्द्रमकृणो-
रबध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीर्यसुग्री
विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय
त्वा विश्वकर्मण एप ते योनिरिन्द्राय त्वा वि-
श्वकर्मणे ॥ ४६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका शास अ० । छं० १ आरिगा०
मि०, २ साम्युणिक् ३ साम्मी गा० और देवता १ इन्द्र, २
३ ग्रह । मन्त्रार्थ (विश्वकर्मन्, वर्धनेन, हविषा, इन्द्रम्, वातारं,
अबध्यम्, अकृणोः, तस्मै, पूर्वीः, विशः, समनमन्त, यथा, अयं
उपयामः, विहव्यः, असत्) हे विश्वकर्मन् परमात्मन् । वर्धमान
हविषप्रदान द्वारा वर्द्धन के वाक्यों से प्रीति करने वाले तुमने इन्द्र
को जगत् का रक्षक, जिसको कोई न मारसकै ऐसा किया, इस
प्रकार इन्द्रके निमित्त पूर्वकाल की प्रजा महर्षि आदि प्रणाम
करते हुए, जिस प्रकारसे यह इन्द्र वज्र उठाये अनेक कार्योंमें
आन्धान योग्य हुआ है इस कारण सब प्रणाम करते हैं हे परमात्मन्
आपके हविसामर्प्य से इन्द्रका यह प्रभाव है (उपयामगृहीतः,)
हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसंगृहा-

मीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसंगृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा ।

देवेभ्यो जगच्छन्दसंगृह्णाम्यनुष्टुप् तैमिगरः ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका देवा ऋ० । छं० ? स्वराटार्घी गा०, २ सा० गा० ३ आ० गा०, ४ देवी जग० और सबका अदाभ्य देवता है । मंत्रार्थ—हे प्रथम अदाभ्य ग्रह सोम ! (उपयाम गृहीतः, आसि, गायत्रिछन्दसं, त्वा, आनये, गृह्णामि) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत, हो गायत्री छन्दके वरणीय तुमको अग्नि देवताकी प्रीति के निमित्त ग्रहण करताहूँ (त्रिष्टुप्छन्दसं, त्वा, इन्द्राय गृह्णामि) उपयाम पात्रमें गृहीत त्रिष्टुप्छन्द से वरणीय तुमको इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त ग्रहण करताहूँ, हे तृतीय अदाभ्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो (जगच्छन्दसं, त्वा, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, गृह्णामि) जगतीछन्दसे वरणीय तुमको सम्पूर्ण विश्वदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त ग्रहण करताहूँ । हे अदाभ्य नाम से गृहीत सोम ! (अनुष्टुप्, ते, तैमिगरः,) अनुष्टुप्छन्द तुम्हारी स्तुतिके निमित्त है ॥ ४७ ॥

व्रेशीनान्त्वा पतमन्नाधूनोमि कुकूननान्त्वा
पतमन्नाधूनोमि भन्दनान्त्वा पतमन्नाधूनोमि
मदिन्तमानान्त्वा पतमन्नाधूनोमि मधुन्तमा-
नान्त्वा पतमन्नाधूनोमि शुक्रन्त्वा शुक्र आधू-
नोभ्यन्हो रूपे सूर्यस्य इरिमयुं ॥ ४८ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सबका देवा ऋ० । छं० ? याजुषीपं०, २ याजुषीज०, ३ याजु० त्रि०, ४, ५, याजु० ज०, ६ भुरिस्ताम्नी वृ० है । मंत्रार्थ—हे सोम (व्रेशीनां, पतमन्, त्वा, आधूनामि, कुकूननानाम्, पतमन्, त्वा, आधूनामि, भन्दनानां, पतमन्, त्वा, आधूनामि) इधर उधर घावमान मेघों के उदर में वर्तमान जो जल के समूह हैं उन सबके वर्षने के निमित्त तुम्हको कम्पित करता हूँ—हे सोम ! शब्द करतेहुए जगत् के कन्याणकारी मेघों के उदर में जो जल है उसके वर्षण के निमित्त तुम्हको कम्पित करता हूँ, हे सोम ! हमको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाले जो

मेघों के उदर में जल है उनके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूं, हे सोम ! (मंदिन्तमानां, पत्मन्, त्वा, धूनीमि) अत्यन्त वृष्टिकारी जो मेघों के उदर में जल है उनके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूं (मधुन्तमानां, पत्मन्, त्वा, धाधूनीमि) अमृतस्वरूप जो मेघोदक है तिनके भूमिपर वर्षण के निमित्त तुझको कम्पित करता हूं—हे सोम (शुक्रं, त्वा, शुक्रे, धाधूनीमि, अन्हः, रूपे, भूर्यस्य, रश्मिषु) अक्रिष्टकर्मा शुद्ध तुझको शुद्ध अक्रिष्ट कर्मवाले निग्राभ्य लक्षणवाले जल में कम्पित करता हूं दिन के रूप सूर्य की किरणों से कम्पित करता हूं ॥ ४८ ॥

ककुभ॑त् रु॒पं वृ॒षभ॑स्य रोचते वृहच्छु॒क्रः शु॒क्रस्य॑
पुरो॒गाः सोमः॑ सोम॑स्य पुरो॒गाः । यत् सो॒मो-
दा॒भ्य॒क्षां जागृ॑वि तस्मै॒ त्वा गृह्णामि॑ तस्मै
ते सो॒म सोमा॑य स्वाहा ॥ ४९ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं । सबका देवा ऋ० । छं० १ निवृ-
त्तार्पि ज०, २ याजुपी पं० है और देवता सबका सोम है ॥ म-
न्त्रार्थ—हे सोम ! (वृषभस्य, ककुभं, रूपं, रोचते, वृहत् शुक्रः,
शुक्रस्य, पुरोगाः, सोमः, सोमस्य, पुरोगाः) श्रेष्ठ वर्षणकारी
तुम्हारा, ककुद् महत् आदित्य लक्षण, रूपा मदीप्त होता है,
महान्, शुद्ध आदित्य, शुद्ध सोमका पुरोगामी है, सोमही सोम
का पुरोगामी है (ते, अदाभ्यं, जागृवि, यत्, नाम, तस्मै, त्वा,
गृह्णामि) तुम्हारा अनुपार्हसि जागरणशील जो नाम है उस
तुमको ग्रहण करता हूं (सोम, तस्मै, ते, सोमाय, स्वाहा) हे
सोम ! उस आप सोमरूप के निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ४९ ॥

अ॒श्वि॒व॒त्प॒न्दे॒व सो॒मा॒ग्नेः मि॒थ॒म्या॒धो॒र्षी॒हि व॒शी
त्व॒न्दे॒व सो॒मे॒न्द्र॑स्य मि॒थ॒म्या॒धो॒र्षी॒ह॒स्मत्स॒खा

त्व॒न्दे॒व सो॒म॒ चि॒द्वै॒पा॒न्दे॒वाना॑मि॒थ॒म्या॒धो॒र्षी॒हि । ५० ।

इस कं० में १ है । सबका देवा ऋषि है । छं० १ आसुर्युत्पिण्ड,

२ आसुरी गा०, ३ आर्युष्णिक् और देवता सवका सोम है ।
मंत्रार्थ—(देव, सोम, उशिक, त्वं, अग्नेः, प्रियम्, पायः, अपीहि)
हे सोम देवता ! तुमको पानेकी सब कामना करते हैं इस कारण
तुम अग्निके प्रियखाद्य भावको प्राप्त होओ (देव, सोम, बशी,
त्वं, इन्द्रस्य, प्रियं, पायः, अपीहि) देदीप्यमान सोम ! कान्ति-
मान् तुम इन्द्रके प्रिय अन्नको प्राप्तहोओ (देव, सोम, अस्मत्,
सखा, त्वं, विश्वेषां, देवानां, प्रियं, पायः, अपीहि) हे देवसोम
हमारेबन्धु तुम सम्पूर्ण विरहे देवाओंके प्रिय अन्नको प्राप्तहोओ ५०

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः

स्वाहा । उपसृजन् धरुणम्मात्रे धरुणो मात-

रुन्धयन् । रायस्पोषंस्मासु दीधरत्स्वाहा ॥ ५१ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सवका देवाऋषि है । छं० १. प्राजाप-
त्या वृ०, २ भुरिगार्युष्णिक् और देवता १ पशु, २ अग्नि है ।
मंत्रार्थ—देः गोविन्द तुम्हारी, (रतिः, इह, रमध्वम्, इह, धृतिः,
स्वधृतिः, स्वाहा,) रति इस यजमानमें हो, इस यजमानमें तुम
रमण करो इस यजमानमें तुम्हारा संतोष हो इसी के स्थान में
स्वकीयों का संतोष हो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो
(धरुणः, मात्रे, धरुणम्, उपसृजन्, मातरं, धयन्, अस्मासु रायः,
पोषं, दीधरत्, स्वाहा) धारण करनेवाला अग्नि पृथ्वीके धारण
करनेवाले अग्निको समीपमें प्राप्त करताहुआ पृथ्वीको पीता
हुआ हमको धन पशु पुत्र सुवर्गादि की पुष्टि प्रदान करे यह
आहुति भलीप्रकार स्वीकृत हो ॥ ५१ ॥

सत्रस्य ऋद्धिस्त्वगन्मज्योतिरमृता अभूम ।

दिवं पृथिव्या अद्व्यारुहामाविदाम देवान्स्वर्ग्योतिः ॥

इसका देवाऋषि, भुरिगार्युष्णिक् छं० सोम देवता है । मंत्रार्थ
उत्तर हविर्दान ! तुम (सत्रस्य, ऋद्धिः, असि, ज्योतिः, अगन्म,
अमृता, अभूम, पृथिव्याः दिवम्, अद्व्यारुहाम, देवान्, अविदाम,
ज्योतिः, स्वः) यज्ञ की समृद्धिरूप हो तुम्हारे प्रसादसे ही हम

यजमान आदित्य लक्षणवाली ज्योति का प्राप्त होकर भरणधर्म से रहित होने की आशा करते हैं, पृथ्वी से पुलोक को आकृष्ट हुए देवगण इन्द्रादि जानें, ज्योतिरूप स्वर्ग के देखने जानने की आशा करते हैं ॥ ५२ ॥

युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्या-
दपतन्तमिद्धं वज्रेण तन्तमिद्धं तम् । दूरे वृ-
त्तायच्छत्सुद्गहनं यदि नक्षत् अस्माकं शत्रून्प-
रिशूर विश्वतो वृश्मा दर्पाष्ट विश्वतः । ऋधुवः
स्वः सुपुत्राः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः
सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका परछेप ऋ० । छं० १ आर्घ्यनु०;
२ विराट्दर्पाष्टं वृ०, ३ विरा० मा० पं० और देवताः १ इन्द्र पर्वत,
२ इन्द्र, ३ विराट् पु० । मन्त्रार्थ—(पुरोयुधा, इन्द्रापर्वता, युवं, तं,
तं, तम्, इत्, अपहन्तं, वज्रेण, तन्तम्, इत्, हन्तं, यः, नः, पृतन्यात्,
शूर, यत्, गहनं, दूरे, वत्ताय, चत्सुव, इनक्षत्) आगे युद्ध करने
वाले, शत्रुओं के सम्मुख युद्ध करनेवाले इन्द्र और पर्वत, तुम
दोनों, उस उस शत्रुको और विशेषकर ही उस शत्रुका विनाश
करो, वज्र नामक अपने तीक्ष्ण आयुध से, उसी शत्रुका विशेष
करके, विनाश करो, जो शत्रु, हमसे, सेना द्वारा युद्ध करे, हे शूर
हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र, जब अत्यन्त गम्भीर वन में, दूर वर्तमान
दूरगये शत्रुके निमित्त, कामना करे जब उस दूर गए हुएको
प्राप्त करले (दर्मा, अस्माकं, विश्वतः, शत्रून्, परिदर्पाष्टं) विदा-
रण करने वाला वज्र, हमारे, सब ओर स्थित, सम्पूर्ण शत्रुओं
को, सब ओर से विदीर्ण करो (ऋधुवः, स्वः प्रजाभिः, सुपुत्रा,
वीरैः, सुवीरा, पोषैः, सुपोषाः, स्याम) हे अग्नि वायु सूर्यादि
आपके मसाद से हम, प्रजाओं द्वारा अच्छी प्रजावाले वीर
पुत्रोंसे, सुपुत्रवान्, उत्कृष्टसम्पत्ति लाभ करके तुम्हारे मसाद से
सुसम्पत्तिवान्, विख्यातहो ॥ ५३ ॥

परमेष्ठ्याभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृताया-
मन्धो अच्छैतः सविता सन्या विश्वकर्मा दी-
क्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥ ५४ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १, ५, ६,
देवी जगती २ याजुषी पं०, ३, ४ देवीपं० है । देवता सबका लि-
ङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—जिससमय यजमान सोमयाग करने को प्रवृत्त
हो मन मनमें (अभिधीतः, परमेष्ठी, वाचि, व्याहृतायां, प्रजापतिः,
अच्छः, इतः, अन्धः) सोम चिन्ता कियाहुआ, परमेष्ठी होता है,
वाणी के, उच्चारण करने में, सोम प्रजापति नामक होता है ।
जिस काल में यजमान के अभिमुख, प्राप्तहुआ तब, अन्ध नाम
वाला होता है । सोम के (सन्या, सविता, दीक्षायां, विश्वकर्मा,
सोमक्रयण्याम्, पूषा) यथाभाग रक्षित होनेपर सविता नाम
होता है, दीक्षा में, सोमका, विश्वकर्मा नाम होता है, सोमक्र-
यणी गौ को लाने में सोम, पूषा नामवाला होता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितो सुतः पण्य-
मानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऊरावा-
सन्तो विष्णुर्नरन्धिपः पूष्यमाणः ॥ ५५ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १ आ-
सुर्यनुं०, २ देवीज०, ३ देवी वृ०, ४ याजुषी त्रिष्टुप्, ५ याजुषी
पं० है और सबका देवता लिंगोक्त है । मन्त्रार्थ—(क्रयाय, उपो-
त्थितः, इन्द्रः, च, मरुतः च) सोम के क्रयार्थ उपस्थित होने में
सोम इन्द्र, और, मरुत नामवाला भी होता है (पण्यमानः,
असुरः, क्रीतः, मित्रः, उरौ, आसन्तः, शिपिविष्टः, विष्णुः, मो-
द्यमाणः, नरन्धिपः, विष्णुः) क्रय करने के समय सोम, असुर
संज्ञक है, मोल लियाहुआ सोम, मित्र संज्ञक होता है, यजमान
की गोदी में स्थित सोम, प्राणियों में प्रविष्ट विष्णु नामवाला
होता है, शकट में वहन करतेसमय सोम, जगत्संहर्षी वा
जगत्पालक, विष्णु नामवाला होता है ॥ ५५ ॥

विष्णुवरुणा, अगन्) जिन विष्णु और वरुणके, प्रभावसे, लोक ठहरे हैं, जो विष्णुवरुण, अपने बलोंसे, अत्यन्त वीर, अत्यन्त बलवान् हैं, जो अपने बलोंसे अप्रतिम हैं, लोकत्रयका आधिपत्य करते हैं, उन यज्ञमें प्रथमही आन्धान किए, विष्णु और वरुणके प्रति, यह सोम गया ॥ ५९ ॥

तेषान्दिवमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्या
नन्तरिक्षमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन्
पृथिवीमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यद्वर्च
लोकमग्न्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि अथष्टि छ० और यज्ञदेवता है । मंत्रार्थ (यज्ञः, दिवम्, देवान्, अगन्, ततः, द्रविणं, मा, अष्टु) यह, यज्ञ, दुलोक में, देवताओंको पहुंचा उस स्वर्ग में स्थित यज्ञ से विशिष्ट भोगका साधन धनरूप यज्ञका फल मुझको प्राप्त हो (यज्ञः, मनुष्याम्, अन्तरिक्षं, अगन् ततः द्रविणं, मा, अष्टु) स्वर्गसे उतरेत समय यह यज्ञ मनुष्यलोक में आता हुआ वृष्टिरूपसे अन्तरिक्ष लोकमें प्राप्त हुआ, वहां स्थित यज्ञके फल से अनेक प्रकार के धनकी प्राप्ति मुझको हो, (यज्ञः, पितॄन्, पृथ्वीं, अगन्, ततः, द्रविणं, मा, अष्टु,) यह यज्ञ धूमादि मार्गसे पितरों के प्राप्त हो कर, भूलोकको, आया उसस्थानमें स्थित यज्ञके फलसे, धनादि मुझको प्राप्त हो (यज्ञः, यं, कंच, लोकं, अगन्, ततः, मे भद्रं अभूत्) यह यज्ञ, जिस, किसी भी, लोकको, गया हो, इसके फलसे, मेरा, कल्याण हो ॥ ६० ॥

चतुस्त्रिंशत्तन्तवो ये वितस्तिरे य इमं यज्ञं
स्वधया ददन्ते । तेषां चित्त्वनं सस्येत ह धामि
स्वाहां घृष्मो अप्येतु देवान् ॥ ६१ ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि वा०सपिणक् छ० और धर्म देवता है । मंत्रार्थ (ये, चतुस्त्रिंशत्, तन्तवः, इमं, यज्ञं, वितस्तिरे, ये, स्वधया,

ददन्ते,तेषां, छिन्नं, उ एतत्, सन्दधामि,स्नाहा) जो, चौगसि यज्ञ का विस्तार करनेवाले प्रजापति आदि देवता, इस यज्ञको विस्तार देतेहैं जो, अन्नादि द्वारा पुष्ट करते हैं उन यज्ञके विस्तार करने वाले देवताओंका जो, अंश छिन्न हुआ है, उसको इस धर्मपात्र में संग्रह करताहूँ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो, इस घृतसे महावीर संहितहो (धर्मः, देवान्, अग्न्येतु) महावीर देवताओं को प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुंरुत्रासो अष्टधा दिवं-
मन्वाततान । स यज्ञं धुक्व महि मे प्रजापाथ

रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥ ६२ ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि स्वराद्वार्यां त्रि० छ० और यज्ञ देवताहै मंत्रार्थ—(यज्ञस्य, दोहः, सः पुंरुत्रा, विततः, अष्टधा, दिवं, अन्वा-
ततान) यज्ञका जो, आहुतिपरिणाम हुआ, वह बहुत प्रकार से विस्तारको प्राप्त होताहुआ आठों दिशाओंमें फैलताहुआ पृथ्वी में व्याप्तहुआ है (सः, यज्ञः, मे, प्रजापां, महि, धुक्व, रायः, पोषं, विश्वं, आयुः, अशीय, स्वाहा) वह यज्ञ, मुझको सन्ततिमें, महिमाको प्रदानकरे, धनकी प्राप्ति, सम्पूर्ण अवस्थाएँ आयु को पाऊँ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ६२ ॥

आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् वाज-
गोमन्तमाभर स्वाहा ॥ ६३ ॥

इसका कश्यप ऋषि, स्वराद्वार्यां गा० छ० और सोम देवताहै मंत्रार्थ (सोम, आपवस्व, हिरण्यवत्, अश्ववत्, वीरवत्, गोमन्तम्, वाजं, आभर, स्वाहा) हे सोम ! तू, आकर इस यूपस्तम्भको पवित्र करो, सुवर्णयुक्त, अश्वयुक्त, वीरयुक्त, होकर, धेनुयुक्त अन्न, हमको सब प्रकार से प्रदान करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ६३ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिर्मेदिता का सानुवाद

अष्टम अध्याय समाप्त

अथ नवमोऽध्यायः ।

जिसमें अग्निष्टोम और प्रासंगिक मंत्र हैं ऐसे अष्टम अध्याय में शादित्य ग्रहादि सम्बन्धी मंत्र कहे । अब नवम अध्याय में चौतीसवीं कण्डिका तक वाजपेय यज्ञ के मंत्र कहते हैं ॥

॥ हरिः ॐ ॥ देव सवितः प्रसुव यज्ञप्रसुव
यज्ञपतिर्भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः

केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजन्नः स्वदतु स्वाहा ॥१॥

इसका वृहस्पति ऋ०, स्वराटार्पी ऋ० छ० और सविता देवता है । मंत्रार्थ—(देव, सवितः, यज्ञं, प्रसुव, यज्ञपतिं, भगाय, प्रसुव) हे दीप्यमान सब के मेरे परमात्मन् ! वाजपेय यज्ञ को, प्रवृत्त करो, यज्ञमान को, अनुष्ठानरूप ऐश्वर्य के निमित्त, मेरणा करो, (दिव्यः, केतपूः, गन्धर्वः, नः, केतं, पुनातु) दीप्यमान, अन्न के पवित्र करनेवाले, रश्मियों के धारण करनेवाले सूर्यमण्डल में वर्तमान नारायण, हमारे, अन्न को, पवित्र करें (वाचस्पतिः, नः, वाजं, स्वदतु, स्वाहा) वाक्य के अधिपति प्रजापति, हमारे, इषि रूप अन्नको, आस्वादन करें, यह आहुति भलीभाँति गृहीत हो ॥१॥

धृवसदन्त्वा नृपदम्भनःसदमुपयामगृहीतोसी-
न्द्राय त्वा जुष्टंङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय
त्वा जुष्टतमम् । अप्सुपदन्त्वा घृतसदं व्योम-
सदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टंङ्गृह्णा-
म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिवी-
सदन्त्वान्तरिक्षसदन्दिशिसदन्देवसदन्नाकस-
दमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टंङ्गृह्णाम्येष
ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

इस कं० में ९ मंत्र हैं । सवता वृहस्पति ऋ० । छ० १. याजुषी,
२, ५, ८, सामान्यनु० ३, ४, ६, ९, आसुर्यनु० ७ निवृ० गा० और
देवता सवता इन्द्र है । मंत्रार्थ हे प्रथम ग्रह ! तুম इन्द्र देवता की

मीतिके निमित्त (उपयामगृहीतः, असि, ध्रुवसदं, नृपदं, मनः, सदं, त्वा, इन्द्राय, जुष्टं त्वा गृह्णामि, एषः ते, योनिः, इन्द्राय जुष्टतमम्, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, स्थिर इस लोकमें स्थित मनुष्यों में स्थित मनमें स्थित, तुमको, इन्द्र देवताके, प्रिय तुमको, ग्रहण करताहूँ, यह तुम्हारा, स्थान है, इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । हे द्वितीयग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, अप्सुपदम्, घृतसदम्, ज्योमसदम्, त्वा इन्द्राय, जुष्टं, त्वा, गृह्णामि, एषः, ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टतमम्, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो जलमें स्थित, घृतमें स्थित, आकाशमें स्थित तुमको, इन्द्र देवताके, प्रिय, तुमको, ग्रहण करताहूँ, यह तुम्हारा, स्थान है, इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय, तुमको, इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । हे तृतीय ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, पृथिवीसदम्, अन्तरिक्षसदं, दिविसदं, देवसदम्, नाकसदं, इन्द्राय, जुष्टं, त्वा, गृह्णामि, एषः, ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टतमं, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, पृथिवीमें स्थित अन्तरिक्षमें स्थित, अलोक में स्थित देवताओंमें स्थित दुःख रहित देवस्थानमें स्थित तुमको इन्द्रके प्रिय तुमको ग्रहण करताहूँ, यह तुम्हारा स्थान है, इन्द्रके अत्यन्त प्रिय, तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । २ ॥

अपाथे रसमुद्वपमथे सूर्ये सन्तं समाहितम् ।

अपाथे रसस्य यो रसस्तं यो गृह्णाम्युत्तम-

मुपयामगृहीतोऽसिन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष

ते यो निरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

इसका बृहस्पति ऋ०, निचूदा० अ० छ० और रसदेवता है । हे चतुर्थ ग्रह ! (सूर्ये, समाहिते, सन्तं, उद्वपं, रसं, अपां, रसस्य, यः, रसा, तं, उत्तमं, वः, गृह्णामि) सूर्य में, स्थापित, विद्यमान, रसस्त अन्न के उत्पादक, जलों के, सार का, जो, सार है, हे देवताओं, उस, श्रेष्ठ उत्कृष्ट मजापति को, ग्रहण । करता हूँ शेष

पूर्वमन्त्र के समान है ॥ ३ ॥

ग्रहां ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् ।
तेषां विशिप्रियाणां बोहमियमूर्जं सभग्रभ-
मुपयामेहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येव ते
योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टं तमम् सम्पृचौ स्थः सम्मा
भद्रेण पृक्तं विपृचौ स्थो विमा पाप्मनां पृक्तम् ॥ ४ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं । सबका ग्रहसाति ऋ० है । छं० १
निघृडापर्षनु०, २, १, आनु० अनु० ४, ५, विराडामुर्धनु०
और देवता १, २, ४, ५, का ग्रह ३ इन्द्र है । मंत्रार्थ-(ग्रहाः, ऊर्जा-
हुतयः, विप्राय, मतिं, व्यन्तः, तेषां, विशिप्रियाणां, यः इपम,
ऊर्जं, अहं, सभग्रभम् गृह्णामि) है सम्पूर्णग्रहो ! अन्तरसका
आव्हाग करनेवाले तुम, बुद्धिमान् यजमान के निमित्र, विशिष्ट
बुद्धि को प्राप्त करानेवाले हो, वन, यजमानों के भिय, तुम्हारे,
सम्बन्धी अन्न, रस को, मैं सम्यक् प्रकार से ग्रहण करता हूँ । हे
पञ्चम ग्रह ! (उपयामगृहीताः, असि, इन्द्राय, जुष्टं त्वां, एषः,
तो, योनिः, इन्द्राय, जुष्टं तमं, त्वा) तुम उपयामपात्रमें गृहीत,
होइन्द्र देवताके, भिय, तुमको ग्रहण करताहूँ—हे पञ्चम ग्रह
यह तुम्हारा स्थान है, इन्द्र देवताके, अतिभिय जानकर तुमको
इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । हे सोम सुराग्रह जो कि तुम दोनों
(सम्पृचौ, स्थः मा, भद्रेण, सम्पृक्तम्) मिले हुए हो, सो तुम
दोनों, मुझको, कल्याण से, संयुक्त, करो, हे सोम सुराग्रह
तुम दोनों (विपृचौ स्थः,) वियुक्त, हो, (मापाप्मा विपृक्तम्)
मुझको पापाचरणसे पृथक् करो ॥ ४ ॥

इन्द्रस्य षज्जोसि वाजसास्त्वयायं वाजं सेत् ।
वाजस्यनु प्रसवे मातरं मांहीमदितिताम चचंसा
करामहे । यस्यामिदं विश्वम्भुर्वनमाविवेश
तस्यान्नो देवः संविता धर्म साधिपत् ॥ ५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका ग्रहसाति ऋ० । छं० १ आस०

गाँ० २ विराडिति ज० और देवता १ का रथ २ कृषिवी सविता हैं
 मंत्रार्थ—हे रथ । तुम (वातसाः, इन्द्रस्य, वज्रः, आसि, अयं, त्वयां,
 वाजं, सेत्) अन्न देनेवाले हो, इन्द्रके वज्रहो यह वज्रमान तुम्हारी
 वज्रतुल्य सदायता से अन्नको प्राप्त हो । (वाग्रस्य, प्रसवे, नु,
 मातरं, आदिति, महीं, नाम, वधसा, करामहे) अन्न के अनुष्ठा
 में वर्तमान हम जिस माता, जगत् की निर्माता करनेवाली अर्द्धा
 पूजनीय गतिद भूमिको वेदवाक्यों द्वारा अनुकूल करते हैं (यस्यां
 इदं, विश्वं, भुवनं, आविवेशः, देवः, सविता, तस्यां, त, धर्म,
 साविपत्) जिसमें यह सम्पूर्ण संसार प्रविष्ट है, प्रकाशात्मक सब
 के मेरक परमात्मा तिस भूमिमें हमारी हृद धारणाकी मेरणा करें ६

अप्सुन्तरमृतमस्तु भेषजमपायुता प्रशस्तिः-

ज्वद्वा भयतं प्राजिनः । देवीरापो यो घञ्जभिः

प्रतृप्तिः ककुन्मान्वाभाजसास्तेनायं वाजं धिसेत् ॥१॥

इस क० में २ मंत्र हैं । सबका वृहस्पति ऋ०, छं० १ विरा-
 डाप्यु० २ निचु० पा०पं० है और देवता १ अश्व, २ आप है ।
 मंत्रार्थ—(अप्सु, अन्तः, अमृतं, उत्, अप्सु, भेषजं, अरवा, वागिनः,
 भवत्, अपां, प्रशस्तिषु) मत्तोके मध्यमें अमृत स्थित है और जलों
 के मध्यमें आरोग्य और पुष्टिकारक औषधि स्थित है, हे अश्वो
 इस प्रकार से अमृत भेषज युक्त जलोंमें बेगवान् होओ, तथा
 जलोंके प्रशस्त भागोंमें स्नानके निमित्त प्रवेश करो । (देवीः,
 आपः, यः, यः, प्रतृप्तिः, ककुन्मान्, वातसाः, कर्मः, तेन, अयम्
 वाजम्, सेत्) हे दीप्यमान मत्तो ! तुम्हारी जो शीघ्र चलने वाली
 ककुद्के समान ऊँची अन्नकी देनेवाली, तरंगें हैं उनसे सिक्तहुआ
 यह अश्व, यजमानके इच्छितानुरूप अन्नको देने में समर्थ हो ॥१॥

वातों वामनों वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः । ते

अग्रे श्वयुज्जंस्ते अस्मिञ्ज्वमाद्वयुः ॥७॥

इसका वृहस्पति ऋ०, भुरिगार्प्यु० छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ
 (वातः, वा, मनः, वा, सप्तविंशतिः, गन्धर्वाः, ते, अग्ने, अरम्,

अयुञ्जन्, ते, अस्मिन्, जवं, आदधुः) वायुं या मन या सत्ताईस गंधर्व भूमिके धारण करनेवाले नक्षत्र वे सब वातादि के प्रथम अश्वको रथमें युक्त करते हुए वेही इस अश्वमें अपने २ बेगके अंशको धारण करते हुए ॥ ७ ॥

यात्तरथेहा भव वाजिन्पुज्यमान इन्द्रस्पेव दक्षिणः ध्रियैधि । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्व-
वेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवन्दधातु ॥ ८ ॥

इसका बृहस्पति ऋ०, पुरिगार्पा मि० छं०, अश्व देवता है ।
मंथार्थ—(वाजिन्, पुज्यमानः, यात्तरंहाः, भव, दक्षिणः, इन्द्रस्पे, इव, धिया, पधि, विरबवेदसः, मरुतः, त्वा, युञ्जन्तु, त्वष्टा, ते, पत्सु, जवं, आदधातु) हे बेगवान् अश्व ! जुतेहुए तुम वायुके समान बेगवान् हुआये, दक्षिण भागमें स्थित हुए इन्द्रके अश्वकी समान शोभासे युक्त होओ, सर्वज्ञ मरुत देवता, तुमको रथ में नियुक्त करें त्वष्टा देवता तुम्हारे चरणों में बेगको स्थापनकरें ॥

जुवो यस्तैवाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीतो
अचरन्तु वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन
वाज्जिन्तु भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो
वाज्जितो वाजं धस्तिप्यन्तो बृहस्पतेर्भागा-
मवजिघ्रत ॥ ९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वृ० ऋ० है । छं० १ आ० ज०,
२ आर्षी गायत्री और सबका देवता अश्व है । मंथार्थ—(वाजिन्, यः, ते, जवः, गुहानिहितः, यः, श्येने, परीतः, च, वाते अचरन्तु, वाजिन्, तेन, बलेन, बलवान्, नः, वाज्जित, च, समने, पारयिष्णुः) हे अश्व ! जो तेरा बेग हृदयमें स्थापित है, जो श्येन पक्षीमें तुम्हारा दिया बेग है, और वातमें जो बेग स्थित है । हे अश्व उस बल करके बलवान् होतेहुए हमारे निमित्त अन्नके जीतनेवाले होओ और संग्राम में शत्रुके सेनानिवेश का परामर्श करके हमारे निमित्त प्रचुर अन्न जीतो (वाज्जित, वाजं, धस्तिप्यन्तः, वाजिनः, बृह-)

स्वतेः, भांगे, अवशिष्टा) अन्नके जीतनेवाले अन्नके प्रति जाते हुए हे अर्थो ! बृहस्पति के भाग चरुको सुँघो ॥ ९ ॥

देवस्यो ह्यस्य सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पते-
रुत्तमन्नाकं रुहेयम् । देवस्या ह्यस्य सवितुः सवे
सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकं रुहेयम् । देव-
स्या ह्यस्य सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पते-
रुत्तमन्नाकं रुहेयम् । देवस्या ह्यस्य सवितुः सवे सत्य-
सवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकं रुहेयम् ॥ १० ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका घृ० ऋ० छंद—१ विष्टु०
दृ, २ साम्नीज०, ३ आर्ची वृ०, ४ मुरिसा० ज० और सबका
लिङ्गोक्त देवता है । मंत्रार्थ—(सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे,
अहं, बृहस्पतेः, उत्तमम्, नाकं, रुहेयम्) सत्यमेव सविता देव
की, अनुष्ठानमें वर्तमान में बृहस्पति सम्बन्धी अष्ट स्वर्गमें आरोहण
कर्म । सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, इन्द्रस्य, उत्तमं, नाकं, रुहेयम्)
अनुबलंधनीय प्रेरणावाले सवितादेवकी अनुष्ठान में वर्तमान में
इन्द्रसम्बन्धी उत्कृष्ट स्वर्ग कामनासे चक्र पर आरोहण करता हूँ ।
(सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, इन्द्रस्य,
उत्तमं, नाकं, रुहेयम्) अनुबलंधनीय प्रेरणावाले सविता देवकी प्रेरणा-
वश में बृहस्पति के उत्कृष्ट स्वर्गकी कामनासे इस रथचक्र पर
आकृष्ट हुआ (सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, इन्द्रस्य,
उत्तमं, नाकं, रुहेयम्) अनुबलंधनीय सविता देवताकी आज्ञामें
वर्तमान में इन्द्रके उत्कृष्ट स्वर्ग लाभकी कामना से इस चक्र में
बैठा हूँ ॥ १० ॥

बृहस्पते वाजं ज्ञाय बृहस्पतये वाचं वदत बृह-
स्पति वाजं ज्ञापयत । इन्द्र वा ज्ञाय इन्द्राय
वाचं वदतेन्द्रं वाजं ज्ञापयत ॥ ११ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका बृहस्पति ऋ० छंद—१ प्राजा०
मि० २ प्राजा० वृ० और देवता—१ बृह०, २ इन्द्र है । मंत्रार्थ—हे

दुन्दुभियो ! तुम (वृहस्पतये, वाचं, वदत, वृहस्पते, वाजं, जये, वृहस्पति, वाजम्, जापयत) वृहस्पतिके निमित्त इस प्रकार वचन को कहो हे वृहस्पते ! तुम अन्नको जयकरो हे दुन्दुभियो ! तुम वृहस्पति को अन्न जय कराओ । हे दुन्दुभियो तुम (इन्द्राय, वाचं, वदत, इन्द्र, वाजं, जय, इन्द्रं, वाजं, जापयत) इन्द्रके निमित्त इस प्रकार वाणीको कहो हे इन्द्र अन्नको जीतो तुम मी इन्द्रको अन्न जय कराओ ॥ ११ ॥

एषा वः सा सत्या संवाग्भूयसा वृहस्पतिं
वाजमजीजपताजीजपत वृहस्पतिं वाजं वन-
स्पतयो विमुच्यदध्वम् । एषा वः सा सत्या सं
वाग्भूययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं
वनस्पतयो विमुच्यदध्वम् ॥ १२ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका घृह० ऋ० छं० १ ब्राह्मण०
२ घाक्षी० गाक्षी और देवता सबका दुन्दुभि है । मन्त्रार्थ—हे
दुन्दुभियो ! (वः, एषा, सा, वाक्, सत्या, समभूत, यया, वृह-
स्पति, वाजं, अजीजपत, वृहस्पति, वाजं, अजीजपत, वनस्पतयः
विमुचिस्त्वम्) तुम्हारी यह वह वाणी सत्य हुई, जिससे वृहस्पति
को अन्न जय कराया, हे वनस्पति काष्ठनिमित्त दुन्दुभियो अब
कृतकृत्य होकर अनुमति दो, वृहस्पति का रथ थावमान हो । हे
दुन्दुभियो ! (वः, एषा, सा, वाक्, सत्या, समभूत) तुम्हारा
दिया हुआ वह आशीर्वाद रूप वचन सत्य हुआ (यया, इन्द्रं, वाजं
अजीजपत) जिससे इन्द्रको अन्न जय कराया (इन्द्रं, वाजम्,
अजीजपत, वनस्पतयः, विमुच्यदध्वम्) इन्द्रको अन्नजय कराया,
हे काष्ठनिमित्त वनस्पतियो अब कृतकृत्य होकर अनुमति दो यज-
मान का रथ थावमान हो ॥ १२ ॥

देवस्याहो संवितुः सवेसत्यग्रैसवसो वृहस्पते-
र्याजितो वाजंजेपम् । वाजिनो वाजजितो-

दध्वतस्कभुवन्तो योजना मिमातुः काष्ठाक्षुचत ॥ १३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सर्वका वृह० अ० है । छं०—
 १ आर्षी वृ०, २ साम्नी जग० और देवता १ लिङ्गोक्त, २ अश्व
 है । मंत्रार्थ—सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, वाजजितः,
 वृहत्सवतेः, वाजं, जेपम्) सत्य आत्मावाले सब के भेरक सविता
 देव के अनुज्ञा में वर्धमान मैं, अन्न जीतनेवाले वृहत्सवति सम्बंधी
 अन्न को जप करूँ (वाजिनः, वाजजितः, अध्वनः, रुक्भुवन्तः,
 योजनाः, मिमानाः, काष्ठाम्, गच्छत) हे घोड़ों ! अन्नके जीतने
 वाले तुम, मार्गों को सुभित करते, योजनों को अति शीघ्रता से
 गमन करतेहुए अठारह निमेष में प्राप्त होते हो ॥ १३ ॥

एषस्य वाजी क्षिपणिन्तुरण्यसि शीवायां वृद्धो
 अपि कृक्ष आसनि । कर्तुन्दधिका अनु सधे
 सगिप्यदत्पथामद्वाधेस्पन्वायनीकणत्स्वाहा ॥ १४ ॥

इसका दधिकावा ऋ० है । आर्षीज० छं०, अश्व देवता है ।
 मंत्रार्थ—(एषः, वाजी, यः, शीवायां, कृक्षे, आसनि, अपि, वृद्धः,
 सः, दधिकाः, कर्तुं, अनु, संसगिप्यदत्) यह घोड़ा जो शीवामें
 कक्ष में मुल में बँधाहुआ है, वह यह अश्ववार को लेकर मार्ग
 अवरोधक पाषाण गर्त कण्टकादिका भी आक्रमण करनेवाला
 रथी के अभिमाय को जानकर उसके अनुसार सम्पक् अनुसन्धान
 करताहुआ (पथां, अङ्गांसि, अन्वापतीकणत्, क्षिपणिम्, वुर-
 ण्यसि, स्वाहा) मार्गों के ऊँचे निचें चिन्हों को, अति शीघ्रगति
 से सम करता, चायुक्त के आघातकी अपेक्षा न करके भी किंचित्
 इंगित से, शीघ्र धावमान होता है, यह आहुति भली प्रकार
 गृहीत हो ॥ १४ ॥

उगस्मास्थ द्रवतस्तुरण्यतः पूर्णन्न चेरन्तुं चाति
 प्रगर्दिनः । रयेनस्पेयध्रजतो अद्भुसम्परि दधि-
 काव्णः सहोर्जातरिध्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

इसका दधिकाव्ण ऋ०, आर्षीज० छं०, अश्व देवता है ।
 मंत्रार्थ (अस्य, दधिकाव्णः, द्रवतः, तुरण्यतः, प्रगर्दिनः, रयेनस्पे-
 यः, अद्भुतः, सहोर्जातरिध्रतः, स्वाहा)

इव, ध्रजताः, ऊर्जा, सह, तरिभः, उत्तस्म, अङ्गसं, परि, अनुवाति, नः, वेः, पर्णम्) इस, आदिपापाण्यर्त कण्टकादि का अतिक्रमण करेहुए गमन करनेवाले शीघ्रता से, अबाधे को प्राप्त होनेवाले इयेन पक्षी की समान वेग से गमन करते वन के साथ, आतिशय मार्ग को लांघते, भी, इस अश्व के शृंगार बिन्ह वस्त्र वामरादि, संपूर्ण देह में वर्तमान होते, जातेहुए में लासित होते हैं, जिस प्रकार, पक्षी के, पंख दिखाई देते हैं ॥ १५ ॥

शन्नो भयन्तु वाजिनो हवेषु देवतांता मितद्रवः

स्वर्काः । जम्भयन्तोहि वृकः रक्षांसि सने-

गुस्मद्युपचन्नमीवाः ॥ १६ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० भुरिगार्पी पं० छं० अश्व देवता है मंत्रार्थ- (देवताता, हवेषु, मितद्रवः, स्वर्काः, अहि, वृक, रक्षांसि, जम्भ, यन्तः, वाजिनः, नः, शं, भयन्तु, अस्मत्, सनेमि, अमीवाः, गुपु- घन्) देवताओं के कार्यके निमित्त यज्ञ में आह्वान करनेपर परि- मित धावमान होनेवाले, भेष्ट प्रकारवाले सर्प भेड़िये राक्षसोंको नाश करतेहुए घोड़े हमारे कल्याणको करनेवाले हों, हमसे सब प्रकार की दीर्घकाल की व्याधियों को पृथक् करें ॥ १६ ॥

ते नो अर्धन्तो हवन्त्युतो हवन्ति विश्वे शृण्वन्तु

वाजिनो मितद्रवः सहस्रसा मेघसांता सनिष्यवो

महो ये धनंति समिधेषु जभिरे ॥ १७ ॥

इसका नामा नेदिष्ट ऋ०, आर्षी ज०, छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ-(ते, विश्वे, मितद्रवः, हवन्त्युतः, अर्धन्तः, सहस्रसाः, मेघ साता, सनिष्यवः, वाजिनः, नः, हवन्तु, शृण्वन्तु, ये, समिधेषु, महः, धनं, जभिरे) वे सम्पूर्ण यजमानके चित्तके अनुसार मित- गामी, हमारे आह्वानको सुनने वाले, कुटिल गति वाले, अनेक जनोंको वृत्त करनेवाले, यज्ञशालाके पूरक घोड़े हमारे आह्वानोंको श्रवण करें, जो संग्रामों में बड़े धनको ले आते हैं ॥ १७ ॥

वाजे वाजेषत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता

कृतज्ञाः अस्प मध्वः पिबत मादपध्वन्तुसा
यात पृथिभिर्देवयानैः ॥ १८ ॥

इसका अर्थ अ०, निचूदापीं त्रि० छ०, अश्व देवता है ।
मंत्रार्थ—(वाजिनः, विमाः, अमृताः, अतज्ञाः वाजे, वाजे, धनेषु,
नः, अश्वत, अस्प, मध्वः, पिबत, मादपध्वम्, देवयानैः, पृथिभिः,
यात) हे अश्वों ! तुम बुद्धिमान्, दीर्घजीवी, सत्य, सम्पूर्ण
अन्न और, धनों में, हमारी, पालना करो, इस घावमान होने से
पहिले, नौशर सुँधेहुए मधुर ललछ हवि को, पान करके, वृक्ष
होजाओ और वृक्ष होकर, देवयान में अधिष्ठित मार्गों से,
गमन करो ॥ १८ ॥

आमा वाजस्य प्रसवो जागम्यादेमे घावा पृथिवी
विरवरूपे । आ मागन्ताम्पितरा मातरा चामा
सोमो अमृतत्वेन गम्यात् । वाजिनो वाज-
जितो वाजं ससृवाथसो बृहस्पतेर्जागमर्ष-
जिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

इस क० में १ मन्त्र है । सबका अर्थ अ० है । छं० १ नि-
चूदापीं त्रि०, २ माजापत्या त्रि०, और देवता—१ मजापति,
२ अश्व है । मन्त्रार्थ—(वाजस्य, प्रसवः, मा, जागम्यात्, इमे,
विरवरूपे, घावा पृथिव्यौ, आ, पितरामातरा, मा, आगन्ताम्,
च, सोमः, अमृतत्वेन, मा, जागम्यात्) अन्न की उत्पत्ति हमारे
घर में आगमन करे, यह, सर्वरूपात्मक स्वर्ग और पृथ्वी सब
भकार, हमारे माता पितारूप हमारे रक्षण और प्रतिपालन को
आँखें और सोम अमृतभाव से हमारे प्रति मातृहो (वाजिनः,
वाजजितः, वाजं, ससृवाथसः, निमृजानाः, बृहस्पतेः, मार्गं,
अवाजेघ्रत) हे अश्वों ! अन्नके जीतने वाले अन्न के जीतने को
प्रतिक्षण गमन करनेवाले इस चरु वा यज्ञमान को शोधन करते
हुए बृहस्पति सम्बन्धी हमारे भागको छंदो ॥ १९ ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा पिजाय स्वाहा

ऋतये स्वाहा वसवे स्वाहा इर्वतये स्वाहान्त्रे
 मुग्धाय स्वाहा सुग्धाय चैनं शिनाय स्वाहा
 विनं शिने भान्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौ-
 वनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये
 स्वाहा ॥ २० ॥

इस कं में १२ मं० हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १, २
 ४, ५ देवीपं० १ या० गा० १, ७, १२ याजुष्युपिण्डं = याजुपीपं०
 ९ याजुपी मि० १०, ११ याजुपी बृहती है । और सबका मजापति
 देवता है । मंत्रार्थ—(आपये, स्वाहा, स्वापये, स्वाहा, अपिजाय, स्वाहा,
 ऋतये स्वाहा, वसवे स्वाहा, अहर्वतये, स्वाहा, मुग्धाय अन्हे स्वाहा,
 वैगं शिनाय, मुग्धाय स्वाहा) व्यापक, सम्बत्सर, कालात्मक
 आदित्य मजापति देवता के मीति के निमित्त यह आहुति दी जाती
 है यह भली प्रकार गृहीत हो, सर्वव्यापी मजापति के निमित्त,
 आहुति पुनः पुनः प्रगट होनेवाले के निमित्त आहु० संकलन भोगादि
 विषय के निमित्त आहु० नगत्के स्थिति कारण के निमित्त आहु०
 दिवसके निमित्त आहु० विनाशशील मुग्धनामक के निमित्त श्रेष्ठ
 होम० । भान्त्यायनाय, विनं शिने स्वाहा, भौवनाय, भान्त्याय,
 स्वाहा, भुवनस्य, पतये, स्वाहा, अधिपतये, स्वाहा) सीमावान्
 विनाश शील नामक के निमित्त श्रेष्ठ हो०, भिषुवनकी सीमायान्
 के निमित्त, आहुति सम्पूर्ण भुवनके पति के निमित्त आहुति,
 समस्त प्राणि वर्गकी उत्पत्ति स्थित विनाश में समर्थ के निमित्त
 यह आहुति भली प्रकार दी जाती है सम्यक् स्वीकार हो ॥ १० ॥

आयुर्गृहेण कल्पताम्नाणो यज्ञेन कल्पताश्चतु-

र्यज्ञेन कल्पताश्चोत्रे यज्ञेन कल्पताम्बृष्टं यज्ञेन

कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । मजार्पतेः पूजा

अष्टमः स्वर्देवा अगन्तामृता अमूम ॥ २१ ॥

इस कं० में ९ मं० हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १ से
 ९ का माना० गा०, ७ याजु० वृ० = देवी मि० ९ या० गा०

और देवता १-६ का प्रजापति ७ यज्ञमान ८ यज्ञ०, ९ यज्ञ है ।
 मंत्रार्थ (यज्ञेन, आयुः, कल्पताम्, यज्ञेन, प्राणः, कल्पताम्, यज्ञेन,
 चक्षुः, कल्पताम्, यज्ञेन, श्रोत्रं, कल्पताम्, यज्ञेन, पृष्ठं, कल्पतां,
 यज्ञेन, यज्ञं, कल्पताम्) इस वाजपेय यज्ञके फलसे हमारी, आप्त,
 वृद्धिको प्राप्तहो, इस वाजपेय यज्ञके फलसे पांचोप्राण वृद्धिवल
 को प्राप्तहो, इस यज्ञके फलसे चक्षुरिन्द्रिय, सामर्थ्य को प्राप्तहो
 इस यज्ञके फलसे श्रोत्र इन्द्रिय का बलवृद्धि को प्राप्तहो, इस
 वाजपेय यज्ञके फलसे हमारा पृष्ठबन्ध, वृद्धिको प्राप्तहो, इस
 वाजपेय यज्ञके फलसे, यज्ञके अधिष्ठातृ देवता विष्णु तथा यज्ञ
 करनेकी क्षमता, वृद्धिको प्राप्तहो । हम (प्रजापतेः, प्रजा, अभूमः)
 प्रजापति की सन्तति, हुए । हे ऋत्विगण (स्वः, आत्मन्, अमृताः
 अभूमः) हमने स्वर्गलाभ, प्राप्त कियाहै हम दीर्घायु, अमर चिर-
 कीर्तिवाले हुए ॥ २१ ॥

अस्मे वाँ अस्मिन्विष्टयमस्मे नृम्णामृत क्रतुरस्मे
 वर्चोऽसि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो
 मात्रे पृथिव्या इयन्ते राष्ट्र्यन्तासि धमं तो
 ध्रुवोसि ध्रुवः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रुष्यै
 त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वसिष्ठक० है । छं०-१ निचृ-
 दापी गा०, २ साम्युष्टिक, ३ देवी वृद्धी, ४ निचृदापी वृ० है
 है और देवता—१ दिशा, २ पृथिवी, ३ आसन्दी, ४ यज्ञमान है ।
 मंत्रार्थ—हे दिक् चतुष्टय (वः, इन्द्रियं, अस्मे, अस्तु, नृम्णं, अस्मे,
 वः, क्रतुः, वर्चोऽसि, अस्मे, सन्तु) तुम्हारे सम्बन्धी, चीर्षि
 हमारे विषय में हों, तुम्हारा सम्बन्धी धन हमको प्राप्तहो, और
 तुम सम्बन्धी, यज्ञ कर्म, तथा तुम्हारे सम्बन्धी तेज हमारे विषय
 हों अर्थात् इस जगत् में हम सब से अग्रगण्य हों । (मात्रे,
 पृथिव्यै नमः नमो मात्रे) मातारूप, पृथिवी के निमित्त, नम-
 स्कार है, पृथिवी माताको नमस्कार है । हे आसन्दी (इयं ॥

राष्ट्रं) यह तुम्हारा राज्य है। हे यज्ञमान ! तुम (यन्ता, अग्नि, यमनः, ध्रुवः, धरुणः, अग्नि, कृष्यै, त्वा, जेमाय, त्वा, रथ्यै, त्वा, पो-
पाय, त्वा) सपके नियमन करने वाले, हो, स्वयं संयमन करता
स्थिर धारक हो कृषिकार्य की वृद्धि निमित्त, तुमको, राज्यकी
शान्ति पूर्णताके निमित्त, तुमको, धन सम्पत्तिके वर्धनार्थ, तुमको
प्रजा पालनके निमित्त, तुमको, इस स्थानमें उपवेशन कराते हैं २२

वाजस्येमाग्रसवः सुपुबे सोमथराजानमोप-

धीष्यन्तु । ताऽअस्मभ्यम्मधुमतीर्भवन्तु वयं

राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, सुराढ्यार्पी त्रि० छं०, प्रजापति देवता है ।
मंत्रार्थ—(वाजस्य, प्रसवः, अग्ने, ओषधीषु, अप्सु, इमं, सोमं,
राजानं, सुपुबे) अन्नके, उत्पन्न करने वाले प्रजापतिने, सबसे
प्रथम आदि सृष्टिमें, ओषधी, और जलोंके मध्यमें, इस सोम-
बल्ली रूप दीक्षितमान् पदार्थ को उत्पन्न किया है (ताः, अस्मभ्यं,
मधुमतीः, भवन्तु, पुरोहिताः, वयं, राष्ट्रे, जागृयाम) वे सोम
उत्पादक, ओषधीजल, हमारे निमित्त, रसवाली माधुर्यसे युक्त
हों, याग अनुष्ठानादि में प्रधान, हम उनसे अभिषिक्त होकर,
अपने राज्यमें सर्व साधारणके हितकारी होकर, अप्रमत्त होकर
कालयापन करें ॥ २३ ॥

वाजस्येमाग्रसवः शिश्रिये दिवमिमा व

विश्वभुवनानि सम्राट् । अदित्सन्तन्दापयति

प्रजानत्स नौरयिषे सर्ववीरन्निषच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, आप्रीजगती छं० प्रजापति देवता है । मंत्रार्थ
(वाजस्य, प्रसवः, इमां, दिवं, इमा, विश्वा, भुवनानि, शिश्रिये)
इस समस्त अन्नके, उत्पन्न करने वाले परमात्माने, इस ध्रुलोक
को इन सम्पूर्ण भुवनोको सृजन किया है (सः, सम्राट्, अदि-
त्यस्तम्, प्रजानन् दापयति, नः, सर्ववीरम्, रयिं, निषच्छतु,
स्वाहा) वह सबका अधिपति इन्द्रदेव की अनिच्छा वाले मुक्त

को जानता हुआ मेरी वृद्धिमें प्रेरणा कर मुझसे आहुति दिवाता है हमारे निमित्त सब पुत्रभृत्यादिसे युक्त धनको हमें प्रदान करे, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २४ ॥

वाजस्य नु प्रसव आधमृवे मा च विश्वा-

भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परिधाति-

विद्वान्प्रजास्पृष्टि वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

इसका विशेष ऋ० सुराढार्षी नि० छं० और मजापति देवता है । मंत्रार्थ—(जु. वाजस्य, प्रसवः, इमा, विश्वाभुवनानि, सर्वतः, आवभूव, च, सनेमि, विद्वान्, राजा, अस्मे, प्रजां, पुष्टि, वर्धयमानः स्वाहा) कैसे विस्मयकी बात है, धन्नके मृत्तनेवाले मजापति ने इन सम्पूर्ण भुवनोंको सब ओर से ग्रहणा से स्तम्भ पर्यन्त उत्पन्न किया है और पुरातन सब कुछ जानने वाला दीप्तिमान् हमारे निमित्त सन्तति धन पुष्टिको वृद्धिको प्राप्त होता हुआ है, उसके निमित्त यह आहुति दी जाती है ॥ २५ ॥

सोमधराजानमवमेग्निमन्वारभामहे । आदि-

त्याग्निष्णुध सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिं स्वाहा ॥ २६ ॥

इसका तापस० ऋ०, आर्ष्यनुष्टुप् छं०, सोमाद्य देवता हैं । मंत्रार्थ—जो सम्पूर्ण धन्न के उत्पादक हैं जिन मजापति ने हमारे, (अवसे, राजानं, सोमं, अग्नि, आदिस्पान्, सूर्यं, बृहस्पतिं) च अन्वारभामहे, स्वाहा) प्रतिपालनार्थ राजा सोम को वैश्वानर अग्नि को वारह आदित्यों को ग्रहणा को बृहस्पति को भी नियुक्त किया है, आन्धान करते हैं, उसके चक्षेत्र से दीर्घ आहुति सम्पू्र्ण गृहीत हो ॥ २६ ॥

अर्घ्यमणुमृहस्पतिमिन्द्रन्दानाय चोदय । वाचं

विष्णुध सरस्वतीध सवितारं च वाजिनध स्वाहा २७

इसका तापस ऋ० । स्वराढार्ष्यनुष्टुप् छं०, अर्घ्यमाद्या देवता है । मंत्रार्थ—हे परमात्मन ! तुम (अर्घ्यमणं, बृहस्पतिं, इन्द्रं, वाचं, सरस्वतीं, विष्णुं, वाजिनं, दानाय, चोदय, स्वाहा)

अर्थमां देवता को वृहस्पति को इन्द्र को वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती को सबके प्रसवकर्त्ता सूर्य को जो कि यह सब देवता धन के देनेवाले तुमने सृजे हैं इनको धनप्रदान के निमित्त प्रेरणा करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो जो तुम्हारी प्रीति के उद्देश्य से देते हैं ॥ २७ ॥

अग्ने अच्छापदेह नः प्रार्ति नः सुमना भव । प्र नो यच्छ सहस्रजित्यथे हि धनदा अग्नि स्वाहा ॥ २८ ॥

इसका तापस ऋ०, भुरिगार्प्यनुष्टुप छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(हे अग्ने, इह, नः, अच्छावद, नः, सुमनाः, भव, सहस्रजित्, हि, त्वं, धनदाः, असि, नः, यच्छ, स्वाहा) हे अग्नि में अधिष्ठित देव ! इस यज्ञ में, हमारे हित को सम्मुख आकर कहो हमारे प्रति करुणार्द्रचित्त हो, हे सबके जीतनेवाले, जिस कारण से तुम स्वभाव से धन के देनेवाले हो, इसकारण हम को धन दीजिये तुम्हीं एकमात्र प्रार्थना पूर्ण करने में समर्थ हो, इसकारण इस आहुति से हमारी प्रार्थना स्वीकार करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २८ ॥

प्र नो यच्छ त्वर्यमां प्र पूषा प्र वृहस्पतेः ।

प्र चाग्नेयी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका तापस ऋ०, भुरिगार्पी गा० छं०, वागादय देवता है । मंत्रार्थ—हे परमात्मन् ! आपके प्रसाद से (अर्थमा, नः, यच्छत्, पूषा, प्र, वृहस्पतेः, प्र, देवीवाक्, नः, ददातु) अर्थमा देवता हमारे निमित्त अभीष्ट प्रदान करै, पूषा देवता अभीष्ट प्रदान करै, वृहस्पति अभीष्ट प्रदान करै, सरस्वती वाणी की अधिष्ठात्री हमारे निमित्त अभीष्ट प्रदान करै ॥ २९ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेरिव नोर्वाद्बुभ्यां पूष्णो

वर्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये

दधामि वृहस्पतेः सा प्राज्येनाभिपिञ्चाम्यसौ ३०

इसका तापस ऋ०, आपी जग० छं०, सम्राट् देवता है ।

मंत्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, त्वा, आश्विनोऽ, बाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, वृहस्पतेः, साम्राज्येन, अभिषेचामि) सविता देवता की प्रेरणावश होकर तुमको अश्वनीद्वयकी भुजयुगल पूषा देवताके हाथोंसे वृहस्पतिके साम्राज्यभावसे अभिषेक करता हूँ, हे यजमान ! (त्वा, सरस्वत्यै, यन्त्रिये, दधामि, याचा, यन्तु, असौ) तुमको सरस्वतीके पेरवर्ष में स्थापन करता हूँ, तुम को बाणी वागधिष्ठात्री देवी सरस्वती नियमन करै, अयुक्त नाम यजमानको अभिषेक करता हूँ यहां यजमानका नाम उच्चारण करै ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जैषमश्विनौ

द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयत्तान्तानुज्जैषं

विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जैषथ

सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशुनुदजयत्तानुज्जैषम् ३१

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका तापस ५० है । इं० १, १, निवृद्धार्पी गा० वा साम्नी वृ० १ ४ साम्नी त्रि० और सबका दे० लिङ्गोक्ता है । मंत्रार्थ—(अग्निः, एकाक्षरेण, प्राणं, उदजयत्, तं, उज्जैषं, अश्विनौ, द्व्यक्षरेण, द्विपदः, मनुष्यान्, उदजयताम्, तान्, उज्जैषं) अग्नि देवताने एकाक्षरके प्रभावसे उत्कृष्टरूपप्राण को जय किया है मैं भी उस प्राण को एकाक्षरके प्रभाव से जय करूँ, अश्विनीकुमारने दो अक्षरवाने द्वन्द्वके प्रभावसे दो पदवाले मनुष्यों को उत्कृष्ट रूपसे जय किया है, मैं भी दो अक्षरके प्रभाव से उन मनुष्योंको अभ्य कर सकूँ । (विष्णुः, त्र्यक्षरेण, त्रीन्, लोकान्, मुदजयत्, तान्, उज्जैषम्, सोमः, चतुरक्षरेण, चतुष्पदः, पशून्, उदजयत्, तान्, उज्जैषम्) विष्णुदेव ने तीन अक्षरके द्वन्द्व से तीन लोकोंको जय किया, मैं भी उनके प्रभाव से उन तीन लोकों को जय करूँ, सोम देवता ने चतुरक्षर मंत्र के प्रभाव से पादचतुष्टयात्मक पशुओं को जय किया है, मैं भी उसके प्रभाव से उनको जय करूँ ॥ ३१ ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जैः

पथ सविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्ता उज्जैष-
मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्राम्यान्पशुनुदजयथ
स्तानुजैषमृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजय-
तामुज्जैषम् ॥ ३२ ॥

इस कं० मे ४ मंत्र हैं। सबका तापस ऋ० है। छं०-१, १
नितृसाम्नी पं०, १ साम्नी त्रि०, ४ साम्नी पं०, और सबका
लिङ्गोक्ता है। मंत्रार्थ (पूषा, पंचाक्षरेण, पथ दिशः, उदजयत्,
ताः, उज्जैषं) पूषा देवता ने पंचाक्षर छंद के प्रभाव से, पांचादिशा
(एक ऊपर की,) उत्कृष्टरूप से जय की उसी के प्रभाव से मैं, उन
दिशाओं को जय करूँ (सविता, षडक्षरेण, षट् ऋतून, उदजयत्,
तान्, उज्जैषं) सविता देवता ने षडक्षर छन्द के प्रभाव से, छः
ऋतुओं को उत्कृष्टरूप से जय किया, उसी के प्रभाव से उन छः
ऋतुओं को मैं जय करूँ (मरुतः, सप्ताक्षरेण, सप्तग्राम्यान्, उद-
जयन्, तान्, उज्जैषम्, मृहस्पतिः, अष्टाक्षरेण, गायत्री, उदजयत्,
तां, उज्जैषम्) मरुत देवता ने सप्ताक्षर मंत्र के प्रभाव से, सात
ग्राम्य गवादि पशुओं को जय किया, मैं भी उनको जीतूँ। मृह-
स्पति ने अष्टाक्षर मंत्र के प्रभाव से, गायत्री छन्द के अभिमानी
देवता को वशीभूत किया मैं भी उसके प्रभाव से, उसको वशी-
भूत कर सकूँ ॥ ३२ ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतथ स्तोममुदजयत्तामुज्जै-
षथ वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जै-
षमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिद्विभुमुदजयत्ता-
मुज्जैषं विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुद-
जयथस्तामुज्जैषम् ॥ ३३ ॥

इस कं० मे ४ मंत्र हैं। सबका तापस ऋ० है। छं०-१ मा०
वृ० २ नितृ० सा० वृ०, १ सा० पं०, ४ आर्ष्यु० और सबका
देवता लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ (मित्रः, नवाक्षरेण, त्रिवृतं, उदजयत्,
तम्, उज्जैषम्, वरुणः, दशाक्षरेण, विराजं, उदजयत्, तम्,

उज्जेपम्) मित्र देवता ने मन्त्राक्षर छन्दसे निवृत्त स्तोमको, जय किया इसी प्रकार मैं भी उसको जयकर्म करूँ देवता दशाक्षर छन्दसे दशाक्षरा विराट के अभिमानी देवता को जय किया मैं भी इसी प्रकार उसको जयकर्म (इन्द्रः, एकादशाक्षरेण, त्रिष्टुप्, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) इन्द्र ने एकादश अक्षरसे एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्दके अभिमानी देवता को जय किया उसको मैं जयकर्म (विश्वेदेवाः, द्वादशाक्षरेण, जगतीम्, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) विश्वेदेवाओं ने चारह अक्षर से जगती छन्दके अभिमानी देवता को जय किया है मैं भी उसको वशीभूत कर सकूँ ॥ ३३ ॥

वसवस्रपोदशाक्षरेण त्रयोदशस्तोममुदजयत्

स्तमुज्जेपत् रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशस्तो-

ममुदजयत् स्तमुज्जेपमादित्याः पंचदशाक्षरेण

पंचदशस्तोममुदजयत् सप्तदशस्तोममुज्जेपमापतिः स-

प्तदशाक्षरेण सप्तदशस्तोममुदजयत् सप्तदशस्तोममुज्जेपम् ॥ ३४ ॥

: इस कं० ९ में ० हैं । सबका तापस ऋषि है । जं०-१, ३;

आर्च्यनु० २ भूरि० त्रि०, ४ साम्नी त्रि० ५, भूरिगार्गी गा०, और देवता सबका लिङ्गोक्ता है । मंत्रार्थ (वसवः, त्रयोदशाक्षरेण, त्रयोदशम् स्तोमं, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) वस्रओं ने तेरह अक्षर वाले छन्दसे त्रयोदशस्तोम को उत्कृष्ट रूपसे वशीभूत किया उसीको मैं जयकर्म (रुद्राः, चतुर्दशाक्षरेण, चतुर्दशं, स्तोमं, उदजयत् तम् उज्जेपम्) रुद्रों ने चौदह अक्षर छन्दसे चौदहवें स्तोम को उत्कृष्ट रूपसे जय किया उसको मैं जयकर्म (आदित्याः, पंचदशाक्षरेण, पंचदशं, स्तोमं, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) आदित्यों ने पंचदश अक्षरके छन्दसे पन्द्रहवें स्तोमको, उत्कृष्ट रूपसे जय किया उसको मैं सम्यक्प्रकार से जयकर्म (मजापतिः, सप्तदशाक्षरेण, सप्तदशं स्तोमं, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) मजापति ने सप्तदशाक्षर छन्दसे सप्तदशाक्षर स्तोमको जय किया उसको मैं वशीभूत करूँ ॥ ३४ ॥

एष ते निर्ऋते भागस्तज्जुपस्य स्वाहाग्निनेत्रे-
 भ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो
 देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो
 देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो
 वामरुनेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा
 सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः
 स्वाहा ॥ ३५ ॥

इस कं० में ६ मं० हैं । सबका धरण श्रु० है । छ० १, २, साम्युपिणक् ३ आ० गा० ४ साम्यनु० ५ भुरिगा० गा० ६ भुरिक् सा० वृ० और सबका देवता धरण है । मंत्रार्थ—(निर्ऋते, एषः, ते, भागः, तं, जुपस्य, स्वाहा) हे पृथिवी ! यह तुम्हारा भाग है, इसको प्रीतिपूर्वक सेवन करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (अग्निनेत्रेभ्यः, पुरःसद्भ्यः, देवेभ्यः स्वाहा) जिसका अग्नि नेता है, पूर्व दिशामें वसनेवाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, भलीप्रकार गृहीत हो । (यमनेत्रेभ्यः, दक्षिणासद्भ्यः, स्वाहा) यम जिनका नेता है, उक्त दक्षिणदिशा वाशी देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो, (विश्वदेवनेत्रेभ्यः, पश्चात्सद्भ्यः, देवेभ्यः, स्वाहा) विश्वदेवा जिनके नेता हैं उक्त पश्चिम दिशा में निवास करनेवाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है भलीप्रकार गृहीत हो (वा, मित्रावरुण नेत्रेभ्यः, वा, मरुनेत्रेभ्यः, उत्तरासद्भ्यः देवेभ्यः स्वाहा) वा जिनके नेता मित्रावरुण हैं, वा जिनके नेता मरु देवता हैं, उत्तर दिशा में निवास करनेवाले देवताओंकी प्रीति के निमित्त, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, (सोमनेत्रेभ्यः, दुवस्वद्भ्यः, उपरिसद्भ्यः, देवेभ्यः, स्वाहा) जिनका नेता सोम है ऐसे परिचर्यावाले, ऊपरभाग अन्तरिक्ष, देवताओंकी प्रीति के निमित्त यह आहुति दीजाती है सम्यक् गृहीत हो ३५
 ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसद्भ्यः स्वाहा ये

देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा
विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये
देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुतेत्रा वोचरासदस्ते-
भ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राः उपरिसदो
दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं । सबका वरण ऋ०, आसुरी, गायत्री,
म्राजापत्यानुष्टुप् भुरिभ्राजापत्यानुष्टुप् भार्गवनुष्टुप् म्राभापत्या
ष्टु० छं० है । सबका देवा दे० है । मंत्रार्थ (ये, देवाः, अग्निनेत्राः,
पुरासदा, तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता अग्निनेत्रा संयुक्त हैं, पूर्व
में निवास करते हैं, उन देवताओंके निमित्त यह आहुति दीजाती
है (ये, देवाः, यमनेत्राः, दक्षिणासदा, तेभ्यः, स्वाहा) यम जिनका
नेत्रा वे देवता दक्षिण दिशानिवासी हैं । उनके निमित्त यह
आहुति (ये, देवाः, विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदा, तेभ्यः, स्वाहा)
जो इयता विश्वदेवा नेत्रावाले पश्चिमनिवासी हैं, उनके निमित्त
यह आहुति दीजाती है (ये, देवाः, मित्रावरुणनेत्राः, वा, मरुतेत्राः
वा, उत्तरासदा, तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता मित्रावरुण नेत्रावाले
अथवा मरुतेत्रावाले और उत्तर दिशा निवासी हैं, उनके निमित्त
आहुति दीजाती है (ये, देवाः, सोमनेत्राः, दुवस्वन्तः, उपरिसदाः
तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता सोमके नेत्रावाले, हवि के स्वीकार
करनेवाले पुलोकवासी हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ आहुति प्राप्त हो १६

अग्ने सहस्रं पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्ट-

रस्तरन्नरातीर्वचोषा यज्ञवाहसि ॥ १७ ॥

इसका देवभ्रवा देववाह ऋ० भुरिभार्गवनुष्टुप् छं० अग्निदेवता
है । मंत्रार्थ—(अग्ने, पृतनाः, सहस्र, अभिमातीः, अपास्य, दुष्टरः,
अरातीः, तरन्, यज्ञवाहसि, वचोषा, धोह) हे अग्निदेव ! तুম शत्रु
सेनाओंको पराभव करो, शत्रुओं को विदारित करो, हे दुर्निवार
तुम शत्रुओं को तिरस्कार करतेहुए यज्ञनिर्वाहकारी इस यज्ञमात्र
को अन्नप्रदान करो ॥ १७ ॥

देवस्य त्वां सवितुः प्रसवेदिवनोर्वाहुभ्यां पूष्णो
हस्ताभ्याम् । उपाधो वीर्येण जुहोमि हतः
रक्षः स्वाहा रक्षसान्त्वां वधायाधधिष्मन् रक्षो-
धधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका देवता अ० है । छं० । निवृ०
गा० २ याजुष्युष्णिक् ३ साम्युष्णिक् और देवता सबका रक्षोघ्न
है । मंत्रार्थ—भिस देवता ने इस संमस्त जगत् को निज २ कर्म करने
में भरित किया है उस (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्यां
पूष्णः, हस्ताभ्यां, त्वां, उपाधोः, वीर्येण, जुहोमि, रक्षः, हतः,
स्वाहा) सविता देवकी आश्रामे वर्तमान अश्विनीकुमारों बाहु
युगुलसे पूषा देवताके दोनों हाथों से तुझको उपाधुनाम मयम
ग्रहके पराक्रमसे आहुति मदान करता हूँ । रक्षसकुल इस आहुति
के ममावसे निहत हुआ, यह आहुति मलीमकार गृहीत हो, हे श्वः,
(रक्षसां, वधाया, त्वां) रक्षसों के वध के निमित्त तुमको मक्षप
करेगा हूँ (रक्षः, अधधिष्मन्, अमु, अधधिष्मन्, असौ, हतः) रक्षस
कुलको विनष्ट किया, अमुक शत्रुको [इस स्थलमें जो प्रधान शत्रु
है उसका नामलेय] मारा, यह शत्रु मारा गया ॥ ३८ ॥

सविता त्वां वृषानां सुवतामग्निगृहपती-
नां सोमो वनस्पतीनाम् । वृहस्पतिर्वीर्ये इन्द्रो
ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो
धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

इसका देवता अ० । अतिजगती छं० । यजमान देवता है ।
मंत्रार्थ—हे यजमान ! (सविता, सवानां, त्वां, सुवताम्, अग्निः
गृहपतीनाम्, सोमः, वनस्पतीनाम्, वृहस्पतिः, वीर्ये, इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय
रुद्रः, पशुभ्यः, मित्रः, सत्यः, वरुणः, धर्मपतीनाम्) जगत् का
नियन्ता परमात्मा आश्रामों के आधिपत्य, तुझको प्रेरण करे ।
अग्निदेवता गृहस्थ गणके उपास्यदेव वृहस्पति के आधिपत्यमें तुम
को प्रेरण करे । वनस्पतिप्रधान सोम देवता तुमको वनस्पति

विषय के आधिपत्य प्रदान करे । वाक्यमकारक वृहस्पति, देवता वाग्विषयक आधिपत्य में इन्द्रदेवता ज्येष्ठ आधिपत्यमें पशुगण के जीवोंके रक्षक रुद्र देवता पशुदल के आधिपत्य में सत्यस्वरूप मित्रदेवता सप्तव्यवहारके आधिपत्य में धर्मरक्षक वरुणदेवता तुम को धर्म के आधिपत्य में भेरेगा करे ॥ ३९ ॥

इमन्द्वा असप्तम्य सुवन्द महते सत्राय महते
ज्येष्ठाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।
इममसुष्य पुत्रमसुष्य पुत्रमस्ये विग एष वामी
राजा सोमोसमाकम्नायजानाथराजा ॥ ४० ॥

इसका देवता अ० है । अतःपि छ० है और यजमान देवता है । मंत्राय- (देवाः, अमुष्य, पुत्रं, अमुष्यै, पुत्रं, इमं, महते, सत्राय, महते, ज्येष्ठाय, महते, जानराज्याय, इन्द्रस्य, वीर्याय, असप्तम्य सुवन्द्यम्, इमम्, अस्यै, विगै, अमी, वः, एषः, राजा, सोमः) हे सुहविर्देवगण ! तुम अमुक महाशयके पुत्र [यहाँ यजमानके पिता का नाम लेना] अमुकी देवी के पुत्र [यहाँ यजमान की माता का नाम लेना] इस यजमानको महत् सत्रधर्म के निमित्त महत् ज्येष्ठता के निमित्त, महान् जनोके आधिपत्यमें आत्मा के ज्ञानमें सामर्थ्यके निमित्त, शत्रुशून्य करके भरण करो अपने प्रसाद से इस यजमानको इस अमुक जातिकी राजा करो, हे अमुकजाति प्रजापण ! तुम्हारा यह अमुकनाम राजा हो और हम प्राक्षणा का राजा सोम चन्द्रमा हो ॥ ४० ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाक्सनेपि संहिता का सातवाँ नवम

अध्याय समाप्त ।

अथ दशमोऽध्यायः



० जिसमें वाजपेय यज्ञ और राजसूयसम्बन्धी कर्म प्रधान है ऐसे नवम अध्याय में राजसूयान्त मंत्र कहे । अब दशम अध्याय में अभिषेकार्थ जलदानादि राजसूयके शेष कर्म और धरक सौ-शामणि यज्ञमंत्र कहे जायेंगे—

॥ हरिः उ० ॥ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्-
जैस्वती राजस्वचितानाः । याभिर्मित्रावरुणा-
वभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्मत्परातीः ॥ १ ॥

इसका वरुण श्र०, मित्रावरुणां मि- छं० है, आप देवता है ।
मंत्रार्थ-(देवाः मधुमतीः ऊर्जस्वतीः, राजस्वः, चितानाः, अपः,
अगृभ्णन्, याभिः, मित्रावरुणा, अवभ्यषिञ्चन् याभिः परातीः,
अति, इन्द्रम्, मनयन्) इन्द्रादि देवताओंने मधुरस्वाद से युक्त
विशिष्ट अन्नरसयुक्त राज्याभिषेक करनेवाले, चण्डमान ज्ञानके
सम्पादन करनेवाले जलोंको ग्रहण किया जिन जलोंसे, मित्रावरुण
देवताओंने शत्रुओं को तिरस्कार कर इन्द्रको राज्याभिषेक किया
उनजलों को ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

वृष्णं ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रमे देहि स्वाहा

वृष्णं ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।

वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रमे देहि स्वाहा

वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वरुण श्र० है । छं०-१, २ मा-
जापत्यानु०, ३, ४, और देवता सबका लिंगोक्त है । मंत्रार्थ-
हे कल्लोल ! तुम (वृष्णः, ऊर्मिः, असि, राष्ट्रदाः, राष्ट्रं, मे,
देहि, स्वाहा) सेचनकरनेवाले मनुष्यसम्बन्धी तरंग हो स्वभाष-
से ही राष्ट्र देनेवाली हो राज्यको मेरे निमित्त दो तुम्हारी प्रीय-
माण यह आहुति मलीप्रकार गृहीत हो । हे कल्लोल ! तुम (वृष्णः,
रा०, ऊर्मिः, असि, अमुष्मै, रा० देहि) सेचनसम्बन्धी नर,
स्वभासे रा०दाता तरंग हो अमुक यजमानको [इस स्थल में यज-
मानका नामले] राज्यमदान करो । हे वृषसेन ! तुम (वृषसेनः
रा०दाः, असि, राष्ट्रं मे देहि, स्वाहा) सेचन समर्प जलराशि रा०
दाता हो मुझे रा० मदान करो; यह आहुति गृहीत हो (वृषसेनः
रा०दाः, असि, राष्ट्रं, अमुष्मै, देहि) हे वृषसेन ! तुम रा० दाता
हो, रा० अमुक यजमान को मदान करो ॥ २ ॥

अर्पेत स्य राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा अर्पेत स्य
 राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे दत्तौजस्वती स्य राष्ट्रदा
 राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वती स्य राष्ट्रदा राष्ट्र-
 मुष्मे दत्तापः परिव्राहिणीं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे
 दत्त स्वाहापः परिव्राहिणीं स्य राष्ट्रदा राष्ट्र-
 मुष्मे दत्तापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि
 स्वाहापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे देह्य-
 पाङ्गभौंसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहापाङ्गभौं
 राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे देहि ॥ ३ ॥

इस कं० में १० मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है। जं०, १, २
 सामन्युच्छिष्ट १, ४, ९, आ० गा० ५, ६, १० साम्नीष्टु० ७, ८
 सामन्यनुष्टुप् और देवता सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ—(अर्पेतः,
 रा०दाः, स्य, राष्ट्रं, मे, दत्त, स्वाहा) मदीं आदि के पवाह में
 स्थिता जलों ! तुम स्वभावसे ही रा० के देनेवाले हो, रा० को
 मुझे यजमानके निमित्त प्रदान करो। तुम्हारे प्रीति के निमित्त
 दी हुई यह आहुति भलीप्रकार स्वीकार हो, (अर्पेतः, रा०दाः,
 स्य, अमुष्मे, राष्ट्रं, दत्त) हे जलों ! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले
 हो मुझे रा० प्रदान करो (ओजस्वतीः, रा०दाः, स्य, मे, राष्ट्रं
 दत्त, स्वाहा) हे वलयुक्त जलों तुम ! तुम स्वभावसे रा० देने
 वाले हो, रा० को इस यजमानके निमित्त प्रदान करो। (परि-
 व्राहिणीः, आपः, रा०दाः, स्य, मे, राष्ट्रं, दत्त, स्वाहा) हे परिव्राही
 जलों ! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले हो, रा० को इस यजमानके
 निमित्त प्रदान करो, यह आहुति भलीप्रकार ग्रहीत हो (परि-
 व्राहिणीः, आपः, रा०दाः, स्य, रा०, अमुष्मे, दत्त) हे परिव्राही
 जलों तुम स्वभावसे जलदेनेवाले हो, रा० अमुक्त यजमानको प्रदान
 करो। (अपांपतिः, रा० दाः, असि, रा० मे, दत्त, स्वाहा) हे
 सागर के जलों तुम रा०दाता हो, रा० को मेरे निमित्त
 करो। यह आहुति भलीप्रकार ग्रहीत हो (अपांपतिः,

असि, राष्ट्रं, अमुष्मै, दत्त) अर्पापति तुम स्वभावसे राज्यदाता हो, रा० अमुक यजमान के निमित्त प्रदान करो (अर्पांगर्भः, रा० दाः, असि, मे, राष्ट्रं, देहि, स्वाहा) भँवरके जलो ! तुम स्वभाव से रा०के देनेवाले हो मुझे रा० दो, यह आहुति तुम्हारी भीति के निमित्त दीजाती है (अर्पांगर्भः, रा०दाः, असि, रा० अमुष्मै देहि) हे अर्पांगर्भ जलो ! स्वभावसे रा० देनेवाले हो, रा० अमुक यजमानके निमित्त प्रदान करो ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा
 सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्य-
 वरुचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा सूर्य-
 वरुचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ
 राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रममुष्मै दत्त वज्रक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे
 दत्त स्वाहा वज्रक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै
 दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा
 वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा
 स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ
 राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र-
 ममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त
 स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
 विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा
 विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापे
 स्थराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । सधुमती
 सधुमतीभिः पृच्यन्तामहि क्षत्रह्वत्रियाय
 वन्त्राना अनाष्टाः सीदत सहोजनो महि ।
 क्षत्रह्वत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥
 इस क्र० में ३१ मं० हैं । स्वका वरुण आ० है छं० १, २,

१, ४ साम्बन्धुं ५, ६, ९, १०, आसुर्यनुं ७, ८, १५, १६
 १७, १८ आसुर्यं गां ११, १२ आसुर्यधुक्, १३, १४, १९
 २० निचृदां ११ साम्नी त्रिं और संवत्स लिङ्गोक्त देवता है।
 मन्त्रार्थ—(सूर्यत्वचसः, स्य, रा०दाः, रा० मे दत्ता, स्वाहा) हे
 जलो तुम सूर्यत्वच हो स्वभावसे हो रा० देनेवाले हो, रा० मेरे
 निमित्त प्रदान करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (सूर्यत्व-
 चसः, स्य, रा०दाः, अमुमै, राष्ट्रं दत्ता) हे सूर्यत्वक् रूप जलो !
 स्वभावसे ही रा० देनेवाले तुम अमुक यज्ञमानके निमित्त रा०
 प्रदान करो । हे जलो ! (सूर्यत्वचसः, स्य, रा०दाः, मे, रा० दत्ता
 स्वाहा) सूर्य की कान्तिमें स्थित हो, स्वभावसे रा० देनेवाले हो
 मुझे रा० प्रदान करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (सूर्य-
 वचसः, स्य रा०दाः, अमुमै, राष्ट्रं, दत्ता) हे सूर्यत्वच जलो !
 तुम सूर्यकी वर्षस में स्थित हो स्वभावसे रा० देनेवाले हो अमुक
 यज्ञमानके निमित्त रा० प्रदान करो । हे मान्दजलो तुम (रा०दाः
 रा० मे, दत्ता, स्वाहा) स्वभावसे ही रा० देनेवाले हो रा० मेरे
 निमित्त प्रदान करो । यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (मान्दाः
 स्य रा०दाः, रा० अमुमै दत्ता) हे मान्द ! तुम स्वभावसे ही
 राज्यपद हो, रा० अमुक यज्ञमान के निमित्त दो, हे जलो तुम
 (व्रजक्षितः, स्य, रा०दाः मे, रा०, दत्ता, स्वाहा) तुम व्रजक्षि-
 त रूपस्थित हो, स्वभावसे ही रा० देनेवाले हमारे यज्ञमान के
 निमित्त रा० प्रदान करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ।
 हे जलो तुम (व्रजक्षितः, स्य, रा०, अमुमै, रा०, दत्ता) व्रज-
 क्षित हो, स्वभाव से राज्य देनेवाले, इस यज्ञमान के निमित्त
 राज्य दो, हे जलो तुम (वाशाः, स्य, रा० अमुमै, रा०, दत्ता)
 वाशामें स्थित जलो स्वभावसे राज्य देनेवाले इस यज्ञमान को
 रा० दो । हे जलो (शविष्ठाः, स्य, रा०, मे, राष्ट्रं, दत्ता, स्वाहा)
 मधुर रूप तुम त्रिदोषशमन कारण से वर देनेवाले स्वभावसे रा०
 देनेवाले मुझे रा० प्रदान करो । यह आहुति भलीप्रकार प्राप्त हो

(शविष्ठाः, स्य, रा०दाः०, अमुष्मै, रा० दत्ता) हे शविष्ठ ! तुम स्वभाव से ही राज्य देनेवाले अमुक यजमान को रा० दो । हे जलो तुम (शक्वरीः, स्य, रा०दाः, मे, रा०, दत्ता, स्वाहा) बाह दोहादि से जगत् का उद्धार करनेवाली गोसम्बन्धी हो स्वभाव से राज्यदाता हो मुझे राज्य दो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । (शक्वरीः, स्य, रा०दाः, अमुष्मै, रा०म्, दत्ता,) शक्वरी जलो तुम रा० देनेवाले इस यजमान के निमित्त रा० दो, । हे जलो तुम (जनभृताः, स्य, रा०दाः०, रा०म्, मे, दत्ता, स्वाहा) बालभाव में मनुष्यों को पुष्ट करनेवाले हो स्वभावसे ही राज्यके देनेवाले हो राज्य मेरे निमित्त दो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । (जनभृताः, स्य, रा०दाः, अमुष्मै, रा०म्, दत्ता) हे जनभृत् जल तुम स्वाभाव से ही रा० देनेवाले हो इस अमुक यजमान के निमित्त रा० प्रदान करो, । हे भलो तुम (विश्वभृताः, स्य, रा०दाः, मे, रा०म्, दत्ता, स्वाहा) मनुष्योंसे देवताओं पर्यन्त घृत द्वारा जगत् को धारण करनेवाले हो स्वभावसे राज्यदेनेवाले हो मेरे निमित्त रा० को प्रदान करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । हे घृतरूप जलो (विश्वभृताः, स्य, अमुष्मै रा०म्, दत्ता) तुम विश्वभृत् अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो । (आपाः, स्वराजाः, स्य, रा०दाः, रा०, अमुष्मै, दत्ता) हे मरीचिरूप जलो ! तुम अपने प्रकाशमें अनन्याश्रित हो, स्वभावसे राज्य के देनेवाले हो राज्य अमुक यजमान को दो, (मधुमतीः, मधुमतीभिः, महि, सत्रं, सत्रियाय, यन्वानाः, पृच्यन्ताम्) हे मधुर रसयुक्त सम्पूर्ण जलो ! उस सब मधुररस जलोंके सहित बड़े बछवाले को राजा यजमानके निमित्त सम्पादन करतेहुए अपने रसोंसे सींचो, सम्पर्क करो । हे जलो ! तुम (अनाधृष्टाः, महौजसः, महि, सत्रम्, सत्रियाय, दधतीः, सीदत्ता) अमुरों से अनाधृष्ट पराभन न पानेवाले, बलके सहित बड़े बलको इस सत्रिय राजा में स्थापन करतेहुए, इस स्थानमें अवस्थान करो ॥ ४ ॥

सोमस्य त्विषिरभि तवैव मे त्विषिर्भूयात् ।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा-

सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहे-

इन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा ॐ

शाय स्वाहा भगाय स्वाहा अर्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

इस कं० में १३ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है ० १ आसु० गा० १, ३, ४, ८, ९, १०, ११, १२, १३, देवी पं० ५ देवी त्रि० ६ देवी वृ०, ७ दे० ज०, और देवता १ चर्म, अन्य सबका लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ-हे चर्म ! तुम (सोमस्य, त्विषिः, अस्ति, तय, त्विषिः, मे, भूयात्) सोमदेवता की कान्तिरूप हो, आपकी कान्ति मुझमें होनाय (अग्नये, स्वाहा; सोमाय, स्वाहा, सवित्रे स्वाहा, सरस्वत्यै, स्वाहा, पूष्णे स्वाहा, बृहस्पतये, स्वाहा) अग्नि देवता की प्रीति के निमित्त यह आहुति दीजाती है, भलीप्रकार गृहीत हो, प्रेरक सोमदेवता के निमित्त आहुति० सविता देवता के निमित्त अष्ट आहुति० श्वाहरूप सरस्वती के निमित्त आहुति० पोषक पूषादेवता के निमित्त यह आहुति०, बृहस्पति के निमित्त यह आहुति दीजाती है स्वीकार हो । (इन्द्राय, स्वाहा, घोषाय, स्वाहा, श्लोकाय स्वाहा, अर्यम्णे स्वाहा) इन्द्र देवता की प्रीति के निमित्त यह आहुति० शुद्ध करने वाले देवता के निमित्त यह आहुति० जनोंसे कौशिल परस्पर आन्दोलन रूपके निमित्त यह आहुति० पुण्य पापके विभाग करने वाले के निमित्त यह आहुति० ऐश्वर्य के निमित्त यह आहुति० विश्व को ज्ञात करनेवाले अथमा देवता के निमित्त यह आहुति दीजाती है ॥ ५ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वै प्रसव वृत्पुना-
म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुहिमभिः ।

अनिभृष्टमासि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य
द्राक्षमासि स्वाहा राजसुः ॥ ६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं० १. देवी
ज० २ माजा० पं० ३ भुरिग्राजापत्या पं० और देवता १ पवित्रे
२ आप १ आप है । मंत्रार्थ—(पवित्रे, वैष्णव्यौ, स्थः) हे पवित्र
कुशद्वय, तुम यज्ञकार्य में नियुक्त हो, (सवितुः, मसवे, अचिद्धेण
पवित्रेण, सूर्यस्य, रश्मिभिः, वः, उत्पुनामि) जगत्के एकमात्र
नियन्ता इस परम-देवता के नियोग से नियुक्त होकर विद्वद्भ्यः,
पवित्रद्वारा सूर्यकी किरणों से तुमको उत्पन्न सिंचन करता हूँ ।
हे जलों ! तुम (आनिष्टृष्टम्, वाचः, वः, धुः) राक्षसों से अपराभूत
वाक्यके प्रकृतबन्धु हो (तपोजाः, सोमस्य, दात्रम्, अस्ति, स्वाहा
राजस्वः) तेजसे समुत्पन्न सोमके उत्पादक हो, तथा स्वाहाकारसे
पवित्र हुए, इस यजमानको राजर्था सम्पादन करो ॥ ६ ॥

सधमादो धुमिनीरारप एता अनाधृष्टा अपस्यो
वसानाः । पस्त्यासु चके वरुणः सधस्यं मपाधि

शिशुर्मानृतमास्यन्तः ॥ ७ ॥

इसका वरुण ऋ०, विरा० त्रि० छं० और वरुण देवता है ।
मंत्रार्थ—(एताः सधमादः, धुमिनीः, अनाधृष्टाः, अपस्यः वसानाः
आपः, पस्त्यासु, मातृतमासु, अन्तः, अपांशिधुः, वरुणः, सधस्यं,
चक्रे) जो यह एकत्र चार पात्रमें स्थित, प्रसन्न होनेवाले वीर्यवान्,
अपराभूत पात्रोंका आच्छादन करनेवाले यह जल इस समय अभि-
प्रेक कार्यमें नियुक्त हुए हैं, इसप्रकार सबके धारण करने में गृह
रूप जगन्निर्माता मातृरूप इन जल देवियोंके भीतर में जलों के
शिशु वरुण यजमानने सादर स्थिति की है ॥ ७ ॥

सधस्योल्बमासि सधस्यं जराय्वसि सधस्य योनिं
रसि सधस्य नाभिरसीन्द्रस्य बाध्रघ्नमसि
मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं बुध्रं वधेत् ।
दुषासि रुजासि धुमासि प्रातैनम्प्राध्वं म्प्रातैनं-
म्लध्वं म्प्रातैनं न्तिर्यध्वं न्दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

इस कं० में ११ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं० १

याजुपी गा० २, १, ४, याजुप्युष्णिक् ५ गा० गा० ६ दैवी वृ०
 ७ दैवी पं० ८, ९, १० दैव्यनु० ११ आच्युष्णिक् और देवता
 १ तार्य २, ३, ४ पाण्डवादय ५, धनु ६, धनुःको० ७ वामको
 ८, ९, १० इपु ११, इपव देवता है। मंत्रार्थ—हे तार्य वधु तुम !
 (क्षत्रस्य, चरुवध, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी इस यजमानकी गर्भा
 धार भूत जलरूप हो हे पाण्डुरक्तकम्बल ! तुम (क्षत्रस्य, जरायुः)
 क्षत्रिय यजमान की गर्भवेष्टन चर्मरूप हो । हे अधिवास ! तुम
 (क्षत्रस्य, योनिः, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी यजमानकी योनिरूप
 हो । हे वष्णीप ! तुम (क्षत्रस्य, नामिः, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी
 यजमानकी गर्भबन्धनस्थान हो । हे धनुप ! तुम (इन्द्रस्य, वार्षधनं
 असि) इस इन्द्ररूप यजमानके वृषनाशक धनुःसम्बन्धी हो । हे
 दक्षिणकोटि ! तू (मित्रस्य, असि, वरुणस्य, असि) मित्र सम्ब-
 न्धिनी है । हे वामकोटि ! तू वरुण सम्बन्धिनी है । हे धनुप !
 (अयं, त्वया, वृषं, वधेत्) यह यजमान तुम्हारे द्वारा सम्पूर्ण
 शत्रुओं का नाश करे । हे वाणो ! तुम (वृषा, असि) शत्रुओं
 के विदीर्ण करनेवाले हो । हे वाणो ! तुम (रुजा, असि) शत्रु-
 ओंके भंग करनेवाले हो । हे वाणो तुम (क्षमा, असि) शत्रुओं
 के क्षमा करनेवाले हो । हे वाणो ! तुम (एनसू, माध्वसू, पात)
 इस यजमानको पूर्व दिशाकी ओरसे रक्षा करो । हे वाणो ! तुम
 (एनं, प्रत्यञ्चं, पात) इस यजमानको पश्चिम ओरसे रक्षाकरो ।
 हे वाणो तुम (एनं, तिर्यञ्चं, पात, दिग्भ्यः, पात) इस यजमान
 को उत्तरदक्षिण की ओरसे रक्षा करो, बहुत कथा सम्पूर्ण दिशाओं
 से रक्षा करो ॥ ८ ॥

आविर्मर्ष्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिराविच

इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तो मित्रावरुणौ धृत-

व्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते यावा-

पृथिवी विश्वशम्भुवावित्तादितिरुक्षर्मा ॥ ९ ॥

इसकं० में ७ मंत्र हैं। सप्तका वरुण ऋ० है । छं० १ दै० वृ०

२, १, ५, ७, या० वृ० ४, आसु० वृ० ६ आसु० और देवता
 १ मजा०, २, ३, ५, ७ लिङ्गोक्त ४, ६ लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ-
 (मर्याः, आभिः, गृहपातिः, अग्निः, आपिचः, धृतव्रतौ, मित्रा-
 वरुणौ, आविचौ, विश्ववेदाः, पूषा, आविचः) भूमण्डजवासी
 मनुष्यमण्डली इस यजमान को जाने, गृहपालक अग्नि, इस
 यजमानको जाने, विख्यातकीर्ति इन्द्र इस यजमानको जाने, नियम
 में तत्पर मित्रावरुण सूर्यचन्द्र इसको जानें, सब कुछ जाननेवाले
 पूषा देवता, इसको जाने । (विश्वशम्भुर्वा, धावापृथिवी, आ-
 विचे, उरुशर्मा, अदितिः, आविचः) संसारके कल्याण की विधात्री
 पृथ्वी और दुलोक के अभिमानी देवता जाने, बड़े सुविस्तीर्ण,
 सुख के आधयरूप देवमाता काल इसको जाने ॥ ९ ॥

अवेष्टा दन्वशुकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु
 रथन्तरध्रु सामं त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म
 द्रविणम् ॥ १० ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं० १ दै०
 ज० २ निचृदा० पं० और देवता १ मृ० ना० २ यजमान है, मंत्रार्थ-
 (दन्वशुकाः, अवेष्टाः) काटने के स्वभाववाले मृत्पु के कारण
 सर्पादि विमष्ट हुए । हे यजमान ! तुम (प्राचीम्, आरोह) पूर्वदिशा
 को आरोहण करो, (गायत्री, त्वा, अवतु) गायत्री छन्द तुमको
 रक्षा करे सोमों के मध्यमें (रथन्तरध्रुसाम, त्रिवृत्स्तोमः, वसन्त
 ऋतुः, ब्रह्म, द्रविणम्) रथन्तर साम स्तोमके मध्यमें त्रिवृत्स्तोम
 ऋतुओंमें वसन्त ऋतु परमात्मा का ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे ॥ १० ॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्सामं पञ्च-
 दश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः सन्नद्रविणम् ॥ ११ ॥

इसका वरुण ऋ० आ० पं० छं० यजमान देवता है । मंत्रार्थ-हे
 यजमान ! तुम (दक्षिणां, आरोह) दक्षिण दिशाको आक्रमण
 करो (त्रिष्टुप् बृहत्साम पंचदशस्तोम, ग्रीष्मऋतुः, सन्नं, द्रविणं,
 त्वा, अवतु) त्रिष्टुप्छन्द बृहत्साम पंचदशस्तोम ग्रीष्मऋतु

सत्रियजाति सम्वन्धी ऐश्वर्यं तुभको रक्षाकरे ॥ ११ ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपधसामं
सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विह द्रविणम् ॥ १२ ॥

इसका वरुण ऋ०, निचूदार्घ्यनुग्रुष छं० यजमान देवता है ।
मन्त्रार्थ—हे यजमान तुम (प्रतीची, आरोह, जगती, वैरूपं साम,
सप्तदशस्तोमः, वर्षाऋतुः, विह, द्रविणं, त्वा, अवतु) पश्चिमदिशा
को आक्रमण करो, जगती छन्द, वैरूपसाम, वर्षाऋतु, वैश्य स-
म्वन्धी ऐश्वर्य, तुम्हारी रक्षाकरे ॥ १२ ॥

उदीचीमारोहानुग्रुप्त्वावतु वैराजधसामकविधं
शस्तोमः शरदतुः फलन्द्रविणम् ॥ १३ ॥

इस कं० में १ मं० है । सवका वरुण ऋ० है । छं० १ निचू-
दप्राप्त्युष्णिक् १ मा० गा० और देवता १ यजमान २ असुर है
मन्त्रार्थ—हे यजमान तुम (उदीचीम्, आरोह, अनुग्रुष, वैराजध
साम, एकविंशस्तोमः, शरदतुः, फलं, द्रविणं, त्वा, अवतु)
उत्तर दिशाको आक्रमण करो, अनुग्रुषछन्द, उत्पन्न वैराजसाम
एकविंश स्तोम, शरदतु, यज्ञफलरूप ऐश्वर्य तुमको रक्षाकरे १३

ऊर्द्ध्वामारोह पंक्तिस्त्वावतु शाक्वररैवतो
सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमो हेमन्त-

शिशिरावृत चर्चोर्द्रविणमप्रत्यस्तन्नमुचेः शिरः १४

इसका वरुण ऋ० है । धुरिण जगती छं० और यजमान देवता
है । मन्त्रार्थ—हे यजमान तुम (ऊर्द्ध्वम्, आरोह, पंक्तिः, शाक्वर
रैवतो, सामनी, त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ, स्तोमो, हेमन्तशिशिरौ, ऋतु,
चर्चः, द्रविणं, त्वा, अवतु) ऊपर भागको आक्रमण करो पंक्तिछन्द,
शाक्वरसाम और रैवत, साम, त्रिनव और त्रयस्त्रिंश, स्तोम,
हेमन्त और शिशिर, दोनों ऋतु, तेजोभिमानी देवका ऐश्वर्य
तुम्हारी रक्षा करे (तमुचेः, शिरः, प्रत्यस्तम्) तमुचि असुरका
शिर दूर फेका गया ॥ १४ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवैव मे त्विषिर्मुपात

अनुरीयमाणाः, अधराक्ष, आवृत्तन) स्वयं ही विश्वको सींचने वाले गमनशील, स्तुतियोंको प्राप्त होनेवाले वर्षा करनेवाले पर्वतके पृष्ठसे आदित्य मण्डलकी ओर गमन करते हैं । वे आहुतिके परिणामभूत जल ऊपर मास हुए अन्तरिक्षमें होनेवाले, मेघोंको अनुसरण करतेहुए नीचे भूमिको मास होते हैं ॥ १९ ॥

प्रजापते नत्त्वदेतान्यन्यो विश्व। रूपाणि परिता-
 धभूषा पत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तुयममुष्य-
 पितासावस्य पिताव्यध स्वां पतयो रयीणा-
 धस्वाहा । रुद्र यसौ क्रिवि परन्नाम तस्मिन्नु-
 तमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । रुद्रका देववात श्रु० है । कं० १ निवृ०
 २ सांयी गा० ३ साम्नी मि० है और देवता १ प्रजापति २ आशीः
 ३ रुद्र है । मंत्रार्थ—हे प्रजापते (त्वत्, अन्यः, एतानि, विश्वा,
 रूपाणि, न, परिता, बभूव) हे परमात्मन्, आपसे और कोई
 भी इन सम्पूर्ण प्रजापालनादि कार्य तथा नाना जातीय वर्तमान
 भूत, भविष्यत्, कालमें के माणियोंके सृजन पालन संहारमें नहीं
 समर्थ है इसकारण तुम्हीं हमारी प्रार्थना पूर्ण करने में समर्थ हो
 (यत्कामाः, ते, जुहुमः, तन्न, नः, अस्तु, अयं, अमुष्य, पिता,
 असौ, अस्य, वयं, रयीणां, पतयः, स्वाम, स्वाहा) जिस कामना
 से आपके निमिष हवन करतेहैं, वह कामना हमारी पूर्ण हो, यह
 अमुक का पिता है, यह इसका पिता चिरस्थायी रहे, हम अपरिमित
 ऐश्वर्य के स्वामी हों, वह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, (रुद्र,
 यत्, ते, क्रिवि, परं, नाम, तस्मिन्, हुतं, असि, अमेष्टं, आसे,
 स्वाहा) हे रुद्रदेव । जो तुम्हारा प्रथमकारी, दुष्टनाशक, उत्कृष्ट
 नाम है, दे ही उस रुद्रनाममें तुम हुत होओ, तुम हमारे घरमें
 आहुत होती हो, इस कारण सबप्रकार हमारी उपकारी होओ,
 यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २० ॥

इन्द्रस्य बज्रोंसि मित्रावरुणयोस्तथा प्रज्ञास्त्रोः

प्रशिष्या युनजिम । अव्ययायै त्वा स्वधायै त्वा
रिष्टो अर्जुनो ब्रह्माग्रसूत्रेण जयापाम्
मनसा समिन्द्रियेण ॥ ११ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं । सत्रका देवतां ऋ०, छं० १ देवी
त्रि० २ साम्न्त्य० १ साम्न्त्युष्णिक् ४ या० वृ० ५ दै० वि और
देवता १, २, १, रय, ४ धुर्य, ५ यजमान है । मंत्रार्थ-हे रय !
तुम (इन्द्रस्य, वज्रः, असि) इन्द्रके वज्र की समान अतिदुर्लभ
काष्ठसे निर्मिता हो । (मशास्त्रीः, मित्रावरुणयोः, मशिषा, त्वा,
युनजिम) शासनकारी मित्रावरुण देवताके मशासनसे तुमको इस
रय में युक्त करता हूं । (अरिष्टा, अर्जुनः, अव्ययायै, त्वा, स्वधायै
त्वा) अनुपार्हसित, अर्जुनतुर्य इन्द्र, देशका भय दूर करने के
निमित्त अचलताके निमित्त, तुझमें तथा देशमें सुभिन्न सम्पादन
करने के निमित्त तुमपर आरोहण करता हूं । हे रयधुरबाहक
अरव ! (ब्रह्मा, प्रसेवन, जय) ब्रह्मण्यो की आज्ञासे वेगवान्
होकर शत्रुओंको जीतो हमने जो कार्य आरम्भ किया है उसको (मन-
सा, अपाम्) मनके अनुसार सम्पन्न किया । हम (इन्द्रियेण, सम्)
वीर्यसे संगत हुए ॥ ११ ॥

मा त इन्द्र ते वयन्तुराघादयुक्तासो अग्रहस्ता-
विदेसाम । तिष्ठारधमधि यं ब्रजहस्तादग्नी-
र्देव यमसेस्वरवान् ॥ १२ ॥

इसका संवरण कं० निचृ० त्रि० छं० और इन्द्र देवता है
मंत्रार्थ-(तुराघाद्, वज्रहस्त, इन्द्र, देव, यं, रयं, आधितिष्ठ, स्व-
रवान्, ररमीन्, आयमसे, ते, वयं, ते, अयुक्ताः, मा, विदेसाम्
अग्रहस्ता) शीघ्र शत्रुओंका तिरस्कार करने में लघुहस्त हाथमें
वज्रधारण करनेवाले हे ऐश्वर्ययुक्त, हे दीप्तिमान् ! तुम जिस रय
में स्थित होकर अच्छे सुशिक्षित घोड़ोंकी लगामों को धामते हो
हम तुम्हारे तिस रयसे भिन्न हुए शानि को प्राप्त न करें, प्रसन्न
नहीं हैं इसप्रकार ब्रह्मभावसे अन्य वस्तु न जानें ॥ १२ ॥

अग्नये गृहपतये । स्वाहा सोमाय वनस्पतये
 स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहा इन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा
 पृथिवि मातृर्माताहिंसीर्मा अहन्त्वाम् ॥ २३ ॥

इस क० में ५ म० हैं । सनका संवरण ऋ० । इं० १, २,
 याजुषी ५० १, ४, याजुष्य० ५ आसु० और देवताः सबका लि
 श्लोक्त है । मन्त्रार्थ—(गृहपतये, अग्नये, स्वाहा, वनस्पतये सोमाय
 स्वाहा, मरुता, ओजसे स्वाहा, इन्द्रस्य, इन्द्रियाय, स्वाहा) गृह
 पालक अग्निदेवताके निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो, वनस्पति क्षी,
 सोमकी प्रीति के निमित्त श्रेष्ठ होम हो । मरुद्गणों के वन के
 निमित्त हवि देतेहैं, इन्द्रके वीर्यके निमित्त हवि देतेहैं । (मातृ ,
 पृथिवि, मा माहिंसी, अह त्वा, माउ) द जगत् की निर्माता
 पृथ्वी ! तुम मुझको मताहिंसा करो मैं तुमको वनेश न दू ॥२३॥

इत्यस्य शुचिपदसुरन्तरिक्षसद्गोता वेदिपदनि-
 थिर्दुरोणसत् । नृपद्वरसद्वत्सर्वव्योमसद्वज्रा
 गोजा ऋतुजा अद्रिजा अतम्वृहत् ॥ २४ ॥

इसका वामदेव ऋ० । अति ज० । इं० और सूर्य देवता है ।
 मन्त्रार्थ—(शुचिपद, इंस, अन्तरिक्षसत्, वसु, वेदिपद, होता,
 दुरोणसत्, अतिथि, नृपत्, वरसत्, अतसत्, व्योमसत्, उ,
 अठना, गोजा, ऋतुजा, अद्रिजा, अतम्वृहत्) पवित्रस्थान
 दीप्ति में आदित्यरूप से स्थित अहकारका दूर करनेवाला आत्मा
 वायुरूपसे अन्तरिक्षमें स्थित मनुष्योंका प्रवर्तक अग्निरूपसे वेदी
 में स्थित होकर देवताओं का आह्वान करनेवाला आहवनीय रूप
 से यज्ञमें स्थित सनका पूजनीय मनुष्यों में माणभाव से स्थित,
 उत्कृष्ट स्थानों क्षेत्रों में स्थित, यज्ञ में स्थित आकाश में मण्डल
 रूपसे स्थित इसप्रकार सर्व स्थितियोंसे प्रार्थना करके सबके उत्पत्ति
 द्वारसे प्रार्थना करते हैं, और जो मत्स्यादिरूप से जलोंमें होता
 चतुर्विध मृतप्राय रूपसे भूमिमें होनेवाला, सत्यमें होनेवाले पा-
 पमाण अग्निरूपसे होनेवाले, मेघमें जलरूपसे होनेवाले, सर्वागत

अपर्यन्त परब्रह्म रूप परमात्मा का स्मरण कर रखे सत्तरता है २४

हम देस्यापुंरस्यापुंर्ममि धेहि। पुङ्खमि वचोमि

वचो मयि धेह्युर्गस्युर्जम्ममि धेहि। इन्द्रस्य वा

वीर्यकृतो वाह अभ्युपासहरामि ॥ २९ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका वामदेव ऋ० छं० १ साम्नी
ज० २ माजा०, मा० ३, नि० मा०, नु० और देवता १ हिरण्य,
२ शाखा ३ वाहु है। मंत्रार्थ—हे शतमान ! तुम (इयत्, असि
आयुः, असि, मयि, आयुः, धेहि) सौ रत्नी के इतने परिमाण वाले
हो। जीवन हो, सुवर्णदातसे दीर्घायु होती है, मुझमें जीव धारण
करो। हे शतमान ! तुम (पुङ्ख, असि, वचः, असि, मे, वचः,
वचो, मयि, धेहि) दो दानसे पहरे से तेजकी
धारण कराओ। हे वद-

धेहि, वीर्यकृतः, इन्द्रस्य,
वाह, वां, अभ्युपासहरामि), अन्नहृदि के कारण हो, शकट में
होकर अन्न आता है अन्न को मुझ में स्थापन करो, वीर्य के करने
वाली परमपेश्वर्यवान् यजमान की, हे दोनों भुजाओं। मैं, तुम
दोनों को, मित्रावाहणी पंचस्था के प्रति नीची करता हूँ ॥ २५ ॥

स्योनासि सुपदासि सुत्रस्य योनिरासि। स्यो-
नामासीद सुपदामासीद सुत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका वामदेव ऋ० है, छं० १, २
देवीज०, ३ भुरिगार्घी गा०, और देवता १, २ आसन्दिबस्त्रे,
३ यजमान है। मंत्रार्थ—हे द्यूता आसन्दि ! तुम (स्योना,
असि, सुखदा, असि) सुखरूप हो तथा सुख से बैठने योग्य हो।
हे अधोवासि ! तुम (सुत्रस्य, योनिः, असि) सत्रधर्माश्रित इस
यजमान के आधार के उपयुक्त स्थान हो। हे यजमान ! (स्योनां
आसीद, सुखदा, आसीद, सुत्रस्य, योनिः, आसीद) सुख की
करनेवाली आसन्दी में आरोहण कर सुख से उपवेशन के योग्य
में बैठो, यह अधिवास और आसन्दी तुम्हारी समान राजपुरुष

के उपवेशन योग्य आधार है, इसपर बैठो ॥ २६ ॥

निपसाद धृतव्रतो वरुणं पस्त्यासु । साम्रा-

ज्याय मुक्रतुः ॥ २७ ॥

इसका धुनःशेष ऋ० है । वर्द्धमाना गा० छं० वरुण देवता है । मंत्रार्थ—(धृतव्रतः, मुक्रतुः, वरुणः, साम्राज्याय, पस्त्यासु, अनिपसाद) यज्ञलक्षण व्रत के धारण करनेवाले श्रेष्ठ संकल्प अनिष्टके निवारण करनेवाले इस यज्ञमाननेसम्राट्मात्र के निमित्त प्रमाओंमें आधिपत्यरूपसे स्थिति की ॥ २७ ॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्म-
स्त्वम्ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसन्नो वरुणोसि
सत्यौजा इन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः ।
बहुकार श्रेयस्करभूयस्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन
मे रक्ष्य ॥ २८ ॥

इस कं० में ८ मं० हैं । सबका धुनःशेष ऋषि है । छं० १ साम्युष्णिक् २ याजुषी गा० ३ या० वृ० ४ याजुष्युष्णिक्, ५ ६ या० गा० ७ याजु० ज० ८ याजु० त्रि० और देवता १ अक्षा यज्ञ० २, ४, ५, ६ ब्रह्म दे० ७ लिङ्गो० ८ स्फ्य है । मंत्रार्थ—हे यज्ञमान ! तुम (अभिभूः, असि, एताः, पञ्चदिशः, ते कल्पन्ताम्) इन पाँच के द्वारा सकल जगत् के परामर्श करनेवाले हो, यह पाँच पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्ध्व दिशा इसके द्वारा तुम्हारे हस्तगत प्राप्त हों । (ब्रह्मन्, ब्रह्मा, असि, ब्रह्मा सत्यप्रसन्नः, सविता, असि) हे ब्रह्मन् ! तुम ब्रह्माकी महिमावाले हो, हे यज्ञमान ! तुम महा महिमावाले अनुल्लङ्घ्य उपदेश देने में समर्थ मन्त्रार्थ के निपन्ता होने से सविता हो, (ब्रह्मा, स्वं, ब्रह्मा, असि, सत्यौजाः, वरुणः, असि) हे यज्ञमान ! महा महिमावाले तुम अमोघवीर्य मन्त्रार्थ के अनिष्ट निवारण करने से वरुण हो, (ब्रह्मन्, विशौजाः, इन्द्रः, असि, ब्रह्मन्, सुशेवः रुद्रः, असि, ब्रह्मन्, ब्रह्मा, असि) हे महिमावाले, यज्ञमान ! तुम

ऐश्वर्यवान् देशकी शान्ति की रक्षा करने से इन्द्र हो, हे महा-
महिमा वाले यजमान ! तुम आश्रित जनोके सुख देनेवाले पुनः
देवनीय तथा शत्रुगणों की स्त्रियोंके रुलानेवाले रुद्र हो, हे
यजमान तुम ब्रह्मा अर्थात् महा महिमावाले हो, इसकारण ब्रह्मा
हो । (बहुकार, श्रेयस्कर, भूयस्कर) हे सम्पूर्ण कार्यमें निपुण
मत्स्येक श्रेष्ठकार्यमवर्तक बहुत कार्यकारी, इस स्थानमें आगमन
करो । हे सूर्य ! तुम (इन्द्रस्य, वज्रः, असि, तेन, मे, रथ्य)
इन्द्र का वज्र हो, इसकारण मेरे यजमान के वशवर्ती होकर,
कार्य साधन करो ॥ २८ ॥

अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः-पृथु-
धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृताः
सूर्यस्य इहिमभिर्यतध्वंसजनातानांमध्य-
मेष्ठयाय ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सवका शुनःशेष ऋ० । छं०, १ मा०
त्रि०, २ साम्नी त्रि० और दे०-१ अग्नि, २ अक्ष है । मन्त्रार्थ-
(अग्निः, पृथुः, धर्मणः, पतिः, जुषाणः, पृथुः धर्मणः, पतिः,
अग्निः आज्यस्य वेतु, स्वाहा) महान् अग्निदेवता, देवताओं में
प्रथम होने से विशाल, जगत् के धारण करनेवाले धर्मका स्वामी
प्रीयमाण इवि का सेवन करनेवाला, जो देखते २ अति प्रवृद्ध
होता है जो गृहस्थियों के गृहधर्म का प्रधान साक्षी है वह अति
विपुल धर्मस्वरूप, अग्निदेवता हमारी दी हुई घृत की इवि मीति
पूर्वक भक्षण करे; यह आहुति मलीमकार गृहीत हो । हे अक्षगण ।
(स्वाहाकृताः, सूर्यस्य, इहिमभिः, सजातानां, मध्यमेष्ठयाय,
यतध्वम्) आहुति प्रदानपूर्वक गृहीत तुम, अतिप्रचण्ड सूर्य की
किरणों से सम्मिलित हुए स्पर्धा करो, समानजन्म क्षत्रिय भाइयों
के मध्य में सब से श्रेष्ठ करने को यत्न करो ॥ २९ ॥

सुविश्रा प्रसविश्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्टा

इषेः पूषणा पूशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना

ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमैतु

राष्ट्रा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसृतः प्रसर्पामि ३०

इसका शुभः शेष ऋ० मिचृदत्पाष्टि छं० सविताया देवता है, मंत्रार्थ- (प्रसवित्रा, सवित्रा, वाचा, सरस्वत्या, रुपे, त्वष्टा, पशुभिः, पूष्णा, अस्मे, इन्द्रेण, ब्रह्मणा, वृहस्पतिना, ओजसा, वरुणेन, तेजसा, अग्निना, राष्ट्रा, चन्द्रेण, दशम्या, देवतया, विष्णुना, प्रसृतः, प्रसर्पामि) समस्त जीवोंके प्रेरणा करनेवाले सविता सूर्य, वाक् रूपी सरस्वती, रूपके अधिष्ठात्री त्वष्टा देवता पशुओंसे उपलक्षित पूषा देवता स्वयं, इन्द्र, देवयाग में ब्रह्मत्वको प्राप्तहुए वृहस्पति षडेतेजसेयुक्त वरुण तेजसेयुक्त अग्नि औपधि ब्राह्मणोंके अधिपः दीप्यमान चन्द्रमा दशसंख्याके पूर्ण करनेवाले यज्ञके अधिष्ठात्री देव परमात्मा, नारायण के द्वारा, अनुज्ञा कियाहुआ, मैं प्रसर्पण करता हूँ ॥ ३० ॥

अश्विभ्यां पश्यस्व सरस्वत्यै पश्यस्वेन्द्राय

सुव्राम्णे पश्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण मयि

सोमो अतिसुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । ऋ० १ अश्विना वृ० २, २, ४, शुभः शेष ऋ० है । छं० १ या० गा० २ याजुष्यु० ३ या० वृ० ४ निचृदा गा० छं० देवता १, २, ३, लिङ्गोक्त ४ सोम है । मंत्रार्थ- हे सूरोंके योग्य मीढ़ि ! (अश्विभ्यां, पश्यस्व, सरस्वत्यै, पश्यस्व सुव्राम्णे, इन्द्राय, पश्यस्व) अश्विनीकुमार देवताओं की प्रीति के निमित्त, रसरूपसे परिणत हो, सरस्वती देवी की प्रीतिके निमित्त पंचकर रूपान्तर को परिणत हो, भलीभकार रक्षा करने वाले इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त पाकको प्राप्त हो (इन्द्रस्य युज्यः, सखा, पवित्रेण, पूतः, वायुः, सोमः, मयि, अतिसुतः) इन्द्र का योग मित्रभूत, पवित्रद्वारा शुद्ध किया, तथा वायु द्वारा पवित्र हुआ, सोम इस पवित्रद्वारा यथोमुख स्तरित होता हुआ, अतिक्रमण कर गया ॥ ३१ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्तर्यनुपूर्व
विपूर्ण । इहेहैपाङ्गकुण्डि भोजनानि ये वहिपो
नम उक्ति यजन्ति । उपयामगृहीतोऽश्विभ्यां-
न्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३१ ॥

इसका काशीवत सुकीर्ति श्रेष्ठ, निचूदाव्याही त्रि० जे०, सोमदेवता
है । मंत्रार्थ-हे सोम (यथा, इह, यवमन्त, कुविद, यव, चिद्य, अ-
नुपूर्वम्, विपूर्ण, अङ्ग, दान्ति) जिसप्रकार-इस लोक में बहुत यव
से सम्पन्न एकमात्र किसान, बहुतसे यवसे पूर्ण शस्य को, विषा-
कारके क्रम से पृथक् करके शीघ्र कर्तन करते हैं, इसीप्रकार अति
अल्पमात्र तुम देवगणों के मिषहो (पर्वा, भोजनानि, इह, कुण्डि,
ये, वहिपि, नमः, उक्ति, यजन्ति) इन यजमानों के सम्बन्धी,
विविध प्रकार के भोजन, इस यजमान में सम्पादन करो, जो
कुरासन पर बैठे हुए अश्विभ्यां, इविलक्षणवाले अन्न को लेकर
याज्ञ्य का नाम लेकर याग करते हैं । हे सोम ! तुम (उपयाम-
गृहीतः, असि) उपयामपात्र में गृहीत हो (अश्विभ्यां, त्वा)
अश्विनीकुमार की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ । हे
सोम ! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो (सरस्वत्यै, त्वा) सर-
स्वती देवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ । हे
सोम ! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो (सुत्राम्णे, इन्द्राय, त्वा)
पालक इन्द्रदेवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ३१ ॥

युव० सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपाना शुभस्पती इन्द्रर्षिस्वावतम् ॥ ३२ ॥

इसका काशीवत सुकीर्ति श्रेष्ठ, निचूदार्प्यनुपूर्व जे०, अश्वि
सरस्वतीन्द्रा देवता है । मंत्रार्थ (अश्विना, नमुचौ, आसुरे,
सुरामम्, सचा, विपिपाना, शुभः, पती, युवम्, कर्मसु, इन्द्र, आ-
वतम्) हे सर्वजनहितकारी अश्विनीकुमार ! नमुचिसंज्ञक दैत्य
में स्थित अधिक रमणीय सोम को, साथ विविधप्रकार से
पीते हुए शुभकर्म के पालक तुमने उन उन कार्यों में इन्द्र का

पालन किया ॥ ३३ ॥

पुत्रमिव पितरांश्चिन्नोभेन्द्वावयुः काव्यैर्दृष्ट-

सनाभिः। पत्सुरामव्यपिष्टः शचीभिः सरस्वती

त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

इसका काशीवत सुकीर्ति श्रु० शुरिगार्ची पं० छं० अश्विनसर-
स्वतीन्द्रा देवता है । मंत्रार्थ—(इन्द्र, उमा, अश्विना, काव्यैः, दंष्ट-
नाभिः, त्वा, आवयुः, इव, पितरौ, पुत्रं, यत्, मघवन्, शचीभिः
सुरामम्, व्यपिष्टः, सरस्वती, अभिष्णक्) हे इन्द्र ! दोनों हित-
कारी अश्विनो कुमार मन्त्र देखनेवाले महर्षियों के काव्य और
कर्मों से मयोंगोंसे असुर सहवाससे अशुद्ध सोमरस पानकर विपत्ति
को प्राप्त हुए तुमको रक्षा करते हुए जैसे माता पिता पुत्रकी रक्षा
करते हैं, जिसप्रकार हे इन्द्र ! तुमने नमुषि वधाधिकर्म करके पान
करते ही प्रसन्न करनेवाले रमणीय सोम को विशेषकर पान किया
सरस्वती वाणी तुम्हारी अनुगत है, सेवा करती है ॥ ३४ ॥

इति घञ्ठ यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का साठवाँ दशम

अध्याय समाप्त.

अथ एकादशोऽध्यायः

जिसमें अभिषेक के लिये जल लाना आदि राजसूय यह प्र-
धान है ऐसे दशम अध्याय में अभिषेक से लेकर राजसूय पर्यंत
मन्त्र कहे । अब ग्यारह से लेकर अठारहवें अध्याय तक अग्नि-
षयन के मन्त्र कहे जायेंगे ॥

युञ्जानः प्रथमम्मनस्तत्वाय सविता धियम् ।

अग्नेज्योतिर्निन्वाय्य पृथिव्या अह्नाभरत् ॥ १ ॥

भजापति श्रु०, विराटार्घ्यनुष्ठुप् छन्द और सविता देवता है ।
मंत्रार्थ—(सविता, मनः, प्रथमं, युञ्जानः, अग्निः, ज्योतिः, धि-
यम्, तत्वाय, निवाय्य, पृथिव्यै, अध्याभरत्) सबके मेरुण करने
वाले भजापति अग्निके आरम्भ में मनको पहले एकाग्रकर अग्नि

के तेज को, बुद्धिपूर्वक इष्टिकादि ज्ञान को पंच पशुओं में प्रविष्ट
जानकर मानसधामे को लिये पारण किया ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयन्देवस्य सवितुः सवे । स्वः

ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥

प्रजापति ऋ०, शंकुमती गा० छ० और सविता देवता है ।
मंत्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, सवे, पयं, युक्तेन, मनसा, स्वंग्याय,
शक्त्या) संसार को अपने २ कर्म में भेरेणा करनेवाले सविता
देव की आज्ञा में वर्त्तमान हम एकाग्र मनसे स्वर्ग के साधन
करनेवाले कर्म में, अपनी सामर्थ्य से प्रयत्न करते हैं ॥ २ ॥

युक्तार्थ सविता देवान्स्त्वंयतोधिदिषम् । बृह-

ज्योतिः करिष्यतः सविताप्रहृषाति तान् ॥ ३ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, निघृदा० छ० सविता दे० है । मंत्रार्थ—
जिसकारण से जगत्प्रेरक देवता (सविता, तान्, धिया, दिवः,
स्वः, यतः, बृहत्, ज्योतिः, करिष्यतः, देवान्, युक्ताय, आ मसु-
वति) सब देवताओं को स्वर्ग में भेरेणा करनेवाला तथा इन्द्रिग
गणों को दमन करनेवाला है, वन, बुद्धिपूर्वक कर्मानुष्ठान से
प्रकाशमान स्वर्ग को जानेवाले, महान् आदिस्थ नामक
आत्मज्योति को संस्कार करनेवाले, प्रसिद्ध देवताओं को अग्नि
कर्म में संयुक्त कर भेरेणा करता है ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य

बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुना विदेक्ष

हन्मही देवस्य सवितुः परिपृच्छति ॥ ४ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, जमतीबन्द, सविता देवता है । मंत्रार्थ—
(बृहतः, विपश्चितः, विप्रस्य, होत्राः, विपाः, मनः, युञ्जते, उत,
धियाः, युञ्जते, एकः, इव, वयुनावित्, विदधे, सवितुः, देवस्य,
परिपृच्छति, मही) अतिमहान् महापण्डित ब्राह्मण यजमान का,
होत्र कार्य करनेवाले अध्वर्यु आदि, इस अग्निर्घपन कार्य में मत्त
नियुक्त करते हैं और बुद्धि नियुक्त करते हैं, एक, आद्वितीय ही

प्रज्ञा तथा ऋत्विक् यजमान के अभिषाय के ज्ञाता ने, यह सब जगत् निर्माण किया है, सब के प्रेरक सविता देव की, सब वेदों में सुनी हुई स्तुति महान है ॥ ४ ॥

युजे वाग्यस्य पूर्व्यमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव
सूरेः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा भाये
धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, विराटार्थी त्रि० छ०, सविता दे० है ।
मंत्रार्थ—(वाग्, नमोभिः, पूर्व्य, मद्वा, पुने, मद्वा, सूरेः, श्लोकः, व्येतु,
इव, पथ्या, अमृतस्य, पुत्राः, विश्वे, शृण्वन्तु, ये, दिव्यानि, धामानि,
आतस्थुः) हे पत्नी और यजमान ! तुम्हारे निमित्त, नम उक्ति
सहित, बुरातम महर्षियों से अनुष्ठित, अग्निचयनाख्य आत्म-
ज्योतिर्वर्द्धक कर्म सम्पादन करता हूँ, ब्राह्मणजाति को अन्त्रों से
एत करता हूँ, पण्डित यजमान की कीर्ति लोकद्वय में प्राप्त हो,
जैसे यज्ञभाग में प्रवृत्त हुई आहुति लोकद्वय को प्राप्त होती है,
मरणधर्मरहित प्रजापति के पुत्र सम्पूर्ण देवता यजमान की कीर्ति
को सुनें, जो दिव्य स्वर्ग के स्थानों में स्थित हैं ॥ ५ ॥

यस्य मयाणमन्वन्व इत्युर्देवादेवस्य महिमान-
मोजसा । यः पार्थिवानि विममे स एतंशो
रजांसि देवः संनिता महित्वना ॥ ६ ॥

सबका प्रजापति ऋ०, निचूदार्थी ज०, छं० सविता देवता है ।
मंत्रार्थ—(अन्ये, देवाः, याप, देवस्य, मयाणं, महिमानं, इत्,
ओजसा, अनुयया, यः, सविता, रजांसि, विममे, सः, देवः,
महित्वना, एतशः) और देवता जिस सविता देवता की मर्त्यात्मा
को, महिमा को, अवश्य तपोबल से वर्जित हैं, जिस परमात्मा
ने सम्पूर्ण लोक निर्माण किए हैं वह परमात्मा अपनी महाभाग्य
महिमा के प्रभाव से इस स्यावर जंगम लोक में माण्डव से प्रविष्ट
हुआ व्याप्त है ॥ ६ ॥

देव सवितुः प्रसुंष यज्ञप्रसुंष यज्ञपत्तिभगांय ।

हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
स्थत्पृथिव्याः सधस्यात् पुरीष्यमाङ्गिरस्वदा-

भर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्यत् ॥ ९ ॥

इसका मजापति ऋ०, भुरिगति शक्वरी छं० सवित्रभी देवता है । मंत्रार्थ—हे अग्नि (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, गायत्रेण, छंदसा आश्वतोष, वाहुभ्यां, पूष्यः, हस्ताभ्यां, त्वा, अङ्गिरस्यत्, आददे, अङ्गिरस्यत्, त्रैष्टुभेन छन्दसा, पृथिव्याः, सधस्यात्, पुरीष्यम्, अग्नि, अङ्गिरस्यत्, आभर) सपके मेरकं सविता, देवकी मेरणा से गायत्री छन्दके मभावसे, आश्वनीकुमार की मुआसे, पूषा देवताके हाथोंसे बुध को अङ्गिरा वंशी अथियों के समान ग्रहण करता हूं, अङ्गिरा वंशियों की समान त्रिष्टुप् छन्दके मभावसे पृथिवीके उत्सङ्ग भीतरसे पशुओंकी हितकारिणी अग्निको अङ्गिरा की समान आहरण कर ॥ ९ ॥

अङ्गिरसि नाय्यसि त्वया वयमग्निं शकेम

खनितुं गृधस्य आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्यत् ? ॥

इसका मजापति ऋ० भुरिगनुष्टुप् छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—हे वैष्णवी तुम, (अग्निः, अग्नि, नारी, अग्नि, त्वया, वयं, अङ्गिरस्यत्, जागतेन, छन्दसा, सधस्ये, अग्नि, खनितुं, शकेम) जवा निर्माण करने को मृतत्वन्तका कारण काष्ठ विशेष अग्नि नामवाची दो, धीरुपा हो, तुम्हारे द्वारा हम अङ्गिराकी समान जगती छंद के मभावसे पृथ्वी के उत्सङ्ग में वर्तमान अग्नि को खनन करने को समर्थ हो ॥ १० ॥

इस्तं आधाय सविता विभ्रदग्निं हिरण्ययीम्

अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अद्याभं ददा-

त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्यत् ॥ ११ ॥

इसका मजापति ऋ० भुरिगार्पी पं० छं० सविता देवता है । मंत्रार्थ—(सविता, हस्ते, अङ्गिरस्यत्, हिरण्ययीम्, अग्निम्, आधाय विभ्रत्, अग्नेः, ज्योतिः, निचाय्य, पृथिव्याः, आधे, आनुष्टुभेन

छन्दसा, आभरत्) प्रेरक सविता देवताने, हाथमें अत्रिरा की समान सुवर्ण की अभ्रको लेकर उसको धारण करतेहुए अग्नि की ज्योतिको निश्चय करके भूमिके सकाश से अनुपुच्छन्दके प्रभाव से आहरण किया ॥ ११ ॥

प्रतृत्सं वाजिंश्चा द्रव्यं वरिष्ठामनु संवतंम् । दिवि
ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्या-
मधि योनिरित् ॥ १२ ॥

इसका नामा नेदिष्ट ऋ०, आस्तार पं० छं०, वाजी देवता है ।
मंत्रार्थ—(वाजिन, वरिष्ठाम्, सम्बतम्, अनु, प्रतृत्सम्, आद्रव,
ते, दिवि, परमं, जन्म, अन्तरिक्षे, तव, नाभिः, पृथिव्यां, आधि,
तव, योनिः, इत्) हे अश्व ! हे शीघ्रगामी ! श्रेष्ठ यज्ञभूमि को, लक्ष्य
करके, फिर शीघ्र आओ, तेरा पुत्रोक्त में, आदित्यरूप से उत्कृष्ट,
जन्म है, अन्तरिक्ष में तेरी नाभि है, पृथिवी के ऊपर तुम्हारा
स्थान है, अर्थात् भूमि में तुम्हारा निवासस्थान प्रत्यक्ष दीखता
है विराटरूप से अश्व की स्तुति की जाती है ॥ १२ ॥

युक्ताथाऽ रासंभं युवमस्मिन्यामे वृषण्वसू ।

अग्निम्भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

इसका कुञ्जि ऋपि है, गायत्री छं०, रासभ देवता है । मंत्रार्थ—
(वृषण्वसू, युवम्, अस्मिन्, यामे, अस्मयुम्, अग्निम्भरन्तं,
रासभम्) हे अध्वर्यु ! और यजमान, तुम दोनों इस अग्निकर्म
में अपने हितकारी अग्निरूप मृत्तिका को वहन करनेवाले, रासभ
को नियुक्त करो ॥ १३ ॥

योगे योगे तवस्तंरं वाजे वाजे हवामहे । स-

खाय इन्द्रं मृतये ॥ १४ ॥

इसका श्रुतः शेष ऋ०, गायत्री छं०, अज देवता है । मंत्रार्थ—
(सखायः, योगे योगे, तवस्तंरम्, इन्द्रम्, उतये, वाजे वाजे, हवा-
महे) परस्पर मित्रताको प्राप्त हुए, हम ऋत्विज् यजमान सब
प्रत्येक कर्म में उत्साहवान्, बलवान् अजका, रक्षाके निमित्त

और पितरों के वृत्त होनेयोग्य अन्नप्राप्तिके कर्ममें आह्वान करते हैं १४
 प्रत्यूर्वन्नेहावक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यम्मयो
 भूरहि । उर्वन्तरिंशं वीहि स्वस्तिगंव्युतिरभं-
 यानि कृषवन्पूणा सयुजा सह ॥ १५ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका शुनःशेष ऋ० छं० १ निवृ०
 गा० २ भुरिगा० गा० और देवता १ अश्व, २ रासम है । मंत्रार्थ-
 (प्रत्यूर्वन्, अशस्तीः, अवक्रामन्, एहि, मयोभूः, रुद्रस्य, गाण-
 पत्यम्, एहि) हे अश्व ! तुम शत्रुगण को वध करते शत्रुओंकी
 कोहुई निन्दाको निवारण करते हमारे निकट आओ, हमारे सुख
 के कारण होतेहुए रुद्र देवताके गणपतिस्वको प्राप्त हो, हे रासम !
 (स्वस्ति, गंव्युतिः, अभयानि, कृषवन्, सयुजा, पूणा, उरु, अन्त-
 रिंशं, वीहि) भयरहित गुमनवाले तुम हमको अभय करते ऋ-
 त्विज्ञ यजमानादि का रोग दूर करते समान योगी पृथ्वीके साथ
 विस्तीर्ण अन्नारितको विशेषकर प्राप्त हो ॥ १५ ॥

पृथिव्याः सधस्थोऽग्निर्यमिप्यमह्निस्वदाभंदा-
 ग्निर्यमिप्यमह्निस्वदन्धैर्मोर्ग्निर्यमिप्यमह्नि-
 स्वरिप्यामः ॥ १६ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका शुनःशेष ऋ० छं० १ आ०
 गा० २ सा० गा० ३ आसु० जु० और देवता १ अग्नि २ अश्वत्था
 ३ अग्नि है । मंत्रार्थ-हे अग्ने ! (पृथिव्याः, सधस्थात्, पुरीष्यम्,
 अग्निः, अंगिरस्वत्, आभर) भूमिके स्थानसे पशु सम्बन्धी अग्नि
 को अद्विराकी समान आहरण कर (पुरीष्यम्, अग्निः, अंगिर-
 स्वत्, अश्व, इमः) पशु सम्बन्धी अग्नि को अंगिराकी समान
 प्राप्त होनेको अभिमुख प्राप्त होते हैं (पुरीष्यं, अग्निः, अंगिरस्वत्
 भरिप्यामः) पशु सम्बन्धी अग्नि को अंगिरा की समान सम्पा-
 दन करेंगे ॥ १६ ॥

अनुग्निरूपसामग्नमल्पदन्वहानि प्रथमो जा-
 तवेदाः । अनुसूयस्य पुत्र्या च रश्मीननुवाचो-

पृथिवी आततन्य ॥ १७ ॥

इसका पुरोधा ऋ०, निचृदार्पो जि० जं०, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्निः, उपसां, अग्रम्, अन्वरूपत्, जाववेदाः, मयमः,
 अहानि, अनु, सूर्यस्य, रश्मीन्, पुरुषा, अनु, च, धावापृथिवी,
 अनु, आततन्य) जो अग्नि उपाकाल से पहले अग्निरूप से
 अनुक्रम से प्रकाशित रहा, सबका जाननेवाला यह अग्नि मुख्य
 रूप से दिनों को प्रकाश करता हुआ, सूर्य की किरणों को बहुत
 प्रकार से प्रकाश करता हुआ और स्वर्ग पृथ्वी को क्रम से सब
 प्रकार प्रकाशित करता हुआ, उस सर्वप्रकाशक लोकस्रष्टा अग्नि
 को हम देखते हैं ॥ १७ ॥

आगत्यं व्वाज्यध्वान्धं सर्वांमृधो विधूनुते ।

अग्निं सधस्यं महति चक्षुषा निचिकीपते ॥ १८ ॥

इसका मयोधू ऋषि है, निचृदनु० जं०, अश्व देवता है ।
 मंत्रार्थ—(वाजी, अध्वानं, आगत्य, सर्वाः, मृधः, विधूनुते, म-
 हति, सधस्ये, चक्षुषा, अग्निं, निचिकीपते) यह वेगवान् अश्व
 मार्ग को आकर सब संग्रामों को क्षिप्तकरता है, उत्कृष्ट पृथ्वी
 के स्थान में वर्धमान, स्थिरचक्षु से अग्नि को देखता है ॥ १८ ॥

आक्रम्यं वाजिनपृथिवीमाग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।

भूस्पर्षा ह्यस्वार्थं नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

इसका मयोधू ऋ० निचृदनु० जं० अश्व देवता है मंत्रार्थ—
 (वाजिन त्वं, पृथिवीम्, आक्रम्य, रुचा, अग्निं, इच्छ, भूम्याः,
 ह्यस्वाय, नः, ब्रूहि, यतः वयं, तम्, खनेम) हे अश्व ! ॥ भूमिको
 आक्रमण करके दीप्ति आदि के द्वारा अग्निको, अन्वेषण
 कर भूमिके प्रदेशको छूतर हमसे यह कहो कि यह देश अग्नि
 हेतु के मृत्तिकाके योग्य है इसप्रकार कथन करो कि जिस देशसे
 हम उस अग्निको खनन करें ॥ १९ ॥

यौस्तौ पृष्ठमृथिवी सधस्यमात्मान्तर्दिक्षं स-

मुद्रो योनिः । विरूपाय चक्षुषा त्वामभितिष्ठ

पृतन्यतः ॥ २० ॥

इसका मयोभूर्ऋषि, निचृदार्षी वृ० छं०, अश्व देवता है ।
मंत्रार्थ—हे अश्व ! (घौः, ते, पृष्ठम्, पृथिवी, सधस्यम्, अन्तरिक्षं,
आत्मा, सपुद्गं, योनिः, त्वं, चक्षुषा, विख्याय, पृतन्यतः अभितिष्ठ)
स्वर्ग तुम्हारा पृष्ठ है, भूमि पात्र है, अन्तरिक्ष जीवात्मा है सपुद्ग
के जल तुम्हारी उत्पत्ति का कारण है तुम नेत्रों से उखाटे योग्य
मृक्षिका को देखकर संग्राम करने की इच्छा करनेवाले शत्रु राक्ष-
सादि को मृक्षिका में गूढ़ स्थित जानकर, चरणों से आक्रमण
कर गष्ट करो ॥ २० ॥

उत्क्राम महते सौभंगाष्टास्माडास्थानाद्द्रवि-
णोदा वाजिन् वयं स्याम सुमती पृथिव्या
अग्निहोत्रनेन उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥

इसका मयोभू ऋ०, विराडाषी पं० छं०, अश्वदे० है । मंत्रार्थ—
(वाजिन् द्रविणोदाः महते, सौभगाय, अस्मात्, आस्थानात्,
उत्क्राम, अस्याः, पृथिव्याः, उपस्थे, अग्नि, खनेन, वयं, सुमती
स्याम) हे अश्व ! धनके देनेवाले तुम बड़े महत्त्वमान्य को वृद्धि
के निमित्त, इस स्थान से उत्क्रमण करो इस पृथ्वीके उपरीभाग
में अग्नि को खनन करनेका उद्योग करतेहुए हम सानुग्रह श्रेष्ठ
वृद्धि में स्थित होंगे ॥ २१ ॥

उदक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकं सु-
कृतम्पृथिव्याम् । ततः खनेन सुमतीकमग्निं
स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

इसका मयोभू ऋषि, निचृदार्षी त्रि० छं०, अश्व दे० है ।
मंत्रार्थ—(अर्वा, द्रविणोदाः वाजी, पृथिव्यां, उदक्रमीत्, सुलोकं,
सुकृतं, अकः, सतः, नाकम्, उत्तमम् स्वः, अधिरुहाणाः, सुमती-
कम्, अग्नि, खनेन) चक्षुषल धनपद अश्व पृथिवी में मृदापिण्ड
से उत्तर आया सुन्दरलोक को पुण्यवान् किंवा उस देशसे दुःख
रहित श्रेष्ठ स्वर्ग को आरोहण करने की इच्छा करनेवाले हम

सुन्दर सुखदेनेवाले पुरीष्य अग्निको मृत्पिण्ड से खनन करनेका उद्योग करते हैं ॥ २२ ॥

ॐ त्वां जिघर्षिन् मनसा घृतेन प्रतिसिष्यन्त-
मभुवनानि विश्वा । पृथुन्तिरश्वा वयसा बृहन्तं
व्यधिष्टुमन्नं रभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

इसका गृत्समद ऋषि, आर्षी त्रि० छं०, अग्नि देवता है ।
मन्त्रार्थ—हे अग्ने ! (विश्वानि, भुवनानि, प्रतिसिष्यन्तं, तिरश्वा,
पृथुम्, वयसा, बृहन्तं, व्यधिष्टं, अन्नैः, रभसम्, दृशानं, त्वा,
मनसा, घृतेन, आजिघर्षिन्) सम्पूर्ण भुवनों में निवास करोहुए
तिर्यक् प्रमाण, उद्योति से विस्तीर्ण, भूम से महात्, अवकाशवान्,
विविध अन्नों करके परिपूर्ण, उत्साहसम्पन्न, प्रत्यक्ष गोचर, तुम
को श्रद्धायुक्त चित्त से, घृतद्वारा मदीप्त करता हूँ ॥ २३ ॥

ॐ जिघर्षतः पृथक्चञ्जिघर्ष्यश्क्ष्मा मनसा
तज्जुपेत । मर्यशीः स्पृह्यदर्शो अग्निर्नाभि-
मृशो तन्त्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, आर्षी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मन्त्रार्थ—हे अग्ने ! (जिघर्षतः, प्रत्यक्षम्, आजिघर्षिन्, भरत्तसा,
मनसा, तत्, जुपेत, मर्यशीः, स्पृह्यदर्शः, तन्त्वा, जर्भुराणः,
अग्निः, अभिमृशे, न) सब ओर मत्पगात्मा रूपसे व्याप्त हो
पृथु द्वारा निष्कपट मन से सिद्ध्यन करता हूँ, क्रोधरहित चित्त से
उस घृत को सेवन करो, मनुष्यों से सेवन करनेयोग्य दर्शनीय
काम्निमान् स्वरूप वाले शरीर से इधर उधर गमन करनेवाली
अग्नि अभिमर्शन के योग्य नहीं है ॥ २४ ॥

पञ्चिवाजंपतिः कविर्अग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । द-
ध्रत्नानि दाशुपे ॥ २५ ॥

इसका सोमक ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मन्त्रार्थ—(वाजपतिः, कविः, अग्निः, दाशुपे, रत्नानि, दधत्, ह-
व्यानि, पर्यक्रमीत्) अन्न का पति, क्रान्तदर्शी अग्नि हवि

वाले यजमान के निमित्त, मनोहर विविध रत्न प्रदानपूर्वक हवियों को स्वीकार करता हुआ ॥ २५ ॥

परित्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।

धूपद्वर्णान्दिवे दिवे हन्तारम्भङ्गुरायताम् ॥ २६ ॥

इसका पायु ऋषि है, अनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (सहस्य, अग्ने, पुरं, वयं, विप्रं, धूपद्वर्ण, दिवे, दिवे, भङ्गुरायताम्, हन्तारं, त्वा, वयं, परिधीनाहि) बलसे मयनकर उत्पन्न होनेवाले हे अग्नि ! पुरु इससे सबके शरीर में स्थित, पालन करने वाले बुद्धिसम्पन्न, असद्वस्त्र प्रतिदिन राक्षस दल को मारनेवाले, तुमको हम सब ओरसे ध्यान करते हैं ॥ २६ ॥

त्वमग्ने शुभिस्त्वमोशुशुक्षणिस्त्वमद्रुयस्त्वम-

इमं नृस्पतिं । त्वं वनेभ्यस्त्वमोपधीभ्यस्त्वन्कु-

णान् नृपते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

इसका गृह्यसमद ऋ०, पंक्ति छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ- (नृपते, अग्ने, शुचिः, आशुशुक्षणिः, त्वं, शुभिः, जायसे, त्वम् अद्रुभ्यः, त्वं, अरमनः, परि त्वम्, वनेभ्यः, त्वम्, ओपधीभ्यः, त्वम्, नृणाम्) मनुष्यों के पालक अग्नि परमपवित्र आर्द्र भूमिको कान्तिसे शोधकर कान्तिसे अन्धकारके दूर करनेवाले हो । तुम प्रतिदिन मयन करने से उत्पन्न होते हो । तुम जलों से पित्रलीह्वर करके उत्पन्न होते हो, तुम पापाणसे दूसरा पापाण लगने से उत्पन्न होये हो तुम वनों में अरण्य काष्ठ से तुम ओपधियों से वंशादिसे घुम अग्नि होत्र करनेवाले मनुष्यों के घर में होते हो ॥ २७ ॥

वेचस्यं त्वा सचितुः प्रमवेभ्विनोर्वाह्विभ्यास्पृष्णो

हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सुघस्थादग्निम्पुत्रीप्यम-

हिस्त्वत्खनामि । ज्योतिष्मन्तन्त्वाग्ने सुप्रती-

कमजंघ्रेण भानुना दीक्षातम् । शिवम्प्रजाभ्यो

हिं सन्तमृष्टिभ्याः सुघस्थादग्निम्पुत्रीप्यमहि-

स्त्वत्खनामः ॥ २८ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका गृत्समद ऋ० छन्द ? गाजा
 प० वृ० २ आर्चा गा० ३ सुराडा० त्रि० है । और दे० १ अग्नि
 २, ३ अग्नि है । मंत्रार्थ—हे अग्नि (सवितुः, देवस्य, मसरे, अ-
 श्विनोः, यादृभ्यां, पूषणः, हस्ताभ्यां, पुरीष्यं, अग्निम्, पृथिव्याः
 सधस्यात्, अद्विरस्वत्, खनामि) सबके मेरक सविता देवके आह्वा
 में वर्तमान अश्विनीकुमार की भुजाओं से पूषा देवताके हाथोंसे
 पशु सम्बन्धी आग्निको भूमि के ऊपर मेदेशसे अंगिराकी समान
 खनन करता हूँ । (अग्ने ज्योतिष्मन्तः, सुप्रतापि, अजस्रेण, भानुना
 दीदृक्षतम्, मजाभ्यः, शिवम्, अहिधंसन्तं, त्वा, पुरीष्यं, अग्निं,
 पृथिव्याः, सधस्यात्, अद्विरस्वत्, खनामः) हे अग्ने । ज्वालायुक्त
 सुगुह्व निरन्तर वर्धमान, रश्मियों से दीप्तिमान्, मजाके उपकार
 के निमित्त, शान्तरूप हिंसा न करनेवाले शुभ पुरीष्य अग्निको
 भूमिके गर्भ से अंगिरा की समान खनन करते हैं ॥ २८ ॥

अपास्पृष्टमग्निं योनिर्गुणेः समुद्रमाभितः पिन्व-
 मानम् । वर्द्धमानो महाथ आ च पुष्करे दिवो
 माघ्रया वरिष्ण्या मयस्य ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका गृत्समद ऋषि है वृ० १ सुरि
 गा० पं० २, आ० पं० और देवता पुष्करपर्ण है, मंत्रार्थ—हे पत्र
 गुम (अपां, पृष्ठं, अग्नेः, योनिः, अग्निः, पिन्वमानं, समुद्रं, अभितः
 वर्द्धमानः, महान्, पुष्करे, आ) जलोंके ऊपर रहनेसे पृष्ठरूप हो
 अग्निके निमित्त पिण्ड के कारण हो, सींचतेहुए जल समुद्रको
 सब ओरसे वृद्धिको प्राप्त, बड़े जलमें सबमकार स्थित हो । हे पत्र
 (दिवः, माघ्रया, वरिष्ण्या, मयस्य) ध्रुलोकके परिमाण की दीर्घता
 से विस्तारको प्राप्त हो ॥ २९ ॥

शन्मि च स्थो वर्मे च स्थोऽपिच्छे बहुलं त्रिभे ।

व्यचंस्यतो सर्वसाधाम्भृतमग्निम्पुरीष्यम् ॥ ३० ॥

इसका गृत्समद ऋ०, विराट्पर्यन्तु० वृ० कृष्णाग्निं पुष्कर
 पर्ण देवता है । मंत्रार्थ—हे कृष्णाग्नि ! हे पुष्कर पर्ण (अश्विद्वे

बहुले, ध्यस्वती, उमे, शं, स्यः, च, वर्म, स्यः, पुरीष्यं, अग्निं
संवसायां, च, भृतम्) छिद्रशून्य बहुलविस्तारवाले थंकाशवाले
तुम दोनों अग्निके सुखकारी हो, और कवचकी समान रक्षा करने
वाले हो, पुरीष्य अग्निको आच्छादन करो, और धारण करो ३०
संवसायाथ स्वर्विदां समीची उरसात्मना ।

अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजसृमिस् ॥ ३१ ॥

इसका अर्थ समद श्रु० निचूदनु० छं० कृष्णाग्निं पुष्करपर्ण देवता
है। मंत्रार्थ--हे कृष्णाग्निमं हे पुष्करपर्ण ! (स्वर्विदा, समीची, अज-
सृमिद, ज्योतिष्मन्तम्, अग्नि, अन्तः, उदरे, भरिष्यन्ती, उरसा-
त्मना, अग्नि, सम्पसायाम्) स्वर्गलाभके साधन एकचिरामिले
हुए, निरन्तर तेजवान् अग्निको भीतर उदरमें धारण करतेहुए,
हृदयरूप अपने शरीर से अग्नि को चिरकाल धारण करते आ-
च्छादित रखते ॥ ३१ ॥

पुत्रीप्योसि विश्वभरं अथर्व्या त्वा प्रथमो
निरमन्धदग्ने ! त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा नि-
रमन्धत । मूर्ध्ने विष्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका भर० श्रु० है। छं० १ आन्यु-
ष्णिक् १ निचूदार्थी गा० और सबका अग्नि देवता है। मंत्रार्थ--
(अग्ने, पुरीष्यः, विश्वभरा, असि, प्रथमा, अथर्वा, त्वा, निरम-
न्धत) हे अग्ने ! तुम पशुओंके हितकारी समस्त चराचर के पालन
करनेवाले हो, सबसे प्रथम प्राणने तुमको प्रकाशित किया था। हे
अग्नि ! (अथर्वा, पुष्करात्, अथि, त्वा, निरमन्धत, विश्वस्य,
वाघतः, मूर्ध्नेः) प्राण ने जलके सकाशसे तुमको मथित किया,
सम्पूर्ण संसारके सम्बन्धी अतिवर्जने आदरसे तुमको मथित किया
तेमु त्वा दध्यद्दधिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्र-

हणम्पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

इसका भरद्वाज श्रु० निचूद गा० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ
(अथर्वणः, पुत्रः, दध्यद्, तमु, वृत्रहणम्, पुरन्दरम्, त्वा, धेइ)

अथर्व के पुत्र दध्यङ् नामक ऋषि ने उस पापनाशक रुद्ररूपसे पुर सम्बन्धी तीन आवरणों के भेदक तुमको प्रज्वलित किया । ३३।

तमु त्वा पुथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।

धनञ्जयथे रणे रणे ॥ ३४ ॥

भरद्वाज ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ— (पाथ्यः, वृषा, तम्, दस्युहन्तमम्, रणे, रणे, धनञ्जयं, त्वा, इधे) । सम्मार्गमें वर्तमान मनके सिञ्चन करनेवाले हे अग्ने ! उस अति-शय शत्रुओं का नाश करनेवाले उन उन संग्रामोंमें धनके जीतने वाले तुमको सन्दीप्त करता हूँ ॥ ३४ ॥

सीद होतुः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया
यज्ञथे सुकृतस्य योनौ । देवावीदेवान्हविषा

यज्ञास्पग्ने वृहत्पथमाने वयो धाः ॥ ३५ ॥

इसका देवयव और देववात ऋ० नि० त्रि० छं और अग्नि देवता है । मंत्रार्थ— (होतुः, अग्ने, चिकित्वान्, स्वे उ, लोके, सीद सुकृतस्य, योनौ, यज्ञं, आसादय, अग्ने, देवावीः, हविषा, देवान् आपत्तासि, यजमाने, वृहत्, वयः, धाः) आह्वान कार्य में नियुक्त हे अग्ने ! चेतनवान् अपने अधिकारको जानने वाले अपने स्थान कृष्णा जिनपर स्थापित किए पुष्कर पर्णपर स्थित हो, श्रेष्ठकर्म के स्थानवाले यज्ञको स्थापनकर हे अग्ने ! देवताओं के प्रसन्न करने वाले तुम हविद्वारा देवताओं को पूजनकर वृत्त करते हो इसकारण यजमानमें बड़ी आयु धारणकर इसमें बड़ा यश स्थापित करो ३५

नि होतां होतृपदने विदानस्त्वेपो दीदिवाथ

असदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सह-

सम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ३६ ॥

इसका वृत्तसमद ऋ० है । त्रिष्टु छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ— (होता, विदानः, त्वेपः, दीदिवान्, सुदक्षः, अदब्धव्रतप्रमतिः, वशिष्ठः, सहसम्भरः, शुचिजिह्वः, अग्निः, होतृपदने, न्यप्रदित्) देवताओंका आह्वान करनेवाले अपने अधिकार को जाननेवाले

रक्षाके निमित्त सबके मेरक सूर्यदेवता की समान ऊंचे होते ऊर्ध्व स्थित हो ऊंचे होते तुम अन्न के देने वाले हो जिसकारण कि मंत्र के उच्चारण करने वाले हव्यवाहक ऋत्विजों द्वारा आन्धान करते हैं ॥ ४२ ॥

सजातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुविभृगु
ओपधीषु । चित्रः शिशुः परितमांसिस्तून्
प्रमातृभ्यो अधिकानिऋदद्वाः ॥ ४३ ॥

इसका त्रित ऋ०, विराट् त्रि० छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ-
(अग्ने सः, चारु, ओपधीषु, विभृतः, चित्रः, शिशुः रोदस्योः,
जातः, गर्भः, असि, अक्तून्, तमांसि, परि, मातृभ्यः, अधिक-
निऋदत्, प्रमाः) हे अग्ने ! वह तुम शोभनपूजनार्थ पुरोडाशादि
लक्षण वाली ओपधियों में पुष्ट करने को स्थित । अनेक वर्ण की
उजालाओं से विचित्ररूप इस समय उत्पन्न होने के कारण शिशु
रूप चावा पृथिवी के मध्य में उत्पन्न हुए गर्भरूप रात्रि लक्षण
वाले अन्धकारों को दूर करते हुए ओपधि वनस्पतियों के मकाश
से अत्यन्त शब्द करते हुए शीघ्रता सेचलो ॥ ४३ ॥

स्थिरो भव वीह्वहः अगुर्भव आग्नेर्वन् । पृथुर्भव

सुखदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

इस का त्रित ऋ० विराट्नुष्टु० छं० रासभ देव० है । मंत्रार्थ-
(अर्धन्, स्थिरः, वीह्वहः भव, आगुः, वाती, भव, पुरीषवाहणः
त्वं, पृथुः, अग्नेः, सुखदः भव) हे गमन में कुशल रासभ ! स्थिर
होकर स्थिर कायावाले हो, वेगवान होकर अन्न के हेतु हो,
पुरीष्य अग्नि तुम पृष्ठ को विस्तीर्ण करते अग्नि देहरूप मृत्तिका
के सुख में स्थिति के योग्य हो ॥ ४४ ॥

शिवो भव पूजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।

मा चावापृथिवी अभिशोचीन्मन्तारिन्तन्मा
वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

इसका त्रित ऋ० विराट् पथ्या वृ० छं० अज दे० है । मंत्रार्थ

(अङ्गिरः, त्वं, मानुषीभ्यः, मनाभ्यः, शिवः, भवः धावा पृथिवी मा, अभिशोचीः अन्तरिक्षम्, मा वनस्पतीन्, मा) हे अग्निरूप अग्नि के प्रियशिषु अन्न । तुम मानुषसम्बन्धी मनाओं के निमित्त कन्याणकारी शान्त हो, धावा पृथिवी को मत सन्तप्त करो अन्तरिक्ष को मत सन्तापित करो वनस्पतियों को मत सन्तापित करो ॥ ४६ ॥

प्रेतुं वाजी कनिष्कदन्तानद्वारासंभः पत्वा । भ-
रन्नग्निर्भुङ्क्षीष्यन्मा पाह्यायुषः पुरा । वृषानि
वृषं गम्भरं न पाह्यैः समुद्रियम् । अग्न आया-
हि वीतये ॥ ४६ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका वित ऋ०, ङं० १ पंक्ति २, सामान्यनु० १ एकपदा गा० और देवता १ अश्व, १ रासभ, १ अग्नि है । मंत्रार्थ—(वाजी, कनिष्कदन्त, प्रेतु, पत्वा, रासभः, नान-दन्त, पुरीष्यं, अग्नि, भरन्, आयुषः, पुरा, मा, पाहि) वेगवान् अश्व आतिशेपिण शब्द करता हुआ, वेगसे गमन करो, पतनशील गर्दभ दिशाओं को शब्दायमान करता हुआ, यवसचाहनके निमित्त पीछे चलै यह अश्व पशुसम्बन्धी अग्निको धारण करता हुआ कर्म से पहले मत विनाशको प्राप्त हो, कर्मसमाप्तिपर्यन्त जीवन को प्राप्त हो (वृषा, वृषणम्, अपां, गर्भ, समुद्रियम्, अग्नि, भरन्) सिंचनमें समर्थ रासभ, आहुतिपरिणाम से फलदान में समर्थ जलों के मध्य मेघों में विद्युत रूपसे होनेवाले सागरमें बड़वा रूप से होनेवाले अग्नि को धारण करता आगमन कर (अग्ने, वीतये आयाहि) हे अग्निदेव ! हविमक्षणके निमित्त आगमन करो ४६

ऋतथे सत्यमृतथे सत्यमग्निर्भुङ्क्षीष्यन्माह्विस्व-

ङ्करामः । ओषधयः प्रतिमोददध्वमग्निमेतथे

शिवमापंतमभ्यस्रं गुप्ताः । व्यस्यन्विदध्या अ-

निरा अमीवा निपीदन्तोअपदुर्ममितिज्जहि ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वित ऋ०, ङं० १ मात्राप०

गा० २ सा० गा० ३ निचू० जु- ४ नि० सा० त्रि० और दे०
 १, २, ४ अग्नि ३ ओपधी है । मंत्रार्थ—(ऋतम्, सत्यम्, सत्यम्
 ऋतम्) आदित्यरूप, अग्निरूप व्यष्टि समाष्टिरूप, अग्नि है, ऐसी
 ऋत और सत्यरूप अग्नि को अजापर रक्षित करते हैं (पुरीष्य, अग्नि,
 अगिरस्वत्, भशमः, पशु सम्बन्धी अग्नि को अगिरा की समान
 संग्रह करते हैं (ओपधयः, एतम्, शिवं, अन्न, गुप्ता, अभि आ-
 यन्तं, अग्नि, प्रति, मोदध्वम्, निपीदन्, नः, विश्वाः, अनिराः,
 अभीवाः, व्यस्यन्, दुर्मति, अपन्नहि) हे सम्पूर्ण ओपधियों ! तुम
 इस शान्त कल्याणकारक और इस स्थल में तुम्हारे सन्मुख आते
 हुए अग्नि के सन्मुख प्रत्युत्थानादि से आमोदित करो । हे अग्ने
 तुम यहां स्थित होते हमारे सम्पूर्ण दुर्भिक्षपीडा इति व्याधियों को
 दूर करते हुए हमारी, हवनदान से पराङ्मुख दुर्मतिको नाश करो ४७

ओपधयः प्रतिगृह्णीतु पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।

अयं वो गर्भं ऋत्विष्यः प्रत्नं सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

इसका अर्थ अ० भुरिगार्प्यनु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
 (ओपधयः, पुष्पवतीः, सुपिप्पलाः, प्रतिगृह्णीत, वः, गर्भः, ऋ-
 त्विष्यः, अयं, प्रत्नं, सधस्थं, आसदत्) हे सम्पूर्ण ओपधियों !
 तुम फूलोंवाली, अच्छे फलवाली तुम इस अग्नि को स्वीकार
 करो, तुम्हारे गर्भरूप ऋतुकाल को प्राप्त यह अग्नि पुरातन स्थान
 को स्थित हुआ ॥ ४८ ॥

विपाजंसा पृथुना शोशुचानो बाधंस्व द्विपो

रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहत्तः शर्मणि

स्यामग्ने रुदथ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

इसका अर्थ अ० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
 (पृथुना, पाजसा, शोशुचानः, द्विपः, रक्षसः, अभीवाः, विवा-
 धन्व, सुशर्मणः, बृहत्तः, सुहवस्य, अग्नेः, प्रणीतौ, अहं, शर्मणि
 स्याम्) बड़े विस्तारवाले बलसे दीप्तिमान् हे अग्नि ! तुम शत्रुओं
 को, राक्षसों को समस्त व्याधियों को विशेष दूर करो अच्छे

सुख के कारण भौढ़ महान सुखसे बुलानेको शक्य अग्निके मस्तक करने के कार्यमें नियुक्त मैं सुखमें प्राप्त हूं ॥ ४९ ॥

आपो हि धा मयोभुवस्ता न ऊर्जं दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गा० छं० आप देवता है । मंत्रार्थ— (आपः, मयोभुवः, स्य नः, महे रणाय, चक्षसे, हि, ऊर्जं, दधातन) हे जलसमूह ! तुम सुखके करनेवाले सुखकी भावना करनेवाले स्नानाधानादिसं सुखके उत्पादक हो, हमारे बड़े रमणीय, दर्शन के निमित्त, और निश्चय ही रसानुभव के निमित्त स्थापन करो ॥ ५० ॥

यो वः शिवतमो रमस्तस्य भाजयते नः ।

उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गायत्री छं० आप देवता है । मंत्रार्थ— हे जलों ! (वः, यः, शिवतमः, रसः, इह, नः, तस्य, भाजयत, उशतीः, मातरः, इव) तुम्हारा जो शान्तरूप सुख का एक ही कारण रस इस कर्म में है, हमको उस रसका भागी करो प्रीति युक्त माता जैसे कि अपने स्तनको बालकों को पिलाती हैं ॥ ५१ ॥

तस्मा अरंभमाम यो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥ ५२ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गायत्री छं० आप देवता है । मंत्रार्थ— (आपः, वः, तस्मै, अरं, गमाम, यस्य, क्षयाय, जिन्वथ, च, नः, जनयथ) हे जलों ! तुम्हारे सम्बन्धी उस रसके निमित्त, शीघ्र चलो, जिसके निवास जगत् के आधारभूत तृप्त करते हो और उसके भोगसे हमको उत्पन्न करते हो ॥ ५२ ॥

मित्रः सृष्टुं पृथिवीं मृमिष्व व्योतिषा

सह । सृजातञ्जातवैदसमयक्ष्मार्थं त्वा सध

सृजाति पूजाभ्यः ॥ ५३ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० उपरिष्ठा ऋ० छं० मित्रदेवता है मंत्रार्थ—

(मित्रः, पृथिवी, च, भूमि, ज्योतिषा, सह, सधेऽमृज्य, सुजातं, जातवेदसं, त्वा, प्रजाभ्यः, अयस्माय, सधेऽमृजामि) मित्रदेवता आदित्य सुलोक और इस पिण्डरूप भूमिको ज्योतिरूप अजलोमके साथ एकत्र करके शुभ्र अध्वर्यु को देता है, और मैं भी सुन्दर जन्मवाले प्रजासंयुक्त अजलोम नामक शुभ्र अग्नि को प्रजाओं के रोगनिवृत्ति के निमित्त पिण्डसे युक्त करता हूँ ॥ १३ ॥

रुद्राः सधेऽमृज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ।

तेषां भानुरजंसू इच्छुक्रोटे वेपु रोचते ॥ १४ ॥

इसका सिधुद्वीप ऋ०, अनुष्टु० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—(रुद्राः, पृथिवी, संमृज्य, बृहज्ज्योतिः, समीधिरे, तेषां, भुक्रः, भानुः, देवेषु, अजस्रः, इव, रोचते) जिन रुद्रों ने पार्थिवपिण्ड को, बालु लोहकिट्ट और पापाण चूर्ण से संयुक्त करके मीढ़ अग्नि को प्रदीप्त किया, उन रुद्रों की शुद्ध प्रदीप्त ज्योति देवताओं के मध्य में परिपूर्ण भलीभाँति प्रकाशित होती है ॥ १४ ॥

सधेऽमृष्टां वसुभी रुद्रैर्द्वैर्ऋतः कर्मण्यामृदम् ।

इस्ताभ्यां मूर्द्धा कृत्वा सिनीवाली कुणोतु ताम् ५५

इसका सिधुद्वीप ऋ०, विराटनुष्टुप् छं०, सिनीवाली देवता है । मंत्रार्थ—(सिनीवाली, धीरेः, वसुभिः, रुद्रैः, संमृष्टाम्, मृदं, इस्ताभ्यां, मूर्द्धा, कृत्वा, तां, कर्मण्यां, कुणोतु) चन्द्रकलायुक्त अमावस्याभिमानि देवता, बुद्धिमान् वसुगण, रुद्रगणों द्वारा, शर्करादि से संयोजित मृत्तिका को हाथों से कोमल करके उसको ऊँचा कर्म के योग्य करें ॥ ५५ ॥

सिनिवाली सुंकपर्दा सुकुरीरा रथोपशा ।

सा तुभ्यमदिते मल्लोऽस्त्रान्दधातु इस्तपोः ॥ ५६ ॥

इसका सिधुद्वीप ऋ०, विराटनु० छं०, अदिति देवता है । मंत्रार्थ—(अदिते, माहि, सा, सुंकपर्दा, सुकुरीरा, रथोपशा, सिनीवाली, तुभ्यं, अस्त्रयोः, उतां, दधातु) हे दीनतारहित देवमाता, हे पूजित, वह सुन्दर केश और धनवाली, सुन्दर मस्तक

के चन्द्रिका वाली, विलास में चतुर अवयववाली, चन्द्रकलायुक्त
अमावास्याभिमानिनी देवी, तुम्हारे हाथों में पाकपात्र उखा को
स्थापित करो ॥ ५६ ॥

उखाङ्कृणोतु शक्त्या वाहुभ्यामदितिधिषा ।

माता पुत्रं यथोपस्थे सार्गिन् विभर्तु गर्भ आ ।

मूलस्थ शिरोसि ॥ ५७ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका सिन्धुदीप ऋ०, छं०-१ निषु०
नु०, २ याजुपी गा०, और दे० १ अदिति, २ मृत्पिण्ड है ।
मंत्रार्थ-(अदिति, शक्त्या, धिया, वाहुभ्यां, उखाम्, कृणोतु,
सा, गर्भे, आ, अग्नि, विभर्तु, यथा, माता, उपस्थे, पुत्रम्)
अदिति देवता अपनी सामर्थ्य से, बुद्धि द्वारा, हाथों से उत्कर्ष
विधानपूर्वक पाकपात्र करे, वह उखा अपने मध्य में सब प्रकार
से अग्नि को धारण करे, जैसे जननी गोदी में पुत्र को धारण
करती है ॥ ५७ ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेणच्छन्दसाङ्गिरस्व-
द्धुवासि पृथिव्यसि धारया मयि पूजाथ राय-
स्पोपङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाय
रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैपुमेनच्छन्दसाङ्गिरस्वद्धुवा-
स्यन्तरिक्षमसि धारया मयि पूजाथ रायस्पो-
पङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाया-
दित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेनच्छन्दसाङ्गिरस्व-
द्धुवासि यौरसि धारया मयि पूजाथ राय-
स्पोपङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाय
विश्वे स्वा देवा धैश्वानराः कृण्वन्त्वानुपुमे-
नच्छन्दसाङ्गिरस्वद्धुवासि दिशोसि धारया
मयि पूजाथ रायस्पोपङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ स-
जातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं, सबका सिन्धुदीप ऋ०, छं० १

ह्ययनु०, १ आर्षयनु, ३ ग्राह्ययनु०, ४ द्राक्षी वृ०, और सबका उखा देवता है । मंत्रार्थ—हे उखे ! वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, पृथिवी, असि, मायि, यजमानाय, मतां, रायः, पोषम्, गोपत्यं, सुवीर्यम्, सजातान्, आधारय) षष्ठ्यगण गायत्री छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुम्हको करें, उनकी कीहुँ तुम दृढ़ हो, पृथ्वीरूप हो, मुझ यजमान के निमित्त, सम्मान, धन, पुष्टि, गोपतित्व, सुन्दर पराक्रम, सहोदरगण के सहित हमको यथोचित सौहार्द धारण कराओ । हे उखे ! (रुद्राः, त्रैपुषेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, अन्तरिक्षं, असि) रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुम्हको निर्माण करें, तुम दृढ़ हो कारण कि अन्तरिक्षरूपा हो, शेष पूर्ववत् । हे उखे ! (आदित्याः, जायतेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, द्यौः असि) वारह आदित्य जगती छन्द की सामर्थ्य से अंगिरा की समान तुम्हको निर्माण करें, तुम दृढ़ हो कारण कि ध्रुलोकरूप हो शेष पूर्ववत् । (वैश्वानराः, विश्वेदेवाः, आनुपुषेन, छन्दसा, त्वा, अंगिरस्वत्, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, दिशः, असि) सब मनुष्यों से प्राप्त होनेयोग्य विश्वेदेवा देवता अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से हे उखे ! तुम्हको अंगिरा की समान निर्माण करें, तुम दृढ़ हो कारण कि दिशास्वरूप हो, शेष पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे विलङ्घ्यभ्णातुकृत्वा
य सा महीमुखाभ्मन्मयी योनिर्ममन्त्ये । पुत्रेभ्यः
प्रापच्छ्रुदितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं । सबका सिन्धुद्वीप ऋ०, छं० १, या० गा०, २ या० वृ०, ३ उष्णिगमु० और दे० १ रास्ना, १ उखा, १ अदिति है । मंत्रार्थ—हे मृत्तिकानिर्मितरेखा ! तुम (अदित्यै रास्ना असि) अदितिरूप उखा की कांचीगुण के स्थानवाली हो । हे उखे ! (अदितिः, ते, विलं, गृभ्णातु) देवमाता तुम्हारे मध्य

को ग्रहण करै (सा, अदितिः, महीं, मृण्मयी, अग्नये, योनि, उखा, कृत्वाय, श्रयान्, पुत्रेभ्यः, प्रायच्छत्, इति) देवमाता अदिति यह बड़ी मृत्तिका की अग्नि की स्थानभूत उखा निर्माण कर पाककार्य सम्पादन के निमित्त इस प्रकार कहकर कि हे पुत्रो ! तुम इसको पाक करो मदान करती हुई ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसां गिरस्व-
दुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसां गिरस्व-
दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसां गिर-
स्वद्विभ्वे त्वा वैश्वानरा धूपयन्तु वरुणस्त्वा
धूपयन्तु विष्णुस्त्वा धूपयन्तु ॥ ६० ॥

इस कं० में ७ मंत्र हैं । सबका सिन्धुद्वीप ऋ०, छं० १ आर्ची गा०, २ निष्टुदार्पी गा०, ३ आर्ची गा०, ४ नि० गा०, ५, ७ याजु०, ६ प्राजापत्या गा० है और सबका उखा दे० है । मंत्रार्थ हे उखे ! (वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अग्निरस्वत्, त्वा, धूप-यन्तु) वसु गायत्री छन्द के मभाव से अग्निरा की समान तुझको धूपित करै (रुद्राः, त्रैष्टुभेन, छन्दसा, अग्निरस्वत्, त्वा, धूपयन्तु) रुद्र त्रिष्टुभ छन्द के मभाव से अंगिरा की समान तुझको धूपित करै (आदित्याः, जागतेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, धूपयन्तु) आदित्य जगती छन्द के मभाव से अंगिरा की समान तुमको धूपित करै (वैश्वानराः, विश्वदेवाः, आनुष्टुभेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा) सब के हितकारक विश्वदेवा देवता अनुष्टुप् छन्द के मभाव से अंगिरा की समान तुझको धूपित करै । (इन्द्राः, त्वा, धूपयन्तु, वरुणः, त्वा, धूपयन्तु, विष्णुः, त्वा, धूप-यन्तु) इन्द्र तुझको धूप दे, वरुणदेव तुझको धूप दे, विष्णुदेवता तुझको धूप दे ॥ ६० ॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः
मधस्थे अग्निरस्वत्खनत्त्ववटदेवानान्त्वा पत्नी-

से, परिदंमि, ष्पा, मा मेदि) हे मित्र देवता ! ग्राणिषों के हित करनेवाले, इस उखा को खण्डित न होने के लिये, आपके निमित्त देता हूँ, यह तुम्हें सौंपी हुई उखा किसीप्रकार विदीर्ण न हो यथावत् रहे ॥ ६४ ॥

वसं वस्त्वा छन्दन्तु गायत्रेण छन्दसा अगिरस्वद्वि-
स्त्वा छन्दन्तु त्रैपुमेन छन्दसा अगिरस्वदादित्या
स्त्वा छन्दन्तु जागतेन छन्दसा अगिरस्वद्विश्वे-
स्त्वा देवा वैश्वानरा आछन्दन्त्वानुपुमेन छन्दसा-
अगिरस्थत् ॥ ६५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ०, छं० १, २ भुरिगार्ची २ प्राजा० नु० ४ नि० सा०, ज०, और सबका उखा देवता है । मंत्रार्थ—हे उखे ! (वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अगिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) वसु गायत्री छन्दके प्रभाव से अगिरा की समान तुभको अजादुग्ध से सिंचित करें । हे उखे ! (रुद्राः, त्रैपुमेन, छन्दसा, अगिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) रुद्राण त्रिपुष्प छन्द के प्रभाव से अगिरा की समान तुभको सिञ्चन करें । हे उखे ! (आदित्याः, जागतेन, छन्दसा, अगिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) आदित्यगण जगती छन्दकी सामर्थ्यसे अगिरा की समान तुभको सिंचन करें । हे उखे ! (वैश्वानराः, विश्वेदेवाः, आनुपुमेन, छन्दसा, अगिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) विश्वके हितकारी विश्वेदेवा, अनुपुष्प छन्द के प्रभाव से अगिरा की समान तुभको सिञ्चन करें ॥ ६५ ॥

आकूतिमग्निम्युजथ स्वाहा मनो मेधामग्नि-
म्युजथ स्वाहा चिसं विज्ञातमग्निं म्युजथ
स्वाहा वाचो बिभृतिमग्निम्युजथ स्वाहा प्रजा
पते मेधे स्वाहाग्नेये विश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । छं० १ या० पं०, २, ३, ४ या० त्रि०, ५ या० पं०, ६ या० त्रि०, और

देवता सबका लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—(आकृति, अग्नि, प्रयुजं, स्वाहा) यज्ञ संकल्प के मेरक अग्नि को इस यज्ञकर्म में प्रयुक्त किया उसके निमित्त यह आहुति प्रदान की जाती है । (मनः, मेधां, प्रयुजम्, अग्नि, स्वाहा) मन और मेधा मंत्रधारणशक्ति को मेरणा करनेवाले अग्नि को आहुति देते हैं । (चित्तं, विद्वातं, प्रयुजम्, अग्नि, स्वाहा) चित्त अविज्ञात अनुष्ठान के ज्ञानसाधन विज्ञान के मेरक अग्नि को आहुति देते हैं । (वाचा, विधृति, प्रयुजम्, अग्नि, स्वाहा) मंत्रपाठरूप वाणी और विशेष धारणा के मेरक अग्नि को आहुति देते हैं । (मन्त्रे, मजापतये, स्वाहा, वैश्वानराय, अग्नये, स्वाहा) मन्त्रान्तर को प्रवृत्त करने वाले मजापति के निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो, विश्व के हितकारी अग्नि देवता के निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो

राय इपुध्यति शुम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ६७ ॥

इसका अन्वयः—, आर्घ्यनुष्णं, सविता देवता है । मंत्रार्थ—(विश्वः, मर्तः, नेतुः, देवस्य, सख्यं, वुरीत, पुष्यसे, शुम्नं, वृणीत, राय, विश्वः, इपुध्यति, स्वाहा) सम्पूर्ण मनुष्य फल को प्राप्त करनेवाले परमात्मा के सख्यभाव को प्रार्थना करें, कर्म उपासना ज्ञान की पुष्टि के निमित्त यज्ञ वा अन्न की इच्छा करो, धनप्राप्ति के निमित्त सब मनुष्य उनसे प्रार्थना करते हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ६७ ॥

मा सु भित्था मा सु रिपोम्य धृष्णु वीर्यस्य सु

अग्निश्चेदङ्गिरिष्यथः ॥ ६८ ॥

इसका अन्वयः—, आर्घ्यं गा० छं०, उखाग्नी दे० हैं । मंत्रार्थ (अम्ब, सु, मा, भित्थाः, सु, मा, रिपुः, धृष्णुः, सु, वीर्यस्य, अग्निः, च, इदम्, करिष्यथः) हे भौता उखे ! तुम अवश्य ही मत्त विदीर्ण हो, अवश्य ही मर्ग विनाश को प्राप्त हो, किन्तु मंगलभतापूर्वक भलीप्रकार वीरकर्म करो, अग्नि और तुम समाप्ति

पर्यन्त इस हमारे कार्य को करोगे ॥ ६८ ॥

दृष्टेऽस्व देवि पृथिवि स्वस्वये आसुरी माया
स्वधया कृतामि । जुष्टेऽदेवेभ्य इदमस्तु हव्यम-
ग्निष्टा त्वमुदिहि यज्ञः अस्मिन् ॥ ६९ ॥

इसका आश्रय ऋ०, विष्णु छन्द, उवा देवता है । मंत्रार्थ—
(देवि, पृथिवि, स्वस्वये, दृष्टेऽस्व, स्वधया, आसुरी, माया,
कृतामि, इदं, हव्यं, देवेभ्यः, जुष्टं, अस्तु, त्वं, अग्निष्टा, अ-
स्मिन्, यज्ञे, उदिहि) हे देवी! पृथिवि उठे! यजमान के कल्याण
के निमित्त दृढ़ हो, अन्न के निमित्त मागसम्बन्धिनी मृदा की गई
हो, यह हव्योग्य अन्न देवताओं के निमित्त बिय हो कार्य शेष
पर्यन्त तुम अभग्नरूप से इस यज्ञ में अवस्थिति करो ॥ ६९ ॥

इन्नः सर्षिरासुतिः पूतनो होता वरेण्यः सहसं-
स्पृशो भद्रमुतः ॥ ७० ॥

इसका सोमाहुति ऋ०, विराट् गा० छ०, अग्नि० देवता है ।
मंत्रार्थ—(इन्नः, सर्षिरासुतिः, मस्तः, होता, वरेण्यः, सहसं,
पुत्रः, भद्रमुतः) जिसका प्रधानमह्य पलाशकाष्ठ है, जिसका
प्रधान पानी घृत है, जो पुरातन, देवगणों का आग्रहान करनेवाला,
वरणीय, बल से मयम करनेपर उत्पन्न होनेवाला आश्चर्यरूप है
वह अग्नि देवता कार्मुकी समिद्ध को भक्षण करै ॥ ७० ॥

परस्या अधि संवतो वराधे अभ्यातर । यज्ञाह-
मस्मि ताधे अथ ॥ ७१ ॥

इसका विरूप ऋ०, विराट् गा० छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(परस्याः, संवतः, अवरान्, अभ्यातर, यज्ञ, अहं, अधि, अस्मि,
तां, अथ) शत्रुसम्बन्धी संग्राम से हमारे जनो को दुख से तारने
को सन्मुख आओ और जिस स्थान में मैं सम्यक् स्थित हूँ उस
स्थान की रक्षा करो ॥ ७१ ॥

परमस्याः परावतो रोहिदरेव इदागंहि । पुरीणः
पुरुषिद्योग्ने त्वन्तरा मृधः ॥ ७२ ॥

इसका वारुणि ऋषि है, भुरिगेनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, रोहिदस्वः, पुरीष्यः, पुंभियः, त्वं, परमस्याः,
 परावतः, इह, आगहि, मृधः, आतुः) हे अग्निदेव ! रोहित नाम
 अथ रत्नेवाले, पशुओं के हितकारी, बहुजनप्रिय, तुम अत्यन्त
 दूर देश से इस यज्ञकर्म में आगमन करो, संग्राम में शत्रुओं का
 विनाशकर उन्नीर्ण होओ ॥ ७२ ॥

४ यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारुणि दधमसि ।

सर्वन्तदस्तु ते घृतं तज्जुपस्व यविष्ठय ॥ ७३ ॥

इसका जमदग्नि ऋ०, निचृ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 (यविष्ठय, अग्ने, यत् कानिचिन् दारुणि ते, ते, आदध्यासि तत्
 सर्वं, ते, घृतं, अस्तु, तव, जुपस्व) हे युवश्रेष्ठ ! अग्नि ! जो कोई
 भी काष्ठ तुम्हारे निमित्त अर्पण करे वह सब तुमको घृतकी समान
 प्रिय हो, उसको प्रीति सहित सेवन करो ॥ ७३ ॥

यदत्पुपजिह्विका यद्वज्रो अति सर्पसि । स-

र्वन्तदस्तु ते घृतन्तज्जुपस्व यविष्ठय ॥ ७४ ॥

इसका जमदग्नि ऋ०, विराट्नुष्टुप् छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 हे अग्ने ! (उपजिह्विका, यत्, अति, वज्रः, यत्, अतिसर्पति,
 यविष्ठय, तत् ते, घृतं, अस्तु, तव, जुपस्व) दीपकाण जां काष्ठ
 भक्षण करते हैं वज्रीक जिसकाष्ठ के पार हो निकलती है हे तरुण
 अग्ने ! वह समित्व तुमको घृतवत् प्रिय हो, उसको प्रीति से
 सेवन करो ॥ ७४ ॥

अक्षरहरप्रपाद्यन्तरन्तोश्वायेव तिष्ठते घ्रास-

मस्मै । रायस्पोषेण समिपां मदन्तोग्ने मा ते

प्रति वेशा रिपाम ॥ ७५ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, विराट् त्रिष्टुप् छ०, अग्निदेवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, प्रतिवशा अक्षरहः, अपयानम्, अस्मै, घ्रासं,
 भरन्तः, तिष्ठते, अश्वाय, इव, रायः, पोषेण, इषा सम्मदन्तः, मा
 रिपाम) हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रयवाले हम निरन्तर अपमत्तकी

समान इस अग्निदेव के निमित्त जैसे वांजिशाला में स्थित घोंघे को प्रतिदिन घास दीजाती है तैसे समिधा रूप धन की पुष्टि और अन्न से हरे को सम्पादन करते नाशको प्राप्त नहो ॥ ७२ ॥

नाभां पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय
बृहते हवामहे । इरम्मदवृहदुक्थं यजन्नजेता-
रमग्निमृतानासु सासहिम् ॥ ७३ ॥

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, स्वराढार्पी निष्टुष्वन्द है, अग्निदेवता है । मंत्रार्थ—(पृथिव्याः, नाभा, समिधाने अग्नौ इरम्मदम् वृहदुक्थम्, यजन्नम्, मृतानासु, जेतारं, सासहिं, अग्निं, बृहते, रायस्पोषाय, हवामहे) पृथ्वी के नाभिस्वरूप ब्रह्मा के मध्यमें दीप्यमान आरवनीयनाम अग्नि के प्रज्वलित होनेपर अन्न से वृत्त होने वाले चक्रे शस्त्रस्तोत्रवाले यजनपूजन के योग्य संग्रामों में जीतनेवाले शत्रुओं का निरादर करने वाले अग्नि के अधिष्ठात्री देवताको बहुत से धनकी पुष्टि के निमित्त आवाहन करते हैं ॥ ७३ ॥

याः सेनां अभीत्यरीराव्याधिनीरुगणा उत ।

ये स्तेना ये च तस्करास्तांस्ते अग्नेपिदधम्यास्ये ७७

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, भूरिगनुष्टुष्वन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(याः, सेनाः, अभीत्यरीः, उत, आव्याधिनीः, उगणः ये, स्तेनाः, च, ये, तस्कराः, अग्ने, तान्, ते, आस्ये, अपिदधामि) जो शत्रुकी सेना हमारे सम्मुख आनेवाली है, और जो सेना हमारी सब प्रकार से ताड़न करने वाली है, और जो शस्त्रधारी हैं, जो डाकू हैं, हे अग्ने ! उनको तुम्हारे प्रज्वलित मुख में आहुति करता हूँ ॥ ७७ ॥

दध्म्यामलिम्लूजम्भैस्तस्कराथ उत ।

एतुंभ्याथ स्तेनान् भगवस्तास्त्वं स्वादु सुखादितान् ॥

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, भूरिगनुष्टुष्वन्द, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(भगवः, त्वं, मलिम्लूजं, दध्म्यां, तस्करान्, जम्भै, उत, स्तेनान्, इतुभ्यां, तान्, सुखादितान्, स्वादु) हे परमपूरव्ये

सम्पन्न परात्पर परमेश्वरं हे अग्निस्वरूप ! जो गाँव में प्रकटभाव से चोरी करते हैं उनको केवल ढाढ़ों से, तस्करों को जो निर्जन स्थान में दस्युवृत्ति करते हैं उनको आगे के दांतों से और चोरों को ठोड़ी से पीड़ित करो उन अञ्छेपकार नष्ट करनेयोग्यों को जीवितरहित करके भक्षण करो ॥ ७८ ॥

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनामस्तस्करो वने । ये

कक्षेप्यघायवस्तांस्तै दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, निचृ० छं०, अग्नि देवता है ।
मन्त्रार्थ—(ये, जनेषु, मलिम्लवः, स्तेनासः, वने, तस्कराः, ये, कक्षेपु, अघायवः, तां, तै, जम्भयोः, दधामि) जो ग्रामवर्ती मनुष्यों के स्थान में पूर्वोक्त मलिम्लव और स्तेन नाम से मसिद्ध गुप्त चोर हैं, जो वन में निर्जन प्रदेश में गमन करते हैं तस्कर नाम से मसिद्ध चोर हैं, जो नदी पर्वत गहन स्थानों में पापाभिलाषी लोभ से मनुष्यों के भाण हरनेवाले हैं, हे अग्ने ! उन सबको तुम्हारी ढाढ़ों के अन्तर में खाने को स्थापन करता हूँ ॥ ७९ ॥

संशितम्मे ब्रह्म संशितं वीर्यंस्वल्पम् । स-

शितं ब्रह्मजिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८० ॥

इसका नामानेदिष्ट ऋ० अनुष्टुप् छं०, अग्नि दे० । मन्त्रार्थ—(यः, जनः, अस्मभ्यं, अरातीयात्, च, यः, नः, द्वेपते, यः, निन्दात्, च, अस्मान्, धिप्सात्, तं, सर्वम्, भस्मसा, कुरु) जो मनुष्य हमसे शत्रुता करे जो हमारे देयधनको हमें न दे और जो हमसे द्वेषकर हमारे कार्य को नष्ट करे जो हमारी निन्दा करे गुण में दोष करे और जो हमारे भाणवध का यत्न करे उन चारप्रकार के अराती द्वेषी निन्दक जिघांसु सबको भस्म-करो ॥ ८० ॥

यो अस्मभ्यमरातीयायश्च नो द्वेपते जनः ।

निन्दायो अस्मान्धिप्साञ्च सर्वन्तम्भस्मसा कुरु ८१

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, निचृ० पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मन्त्रार्थ—हे अग्ने वा हे परमात्मन ! आपके मसाद से (मे, ब्रह्म

संशिनम्, वीर्यं, बलं, संशितं, यस्य, अहं, पुरोहितः, अस्मि, क्षत्रं, जिष्णुः, संशिनम्) मेरा ब्रह्मतेज तीक्ष्ण हुआ इन्द्रिय शक्ति शरीर शक्ति, स्वकार्यमें समर्थ हुई जिसका मैं पुरोहित हूँ उसके क्षत्रतेज जयशील को तीक्ष्ण किया ॥ ८१

उदेषाम्नाह अंभिरमुद्वर्च्यो अथो यलम् । सि-

णोमि ब्रह्मणा मित्रानुन्नयामि स्वाथ अहम् ॥ ८२ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० विराटनु० छं० अग्निदे० है । (प-
पाम्, वाह, उदितारम्, वचः, बलम्, अहम्, ब्रह्मणो, अमित्रान्,
क्षिणोमि, स्वान्, उन्नयामि) मंत्रार्थ—इन परमात्मा अग्नि के
मसाद से इन अपने ब्राह्मण राजाओं के बीच में अपनी भुजा ऊंची
की यह लोकोक्ति भी है कि जब कोई औरों से उत्कृष्ट होता है
तब लांक कहते हैं इसने अपना हाथ ऊपर किया तेजने सबकी
कान्ति को अभिक्रमण किया बनने शरीरशक्ति ने सबके वयको
अभिभूत किया मैं मंत्रकी सामर्थ्य से अमित्र शत्रुओं को नष्ट
करता हूँ, अपने पुत्र पौत्रादिको उत्कृष्टता को प्राप्त करता हूँ इस
प्रकार तरह समिधा के मंत्र कहे ॥ ८२ ॥

अन्नपतेर्धस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।

प्रदातारं प्रसारिणं नः द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जं धेहि ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, उपरिष्ठा० वृ० छं० अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(अन्नपते, मः, अनमीवस्य, शुष्मिणः, अन्नस्य, देहि,
प्रदातारं, प्रसारिणः, नः, द्विपदे, चतुष्पदे, ऊर्जं, धेहि) हे अन्न
के पालक अग्नि । हमारे व्याधिरहित बलदायक अन्न को प्रदान
करो, अन्न के देनेवाले हमारी अतिवृद्धि करो और हमारे मनुष्य
पुत्रादि गौ आदिकों में अन्न को धारण करो ॥ ८३ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाग्वेदनेति संहिता का सानुवाद

ग्यारहवां अध्याय समाप्त

द्वादशोऽध्यायः

ॐ

जिसमें अग्निचयन प्रधान है, उसे ग्यारहवें अध्याय में उखा सम्भरणादि समिदधानान्त के मन्त्र कहे । अब बारहवें अध्यायमें उखाधारण के मन्त्र कहे जायेंगे ॥

दृशानो रुक्मः ऽवृष्या व्यधौ दुर्मर्षमायुः श्रिये
रुचानः अग्निरमृतो अभयव्यो भिर्यदै नृन्धौ
रजनयस्सुरेताः ॥ १ ॥

इसका वत्समी ऋ०, भुरित् पंक्ति छं० रुक्म देवता है मन्त्रार्थ—
(दृशानः, श्रिये, रुचानः, दुर्मर्षमा, आयुः, रुक्मः, वृष्या व्यधौ
अग्निः, व्यधोमेः, अमृतः, अभयवत्, यत्, सुरेताः, धौः, एनं, अज-
नयत्) मरुपक्ष प्राप्त मनुष्यों को लक्ष्मी प्रदान करने के निमित्त
अभिलषित अखाण्डित आयुवाला सुवर्णभरण बड़ी दीप्तिसे प्रका-
शित होता है, सो यह अग्नि अन्नादि के पुरोडाशादि से चिर-
स्थायी हुआ क्योंकि सुन्दर अग्निरूप धुलोकवासी देवगणों ने
इस अग्निको प्रकट किया है ॥ १ ॥

नक्तोपा सा समनसा विरूपे धापयेत्ते शिशुमे-
कं समीची । यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि-
भाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ १ ॥

इस कं० में १ मन्त्र है । सबका कुत्स ऋ०, छं०, १ साम्नी
त्रि० २, १, यालुषी त्रि० और देवता सबका अग्नि है । मन्त्रार्थ
हे उखे ! (समनसा, विरूपे, समीची, नक्तोपा, एकं, शिशु,
धापयेत्) समान मनवाले, कृष्ण शुक्ल भेदसे विलक्षण रूप,
परस्पर मिले हुए रात्रिदिन, एक बालकरूप अग्नि को साथे मातः
अग्निहोत्रादि कर्म से वृत्त करते हैं, (यावाक्षामा, अन्तः, रुक्मः,
विभाति) ऊपर धुलोक और नीचे धूलोक के मध्यमें जो रोचमान
अग्नि विशेष शोभित होता है, उसको उठाता हूं । (द्रविणोदाः,
देवाः अग्निः) यज्ञद्वारा धनरूप फलके दाता देवगणों ने अग्नि को

धारण किया ॥ २ ॥

विश्वो रूपाणि प्रतिमुञ्चते कृषिः प्रासावीद्वद्रं
द्विपदे चतुष्पदे । विनाकंमख्यतमविता धरे-
ण्यो नु मयाणमुपसा विराजति ॥ ३ ॥

इसका शावाश्व ऋ०, विराहजगती छं०, सविता दे० है । मंत्रार्थ (वरेण्यः, कृषिः, सविता, विश्वा, रूपाणि, प्रतिमुञ्चते द्विपदे, चतुष्पदे, भद्रं, प्रासावीद्व, नाकं, मख्यतम, उपसः, मयाणम्, अनु, विराजति) श्रेष्ठ विद्वान् जगत् के मेरक सविता के मभाव से, सम्पूर्ण जगत् की वस्तुएं विविधप्रकार के रूपों को धारण करती हैं, द्विपाये मनुष्यादि चौपाये गौ आदि सब प्रकार के प्राणियों को स्वस्वव्यवहार प्रकाशनरूप श्रेय को प्रेरणा करता है (नाकं, मख्यतम, उपसः, मयाणं, अनु, विराजति) स्वर्ग को प्रकाश करता है और जो उपाकाल के गमन के पीछे विराजमान होता है ३

सुपर्णोसि गरुत्मान्स्त्रिवृत्ते शिरों गायत्र्यन्वक्षु-
वृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दाश्चि-
ज्ञानि यजूंश्चि नाम । साम ते तनुर्धामदेव्यं
यज्ञायज्ञियं पुच्छन्धिष्ण्याः शफाः सुपर्णोसि
गरुत्मान्द्विपदश्च स्वः पत ॥ ४ ॥

इसका श्यावाश्व ऋ०, सुरिष्पृति छं०, सुपर्ण दे० है । मंत्रार्थ है उवाग्ने ! जिसकारण कि तुम ऊर्ध्वगामी होने में समर्थ हो और महाश्व हो इसकारण तुम (सुपर्णः, गरुत्मान्, अस्ति, त्रिवृत्, ते, शिरः, गायत्रम्, ते, चक्षुः, वृहद्रथन्तरे, पक्षौ, स्तोमा, आत्मा, छन्दाश्चि, अज्ञानि, यजूंश्चि, नाम, धामदेव्यं, साम, ते, तनुः, यज्ञायज्ञियं, पुच्छम्, धिष्ण्याः, शफाः, गरुत्मान् सुपर्णः, अस्ति, दिवं, गच्छ, स्वः, पत) सुन्दर पक्षवाले घेगामी गरुड की समान हो, त्रिवृत् स्तोम तुम्हारा शिर है, गायत्री तुम्हारे नेत्र हैं, वृहत् और रथन्तर साम तुम्हारे दोनों पंख हैं, पंचदशस्तोम तुम्हारा अन्तःकरण है, गायत्री आदि इषकीस छन्द तुम्हारे हृद-

यादि अङ्ग हैं, इषेत्वा आदियजुः, तुम्हारे नाम हैं, वामदेव्य नामक साम तुम्हारा शरीर है, यज्ञायज्ञिय नामक साम तुम्हारी पुच्छ है, होतृ आदि पिण्ययमे स्थित अग्नि तुम्हारे खुरों के नख हैं, इस प्रकार हे अग्ने ! तुम वेगवान् गरुड़ की समान पक्षिरूप हो । इस कारण आकाशको गमन करो स्वर्गलोकको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गांयजुञ्छन्द आरोह
पृथिवीमनु विक्रमस्य विष्णोः क्रमोस्यभिमा-
तिहा नैप्रुभञ्छन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्य
विष्णोः क्रमोस्यरातीयतो हन्ता जागृतञ्छन्द
आरोह दिवमनुविक्रमस्य विष्णोः क्रमोसि
शश्वयतो हन्तानुष्टुभञ्छन्द आरोह विशोनु
विक्रमस्य ॥ ५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । संधकां शांवाञ्च ऋ० छं० १, २, ४ निचुदार्षी वृ० ३ आर्षी वृ० और देवता सबका उखाग्नि है । मंत्रार्थ—हे प्रथम पादविन्यास ! तुम (विष्णोः, सपत्नहा, क्रमः, असि, गायनः, छन्दः, आरोह, पृथिवीम्, अनु, विक्रमस्य) यज्ञाग्नि के शमुपाती क्रम हो, इसकारण गायत्री छन्दको अनुग्रह कर स्वीकार करो, फिर मूदेवता रूप इस भूमिके प्रदेशको विशेषकर प्राप्त करो । हे द्वितीय पादविन्यास ! तुम (विष्णोः, अभिमातिहा, क्रमः, असि, नैप्रुभम्, छन्दः, आरोह, अन्तरिक्षम्, अनु, विक्रमस्य) उखाग्नि के पापनाशक क्रम हो, त्रिप्रुभ छन्दको अनुग्रह कर स्वीकार करो, पश्चात् अन्तरिक्ष स्थान को प्राप्त करो । हे तृतीय पाद विन्यास ! तुम (विष्णोः, क्रमः, अरातीयतः, हन्ता, असि, जागृतं छन्दः, आरोह, दिवं, अनु, विक्रमस्य) उखाग्नि के क्रम धन ले कर न देनेवालों के नाशक हो, जगती छन्दको आरोहण करो, धुलोकको गमन के पीछे स्थानको प्राप्त करो । हे चतुर्थपाद विन्यास ! (विष्णोः, क्रमः, शश्वयतः, हन्ता, असि, छन्दः, आरोह) तुम उखाग्नि के क्रम शत्रुता करने वा-

हो, अनुग्रह छन्दको आरोहण करो। हे अग्ने ! तुम (दिशा अनु-
विप्रमस्य) सब दिशा-निदिशाओं में परिग्याप्त होओ ॥ ५ ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयान्निव योःक्षामां रेरिहद्वी-
रुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिदो अ-
ख्यदारोदसी भानुना भास्यन्तः ॥ ६ ॥

इसका वरसमी ऋ०, मित्र० वि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(योः, इव, स्तनयन, क्षामां, रेरिहत्, वीरुधः समञ्जन्, अग्निः
अक्रन्दन्, हि, जज्ञानाः, सद्यः, इदः, इप्, व्यख्यत्, रोदसी, अन्तः
भानुना, भासति) स्वर्गकी समान अर्थात् मेघकी समान गर्जना
करते पृथ्वीको आस्थादन करो, छुत्तोंको अंकुरित करता हुआ अग्नि
प्रदीप्त होता है, जिसकारण से कि पकट होता हुआ शीघ्रही दीप्त
हो, इस सबको बिरुध्यात् अर्थात् प्रकाश करता है, याथावृत्ति
के मध्यमें रश्मिद्वारा प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

अग्नेभ्यावर्तिष्मन्नि मा निवर्त्तस्वायुंष्टा वर्चसा
प्रजया धनेन । सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥

इसका वरसमी ऋ०, भुरिगार्प्यनु०, छं० अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अभ्यावर्तिन्, अग्ने, आयुषा, वर्चसा, प्रजया, सन्या,
मेधया, रय्या, पोषेण, मा, अग्नि, निवर्त्तस्व) हमारे सन्मुख
आग्ने के स्वभाववाले, गमनागमन में समर्थ, हे अग्निदेव परमा-
त्मन् ! आयु, तेजकान्ति, सन्तान, इष्टलाभ, धारणावती बुद्धि,
सुवर्णादि अलङ्कार, आयु आदि की पुष्टि के साथ मेरे सन्मुख
मात्र हजिये ॥ ७ ॥

अग्ने अक्षिरः शतन्ते सन्वायुतः सहस्रन्त
उपायुतः । अधा पोपस्य पोषेण पुनन्तो नष्ट-
माकृधि पुनन्तो रयिमाकृधि ॥ ८ ॥

इसका वरसमी ऋ०, आपी वि० छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ—
(अक्षिरः, अग्ने, ते, आयुतः, शतम्, ते, उपायुतः, सहस्रं, सन्तु,
अध, पोपस्य, पोषेण, नः, नष्टं, पुनः, आकृधि, पुनः, नः, रयिम्,

आकृषि) हे श्रेष्ठ भंगवाले ! हे अग्निदेवता ! आपकी गमना-
गमन शक्ति सैकड़ों हैं, आपकी निवृत्ति शक्ति सहस्रों हैं, इस
कारण मंत्रार्थता करते हैं कि शतसंख्यक आवृत्ति शक्तियों की
समृद्धि की लक्षसंख्यादि वृद्धि द्वारा हमारे व्ययहुए धन को फिर
सबपकार सम्पादन करो, फिर भी हमारे पूर्वसम्पादित धन को
सबपकार सम्पादन करो अर्थात् आवृत्ति शक्ति के प्रभाव से हम
को असंख्य धन का अधिकारी करो और उपावृत्ति शक्ति के प्रभाव
से तृप्त पुनः प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥

पुनर्ज्जर्जा निर्वर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्जः

प्राह्यथैहसः ॥ ९ ॥

इसका वत्समी ऋ०, निवृत्तार्थी गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, ऊर्जा, पुनः, निवर्त्तस्व, इषा, आयुषा, पुनः पुनः,
अथैहसः, प्राहि) हे अग्निदेवता ! तुम क्षीरादि रस के सहित
फिर आगमन करो, अन्न, जीवन के साथ, फिर आगमन कर
आयेहुए तुम हमको फिर पापों से रक्षा करो ॥ ९ ॥

सह इष्या निर्वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।

विरवप्स्व्या धिम्ब्यत्स्परि ॥ १० ॥

इसका वत्समी ऋ०, निवृत्तार्थी गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, रद्या, सह, निवर्त्तस्व, विश्वप्स्व्या, धारया,
विश्वता, परि, पिन्वस्व) हे अग्निदेव ! घूम के सहित लौटो,
सब संसार के उपयोग योग्य वृष्टिरूप जलधारा से सम्पूर्ण जगत्
के तृण धान्य लता वृक्षों के ऊपर सिंचन करो ॥ १० ॥

आ त्वाह्वार्यमुन्तरभूध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।

विशोस्त्या सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्टमधिभ्रशत् ११

इसका ध्रुव ऋ०, आर्ष्यनु० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
हे अग्नि ! (त्वा, अह्वार्यम्, अविचाचलिः, ध्रुवः, अन्तरभूः, तिष्ठ,
सर्वाः, विशः, त्वा, वाञ्छन्तु) तुमको मैंने आहरण किया है,
अत्यन्त अवल होकर तुम स्थिरतायुक्त सखा के मध्य में स्थित

हो हमारी सम्पूर्ण प्रजा तुम्हारी इच्छा करे (राष्ट्रं, त्वत्, मा, अभिभ्रशत्) हमारा राज्य तुमसे नहीं गूँथ हो ॥ ११ ॥

उर्वृक्षमं वंरुण पाशमस्मदवाद्युमं विमंस्त्वमथ
अधाय अथा वपमादित्य व्रते तथानागसो
अदितये स्पाम ॥ १२ ॥

इसका पुनःशेष ऋ०, विराट्पार्श्वं छं०, वरुणदे० है। मंत्रार्थ (वरुण, उत्तमम्, पाशं, अस्मत् उत, आश्रयाय, अधमम्, एव मध्यमं, अथ, आदित्य, अनागसा, तव, व्रते, वपम्, अदितये, स्पाम) हे संकलपाशतापनिवारक देव ! हमारे उत्तम अंग शिर में स्थापित अपनी पाशको हम से निकालकर दूर करो तथा अधमभङ्ग पादप्रदेश में स्थित अपनी पाशको सबनकार विपश्य दूरकरो मध्यमप्रदेश में स्थित अपनी पाशको विच्छेद करो तीनों पाशके विनाश के अनन्तर हे भद्रिभिषु ! अखण्ड शक्तिमान् वरुण ! अपराध रहित, तुम्हारे कर्म में वर्तमान हम दीनतारहित अखण्ड तत्त्व के योग्य हो ॥ १२ ॥

अग्ने वृद्धन्तृपसंसूद्धर्वा अस्थातिर्जगन्वान्त-
मन्तो ज्योतिषागात् । अग्निर्भानुनाकशता
स्वंग आ जातो विभ्याः सद्मोन्यमाः ॥ १३ ॥

इसका नित ऋ०, भुरिगा० प० छं० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (वृद्ध, अग्निः, उपसाम्, अग्ने, ऊर्द्धर्वाः, अस्थात्, तमसः, निः जगन्वान, ज्योतिषा, आ-अगात्, रुपता, भानुना, स्वङ्गः जातः, विरवा, सदानि, आ, अमाः) प्रभावसे महान् अग्नि, उपःकाल के आगे ऊँचा स्थित हुआ रात्रिरूप अन्यकार से निकले दिनरूप ज्योति के संग यहाँ प्राप्त हुआ अन्यकार को दूर करता हुआ निरखनाश से शोभनशरीर वाला हुआ उत्पन्नमात्र ही संपूर्ण स्थान अर्थात् सब लोकों को सबनकार अपने तेज से पूर्ण करता हुआ ॥ १३ ॥

हृषिः शुचिपदसुरन्तरिभुसन्तोतावेष्टिपदाति -

धिर्दुरीणमत् । नृपद्वरसदृत्सदृष्योमसदृञ्जा

गोजा प्रतञ्जा अग्निजा कृतम्बुहत् ॥ १४ ॥

इस के० में २ मंत्र हैं । सबका त्रित ऋ०, छं० १-निचतृ ज०, २ दैव्युष्टिणक्, और देवता सबका अग्नि है । दशवें अध्याय के २४ वें मंत्र में इसकी व्याख्या होगई ॥ १४ ॥

सीद त्वमातुरस्या उपस्थे विश्वान्पग्ने वयु-
नानि विद्वान् । मैनान्तर्पसा मार्चिपाभिर्शो-
चीरन्तास्याः शुक्रज्योतिर्धिमाहि ॥ १५ ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराट् त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
(अग्ने, विश्वानि, वयुनानि, विद्वान्, त्वं, अस्याः, मातुः, उपस्थे,
सीद, एनाम्, तपसा, मा, अभिर्शोचीः, अर्चिपा, मा, अस्याः,
अन्तः, शुक्रज्योतिः, धिमाहि) हे अग्निदेवता ! सम्पूर्ण ज्ञान के
उपायों को जाननेवाले तুম, इस माता की समान उखा की गोद
में स्थित हो, इसको संताप से मत संतापित करना, उखा
से मत दीप्त करना, इस उखा के मध्य में निर्मल मकाश से
विशेष प्रदीप्तिमान् हो ॥ १५ ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदर्पे स्वे । तस्या-
स्त्यधहरसा तपन्जातवेदः शिवोभय ॥ १६ ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराट्नु० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
अग्ने, त्वं, रुचा, उखायाः, अन्तः, स्वे, सदर्पे, जातवेदः, त्वं,
हरसा, तपन्, तस्याः, शिवः, भय) हे अग्ने ! तুম अपनी दीप्ति
से, इस उखा के मध्य में, अपने घर में दीप्त होकर स्थित हो, हे
सबके जाननेवाले तুম ज्योति से तपतेहुए उस उखा के कन्याण
कारीं हूजिये ॥ १६ ॥

शिघो भूत्वा मर्त्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् ।

शिघाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वयोनिमिहात्तर्दः ॥ १७ ॥

इसका त्रित ऋ० विराट्नु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-
(अग्ने, त्वं, मर्त्यं, शिवः, भूत्वा, अथो, शिवः, सीद, सर्वाः, दिशः

शिवाः, इह, योनि, आसद्) हे अग्निदेवता । तुम मेरे निमित्त कल्याणकारी होकर और इसके अनन्तर सर्वात्मा से शान्तस्वरूप होकर स्थित होओ, सम्पूर्ण दिशाओं को कल्याणरूप करके इस चत्वारूप अपने स्थानमें स्थित हूँजिये ॥ १७ ॥

द्विधत्परि प्रथमर्जं अग्निस्मद्वितीयम्परि
जातवेदाः । तृतीयम्पु नृम्णा अजंमृमिन्धान
एनंजरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

इसका वत्सपी श्रु०, निचृ० त्रि० छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ (जातवेदाः, अग्निः, प्रथमम् दिवः, परिजज्ञे, द्वितीयं, अस्मत्परि) सबके ज्ञाता अग्नि, प्रथम धुनोक में सूर्यरूप से मकट हुए दूसरा जातवेदा अग्नि, हम ब्राह्मणों के सकाश से मादुर्मृत हुआ (नृ-म्णा, तृतीयं, अजंमृ, अप्सु) मजापाति ने तीसरीबार निरन्तर जलों के भीतर स्थित अग्नि को सृजन किया (स्वाधीः, एनं; इन्धानः, जरते) सुन्दर बुद्धिवाला यजमान, इस अग्निको पढ़ीत करता हुआ मकट करता है ॥ १८ ॥

विद्मा ते अग्ने मेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम
विभृता पुरुत्रा । विद्मा ते नाम परमं गुहा
यद्विद्मा तमुत्सं यत् आजगन्ध ॥ १९ ॥

इसका वत्सपी श्रु० निचृ० त्रि० छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, मेधा, त्रयाणि, ते, आविद्य, पुरुत्र, विभृता, ते, धाम, आविद्य, यत् ते, परमं, गुहा, नाम आविद्य, तं, उत्सम्, आविद्य यत्तः, आजगन्ध) हे अग्निदेव । जो पूर्व मंत्र में कहे तमिस्वरूप आदित्य अग्नि बदनानल रूप हैं, तीनों उन तुम्हारे रूपोंको हम जानते हैं और आपके सम्बन्धी गार्हपत्य आहवनीय अन्वाहार्य पवन आग्नीध्रीयादि स्थानों में तुम धारण करनेवाले के स्थानों को भी हम जानते हैं, और जो तुम्हारा अत्यन्त गुप्त मंत्र में परिगणित प्रसिद्ध नाम है उसको भी जानते हैं और उस उत्स्यन्दन जलरूप स्थानको भी जानते हैं, जिस जलरूप स्थानसे विद्युत् रूप

ते तुम से प्राप्त हुए हों ॥ १९ ॥

समुद्रे त्वां नृम्णा अप्सुस्तर्जुचक्षा ईषे दिवो

अग्निं ऊधेन् । तृतीये त्वा रजसि तस्मिन्वाध

संपासुपस्थे महिषा अवर्धेन् ॥ २० ॥

इसका वत्सपी श्रु०, निचृ० त्रि० छं० अग्निदे० है। भावार्थ—
(अग्ने, नृम्णाः, समुद्रे, ईषे, तृचक्षाः, अप्सु, अग्नाः, दिवाः,
ऊधेन्, तृतीये, रजसि, तस्मिन्वासं, त्वा, महिषाः, अपां, उपस्थे,
अवर्धेन्) हे अग्ने ! मनुष्यों के हितकारी मजापति ने समुद्र में
बड़बानल रूप से वर्तमान तुमको मदीप्त किया पढ़ते हुए पुरुषों
में स्पष्ट मंत्र के कहनेवाले मजापति ने दृष्टिरूपजनों के भीतर
विद्युतरूप से प्रकाशित किया घुलोक के उत्कृष्ट तीसरे रंजन
करने वाले, तेजोमण्डल आदित्यरूप से स्थित होते हुए तुमको
मजापति ने दीप्त किया महान् माणों ने जलों के उत्सव में स्थित
तुमको मदीप्त किया ॥ २० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयं प्रियुधौः क्षामारेरिहृद्दी

रुधः समुज्जन् । मयो जैजानो विहीमिदो अ

ख्यदारोदसी भानुना भ्रातृन्तः ॥ २१ ॥

इसकी व्याख्या ऊठे अध्याय में हो चुकी है। भावार्थ—अग्नि
देवता मेघकी समान गर्जन करते, पृथ्वी को आस्वादन करते,
औषधि वृक्षादि को अंकुरित करते शीघ्र प्रकट होकर चावापृथ्वी
में परिव्याप्त होकर प्रभावसहित देदीप्यमान होते हैं ॥ २१ ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रथीणाम् मनीषाणाम्प्रा

र्षणः सोमगोपाः । वसुः संहसो अप्सु

राज्ञो विभ्रातृग्रं उपसामिध्वानः ॥ २२ ॥

इसका वत्सपी श्रु०, निचृदा० त्रि० छं०, अग्निदे० है। भावार्थ—
(श्रीणाः, उदारः, रथीणाम्, धरुणः, मनीषाणाम्, प्रार्षणः,
सोमगोपाः, वसुः, संहसः, सूनुः, अप्सु, राज्ञाः, उपसाम्, अग्ने,
इधानः, विभ्राति) गौ बौदे आदि सस्पृशिका अतिशय देनेवाला

धनोंका धारण करनेवाला, मनके अभिलाषोंका प्राप्त करानेवाला यजमान के किये सोमयाग का रक्षक सबका निवासहेतु मन्यत के वेगरूप बल से प्रकट होने से पुत्ररूप जल में स्थित बहुरूप से राजा प्रभात के प्रथम आदित्यरूप से दीप्यमान अग्नि विशेष कर प्रकाशित होता है कारण कि प्रभातकाल में अग्नि होमादि से प्रकट होता है ॥ २२ ॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भआरोदसी अपृणा-
जयमानः । वीदुषिदद्रिमभिनत्परायज्यना
यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

इसका वत्समी ऋ०, आर्ची नि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ यह अग्नि (विश्वस्य केतुः भुवनस्य, जायमानः, आरोदसी, आ, अपृणात्) सम्पूर्ण जगत् का विज्ञानस्वरूप आत्माग्नि, सब प्राणिमानों के अन्तरमें वायु आत्मा से प्रकट होने वाला धावापृथिवी को सब प्रकार तेजसे पूर्ण करता है (परायन, वीदुष, धित्, अद्रि, अभिनत्) चन्द्ररूप से सब ओर गमन करता अतिदृढ़ भी, मेघको विदीर्ण करता है अर्थात् जो प्रतिदिन उदित होकर अतिदृढ़ पर्वतका भी रन्ध्रभेद कर भूलोक से द्युलोक पर्यन्त को अपनी वयोति से पूर्णकरता है (पञ्चनाः अग्नि, आ, अजयन्त) मनुष्यगण उस अग्नि का सबप्रकार यजन करते हैं २३

वृशिक् पावको अरतिः अमेघा मर्येष्वग्नि-
भृतो निधायि । इयसि धूममरुपम्भरिभृदु-
रुक्लेण शोचिषा धामिनेक्षन् ॥ २४ ॥

इसका वत्समी ऋ०, निचृ० त्रि० जं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (वृशिक्, पावकः, अरतिः अमेघाः अमृतः, अग्निः, मर्येषु, निधायि, अरुपम्, धूमम्, सदियसि, भरिभ्रत, रुक्लेण, शोचिषा, धाम्, इनेक्षन्) लोकों का काम्य कान्तिमान्, शोधक, दुष्टों से प्रीतिरहित श्रेष्ठ बुद्धिमान्, मरणधर्मरहित अग्नि मरणधर्म मनुष्यों में देवताओं द्वारा स्थापन किया गया, उपद्रवरहित धूम

को दृष्टि के निमित्त आकाश में प्राप्त करता है, जगत् को धारण करता हुआ निर्मल प्रभावयुक्त कान्तिसे शुलोक को व्याप्त किया १४

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यथौ दुर्मर्ममायुः श्रिये
रुचानः । अग्निरमृतो अभयद्वयोभिर्यदेन-
न्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १३ के मंत्र १ में हो चुकी है ॥ २५ ॥

यस्ते अथ कुण्वद्भद्र शोचेषूपन्देव धृतवन्तमग्ने ।
प्र तन्नय प्रतरं वस्यो अकृष्टीति सुमनन्देवभक्तं
य्यविष्ठ ॥ २६ ॥

इसका वत्सपी ऋ० विराडा० त्रि० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—
(भद्रशोचि, देव, अग्ने, अथ, यः, ते, धृतवन्तः, अपूर्व, कृष्ण, यविष्ठ, तं, प्रतरम्, वस्यः, प्रणयः, देवभक्तम्, सुमनः, आमे) हे कल्याणदीप्ति । हे दिव्यगुणसंयुक्त अग्ने ! इस समय आज प्रति-
पदा में जो यज्ञमान तुम्हारे निमित्त धृतसिक्त पुरोडाशको करता है, हे अतिपुत्र ! उस यज्ञमानको अतिश्रेष्ठ स्थान दो देवताओंके भोगयोग्य सुख सब प्रकारसे प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥

आ तम्भज सौ अयमेत्वंग्न उक्थ वक्थ आभज
शस्यमाने । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्ज-
तेन । भिनदुदुर्जनित्वैः ॥ २७ ॥

इसका वत्सपी ऋ० विराडा० त्रि० छं० अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, तम्, सौ अथ वसेषु, आभज, उक्थे, वक्थे, शस्यमाने आभज, सूर्ये, प्रियः, अग्ना, प्रियः, भवाति, आतेन, वज्रिनदत्त, जनित्वैः, उद्) हे अग्ने ! तूसे यज्ञमानको कीर्ति बढ़ानेवाले यज्ञ कर्म में सर्वप्रकार सेवन करो, गति उक्थकाण्ड में स्तोत्र शलादि द्वारा सम्मन्न कर तुम उसको अपना प्रीतिपात्र करो, और सूर्यका प्रियपात्र करो; अग्निका प्रिय ही उत्पन्नहुए पुनसे दृष्टिको प्राप्त हो २७

त्वामग्ने यज्ञमाना अनु यन्विश्वं वसुं दधिरे,
वाट्याणि । त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजन्ते

मन्तमुशिजो विश्वः ॥ २८ ॥

इसका वरसमी अ०, विराडापी नि० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, यजमानः, त्वां, अनुचून्, वाय्मीणि, विश्वा, वसु
दधिरे, स्वया, सह, दधिणं, इच्छमामाः, उशिजः, गोमन्तं, मजं,
विश्वः) हे अग्नि देवता ! यजमानः तुम्हारी सेवा में वर्तमान
हुए, दिग्मं वरणीयं सम्पूर्ण धनधान्य गोहिरण्यादि ऐश्वर्य प्राप्त
करते हैं, तुम्हारे साथ यज्ञफलको तुम्हारी सेवा करने से इच्छा
करते हुए बुद्धिमान् ज्ञानकर्मसमुच्चयकारी जनों में रविमण्डलके
मध्यमें देवपान मार्गको सेवन किया ॥ २८ ॥

अस्ताविष्मिन्नेराधसुषोषो वैश्वानरः ऋषिभिः

सोमगोपाः अद्रेपे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त

रूपिमस्मै सुवीरम् ॥ २९ ॥

इसका वरसमी अ०, विराडा० नि० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अस्तावि, सुषोषः, वैश्वानरः, सोमगोपाः, अग्निः,
ऋषिभिः, अस्तावि, अद्रेपे, द्यावापृथिवी, हुवेम, देवाः, अस्मे,
सुवीरम्, रूपिम्, धत्त) मनुष्यों को सुन्दर सुख देनेवाला, जठ-
राग्निरूप से सबका हितकारी, सोमरक्षक अग्निदेवता, ऋषियों
द्वारा स्तुति किया गया, द्वेपरहित, भूमि और पुलोक के अधिष्ठात्री
देवता को आह्वान करते हैं, हे देवताओं ! हमारे निमित्त वीरपुत्र
सुन्दर ऐश्वर्य को स्थापन करो ॥ २९ ॥

समिधाग्निन्दुबस्थत धृतैर्वाधयतातिथिम् ।

अस्मिन्हुव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

इसकी व्याख्या १ अ० १ क० में होगई है ॥ ३० ॥

खंडु त्वा विश्वेदेवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।

स नो भव शिवस्त्वथ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

इसका तापस अ०, विराडनु० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, विश्वे, देवाः, च, चित्तिभिः, उद्भरन्तु, सः, सुप्रतीकः,
विभावसुः, त्वं, नः, शिवः, भव) हे अग्ने ! सम्पूर्ण गायक

देवता हो उद्यम में प्रवीण बुद्धि की वृत्तियों के द्वारा तुमको ऊँची धारण करें वह ऊर्ध्वरूप सुन्दर मुखवाले दीप्तिरूप धनवाले तुम हमारे कल्याणकारक होओ ॥ ३१ ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवेभिर्ऋषिर्वाभिष्ट्वम्
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिंसीस्तन्या मजाः ॥ ३२ ॥
इसका तापस ऋ० विराटनु० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ--
(अग्ने, शिवेभिः, ऋषिभिः, इत्, ज्योतिष्मान्, त्वं, मयाहि, बृहद्भिः, भानुभिः, भासन्, तन्या, मजाः, माहिंसीः) हे अग्ने ! मंगलयुक्त उवालाओं करके ही प्रकाशवान् तुम गमन करो बड़ी किरणों से प्रकाशवान् शरीर से मजा पुत्रादि को किसी प्रकार पहिा मत दो ॥ ३२ ॥

अक्रन्ददृग्निस्तनयंस्त्रिष्वधौ सामा रोहिहृद्दीरुधः
समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदा-
रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥
इस मं० की व्याख्या इसी अध्याय के ६ मंत्रमें होगई ॥ ३३ ॥
प्रप्रायमग्निर्भस्वतस्य शृण्वे विपत्सूर्यो न रोचते
बृहद्भिः । अमि यः पूरुम्पृतनासु तस्यौ दीदाय
दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० है, आर्यो मि० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ;
(अयं, अग्निः, भरतस्य, प्रशृण्वे, सूर्यः, नः, बृहद्भिः, मरोचते यः पृतनासु, पूरुम्, अमितस्यौ, दैव्यः, अतिथिः, नः, शिवः दीदाय) यह अग्नि हवि धारण करनेवाले यजमान के आह्वानको सुनता है। सूर्यकी समान बड़ा दीप्तिमान् होता हुआ अत्यन्त प्रकाशवान् होता है, जो संग्रामों में राक्षसके सन्मुख स्थित होता है देहसम्बन्धी अतिथि हमारा मंगलरूप अग्नि दीप्तिमान् होता है ॥ ३४ ॥

आपो देवीः प्रतिगृम्णीतु भस्मैतत्स्योने कृणु-
द्भवथ सुरमा उ लोके तस्मै नमन्ताञ्जनयः
सुपत्नीर्मर्तिव पुत्रस्त्रिमृताप्स्येनत् ॥ ३५ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, आपीं त्रि० छं० आप देवता है । मंत्रार्थ-
हे (देवीः, आपः, भस्म, प्रतिगृह्णीत, स्थोने, सुरमौ, लोके, च,
एतत्, कृणुध्वम्, सुपत्नीः, जनयः, तस्मै, नमन्ताम्, एतत्, अप्सु,
विधृत, माता, पुत्रं इव) दीप्यमान ! जलों ! तुम भस्म को ग्रहण
करो, सुखकारक पुष्प धूआदि से सुन्दर गन्धयुक्त स्थान में ही
इसको धारण करो, जिनके सुन्दर पति वरुण हैं वह वृक्षादि को
उत्पन्न कर अग्नि की प्रकट करनेवालों हैं, उस भस्मरूप अग्नि
के निमिश नवो । हे जलों ! इस भस्म को जलों में धारण करो
जैसे कि मैया पुत्र को धारण करती है ॥ ३६ ॥

अस्थंगे सधिप्रयसौपधीरनुरुध्यसे । गर्भे
सज्जापसे पुनः ॥ ३६ ॥

इसका विरूप ऋ०, निघृ० गा०, छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ- (अग्ने, अप्सु, तव, सधिः, सः, ओषधीः, अनुरुध्यसे,
गर्भे, सज्ज, पुनः, जायसे) हे यस्मीभूत अग्ने ! जलों में तुम्हारा
स्थान है, वही भस्म जल से प्रकट होकर यवादि रूप को प्राप्त
होते हो, अरणी के मध्य में होते हुए फिर प्रकट होते हो ॥ ३६ ॥

गर्भो अस्थोपधीनाङ्गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो
विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥ ३७ ॥

इसका विरूप ऋ०, भुरिगार्प्यु०, छं०, अग्नि देवता है मंत्रार्थ-
(अग्ने, ओषधीनाम्, गर्भः, असि, वनस्पतीनाम्, गर्भः, विश्वस्य
भूतस्य, गर्भः, अपां, गर्भः, असि,) हे अग्ने ! तुम ओषधियों के
गर्भ हो, वनस्पतियों के गर्भ हो, सम्पूर्ण प्राणियों के गर्भ हो सम्पूर्ण
जलों के गर्भ हो ॥ ३७ ॥

पुसथा भस्मना योनिमपथ्यं पृथिवीर्मग्ने । सधे
सज्ज्य भानृमिष्वज्ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥
इसका विरूप ऋ०, निघृदार्प्यु०, छं०, अग्नि देवता है मंत्रार्थ-
(अग्ने, त्वं, भस्मना, योनिम्, पृथिवीं, च, अपः, मस्य, भानृभिः
सज्ज्य, ज्योतिष्मान्, पुनः, आसदः) हे अग्ने ! तुम भस्मद्वारा

कारणभूत पृथ्वीको और जलोंको प्राप्त होकर मातारूप जलोंसे सम्मिलित हो, तेजस्वी होकर फिर उत्रामें स्थित होजिये ॥ १८ ॥

पुनरुत्सासथ सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातु-

र्यथोपस्थेन्तरस्याथ शिवतमः ॥ १९ ॥

इसका विरूप ऋ० निचृदनु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-
(अग्ने, शिवतमः, अपः, च, पृथ्वीम्, सदनं, आसथ, पुनः अस्यां
अन्तः, शेषे, यथा, मातुः उपस्थे) हे अग्ने ! अति कल्याणरूप
तुम जल और पृथ्वीके स्नान को प्राप्त होकर फिर इस उत्रा के
मध्यमें शयन करते हो जैसे कि माताकी गोदीमें बालक सोता है ३९

पुनरूर्जा निर्वर्त्तस्वः पुनरग्न इवाधुपा । पुनर्नः

॥ प्राश्न्यथसः ॥ ४० ॥

सहस्रया निर्वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्व-

स्नया विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥

इन (४० । ४१ः) दोनोंकी व्याख्या हो चुकी है ॥

वोधो मे अस्य वचसो यविष्ठ मध्विष्ठस्य

पभृतस्य स्वभावः । पीयति त्वो अनु त्वो गृ-

णाति वन्दारुष्टे तन्व वन्दे अग्ने । ४२ ॥

इसका दीर्घतमा ऋपि है, विराढार्थी त्रि० छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ- (स्वभावः, यविष्ठ, अग्ने, मे, अस्य, मध्विष्ठस्य, पभृतस्य,
वचसः, बोधः, त्वः, पीयति, त्वः, अनुगृणाति, वन्दारुः, ते,
तन्वम्, वन्दे) हे धनवान् । श्रेष्ठ युवारूप अग्ने, मेरे इस महान्
बारम्बार कथन करने से श्रवणपथ को प्राप्त हुए वचन के अभिप्राय
को जानो, कोई तुम्हारी निन्दा करे कोई एक पुरुष तुम्हारी स्तुति
करे यह मनुष्यों का स्वभाव है, परन्तु स्तुति करनेके स्वभाववाला
मैं तुम्हारे शरीर को प्रणाम करता हूँ ॥ ४२ ॥

स बोधि सूरिर्मधवा वसुपते वसुदावन् । युयो-

ज्यसद्वेपाथसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका सोमाहुति ऋ० है । छं०-१ नि-

चृदार्पा गा०, २ याजुष्युष्णिक्, और देवता सबका अग्नि है ।
मंत्रार्थ—(वसुपते, वसुदावन्, सः, क्षरिः, मघवा, वोधि, द्वेषांसि,
अस्मत्तः, युयोधि, विश्वकर्मणे, स्वाहा) हे धनपते ! धनके दाता
अग्ने ! वह तुम सबके ज्ञाता धनयुक्त हो हमारे अभिप्राय को जानो
आप सन्तुष्ट होकर दुर्भागों को हमसे पृथक् करो, जगत् की सृष्टि-
स्थिति आदि कर्म करनेवाले तुम्हारे निमित्त अग्नि में आहुत
यह हवि मलीमकार गृहीत हो ॥ ४३ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धताम्पुनर्व-

आणो वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वन्तन्वं वर्धयस्व

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० स्वरादार्पा त्रिषुष्य अन्द् अग्निदेवता है
मंत्रार्थ—हे अग्ने ! (वसुनीथ, आदित्याः, रुद्राः, वसवः, त्वा,
पुनः, समिन्धताम्, धक्षाणः, यज्ञैः, पुनः, त्वं, घृतेन, तन्वं, वर्ध-
यस्व, यजमानस्य कामाः, सत्याः, सन्तु) धन के निमित्त स्तुति
वाले हे देव ! आदित्यगण, रुद्रगण, वसुगण तुमको फिर मदीस
करें, हे धननेता ! ऋतिव्ययजमान यह करके फिर तुमको मदीस
करें, तुम घृत के द्वारा शरीरको बढ़ाओ तुम्हारे हृदिको प्राप्त होने
में यजमानके मनोरथ सफल हो ॥ ४४ ॥

अपेतु वीतु वि चं सर्पता येन स्थ पुराणा ये च

नृतनाः । अदायमो वसानमृथिव्या अक्र-

न्निमम्पितरां लोकमस्मै ॥ ४५ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० निचृदार्पा त्रि० छं०, द्विज्ञोक्त देवता
है । मंत्रार्थ—हे यमभृत्यगण ! (ये, पुराणाः, च, ये, नृतनाः,
अत्रस्य, अता, अपेत, वीत, च, विसर्पत, यमः, पृथिव्याः, अव-
सानं, अदाय, पितरः, इमं, लोकं, अस्मै, अक्रन्) जो पुराने और
नये तुम इस स्थानमें हो, वह तुम यहांसे दूर चलेजाओ अति
दूरही संघात त्यागकर अनेक स्थानोंमें चलेजाओ, यमने पृथ्वीका
अवकाश इस यजमानके निमित्त दिखाई, पितरोंने इस लोकको

इस यज्ञमानके निमित्त करिग किया है ॥ ४५ ॥

संज्ञानमसि कामधरणम्मपि ते कामधरणं भू-
यात् । अग्नेर्भस्माऽग्नौः पुरीषमसि चितस्य
परिचितं ऊर्ध्वचितः अयदध्यम् ॥ ४६ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका सोमाहुति ऋ० है । छं० १ सा०
पं० २ आ० पं० ३ आहु० णि० और देवता १ उर २ सिकता,
३ परिश्रित है । मंत्रार्थ-हे उपास्वरूप ! तुम (संज्ञानम्, असि,
कामधरणं, ते, कामधरणं, मपि, भूयात्) पशुओं के सम्पू-
र्ण ज्ञान के साधन हो, तथा यज्ञद्वारा मनोऽथ सप्तादन करनेवाले
हो, इस कारण तुम से मर्त्यता करते हैं कि तुम्हारी मनोऽथ स-
प्तादनकी सामर्थ्य मुझ यज्ञमानमें हो । हे सिकता ! तुम (अग्ने,
भस्म, असि, अग्नेः, पुरीषम्) अग्निकी भस्म हो, अग्निके पूरण
करने वाले हो । हे (शर्कराः, चितः, परिचितः, स्य, अयदध्यम्)
परिश्रित गण ! तुम भूमिपर डाले हुए सब ओर स्थापित हो, ऊर्ध्व
में स्थापित तुम इस गार्हपत्य स्थानको सेवन करो ॥ ४६ ॥

अयधे सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः । तुतन्दधे
जठरे वायुशानः । महस्त्रियं याजुमत्यन्न ससिधे
समुवानस्तूपसे जातवेदः ॥ ४७ ॥

इसका विरचामित्र ऋ० है, आर्यो नि० छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ (सः, अयं, अग्निः, यस्मिन्, वावशानः, इन्द्रः, तुतम्,
सहस्त्रियम्, वाजं, अत्यम्, न, ससि, सोमं, जठरे, धत्ते, जातवेदः,
समुवान्, सन्, स्तूपसे) वह यह अग्नि है, जिस अग्निचयन में
इच्छा करने वाले इन्द्रने, अभिषव किए सदस्यों के योग्य अन्न की
समान भक्षण करते में मद न करनेवाले दर्पकारक वृत्तिकारक
सोमको उदरमें धारण किया, हे अग्नि ! तुमभी हवियों को भक्षण
करते हुए अतिवृत्त यज्ञमानों से स्तुतिको प्राप्त होते हो ॥ ४७ ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्धः पृथिव्यां यदोषर्वाण्य-
स्त्वायं जगत् । येनान्तरिक्षमुव्यति तन्वत् स्वेपः स

भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, मुरिगार्षी पं० छं० अग्नि दे० है ।
 मंत्रार्थ—(आयजत्रं, अग्ने, ते, यत्, दिवि, वर्चः, यत्, पृथिव्या,
 ओषधीषु, अप्सु, येन, चरु, अन्तरिक्षं, आततन्य, सः, स्वेपः,
 अर्णवः, नृचक्षाः, भानुः) भर्षादासे यजनयोग्य है अग्निदेव ।
 तुम्हारी जो ध्रुलोक में सूर्यरूप ज्योति है जो भूमि में अग्निरूप
 ओषधियों में भास्कर रूप, जलो में मयारूप ज्योति है, जिसने
 विद्युत् रूपसे बड़े अन्तरिक्ष लोकको व्याप्त किया है वह विश्व
 प्रकाशक सब ओर गमनशील मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मका द्रष्टा,
 सूर्यरूप दीप्ति है ऐसे तुम महा नारायणस्वरूप हो ॥ ४८ ॥

अग्ने द्वियो अर्णमच्छा जिगास्पच्छा देवाथ
 ऊचिषे विष्ण्या घोषा रोचने परस्तात्सूर्यस्य
 याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋषि है, मुरिगार्षी पं० छं० अग्नि देवता
 है । मंत्रार्थ—(अग्ने, दिवः, अर्णम्, अच्छ, जिगासि) है अग्नि
 देवता । ध्रुलोक सम्बन्धी जलको अभिमुखसे प्राप्त करते हो (ये,
 विष्ण्याः, ऊचिषे, देवान्, अच्छ. आ रोचने, सूर्यस्य, परस्तात्,
 याः, आपः, च, अवस्तात्, याः, उपतिष्ठन्ते) जो बुद्धि इन्द्रियों के
 मेरक प्राण कहते हैं उन प्राणरूप देवताओं के प्रति, सन्मुख
 गमन करते हो, दीप्तिरूप मण्डल में वर्तमान सूर्यके ऊपर जो जल
 हैं और नीचे जो जल हैं उन सबके मध्यमें तुम विराजमान हो
 आशय यह कि तुमही इन रूपों को धारण करते हो ॥ ४९ ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।

जुपन्तां यज्ञमद्रुहो न मीषा इषां महीः ॥ ५० ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, आर्षी पं० छं० है, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—पुरीष्यासः, प्रावणेभिः, सजोषसः, अद्रुहः, अग्नयः,
 यज्ञम्, अनमीषाः, महीः, इषां, जुपन्ताम्) पशुओं के हितकारी
 मनों से प्रीतिपुक्त हिसा न करनेवाले अग्नि इस इष्टकारूप यज्ञ

को धुवा सृणा निर्वर्तक बहुत अन्नयुक्त को सेवन करो ॥ ५० ॥

इडागने पुरुदथसंथ सनिहोः शश्वत्तमथ हव-
मानाय साध । स्यान्नः सनुस्तनयो विजावाग्ने
सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, भुरिगार्थी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, पुरुदंसम्, इडाम्, शश्वत्तमम्, गोः, सनिम्,
हवमानाय, साध, नः, विजावा, तनयः, सनुः, स्यात्, अग्ने,
सा, ते, सुमतिः, अस्मे, भूतु) हे अग्ने ! बहुत कर्मों के साधनरूप
अन्न को, निरन्तर विद्यमान पशुसम्बन्धी दान को अर्थात् दूध
दही घृतादि को हवन करनेवाले यजमान के निमित्त सम्पादन
करो अर्थात् दो, हमारे मन्त्रावान् औरस पुत्र हो, हे अग्ने ! वह
सुम्हारी अन्न गौ पुनदान के विषय की सुन्दर बुद्धि हममें हो ॥ ५१ ॥

अयन्ते योनिं ऋत्विग्यो यतो जातो अरो यथाः ।

तज्ज्ञानन्मग्न आरोहाथा नो यर्द्धया इयिम् ॥ ५२ ॥

इस मंत्र की व्याख्या अ० ३ क० १४ में होगई ॥ ५२ ॥

चिदसि तथा देवतयाङ्गिरस्वन् धुवा सीद ।

परिचिदसि तथा देवतयाङ्गिरस्वद् धुवा सीद ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० है स्वरादनुष्टुप् छं० है, अग्नि देवता है ।

मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (चित्, असि, तथा, देवतया, अङ्गिरस्वत्
धवा सीद) स्थापित की हुई हो उस मसिद्ध वाक् रूप देवता द्वारा
स्थापित होकर अंगिरा की समान दृढ़ता पूर्वक इस स्थान में स्थित
होओ हे इष्टके ! (परिचित्, असि, तथा, देवतया अङ्गिरस्वत्, धुवा
सीद) सब ओर से भोगों को चयन करनेवाली हो उस मसिद्ध
वाक् रूप देवता द्वारा सम्पादित हुई, अङ्गिरा की समान दीर्घ
काल तक निश्चल इस स्थान में स्थित होओ ॥ ५३ ॥

लोकस्पृणान्द्रिद्रस्पृणाधो सीद धुवा त्वम् । इ-

न्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीपदन् ॥ ५४ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, विराडनु० छं०, अग्नि दे० है । हे

इष्टके ! (त्वम्, लोकम्, पूण, छिद्रम्, पूण, अयो, ध्रुवा, सीद) तुम गार्हपत्य चयन स्थानमें पूर्व इष्टकाओंसे अनाक्रान्त होकर स्थानको पूर्णकरो और दृढ़ होकर स्थितहोओ (इन्द्राग्नी, वृहस्पतिः, अस्मिन्, योनौ, त्वा, आसीपदन्) इन्द्र देवता अग्नि देवता और वृहस्पति देवताने इस स्थानमें तुमको स्थापन किया है ५४

ता अस्थ सुदेवो हसः सोमं धी श्रीणन्ति प्रश्रयः ।

जन्मन्तेषानां विशांश्चिद्धारोचने दिवः ॥ ५५ ॥

इसका मियमेधा ऋ०, बिराडनु० छं०, आप दे० है । मंत्रार्थ (दिवः, प्रश्रयः, सुदेवो हसः, ताः, देवानां, जन्मन्, भिषु, आरोचने, अस्थ, विशाः, सोमं, आश्रीणन्ति) पुलोक सम्बन्धी अनेक प्रकार के जल और अन्नसे संयुक्त वे प्रसिद्ध जल देवताओं के जन्मवाले सम्बत्सरमें तीन संवनों के मध्यमें इस यज्ञ सम्बन्धी सोमको सम्पूर्ण प्रकार से परिपक्व करते हैं ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वा अवीष्टधन्तसमुद्रव्यचसद्गिरा ।

रथीतमध रथीनां वाजानां सत्पतिम्पतिम् ॥ ५६ ॥

इसका सुतजेत् मधुच्छन्द ऋ०, नि० नु० छं० इन्द्र देवता है ।

मंत्रार्थ—(विश्वाः, गिरा, समुद्रव्यचसम्, रथीनाम्, रथीतमम्, वाजिनाम्, पति, सत्पति, इन्द्रम्, अवीष्टधन्) सम्पूर्ण ऋक् यजुः सामरूप स्तुति, समुद्रवत् व्यापक सब रथियों के मध्य में अत्यंत रथी अश्वों के पति निजधर्म में रहनेवालों के पालक इन्द्र को वर्णित करती हैं ॥ ५६ ॥

समितं संकल्पेष्टां सम्प्रियौ रोचिष्णू सुम-

नस्यमानौ । इपमूर्जं अभिसंघसानौ ॥ ५७ ॥

इसका मधुच्छन्द ऋ०, भुरिगुष्णिक् छं० अग्नि देवता है ।

मंत्रार्थ—(सम्प्रियौ, रोचिष्णू, सुमनस्यमानौ, इपं, ऊर्जम्, अभिसंघसानौ, समितम्, संकल्पेष्टाम्) समान प्रीतिवाले कान्तिमान् परस्पर भेट चित्तवाले हो उठा । और चित्तिके अग्निदेवताओं अन्य घृतादि रसको भोग करते हुए अर्थात् हमारे दिये हुए अन्न

और रस को स्वीकार करते हुए एक मन होकर मिलो एक संकल्प होओ ॥ ५७ ॥

सं वाम्मनाथेसि संमता समुचितान्पाकरम् ।

अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वन्न इषमूर्ज्जं यज-

मानाय धेहि ॥ ५८ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० मुरिगुपरिष्ठा वृहती छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—हे दोनों आगियों ! (वाम्, मनांसि, समाकरम्, मता, सम्, चित्तानि, सम्, उ, पुरीष्य, अग्ने, त्वं, नः अधिपाः, भव, इषम्, ऊर्ज्जम्, यजमानाय, धेहि) तुम्हारे मन सब प्रकार संगत करता हूँ, मत संगत करता हूँ, मनोगत संस्कारों को संगत करता हूँ, और हे पशुसम्बन्धी गृहस्थकार्यसाधक अग्निदेव ! तुम हमारे अधिपति हो अन्न बल यजमानके निमित्त नदानकरो ५८

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिमाध आसि ।

शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ ५९ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० मुरिगुष्टिक् छं०, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने, त्वं, पुरीष्यः, रयिमान्, पुष्टिमान्, आसि, सर्वाः दिशः, शिवाः, कृत्वा, इह, स्वं, योनिम्, आसदः) हे अग्नि देवता तुम पशुसम्बन्धी पशुहितकारक धनवान् पुष्टियुक्त हो, तुम्हारे मसाद से हम पुष्टि और ऐश्वर्यलाभ करें, सब दिशाएँ कल्पण कारक करके यहाँ अपने स्थानमें स्थितहो ॥ ५९ ॥

भयंतन्नः समनसौ सचेतसा वरेपसौ । मा

यज्ञधेहिधिसिष्ठ मा यज्ञपतिज्ञातवेदसौ शिवा

भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आर्षोषं छं० अग्नि देवता है । इस मंत्रकी व्याख्या ५ अध्यायके तीसरे मंत्रमें होचुकी है ॥ ६० ॥

मातेयं पुत्रस्पृष्टिषी पुरीष्यमग्निधे स्वे योना-

चभारुखा । तां विश्वेदेवैर्कृतुभिः संविद्वानः

प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥ ६१ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आर्षी त्रि० छं० उखा देवता है मंत्रार्थ (पृथिवी, उखा, पुरीष्यम्, अग्निं, स्वे, योनी, अषाः, माता, पुत्रं, इव, विश्वैः देवैः, ऋतुभिः, संविदानः, विश्वकर्मा, प्रजापतिः ताम्, विपुञ्चतु) भूमिरूप भूतिकामिमित उखा पशुओंके हित-कारी अग्निको अपने गर्भस्थानमें धारण करती हुई, मैया पुत्रको जैसे धारण करती है, सम्पूर्ण देवताओं और ऋतुओं द्वारा एक मतको प्राप्त हुए, अहो ! उखाने महत् कर्म किया इसप्रकार संवाद करते हुए सृष्टि के निर्माता प्रजापति उस उखाको शिव्य पाश से विमुक्त करो ॥ ६१ ॥

असुन्वन्तमयं जमानमिच्छ स्तेनस्पेत्यामन्विहि ।
तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तं हृत्पानमो
देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० नि० नि० निर्ऋति देवता है, मन्त्रार्थ है निर्ऋते । [अलहमी] (असुन्वन्तम्, अयं जमानम्, इच्छ, स्तेनस्य, तस्करस्य, इत्याम्, अन्विहि, अस्मत्, अन्यं, इच्छ, सा, ते, इत्या, देवि, तुभ्यम्, नमः, अस्तु) सोमयाग न करने वाले हवि आदि से किसीप्रकार वैदिक कर्म न करनेवाले पुरुषों की संगति की इच्छाकर चोरकी प्रकट चोरकी गतिको प्राप्त हो हमसे अन्य पुरुषकी इच्छाकर वही दुष्टशिक्षा तेरी गति है । हे देवी ! तेरे निमित्त नमस्कार हो ॥ ६२ ॥

नमः सुते निर्ऋते तिग्मतेजोयस्मयं विचृता
बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे
नाके अधिरोहयैनम् ॥ ६३ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ०, सुरि० पं० छं० निर्ऋति देवता है । मन्त्रार्थ—(तिग्मतेजा, निर्ऋते, ते, सु, नमः, अयस्मयम्, एतम्, बन्धनम्, अधिवृत्त, यमेन, यम्या, संविदाना, एनम्, उत्तमे, नाके, अधिरोहय) हे तीक्ष्ण तेजवाले ! घोर क्रूररूप निर्ऋते, तुम्हारे निमित्त निरन्तर नमस्कार है, लोहपाशकी समान दंड,

इस जन्म मरणकूप अज्ञानको छेदन करो, और अग्नि पृथ्वीके साथ एक मतको प्राप्त होकर, इस यजमानको उत्कृष्ट स्वर्गलोक में स्थापन करो ॥ ६३ ॥

यस्यास्ते घोर आसृजुहोम्येषाम्यन्धानाम्ब
सर्जनाय । यान्त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते
निर्ऋतिरन्त्राहपरिवेद विरचतः ॥ ६४ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आपो मि० छं० निर्ऋति देवता है ।
मन्त्रार्थ—(घोर, पपा, बन्धानाम्, अयसर्जनाय, यस्याः, ते, आसृजुहोमि, जनः, या, त्वा, भूमिः, इति, प्रमन्दते, अहं, त्वा, वि-
श्वतः, निर्ऋतिम्, परिवेद) हे विषमशील क्रूररूपा, निर्ऋति देवी
इस यजमानों के स्वर्गप्राप्ति के मतिबन्धक पापों को नाशके अर्थ उस
तुम्हारे मुखमें आहुति की समान इष्टका को धारण करता हूं,
मनुष्यमात्र जिस तुम्हको भूमि है, इस प्रकार शास्त्राभिष्ट होने से
स्तुति करते हैं, मैं तो शास्त्रज्ञानसे तुम्हको सब प्रकार निर्ऋति देवी
ही जानता हूं ॥ ६४ ॥

यन्ते देवी निर्ऋतिरायुधन्ध पाशं प्रीयास्यवि-
वृत्यम् । तन्ते विष्णाम्पायुषो न मद्यावधैत-

पितुमांति प्रसृतः । नमो भूत्यै येदञ्चकारं ॥ ६५ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका मधुच्छन्दा ऋ० छं० १ निष्टु०
पं० १ एकप० वि० और देवता १ यजमान २ भूति है । मन्त्रार्थ
हे यजमान ! (निर्ऋतिः देवी, ते, प्रीयासु, यम्, अविचृत्यम्, पाशं,
आवधन्ध, तं, ते, आयुषः, मद्यात्, न, विष्णामि) निर्ऋति देवी
ने तुम्हारी प्रीतिमें जो दृढ़ छेदनके अयोग्य पाशको बाँधा था उस
को तुम्हारी अग्निके मध्य इसी समय दूर करता हूं (अय प्रसृतः
एतम्, पितुम्, अद्धि) पाशाविमोचन के अनन्तर निर्ऋति की
अनुज्ञा को प्राप्त हो, इस रक्षा करनेवाले अन्नको हे यजमान !
भक्षण करो (या, इदं, चकार, भूत्यै, नमः) जिस देवीके प्रसाद
से यह समस्त क्रिया सम्पन्न हुई उस ऐश्वर्यरूप देवी के निमित्त

नमस्कार है ॥ ६५ ॥

निवेशनः सङ्गमनो वसन्तां विद्वां रूपाभिचष्टे
शचीभिः । देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न
तस्यौ समरे पथीनाम् ॥ ६५ ॥

इसका विश्वावसु ऋ०, वि० त्रि० छं०, अग्निदेवता है ।
मंत्रार्थ—(निवेशनः, सङ्गमनः, सत्यधर्माः, शचीभिः,
विश्वा, रूपा, अभिचष्टे, सवितादेवा, इव, पथीनां, समरे, तस्यौ,
इन्द्रो न) स्वयम्भुवने यजमानका स्थापक धर्मोका मापक अवश्य होने
वाले फल से युक्त अग्निहोनादि लक्षण से युक्त अग्नि अपने
आने कर्मों से संयुक्त सम्पूर्ण आहवनीय अतिप्रणीता आग्नीध्र
धिण्यादिकर्षों को प्रकाश करता है सविता देवताकी समान प्रका-
शक होकर शत्रुओं के साथ युद्ध में स्थित हुआ जिसप्रकार इन्द्र
युद्ध में स्थित होता है ॥ ६५ ॥

सीरां युज्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।

धीरां देवेषु सुम्नया ॥ ६६ ॥

इसका सोमपुत्र बुध ऋ०, गायत्री छं०, सीर देवता है । मंत्रार्थ
(धीराः, कवयाः, देवेषु, सुम्नया, सीराः, युज्जन्ति, युगा, पृथक्
वितन्वते) बुद्धिमान् अग्नि विद्या में कुशल कृपिकर्म के मर्म को
जाननेवाले विद्वान् देवशोक में सुख प्राप्त करने को हलों का बैलों
से योग करते हैं, युगोंको भिन्न २ विस्तार करते हैं ॥ ६६ ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वंकृते योनीं वपते ह

वीजम् । गिरा च श्रुष्टिः समरा असन्नो नेदीय

इत्सृणुः पक्वमेपात् ॥ ६७ ॥

इस का सोमपुत्र बुध ऋषि, विराडापी० त्रि० छं०, सीर दे०
है । मंत्रार्थ—हे कर्पकण्ठों ! (सीराः, युनक्त, युगा, वितनुध्व-
ंकृते, इह, योनी, गिरा, च, वीजम्, वपते, श्रुष्टिः, समरा, असत्,
पक्वम् इत् सृणुः नः नेदीयः इपात्) हलोंको जोड़ो हलके
जुप शम्पा और यौकृत आदि से विस्तार करो कर्पणसे संस्कार

करने पर इस स्थान में “या ओषधीः पूर्वा० १९ क०” यह मंत्रपाठ करके और चमस द्वारा संस्कृत ग्रीहि आदि बीजों को ओषधियों में डालकर ग्रीहि आदि फलादि सहित वर्चमान होकर पुष्ट हो, पके हुए धान्यको अलकाल में ही दरांती से काटकर हमारे अति-समीप परम माता करो ॥ ६८ ॥

शुनं शुफाला विकृपन्तु भूमिं शुनं कीनाशा
अभियन्तु वाहैः शुनां सीरा हविषा तोशमाना
सुपिप्पला ओषधी कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० विष्णु छन्द सीता देवता है मंत्रार्थ- (शुफालाः, भूमि, शुनम्, विकृपन्तु, कीनाशाः, वाहैः, शुनम्, अभियन्तु, शुनां सीरा, हविषा, तोषमानाः, अस्मे, ओषधीः, सुपिप्पलाः, कर्त्तन) हे सुन्दर फलवाले हलो ! तुम पृथ्वी को सुख पूर्वक जोतो, हलवाले मनुष्य वृषभादिके संग सुखपूर्वक गमन करें हे वायु आदित्य दोनों देवताओं ! जलसे भूमिको सिंचते हुए हमारी ओषधियों को सुन्दर फलवाली कर्त्तन करो ॥ ६९ ॥

घृतेन सीता मधुना समञ्ज्यतां विश्वेदेवैरनुमता
मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मा-
न्तर्सति पयसाभ्याववृत्स्व ॥ ७० ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० आर्षी मि० छं० सीता देवता है । मंत्रार्थ- (विश्वैः, देवैः, मरुद्भिः, अनुमता, सीता, मधुना घृतेन, समञ्ज्यताम्, सीते, पयसा, पिन्वानाः, पयसा, अस्मान्, अभ्याववृत्स्व) सम्पूर्ण देवतागण मरुतगणों से अंगीकार की हुई हल की फाल मधुर घृत अर्थात् अमृतमय जलसे सिंचित हो, ‘परोक्ष से कहकर गत्यक्ष कहते हैं’ । हे फाल ! ऊर्जस्वती अन्नवान् तुम पथ दही घृतादि से दिशाओं को पूर्ण करती हुई दुग्धादि से हम को सवमकार अनुकूल हो और क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण ओषधी अमृत जलसे परिपुष्ट होकर सनेह हो इसकारण तुम अमृत जल संग्रह पूर्वक हमारी ओर अनुकूल हो ॥ ७० ॥

छात्रं पवीरवत्सुशेवं सोमपितृन्कः । तदु-
द्वपति गामविम्प्रकृष्य च पीवरीं स्थावद्व-
धवाहनम् ॥ ७१ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ०, विराट् पं० छं० सीता देवता है ।
मंत्रार्थ—(तद्, पवीरवत्, सुशेवं, सोमपितृन्कः, छात्रं, प्रकृष्य
अर्चि, पीवरीम्, गां, च, प्रस्थावत्, रथवाहनम्, उद्वपति) यह
पूर्वोक्त काल संयुक्त सुखकारक यजमानके निमित्त भूमिका खोदने
वाला हल अति वेगवान् छाग स्थूल पुष्ट अंगवाली गौ और गमन
में समर्थ रथवाहक अश्वोंको प्राप्त कराता है ॥ ७१ ॥

कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रा-
श्विभ्यो पूष्णे प्रजाभ्य ओपधीभ्यः ॥ ७२ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ०, विराट्नु० छं० सीता देवता है ।
मंत्रार्थ—(कामदुघे, मित्राय, वरुणाय, इन्द्राय, अश्विभ्यो, पूष्णे,
प्रजाभ्यः, च, ओपधीभ्यः, कामम् धुक्ष्व) हे मनोरथ पूरक सीते!
मित्र वरुण इन्द्र दोनों अश्विनीकुमार पूषा प्रजाओं के भोगार्थ
और ओपधियों के निमित्त अपेक्षित भोगको सम्पादन करो ७२
विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमस-
स्पारमस्य ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० है, भुरिगा० गा० छं० वृषभ दे०
है । मंत्रार्थ—(देवयानाः, अघ्न्या विमुच्यध्वम्, अस्य, तमसः,
पारं, अगन्म, ज्योतिः, आपाम) हे देवताओं के निमित्त कर्म
करने वाले मारने के अयोग्य गोवलीवर्द आदि! जगत्की स्थिति
के हेतु कृषिको सम्पादन करो युगसे पृथक् हो तुम्हारी कृपासे
हम इस क्षयापिपासा से उत्पन्न हुए दुःखके पारको प्राप्त हुए
परमात्मारूप को प्राप्त हुए ॥ ७३ ॥

सुजूरन्तो अप्येवोभिः सुजूरुया अरुणीभिः । सु-
जोषमावशिषना दधसोभिः सुजुः सूर एतं शनः ।
सुजूर्वाश्वानर इक्ष्वा घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० ब्राह्मचनुष्टुप् छं० त्रिजोक्त दे० है ।
 मंत्रार्थ (अन्धः, अयरोभिः, सज्जः, उषा, अरणीभिः, सज्जः,
 अश्विनी दंसोभिः, सजोषसौ, सूरः, पतरोन, सज्जः, वैरवानरः,
 इक्ष्वा, घृतेन, सज्जः, स्वाहा) संपत्सर जलों का हाता अवयव
 मास अर्धमासके सहित मीतियुक्त, मातः कालके अधिष्ठात्री देवता
 उषा अरुण वर्ण वाली गौओंसे मीतियुक्त, अश्विनी कुमार चिकि-
 रसादि कर्मों से मीतियुक्त, सूर्य घोड़े से मीतियुक्त, वैरवानर
 अग्नि पृथ्वीसे घृतसे मीतियुक्त हैं इन देवताओंके निमिष
 श्रेष्ठ होम हो ॥ ७४ ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता त्वेभ्यस्त्रियुगम्पुरा ।

मनैनु बभ्रूणामिह शतन्धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

इसका भिषष्टुपि, अनुष्टुप् छं० ओषधि देवता है । मंत्रार्थ (पुरा
 याः पूर्वाः, ओषधीः, देवभ्यः, त्रियुगम्, जाताः, बभ्रूणाम्, शतं,
 च, सप्तधामानि, धामानि अहं, मनैनु) सृष्टिकी आदि में जो
 पहले ओषधी ऋतुओंके द्वारा वसन्त वर्षा और शरद् ऋतु में
 उत्पन्न हुई हैं, जगत् की उत्पत्ति पालन में समर्थ और पाकसे
 पीली हुई ओषधियोंके विशेषकर सौ सौ और मावाभ्यतः श्रीहि
 गोधूमादि सात नाम में जानता हूँ ॥ ७५ ॥

शतम्बो अम्ब धामानि सप्तसंभूत चो रुहः

आधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ ७६ ॥

इसका भिषष्टुपि है, अनुष्टुप् छं० ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
 अम्ब आवः, धामानि, शत, सप्त, वः, रुहः, सप्तसं, शतक्रत्वो,
 यूयम्, मे, इमं, अगदं, कृत) हे माता की समान ओषधियो !
 सब मकार के तुम्हारे नाम सैकड़ों हैं और तुम्हारे अंकुर असंख्यात
 हैं, तुम्हारे सत्वसे सब जगत् के कार्य होते हैं, इस कारण हे अमन्त-
 कर्मसाधक ओषधियो ! तुम मेरे इस यजमानको क्षुत्पिपासादि
 षड्भिरोगों से रहित करो अर्थात् यजमान किसी प्रकार के रोग
 से पीड़ित नहो ॥ ७६ ॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूचरीः । अम्वा

इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ ७७ ॥

इसका भिपग्निं निष्पृ दनु० छं० ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
(ओषधीः, पुष्पवतीः, प्रसूचरीः, अम्वाः, इव, सजित्वरीः, वीरुधः,
पारयिष्णवः प्रतिमोदध्वम्) हे ओषधीगण ! पुष्पोसे युक्त फल
उत्पन्न करने वाली, घोड़ों की समान वेगसे गमन वाली अनेक
मकारकी व्याधि निवारण करने वाली, फलपाकान्त के सिवाय
बहुत काल तक कर्मपरायण प्रसन्न होओ अश्वकी समाग वेगसे
शीघ्र पुष्पवान् फलवान् होओ ॥ ७७ ॥

ओषधीरिति मातरस्तयो देवीरुपब्रुवे । सने-
यमश्ब्रुह्मा वासं आत्मानन्तव पूरुष ॥ ७८ ॥

इसका भिपग्निं निष्पृ० छं० ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
(मातरः, देवीः, ओषधीः, वः, इति, तत्, उपब्रुवे, पूरुषः, तव,
अम्बम्, गाम्, वासः, आत्मानम्, समेयम्) हे जगत्की निर्माणा
करनेवाली, हे दिव्यगुणोंसे युक्त हे सम्पूर्ण ओषधी तुमसे इस
आगे कहीं विधिके द्वारा वह जो हम प्रार्थना करते हैं हे यज्ञपुरुष !
आपके मसाद से घोंड़े गौ वस्त्र रोगरहित शरीर को भोगू यह
पुरुषसे जो मेरी प्रार्थना है उसे ओषधी मानें ॥ ७८ ॥

अश्वत्ये वो निपदनं पूर्णे वी वसतिष्कृता । गो-

भास इत् किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥

इसका भिपग्निं अनुष्ठु० छं० ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
हे ओषधियो ! (वः, अश्वत्य, निपदनम्, वः, पूर्णे, वसतिः, कृता,
किला, गोमानः, इत् असथ, यत्, पूरुषं, सनवथ) तुम्हारा पीप-
लकाष्टीर्नीमत्त उपभूत और सुषपात्रमें स्थान है, तुमने पलाश
पत्रसे बनी हुई जुह में स्थान किया है, पात्रमें हवि स्थापन करते
हैं, दोमके निमिष हवि जुह में रखते हैं, हे हविभूत ओषधियो !
निश्चय करके तुम आदित्य की भजनेवाली ही हो, कारण कि
अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यको प्राप्त होती है । इस कारण तुम

यजमानको अन्नादि से पुष्टकरो ॥ ७९ ॥

यत्रौपधीः समग्मत राजानः समिताविवा विप्रः

स उच्यते श्रियग्रंक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

इसका भिषग् ऋ० है, अनुष्टुप् छं० ओषधि दे० है । मंत्रार्थ (ओषधीः, यत्र, समग्मत, इव, राजानः, समितौ, सः, रक्षोहा, अमी वचातनः, विप्रः, भिषग्, उच्यते) हे ओषधियों ! तुम जिस ओषधी करने वाले वैद्यके पास जाती हो, जैसे राजा संग्राम में शत्रुजयको, जाते हैं, वह तुम्हारे आश्रितवैद्य पुरोडाशवायादि से राक्षसव्य रोगोंका नाशक होता है । ओषधी देकर रोगका नाश करनेवाला ब्राह्मण वैद्य कहा जाता है ॥ ८० ॥

अश्वत्थानीधः सोमावतीमूर्जयन्ती सुदोजसम् ।

आपित्सि सूर्या ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ८१ ॥

इसका भिषग् ऋ०, अनुष्टुप् छं०, वैद्य देवता है । मंत्रार्थ—(अस्मै, अरिष्टतातये, अश्वत्थानीध, सोमावतीम, ऊर्जयन्ती सुदोजसम्, सूर्याः ओषधीः, आ, आपित्सि) इस यजमानको अरिष्ट नाश के निमित्त अश्वत्थानि पशुपण के उपयोगी सोमयाग को, उपयोगी बल प्राण की सम्पादन करनेवाली तेजःसम्पादक सम्पूर्ण ओषधियों का सब प्रकार से जानता हूँ ॥ ८१ ॥

उच्छुप्सः ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।

धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तथ पूरुष ॥ ८२ ॥

इसका भिषग् ऋ०, विराटनु० छं०, ओषधय देवता है । मंत्रार्थ—(पूष, गव, आत्मानं, धनम्, सनिष्यन्तीनाम्, ओषधीनाम् शुष्माः, उच्छुप्ते, इव, गावः गोष्ठात्) हे यज्ञपुरुष ! तुम्हारे शरीर के प्राति धनरूप हाथ देने की इच्छा करनेवाली ओषधियों की सामर्थ्य प्रकट होती है, जैसे गौ गोठ से निर्गत होती हैं ॥ ८२ ॥

इष्कृतिर्निर्म चो माताप्यो युयधः स्थ निष्कृतीः

मीराः पतुभिर्णी स्थन यदामयन्ति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

इसका भिषग् ऋ०, निचृ० छं०, ओषधय दे० है । मंत्रार्थ—

हे ओषधियों ! (निष्कृतिः, नाम, वः, माता, अयो, यूयम्, निष्कृ-
तीःस्य, सीराः, पतंविणीः, स्वप्न, आमयति, निष्कृप) निष्कृति
नामवाली तुम्हारी माता है और तुम भी व्याधि की दूर करनेवाली
हो और धन्न के सहित वर्तमान गमनयुक्त प्रसरण शील हो,
इसकारण मनुष्यों में स्थित रोगका विनाश करो ॥ ८३ ॥

आतिविद्धाः परिष्ठा स्तेन ईव प्रजमंक्रमुः ।

ओषधीः प्राञ्ज्यघुर्यस्किञ्च तन्त्रो रयः ॥ ८४ ॥

इसका भिषग् ऋ०, विराडनु० छं०, ओषधय देवता है । मंत्रार्थ
(परिष्ठाः, विष्ठा, ओषधीः, अत्यक्रमुः, इव, स्तेनः प्रजम्, तर्वाः,
यत्, किञ्च, रयः, प्राञ्ज्यघुः) सब ओर से रोग को दबाकर
बैठनेवाली रोगनाशक सम्पूर्ण ओषधियां जब भासित होकर देह
को व्याप्त करती हैं, जैसे दस्यु गोष्ठको व्याप्त करता है, उससमय
शरीर में जो कुछ भी शिरकी व्याधा गुल्म अतिसारादिरूप पाप
का फल है उस सबको नाश करती हैं ॥ ८४ ॥

पटिमा वाजयन्नुहमोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा

यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवन्ममो यथा ॥ ८५ ॥

इसका भिषगृपि, अनुष्टु० छं०, ओषधि दे० है । मंत्रार्थ—
(यत् अहम् इमाः ओषधीः, वाजयन्, हस्ते, आदधे, यक्ष्मस्य,
आत्मा, पुरा नश्यति यथा, जीवन्ममो) जिस समय इन ओष-
धियोंका पूजन करता हुआ हाथ में धारण करता हूं, उससमय
यक्ष्म रोग का स्वरूप भक्षण से पहले ही नाशको प्राप्त होता है
जैसे वध के निमित्त लेजाया हुआ प्राणी वध से पहले ही अपने
को जान मानता है ॥ ८५ ॥

पर्योषधीः प्रसर्पथाहमंगं परुषरुः । ततो यक्ष्मं

विषोषध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

इसका भिषग् ऋ०, निबृद० छं० ओषधि दे० है । मंत्रार्थ—
(ओषधीः, यस्य, अहं, अहं, परुषरुः, प्रसर्पथ, यक्ष्मं, विषोषध्व,
इव, मध्यमशीः, उग्रः,) हे ओषधियों तुम जिसके अंग

अंग में ग्रन्थी ग्रन्थी में फैलती हो और यक्ष्मा रोग को बाधा देती हो जिसप्रकार देह के मध्यमें मर्म भागको पीड़ा देनेवाला उग्र रुद्र युगान्तमें विशूल के मध्यभाग से जगत्को पीड़ा देता है ८६

साकं पक्ष्म प्रपत चापेण किकिदीषिना । साकं
घातस्य धात्र्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

इसका भिषग् घृ०, वि० नु० छं०, यक्ष्मा दे० है । मंत्रार्थ—
(पक्ष्म, किकिदीषिना, चापेण, साकं, प्रपत, घातस्य, धात्र्या, साकं, निहाकया, साकं, नश्य) हे व्याधियों तुम कफसे रुके, कंठसे उठे शब्दके द्वारा क्रीड़ा करने वाले रलेष्म रोग और पित्त-रोगके साथ गमन करो घात रोगके साथ नष्ट होओ सर्वांग वेदना से जो रोगीका हाहाकार है उस दुःखके सहित नष्ट होओ । ८७

अन्या चो अन्यामवत्तुन्यान्यस्या उपावत ।

ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्राच्यता वचः ॥ ८८ ॥

इसका भिषग् अ० विराडनुष्टुप छं० ओपधय दे० है मंत्रार्थ—
हे ओपधियो (वः, अन्या, अन्याम्, अवत्तु, अन्या अन्यस्याः, उपावत, ताः, सर्वाः, संविदानाः, मे, इदं, वचः, प्राच्यता) तुम्हारे मध्यमें कोई एक ओपधी दूसरी की रक्षाकरे रक्षित हुई कोई दूसरी की रक्षा करने को समीपआवे अर्थात् योगज पदार्थों से तुम्हारी शक्ति अधिकहो, तुम सब परस्पर एकमति होकर मेरे इस प्रार्थना रूप वचन की रक्षाकरो ॥ ८८ ॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।

बृहस्पतिप्रसूतास्तान् मुञ्चत्वथैहसः ॥ ८९ ॥

इसका भिषग् घृ०, विराडनु० छं० ओपधि दे० है । मंत्रार्थ—
(याः, फलिनीः, याः अफलाः, अपुष्पाः, च, याः, पुष्पिणीः, ताः, बृहस्पतिप्रसूताः, मः, अथैहसः मुञ्चन्तु) जो ओपधी फल वाली हैं जो ओपधी फल रहित हैं जो फूल रहित हैं और जो ओपधी फूल वाली हैं वे सब ओपधी मजापालक परमात्माकी मेरणा से हमको पापसे छुड़ावें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथपादधौ वरुण्याहुत । अधो
यमस्य पद्भीशात्सर्वस्माद् देवकिस्त्रिपात् ॥२०॥

इसका बन्धु ऋ०, मुरिगुणिक छं० ओपधी देवता है । मंत्रार्थ
ओपधिये (शपथपात्, किस्त्रिपात्, अधो, वरुण्यात्, उत, यमस्य,
पद्भीशात्, अथो, सर्वस्मात्, एव, मा, मुञ्चन्तु,) शपथके कारण
होने वाले पापसे जल क्रीडादिजन्य जलरोगसे, यम सम्बन्धी बन्ध
के कारण रूप पापसे सब प्रकार के पापसे देवापराध के कारण
होने वाले पापसे मुक्तको छुड़ाओ ॥२०॥

अवपतन्तीरचदान्द्रिय ओपधग्रस्परि । धं जीव-
मश्रवामहै न सरिष्याति पूरुषः ॥ २१ ॥

इसका बन्धु ऋ०, अनुपु० छं०, ओपधि दे० है । मंत्रार्थ
(दिवः, परि, अवपतन्तीः, ओपधयः, अवदन्, यम्, जीवप्,
अश्रवामहै, सः पूरुषः न रिष्यति) दुलोक से भूमिपर मात
होती हुई ओपधियों ने कहा, जिस माणी को हम व्याप्त करती हैं,
वह पुरुष नहीं नष्ट होता ॥ २१ ॥

या ओपधीः सोमराज्ञीर्विहीः शतविचक्षणाः ।

तासामसि त्वष्टुत्तमां कामाय शरं हृदे ॥२२॥

इसका बन्धु ऋ०, विराटार्थ० छं०, ओपध दे० है । मंत्रार्थ
(याः, सोमराज्ञीः, बह्वीः, शतविचक्षणाः, ओपधीः, तासाम्,
त्वं, उतमा, असि, कामाय, अरं, हृदे शम्) जो सोमपत्नी हैं,
अनन्त असंख्यात शुभगुणों से युक्त ओपधी हैं, उन के मध्य में
है आपधी । तुम उद्यम हो, इच्छित के निमित्त समर्थ तुम हृदय
के निमिरा सुखकारिणी हूजिये ॥ २२ ॥

या ओपधीः सोमराज्ञीर्विष्टिताः पृथिवीमनु ।

बृहस्पतिप्रसूता अस्मै संदत्त वीर्यम् ॥ २३ ॥

इसका बन्धु ऋ० विराटार्थ० छं०, ओपध दे० है ॥ मंत्रार्थ
(याः, सोमराज्ञीः, ओपधयः, पृथिवीम्, अनु, विष्टिताः, बृहस्पति-
प्रसूताः, अस्मै, वीर्यम्, सन्दत्त) जो सोमपत्नी ओपधिये पृथिवी

पर नाना प्रकार से स्थित हैं वृहस्पति द्वारा प्रेरणाकी हुई वे औषधी इस हमारी लाई हुई औषधी के निमित्त पराक्रमको दें अर्थात् वीर्यसम्पन्न करें ॥ ९३ ॥

यादधेदमुपगृण्वन्ति याश्च दूरं परांगताः । सर्वाः

संगत्य वीरुधोऽस्यै सन्दत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥

इसका बन्धु ऋ० विराडनु० छं० औषधि देवता है । मंत्रार्थ— (या, उप, च, याः, दूरं, परांगताः, च, इदं, गृण्वन्ति, वीरुधः, सर्वाः, संगत्य, अस्यै, वीर्यम्, सन्दत्त) जो औषधी समीप स्थित हैं, और जो औषधी हमसे दूर स्थित हैं और इस हमारे वचनको सुनती हैं, वे तुरुजात सम्पूर्ण औषधी मिलकर हमारी ग्रहण की हुई इस औषधी में बलको धारण करें ॥ ९४ ॥

मा वां रिपखनिता यस्मै चाहं खनानि वः ।

द्विपाचतुष्पादस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

इसका बन्धु ऋ० विराडनु० छं०, औषधि देवता है मंत्रार्थ— हे औषधियो! रोगकी चिकित्सा के निमित्त तुम्हारी मूलकी आवश्यकता है इस निमित्त (यः, खनिता, मा, रिपव, यस्मै, वां, अहं, खनानि, च, अस्माकम्, द्विपात्, चतुष्पात्, सर्वं, अनातुरम्) जो कोई तुमको खनन करता है, वह खनन करने के अपराध से हानिको न प्राप्त हो, जिस रोगी की चिकित्सा के निमित्त तुमको मैं खनन करता हूँ वह भी हानि को प्राप्त न हो, हमारे सम्बन्धी श्री पुत्रादि द्विपाये और चौपाये सबही रोगरहित हों ॥ ९५ ॥

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राजा । यस्मै

कृणोति ब्राह्मणस्तथैराजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

इसका बन्धु ऋ० निच्यू० छं०, औषधी देवता है । मंत्रार्थ— (राजा, सोमेन, सह, ओषधयः, समवदन्त, ब्राह्मणः, यस्मै, कृणोति, राजन्, तम्, पारयामसि) अपने स्वामी सोमके सहित औषधिये कहती हुई, ब्राह्मण जिस रोगी के निमित्त हमारे सह फल पत्रसे चिकित्सा करता है हे स्वामिन सोम ! उस

मनुष्यको हम रोगरहित करती हैं ॥ ९६ ॥

नाशयित्री बलासस्याशीस उपचितामसि अथो
शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

इसका बन्धु ऋ०, अनुष्टुप् छं०, ओपधी देवता है । मंत्रार्थ-
हे ओपधी ! (बलासिन्धु, अशीसः, उपचिताम्, नाशयित्री, असि
अथो, शतस्य, यक्ष्माणाम्, पाकाराः, नाशनी, असि) क्षय अर्श
मेदरोग और अनेकों रवयथु "सूजन" रलीपद आदि रोगों की
नाश करनेवाली हो, और क्षतादिसकड़ों रोगों की तथा मुखपा-
कादि रोगों की नाश करनेवाली हो ॥ ९७ ॥

त्वाङ्गन्धर्वा अस्वनस्त्वामिन्द्रस्त्वा बृहस्पतिः ।

त्वामोपधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यते ॥ ९८ ॥

इसका बन्धु ऋ० मिच्युदनुष्टुप् छं०, ओपधय देवता है । मंत्रार्थ-
(ओपधे, गन्धर्वाः, त्वाम्, अस्वनन्, इन्द्रः, त्वा, बृहस्पतिः, त्वा
सोमः, राजा, विद्वान्, त्वा, यक्ष्मात्, अमुच्यते) हे ओपधि !
गन्धर्वों ने तुमको खोदा इन्द्रे ने तुमको खोदा बृहस्पति ने तुमको
खोदा सोम राजा ने तुम्हारी सामर्थ्य जानकर तुमको सेवककर
यक्ष्मारोगसे निष्कृति लाभ की तुम्हारे गुणज्ञाता तुमको पाकर
अनेकों रोगों से मुक्त हुए ॥ ९८ ॥

सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व

सर्वे पाप्मानस्य सह मानास्योपधे ॥ ९९ ॥

इसका बन्धु ऋपि है, विराटनु० छं०, ओपधि दे० है । मंत्रार्थ
(ओपधे, सहमाना, असि, मे, अरातीः, सहस्व, पृतनायतः, सहस्व,
सर्वे, पाप्मानम्, सहस्व) हे ओपधि ! तुम शत्रुओं की तिस्कार
करने वाली हो मेरे अदानशील शत्रुकी सेनाको तिस्कार करो,
संग्राम चाहने वाले शत्रुओंको जीतो सब अशुभको तिस्कार करो ९९
दीर्घायुस्त ओपधे खमिता यस्मै च स्वा खना-
म्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा ज्ञातवत्त्वा वि-
रोहतात् ॥ १०० ॥

इसका वन्द्य अ०, विराट् वृह० छं०, ओपधी दे० है । मंत्रार्थ (ओपधे, त्वे, खनिता, दीर्घायुः, यस्मै, अहं, त्वाम्, खनामि, च, अथो, त्वं, दीर्घायुः, भूत्वा, शतवन्शः, विरोह्यात्) हे ओपधी ! तुम्हारा करने वाला दीर्घायु हो, जिस रोगी के निमित्त मैं तुमको खनन खनन करूँ वह भी दीर्घायु हो और तुम भी दीर्घायु होकर सैकड़ों अंकुरवाली होकर वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ १०० ॥

स्वमुत्तमास्योपधे तथ वृक्षा उपस्तयः । उपस्ति-

रस्तु सोस्माकं यो अस्मां अभिदासति ॥ १०१ ॥

सयका वन्द्य अ०, निच० छं०, ओपधि देवता है । मंत्रार्थ- (ओपधे, त्वं, उत्तमा; असि, वृक्षा; तव, उपस्तयः, यः, अस्मान् अभिदासति, सः, अस्माकं, उपस्तिः, अस्तु) हे ओपधी ! तुम श्रेष्ठ हो, तुम्हारे निकटके शूल, ताल तमालादि वृक्ष तुम्हारे समीप में स्थित होकर उपद्रव निवारण कर व्यायादि द्वारा उपकार करते हैं, जो हमसे चिरकाल तक द्वेष कर रहा है वह हमारे अनुगत हो १०१

मा मा हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा

दिषं सत्यधर्मा व्यानद् । यश्चापरचन्द्राः प्रथमो

ज्जानत कस्मै देवाय इविषा विधेम ॥ १०२ ॥

इसका द्विरप्यगर्भ अ० नि० त्रि० छं० प्रजापति देवता है । मंत्रार्थ- (यः, पृथिव्या, जनिता, यः, सत्यधर्मा, दिषं व्यानद्, च, यः, प्रथमः, आपश्चन्द्राः, ज्ञान, प्रथमः, मा, मा, हिंसीत्, कस्मै, देवाय, इविषा, विधेम) जो प्रजापति पृथिवी का उत्पन्न करनेवाला है, जो सत्य को धारण करनेवाला सुलोक को सृजन कर चुका है और जो आदिपुरुष जगत् के आल्हादक और वृत्तिसाधक जल को उत्पन्न करता हुआ जो पहिला शरीर है वह प्रजापति तुम्हें मा मा मारो, उस प्रजापतिके निमित्त हमें देते हैं वह हमारी रक्षा करे ॥ १०२ ॥

अभ्याधर्नस्व पृथिवि पूजेनैव यथा संह वरान्तो

अग्निरिपतो अरोहत ॥ १०३ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० नि० दु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (पृथिवि, यज्ञेन, पयसा, सह, अभ्यावर्तस्व, इषितः, अग्निः, ते, वंपाम्, अरोहत) हे पृथिवि ! यज्ञ और उसके फल, वृष्टि के साथ समुत्पन्न आशु, परितुष्ट हो मजापाति के मेरित अग्नि तुम्हारे वृष्टदेश में आरोहण करे ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यदचन्द्रं यत्पूतं । यच्च यज्ञियम्
तद् देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ०, भु० गा० छं० अग्नि दे० । मंत्रार्थ (अग्ने, ते, यत्, शुक्रं यत्, चन्द्रम्, यत्, पूतं, च, यत्, यज्ञियम्, तत्, देवेभ्यः, भरामसि) अग्निदेव तुम्हारा जो अंग शुक्लवर्ण दीप्तिमान् है, जो अंग ज्योति चंद्रमा की समान आल्हाद करने वाली है, जो ज्योति पवित्र है गृहकार्य के योग्य है और जो, यज्ञकार्य के योग्य है उस सब प्रकार रत्नावलीयज्योतिको देवकार्य की सिद्धि के निमित्त सम्पादन करते हैं ॥ १०४ ॥

इयमूर्जमहमित आदमस्तस्य योनिं महिषस्य
धाराम् । आमा गोपु विश्रुत्वा तनूपु जहामि
मेदिमनिं रामनीषाम् ॥ १०५ ॥

इस कं० २ मं० है सबका हिरण्यगर्भ ऋ० है, छं०-१ वि० नि०, २ या० त्रि० है देवता-१ आशीः, २ यजमान है । मंत्रार्थ--(अतस्य, योनिं, इषम्, ऊर्जम्, माहिषस्य, धाराम् इतः, अहं, आदम्) सत्य की उत्पत्ति के कारण अन्न उसके उपसेचन दही दूध घृतादिको, महत् इच्छा वाले अग्निकी आहुतिको इस प्रदेश उदीची दिशासे मैं मन्त्र कर रहा हूँ (आविशतु, तनूपु, गोपु, आ,) मुझमें प्रवेश करे, मेरे पुत्रादि शरीरों में मेरे धेनु आदि पशुओंमें प्रवेश करे (अनिराम् अमीषाम् सोहिं जहामि) अन्नराहित क्लेशदायक होनेकी व्याधिको त्यागन करता हूँ ॥ १०५ ॥

अग्ने तव अत्रो षणो महि आजन्ते अर्चयो
विभावसो । वृहद्भानो शवसा वाजमुक्थं

दधामि दाशुपे कवे ॥ १०६ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ०, विष्टार पं० छं०, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(विभावसो, वृद्धज्ञानो, कवे, अग्ने, तव, अवः, महि,
 वयः, अर्चयः, भ्राजन्ते, दाशुपे, शवसा, उक्थ्यम्, वाजम्, द-
 धामि) हे कान्तिरूप धनवाले बड़े मकाशवान्, यजमान के अ-
 भिप्राय को जाननेवाले अग्निदेवता ! तुम्हारी यज्ञप्रवृत्ति देवताओं
 को सुनानेवाला बड़ा धूम और दीप्ति प्रकाशित होती है, 'तुम हवि-
 र्दाता दुःयजमान के निमित्त बलसहित शस्त्रादि से युक्त यज्ञके योग्य
 अन्न को देते हो ॥ १०६ ॥

पावकवर्चा शुक्वर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानु-

ना । पुत्रो मातरां विचरन्नुपावसि पृणासि

रोदसी उभे ॥ १०७ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ० है, वि० पं० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 हे अग्ने ! (पावकवर्चाः, शुक्वर्चाः, अनूनवर्चाः, भानुना, उदियर्षि,
 विचरन्, उपावसि, पुत्रः, मातरा, उभे, रोदसी, पृणासि) शोधक
 दीप्तिवाले निर्मल कान्तिवाले पूर्ण शक्तिवाले तुम अपनी दीप्ति
 से उत्कृष्टता को प्राप्त हो तथा सब ओर से विचरते हुए देवता म-
 नुष्यों सहित जगत् की रक्षा करते हो, जैसे पुत्र वृद्ध हुए माता
 पिता की रक्षा करता है, इसीप्रकार तुम माता पिता रूप दोनों
 धावा पृथिवी का धूमपुंज द्वारा अर्थात् हवि से सुलोक का जल
 से भूमि का पालन करते हो ॥ १०७ ॥

ऊर्जोनपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीति-

भिर्हितः । त्वे इयः संदधुर्मूर्तिर्वपसश्चित्रोतयो

धामजाताः ॥ १०८ ॥

इसका पा० ऋ०, सतो वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 (ऊर्जोनपात, जातवेदः, धीतिभिः, हितः, सुशस्तिभिः, मन्दस्व,
 मूर्तिर्वपसः, चित्रोतयः, धामजाताः, त्वे, इयः, सन्दधुः) हे जलोंके
 पोते ! [जलसे वृक्ष और वृक्षों के मथनसे अग्नि होनेके कारण जलों

का पोता कहा] हे प्रजावान् ! यज्ञकर्मों के निमित्त स्थापन किए तुम श्रेष्ठ स्तुतियों से हृष्टपुष्ट हो, अनेक रूपवाले बहुत प्रकार की रक्षावाले तुम से तर्पित श्रेष्ठताति कुलमें उत्पन्न हुए यजमानों ने तुममें अपने हावेरूप भन्नको होमा ॥ १०८ ॥

इरज्यन्तग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर्गस्मे रायों अमर्त्य
सदर्शितस्य वपुणो विराजसि पृणक्षि सानसि
क्रतुम् ॥ १०९ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ०, सतो वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अमर्त्य, अग्ने, जन्तुभिः, इरज्यन्, रायः, अस्मै, प्रथयस्व, सः, दर्शितस्य, वपुषः, विराजसि सानसिम्, क्रतुम्, पृणक्षि) हे मरण धर्मरहित अग्नि देवता । हावे देनेवाले माणियों द्वारा मदीति होगे हुए तुम, अनेक प्रकार के धनोंको हमारे निकट विस्तार करो, वह तुम दर्शनीय चित्पाग्नि रूप शरीरके मध्यमें विशेष मदीति होते हो चिरन्तन संकल्पको पूर्ण करते हो ॥ १०९ ॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षपन्तम् राधसा
महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिपं दधासि
सानसिथि रथिम् ॥ ११० ॥

इसका पाव० ऋ० है, सतोवृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अध्वरस्य, इष्कर्तारं, प्रचेतसम्, क्षपन्तम्, वामस्य, महः, राधसा, रातिम्, सुभगाम्, महीम्, इपम्, सानसिम्, रथिम्, दधासि) यज्ञके रचनेवाले श्रेष्ठ चित्तवाले हे अग्ने ! यज्ञस्थान में निवास करने वाले यजमान के निमित्त श्रेष्ठ बड़े धनके दान को और श्रेष्ठ ऐश्वर्य युक्त बड़े भन्नको चिरन्तन धन को धारण करते हो ॥ ११० ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शितमग्निथः सुम्नाथं
दधिरे पुरो जनाः । भुत्कर्णथः सप्रथस्तमं त्वा
गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

इसका पा० ऋ०, उ० ज्यो० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
हे अग्ने ! (मानुषाः जनाः युगा, गिरा, त्वा, ऋतावानं, महिषं,

विश्वदर्शितम्, शुत्कर्णम्, सप्रथस्तमम्, दैव्यम्, अग्नि, सुम्नाय,
पुरः, दधिरे) बुद्धिमान् मनुष्यों ने पार्ष्णिमास अमावस्या आदि
पर्वों में वेदवाणी द्वारा तुम सत्यरूप महान् संसार के दर्शनीय
कणों से मार्यना सुननेवाले अति कीर्तिमान् देवताओं के हितकारी
अग्नि को यज्ञ के निमित्त पूर्वभाग में स्थापन किया ॥ १११ ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्णयम् ।

भव वाजस्य संग्रहे ॥ ११२ ॥

इसका गो० ऋ०, नि० गा० छं० सोम देवता है । मंत्रार्थ—
(सोम, विश्वतः, वृष्णयम्, ते, समेतु, आप्यायस्व, वाजस्य,
संग्रहे, आवृणु) हे सोम ! सब ओर से सब प्राणियों की उत्पत्ति
करनेवाला तेज तुमको प्राप्त हो, अपने वीर्य से सवमकार परि-
वर्द्धित हो यज्ञादि सर्कार्य के उपयोगी अन्न की प्राप्ति के निमित्त
हमारे निकट आओ ॥ ११२ ॥

सन्ते पयांसि ससुषन्तु वाजाः संवृष्णयान्य-
भिमातिपाहः । आप्यायमानोऽमृताय सोम

दिवि अवांसिस्तुतमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

इसका गो० ऋ०, पु० पं० छं०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—(सोम,
पयांसि, ते, अभिमातिपाहः, संसन्तु, वाजाः, समृ, वृष्णयानि,
सम्, आप्यायमानः, उ, अमृताय) हे सोम ! यनियोग्यरस तुम
से पापनाशक कां प्राप्तहो अन्न संगतिको प्राप्तहो वीर्य तुमको
प्राप्तहो दुग्ध अन्न और वीर्य से वृद्धिको प्राप्तहोते हुए तुम ही
अमरण धर्म के निमित्त हो और (दिवि उत्तमानि अवांसि
धिष्व) ध्रुलोक में श्रेष्ठ आहुति परिणामवाले अन्नों को धारण करो ।

आप्यायस्व मदिन्तमसोम विश्वेभिर्धुभिः ।

अवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

इसका गो० ऋ० प्र० त्रि० छं०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—
(मदिन्तम, सोम, सप्रथस्तमः, विश्वेभिः, अर्धधुभिः, आप्या-
यस्व, वृधे, सखा, आवृणु) अतिशय वृत्त अन्तःकरणवाले हे

सोम अत्यन्त विख्यातकीर्ति वाले तुम सम्पूर्ण सूक्ष्मांशोंके द्वारा
वृद्धिको पाओ, और हमारी वृद्धिके निमित्त सहायक हूँजिये ॥ १४

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाचित्सुधस्तात्
अग्ने त्वां कामया गिरा ॥ ११५ ॥

इसका अर्थ ऋ० है, नि० गा० छं० है अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, वत्सः, त्वां, कामया, गिरा, परमात्, सु-
धस्तात्, चित्, मनः, आयमत्) हे अग्ने ! तुम्हारा घटसस्वरूप
यजमान तुमको स्तुति करने की इच्छावाली वेदवाणी के द्वारा
उत्कृष्ट धुलोकसे भी तुम्हारे मनको हटाता है ॥ ११५ ॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुभितयः पृथक्
अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

इसका अर्थ ऋ०, गाय० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अङ्गिरस्तम, अग्ने, पृथक्, विश्वाः, ताः, सुभितयः, कामाय,
तुभ्यं, येमिरे) हे अग्नि ! हविर्भक्षक अग्नि देवता ! अनेक प्रकार
की सम्पूर्ण बह प्रसिद्ध स्वर्गादि सुन्दर स्थान की देनेवाली
स्तुतियों, अभिलाषा पूर्ण करनेवाले तुम्हारे निमित्त की गई हैं ॥ ११६ ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भवस्य ।

सम्राट्को विराजति ॥ ११७ ॥

इसका मंत्रार्थ ऋ० गायत्री छन्द अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(भूतस्य, भवस्य, कामः, सम्राट्, अग्निः, प्रियेषु, धामसु, एकः,
विराजति) उत्पन्न उत्पद्यमान यजमानों की कामनाओंको पूर्ण
करनेवाले सम्पूर्ण प्रकार से विराजमान अग्निदेवता अपने प्रिय
स्थानों में असहायभूत प्रधान रूपसे विराजमान होते हैं ॥ ११७ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सातवाँ द्वादश

अध्याय समाप्त ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

जिसमें उखा धारण, गार्हपत्यचयन, क्षेत्रकर्मण और भौषधि वपन प्रधान हैं । ऐसे चारहवें अध्यायमें उखाधारणादि के मंत्र कहे । अब तेरहवें अध्यायमें पुष्करपर्ण आदि के उपधानके मंत्र कहे जावेंगे ॥

मयि गृह्णाम्यग्ने अग्निधरायस्पोषाय सुप्रजा-
स्त्वार्य सुवीर्याय । मासु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

इसका वत्सार ऋ०, ककुब्धन्द अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
मैं यजमान (अग्ने, रायः, पोषाय, सुप्रजास्त्वार्य, सुवीर्याय, अग्नि मयि, गृह्णामि, देवता, मासु, सचन्ताम्) मयम धनकी पुष्टि के निमित्त अष्ट पुत्रादिकी प्राप्तिके निमित्त उत्तम सामर्थ्यके निमित्त अग्निको अपने आत्मा में धारण करता हूं, देवता भी मुझको सेवन करें ॥ १ ॥

अपां पृष्टमसि योनिर्गने, समुद्रमंभितः पिन्वं
मानम् वर्धमानो मूर्हो ॥ आ च पुष्करे दिवो
मात्रया धरिण्या प्रथस्य ॥ २ ॥

इस मंत्र की व्याख्या ११ अध्यायके २९ मंत्रमें होगी है ॥२॥

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तादि सीधतः सुरुषो
वेन आचः । सवुच्छ्या उपमा अस्थ विष्टाः सत-
वश्च योनिमसंतश्च विवः ॥ ३ ॥

इसका वत्सा० ऋ० आ० जि० छं० आदित्य देवता है मंत्रार्थ—
(पुरस्ताद, मयमं, जज्ञानं, ब्रह्म, सीमतः, सुरुषः, विश्रावः सः, वेनः, उपमाः, च, अस्थ, विष्टाः, वुच्छ्याः, सतः, च, असतः, योनि विवः) पूर्व दिशामें सबसे मयम प्रकटहुए आदित्यरूप ब्रह्मने भू-
गोलके मध्यमें आरंभ करके सुन्दररुचिवाले इन लोकोंको अपने प्रकाश से फैलाया और वह कामनीय मेधावी सूर्य अवकाशयुक्त और इस जगत्की वासस्थान अन्तरिक्षमें होनेवाली दिशाओं को

तथा विद्यमान घूर्ण घट पटादि और अपूर्ण वायु आदि के उत्पत्ति स्थान ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रं भूतस्य जातः पतिरेक-
आसीत् । स दाधार पृथिवीं धामृतेर्मां कस्मै
देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० भार्गो त्रि० छं० मन्नापति देवता है ।
मन्त्रार्थ—(हिरण्यगर्भः, भूतस्य, अग्रे, समवर्त्तत, जाता, एकः पतिः
आसीत्, सः, पृथिवीम्, धाम्, उत, इमाम्, दाधार, कस्मै, देवाय हविषा
विधेम) हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे अवस्थित मन्नापति
हिरण्यगर्भ प्राणिमात्रकी उत्पत्तिके प्रथम शरीरधारी हुआ, और
वह उत्पन्न अर्थात् प्रकट होतेही एकही इस उत्पन्न होनेवाले सब
जगत्का ईश्वर हुआ, वही अन्तरिक्ष पुनांक और इसभूमि अर्थात्
मिलोकीको निर्माण कर धारण करता है, उस मन्नापतिके निमित्त
हविद्वारा विधान करतेहैं ॥ ४ ॥

द्रप्सश्च स्कन्द पृथिवीमनुयामिमं च योनिमनु-
यश्च पूर्वं समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं
जुहोम्यनु सप्तहोत्राः ॥ ५ ॥

इसका देवश्रवा ऋ०, वि० त्रि० छं०, आदित्या दे० है मन्त्रार्थ
यः, पूर्वाः, द्रप्सः, पृथिवीं, अनुवस्कन्द, च, धाम्, अनु, च इमम्
योनिम्, अनु, समानं, योनिं, संचरन्तम्, द्रप्सम्, सप्तहोत्राः, अनु-
जुहोमि) जो प्रथम मुख्य सबकी आदि है जिसकी आदि नहीं जो
कि द्रप्स नामसे प्रसिद्ध आदित्यरूपका कारण अन्तरिक्षको मनु-
ष्यादि के धारणके निमित्त सौचता है, और पुनलोकको सौचता है,
और इस भूलोकको आहुतिके परिणामरूप रससे सौचता है, सम्पूर्ण
के मुख्य त्रिलोकीमें विचरण करतेहुए आदित्य को सब दिशाओं
में स्थापन करता है ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु सूर्येभ्यो ये केच पृथिवीमनु । ये अन्त-
रिक्षे दिवि तेभ्यः सूर्येभ्यो नमः ॥ ६ ॥

इसका देवभवा ऋ० भु० मा० त्रि० छं० सर्पदेवता है मंत्रार्थ—
(ये, च, पृथिवी, अनु, सर्पेभ्यः, नमः, अस्तु, ये, अन्तारिक्षे, ये,
दिवि, तेभ्यः, सर्पेभ्यः, नमः) जो भी पृथ्वीके अनुगत लोक नक्षत्र
हैं, उन लोक नक्षत्रोंके निमित्त नमस्कार हो, जो लोक अन्तारिक्ष
में वर्तमान हैं, जो सम्पूर्ण लोक बुलोकके आश्रित हैं, उन सर्पों
के निमित्त नमस्कार है ॥ ६ ॥

या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीः । रन्ते
येषां वृष्टेः शेरन्ते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

इसका देवभवा ऋ० अनुष्टु० छं० सर्प देवता है । मंत्रार्थ—
(यातुधानानां, याः, इषवः, वा, ये, अवष्टेः, शेरन्ते, तेभ्यः, सर्पेभ्यः,
नमः) राक्षसगणोंके जो सर्प बाणरूपसे वर्तते हैं, या जो सर्प,
चन्दन वृक्षादि वनस्पतियोंके आश्रित हैं, या जो बिलोंमें शयन
करते हैं उन सब सर्पों के निमित्त नमस्कार है ॥ ७ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु येषां
मृष्टु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

इसका देवभवा ऋ०, निचृ० छं०, सर्प देवता है । मंत्रार्थ—
(ये, वामी, दिवः, रोचने, वा, ये, सूर्यस्य, रश्मिषु, येषां, मृष्टु,
सदः, कृतम्, तेभ्यः, सर्पेभ्यः, नमः) जो सम्पूर्ण लोकसर्प बुलोक
के दीप्ति स्थानमें है, जो हमको नहीं दीखते अथवा जो लोक सूर्यकी
किरणों में निवास करते हैं, जिन सर्प लोकों का जलों में स्थान
किया है, उन सब सर्पोंके निमित्त नमस्कार है ॥ ८ ॥

कृणुष्व पाज्ञा प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजे वामं
वान् । इमे न तृप्त्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि
विध्यरक्षस्तत्तापिष्ठैः ॥ ९ ॥

इसका वामदेव ऋ० भु० पं० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
हे अग्ने ! तुम (आत्मा, असि, याहि, इव, आमवान्, राजा,
इमेन, पृथिवी, प्रसिति, न, पाज्ञा, कृणुष्व, तृप्त्वीम्, प्रसितिं अनु
द्रूणानः, तपिष्ठैः, रक्षसः, विध्य) शत्रुओंके इटानेवाले हो, शत्रुओं

के ऊपर जाओ, जैसे सहायवान् नृप हाथीद्वारा शत्रुओंपर गमन करता है, ऐसे तुम गमन करो, विशाल पक्षिग्रहणके निमित्त फैलाये हुए जालकी समान बलको विस्तार करो, वेगवान् जालद्वारा सम्यक्शत्रुओंको मारनेवाले तपानेवाले राक्षसोंको ताड़न करो ॥

तव भ्रमासं आश्रया पतन्त्यनुस्पृश धृपता
शोशुचानः । तपूथप्यग्ने जुब्हा पतुह्णान सं-
न्दितो विसृज बिष्वग्नुत्काः ॥ १० ॥

इसका धामदेव ऋ०, भु० पं० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—
हे (अग्ने, तव, आश्रया, भ्रमासः, पतन्ति, धृपताः, शोशुचानः,
तपूथि, पतुह्णान्, अनुस्पृश, जुब्हा, आसन्दितः, बिष्वक्, उत्काः,
विसृज) अग्निदेवता ! तुम्हारी जो शीघ्रगामी ज्वालाएं पवम
से इधर उधर चलायमान होती हैं, उस प्रगल्भ ज्वालासमूह से
प्रकाशमान तुम तपानेवाले राक्षसों और पतंगों ज्वालासमूह से
दग्ध करो, छुकसे हूयमान तुम अस्त्रपिदत होकर सर्वत्र तिरछी
ऊँची नीची ज्वालाओं को राक्षसों के नाश करने को छोड़ो पतंग
की समान राक्षस तुम में प्रविष्ट हो नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवो प्रायुर्विशो
अस्या अदन्धाः । यो नो दूरे अघशोथसो यो
अन्त्यग्नेनाकिं व्यथिरादधर्षति ॥ ११ ॥

इसका धामदेव ऋ०, निचृ० त्रि० छं०, अग्नि देवता है।
मंत्रार्थ—(अग्ने, नः, दूरे, यः, अघशोसः, यः, अन्ति, तूर्णितमः,
अदन्धाः, प्रतिस्पशः, विसृज, अस्याः, विशः, प्रायुः, भव, ते,
किं, मा, आदधर्षति) हे अग्ने ! हमारा दूर देश में जो शत्रु है
जो निकट में वर्तमान शत्रु है, बड़े वेगवान् अनुपहंसित तुम
उसकी ओर वन्धन को मेरण करो, इस हमारी प्रजा के रक्षक
हूतिये, तुमको कोई भी शत्रु मत्त धर्षणा करो ॥ ११ ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्पुमिश्रान् ओषतासि-
ग्महेते । योनो अरांतिथे समिधानचक्रे नीचातं

धक्ष्यतुसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

इसका वामदेव ऋ०, भु० गा० पं० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, उचिष्ट, मत्पातनुष्व, तिग्महेते, अमित्रान्, न्योपताव, समिधान, नः, यः, अरातिं, चक्रे, तम्, नीचा, धक्षि, न, शुष्कम्, अतसम्) हे अग्निदेवता । तुम जागृत होवो ज्वाला विस्तार करो, हे उत्साहरूप आयुधवाले शत्रुओं को अत्यन्त भस्मीभूत करो, हे दीप्तिमान् ! हमारे जो शत्रु दानका प्रतिपेध करता है उसको निकृष्ट करके भस्म करो जिसप्रकार सूखे अतस (अलसीके) वृक्ष को भस्म करते हो । सप्रकार शत्रु को नष्ट करो ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वं भव प्रतियिध्याध्यस्मद्वाविष्कृणुष्व दैव्या
नग्ने अयं स्थिरा तनुहि पातु जूनां जामिमजामि
पृच्छीहि शत्रून् अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका वामदेव ऋ० है, छं०-१ भु० पं० २ आ० त्रि०, देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ-(अग्ने, उर्ध्वः, भव, अस्मत्, अयि, शत्रून्, प्रतियिध्य, दैव्यानि, आवि, कृणुष्व, पातुजूनाम्, स्थिरा, अयतनुहि, जामिम्, अजामिम्, शत्रून्, पृच्छीहि) हे अग्निदेव ! उद्योगी उद्धत हो हमारे ऊपर वर्तमान शत्रुओं का ताड़न करो, दैवसम्बन्धी कर्मों को मकट करो, राक्षसों के स्थिर धनुषों को उबारहित करो, ताड़ित अताड़ित शत्रुओं को बिनाश करो । हे लुक-(अग्नेः, तेजसा, त्वा, सादयामि) अग्नि के तेज से तुझको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अपम् ।
अपाथि रतांथसि जिन्वाति इन्द्रस्य त्वोजसा
सादयामि ॥ १४ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका वामदेव ऋ०, छं०-१ निचृ० गा०, आ० त्रि० और देवता सबका अग्नि है । इसकी ३ । १२ में व्याख्या की गई है ॥ १४ ॥

ध्रुवो पृथस्य रजशश्च नेता यत्रा निपुद्भिः सचसे

शिवाभिः दिवि मूर्त्तानं दधिपे स्वर्पां जिह्वामग्ने
चकृपे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ०, निचृदापीं त्रि० छं०- अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ- (अग्ने, हव्यवाहम्, जिह्वाम्, चकृपे, यज्ञम्य, व, रजसः,
मेता, भुवः, यज्ञ, शिवाभिः, निपुद्भिः, सचसे, दिवि, स्वर्पां,
मूर्त्तानम्, दधिपे) हे अग्निदेव ! तुम जब हवि धारण करनेवाली
जिह्वारूप ज्वाला को मगट करते हो तब द्रव्यदेवता त्यागारमा
रूप यज्ञ के और यज्ञ परिणामरूप जल के परिवर्तक और मापक
होते हो, यहाँ मंगलरूप अश्वों के सहित तुम सम्बन्ध को प्राप्त
होते हो और ध्रुलोक में स्वर्ग के देनेवाले आदित्य को धारण
करते हो ॥ १५ ॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा मा त्वा
समुद्र उदधधीन्मा सुपर्णा अव्ययमाना पृथिवीं
दृधह ॥ १६ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ०, उदध्व० वृ० छं०, स्वयमातृणा दे० है ।
मंत्रार्थ- हे स्वयमातृणे ! तुम (धरुणा, विश्वकर्मणा, आम्वृता,
ध्रुवा, असि, समुद्रः, त्वा, मा, उदधीव, सुपर्णाः, मा, अव्ययमाना,
पृथिवीं, दृधह) भूमिरूपसे विश्व की धारण करनेवाली मजापति
द्वारा विस्तार कीहुई वृद्ध हो, समुद्र अर्थात् रुक्म तुमको मत नष्ट
करो, अचल होकर तुम भूभाग वृद्ध करने में समर्थ हो इस कारण
पृथ्वी को वृद्ध करो ॥ १६ ॥

मजापतिप्रवा सादयत्वर्पां पृष्ठे समुद्रस्येमेन ॥

व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

इसका त्रिशिरा ऋषि है, अनुष्टु० छं०, स्वयमातृणादि दे० है ।
मंत्रार्थ- हे स्वयमातृणे ! (मजापतिः त्वा, व्यचस्वतीम्, प्रथस्वतीम्
अपां, पृष्ठे, समुद्ररूप, एमेन, सादयतु, प्रथस्व, पृथिवी, असि)
मजापतिने तुम्हें अवकाशवान् विस्तार युक्त को जलोके ऊपर
और समुद्रके स्थानमें स्थापन किया और तुम मजापतिसे सादित

होकर विस्तारको प्राप्त हो जिस कारण कि भूमिसे प्रकट होनेसे तुम पृथ्वीरूप हो ॥ १७ ॥

भूरसि भूमिंस्पदिनिरसि विश्वधाया विद्वंस्य
भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दध्यह
पृथिवीं मा हिंसीः ॥ १८ ॥

इसका अर्थ है, प्रस्तार पंक्ति छं० स्वयमातृणा दे० है ।
मंत्रार्थ—हे स्वयमातृणे तुम (भूः भूमिः, अस्ति, विश्वधाया, अदितिः,
अस्ति, विश्वस्य, भुवनस्य, धर्त्री, अस्ति, पृथिवीं, यच्छ, पृथिवीं,
दध्यह, पृथिवीं, मा, हिंसीः) सुखों की भावना करनेवाली
भूमि नामसे प्रसिद्ध हो, विश्वपुष्ट करनेवाली देवमाता हो सम्पूर्ण
संसारकी धारण करने वाली हो पृथ्वीको कृपा दृष्टिसे अवलोकन
करो भूभागको दृढ़ करो पृथिवीको मत कष्ट दो ॥ १८ ॥

विद्वंस्यै प्राणायानाय व्यानापौडानाय प्र-
तिष्ठायै चरित्राय अग्निष्वाभिपातु मन्त्रा स्व-
स्त्या छर्दिषा शन्तमेन तथा देवतया द्विरस्वद
धुवासीद ॥ १९ ॥

इसका अर्थ है, भूरिग०, ज० छन्द, स्वयमातृणा दे० है ।
मंत्रार्थ—हे स्वयमातृणे (विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय व्यानाय, उदा-
नाय, प्रतिष्ठायै, चरित्राय, अग्निः, मन्त्रा, स्वस्त्या, शन्तमेन, छर्दिषा,
त्वा, अभिपातु, तथा, देवतया, धुवा, अद्विरस्वद, सीद) सम्पूर्ण
प्राण अपान व्यान उदान नामक शरीर वायुकी उत्पत्तिकी कामना
के निमित्त तथा प्रतिष्ठाकीार्थ लाभके निमित्त शास्त्रीय आचरण
के निमित्त अग्निदेवता बड़ी कल्याण योगक्षेम की सम्पत्ति और
अत्यन्त सुखकारी गृहके द्वारा तुमको रक्षा करे उस परम देवताके
अनुग्रह से दृढ़दुर्द्वि अद्विरा की समान स्थित हो ॥ १९ ॥

काण्डात्काण्डात्परोहन्ती परुषः परुषस्परि-
एवानो दूर्वे प्रतनुं महर्षेण शतेन च ॥ २० ॥

इसका अर्थ है, अनुष्टुप् छं०, पूर्वोष्ठिका देव० है । मंत्रार्थ

(दूर्वा, काण्डात्, काण्डात्, परुषः, परुषः, परि, मरोहन्ती, एव, सहस्रेण, च, शतेन, नः, आ, मतनु) हे दूर्वा ! इष्टके ! तुम मत्त्येक काण्ड से और मत्त्येक पर्व से सब ओर से अंकुरित होती हो और मिथय ही सहस्र और सैकड़ों भर्षात् असंख्य ऐश्वर्य पुत्र-पौत्रादि से अंकुरावत् हमको सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त करो ॥ २० ॥

या शतेन प्रतनोपि महर्षेण विरोहसि । तस्यास्ते
देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

इसका अग्नि ऋ०, मिचूदनुष्टुप् छन्द, देवीष्टिका देवता है ।
मंत्रार्थ—(देवी, इष्टके, या, शतेन, प्रतनोपि, सहस्रेण, विरोहसि, वयं, ते, हविषा, विधेम) हे दीप्यमान ! हे इष्टके ! जो तुम सैकड़ों काण्ड से विस्तार को प्राप्त होती हो, सहस्र अंकुरों से अनेक प्रकार से अंकुरित होती हो, हम तुमको हवि विधान करते हैं ॥ २१ ॥

यास्तं अग्ने सूर्ये रुचो दिवंमातृन्वन्ति रुरिम-
भिः । ताभिर्नो अथ सर्वाभी रुचे जनाय
मंस्तुधि ॥ २२ ॥

इस का इन्द्राग्नी ऋ०, भुरिनु०, छ० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(अग्ने, या, ते, रुचः, सूर्ये, रुरिमभिः, दिवं, मातृन्वन्ति, अथ, ताभि, सर्वाभिः, नः, रुचे, नः, जनाय, कुधि) हे अग्ने ! जो तेरी दीप्ति सूर्यमण्डल में वर्तमान किरणों द्वारा धुनोक को प्रकाश करती है, इस समय वन सम्पूर्ण कान्तियों से आज हमारी शोभा के निमित्त करा तथा हमारे पुत्र पौत्रादि का जगत्प्रसिद्ध करो ॥ २२ ॥

या यो देवाः सूर्ये रुचो गोधवश्चैषु या रुचः इ-

न्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त वृहस्पते ॥ २३ ॥

इसका इन्द्राग्नी ऋ०, अनुष्टुप् छ०, वृहस्पत्यादय देवता है ।
मंत्रार्थ—(इन्द्राग्नी, वृहस्पते, देवाः, यः, याः, रुचः, सूर्ये, याः, रुचः, गोषु अश्वेषु, ताभिः, सर्वाभिः, नः, रुचम्, धत्त) हे इन्द्राग्नी हे वृहस्पते ! हे देवसमूह ! तुम्हारी जो दीप्ति सूर्य मंडल में वर्तमान है जो दीप्ति धेनुओं में जो अश्वों में स्थित है, वन सम्पूर्ण दीप्तियों

से देदीप्यमान तुम हमारे निमित्त कान्ति-नीरोगताको प्रतिपादन कीजिये ॥ २३ ॥

विराड् ज्योतिरधारयत्स्वराड् ज्योतिरधारयत्
प्रजापतिष्ट्वा सादयत् पृष्ठे पृथिव्या ज्योति-
ष्मतीम् विश्वस्मै प्राणापानाय व्यानाय
विद्यं ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिपतिस्तथा तेष-
तयाद्भिरस्वद् ध्रुवासीद् ॥ २४ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका इन्द्राग्नी ऋ०, छं०-१ मा० गा,
२ भु० प्रा०, देवता-१ रेतः सिचौ २ विश्वज्योति है । मंत्रार्थ-
(विराड्, ज्योतिः, अपारयत्, स्वराड्, ज्योतिः, अपारयत्)
विशेष शोभायमान विराटरूप इस लोक ने अग्निरूप ज्योति को
धारण किया, स्वयं प्रकाशमान पुलोक ने अग्निरूप ज्योति को
धारण किया । हे इष्टके ! (प्रजापतिः, विश्वस्मै, प्राणापं, अपा-
नाय, व्यानाय, ज्योतिष्मतीम्, त्वा, पृथिव्याः, पृष्ठे, सादयत्,
विश्वम्, ज्योतिः, यच्छ, अग्निः, ते, अधिपतिः, तथा, देवतया,
ध्रुवा, अद्भिरस्वत्, सीद्) प्रजा के पालक सम्पूर्ण प्राण अपान
व्यान की सम्पत्ति के निमित्त ज्योतिर्युक्ततुम्हको पृथ्वी के ऊपर
स्थापित करै; सम्पूर्ण ज्योति को निग्रह करो, अग्नि तुम्हारा
आधिपति है, उस प्रसिद्ध देवता के सहित दृढ होकर अग्निरा की
समाम स्थित हो ॥ २४ ॥

मधुश्च मार्धघश्च चासन्तिकावृत् अग्नेरंगतः
ऋषोऽसि कल्पेतां चावापृथिवी कल्पेतामाप
ओषधयः कल्पेतामग्नयः पृथक् मम ज्येष्ठपाप
समेताः ये अग्नयः समंनसोऽन्तरा पाषाणपृथिवी
इमे चासन्तिकावृत् अभिकल्पेतामा इन्द्रमिव
देवा अभिसंविदन्तु तथा देवतयाद्भिरस्वद्
ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका इन्द्राग्नी ऋ०, छं०-१ भु० त०,

२ भु० त्रा० वृ०, सबका ऋतु देवता है। मंत्रार्थ—(मधुः, च, माधवः, च, वासन्तिकौ, ऋतू) चैत्रमास और वैशाखमास यह दोनों ही वसन्त सम्बन्धी ऋतु हैं, अथवा हे (ऋतू, अग्ने, अन्तः, श्लेषः, असि) ऋतुरूप दोनों इष्टकाओ ! तुम चीपमान अग्नि के अन्तर में स्थिर होकर श्लेष अर्थात् रुढ़ता के निमित्त लगाये हुए हो (मम, ज्यैष्ठ्याय, यावापृथिवी, कल्पेताम्, आपः, ओषधयः, कल्पन्ताम्, सन्नताः, पृथक् अग्नयः कल्पन्ताम्) मुक्त यज्ञमान की उत्कर्षता के निमित्त यह धुलोक और भूलोक अपने योग्य उपकार को कल्पना करें, जल और ओषधी हमारा माधान्य सम्पादन करें, समान व्रत अनेक नाम की अग्नि स्वयमानूणा आदि इष्टका उत्कृष्टता सम्पादन करें (इमे, यावापृथिवी, अन्तरा, समनसः, ये, अग्नयः, वासन्तिकौ, ऋतू, अभिकल्पमानाः, अभिसंबिभन्तु, देवाः, इन्द्रम् इव,) यह यावापृथिवी के मध्य में वर्धमान एक मनवाली जो अग्निये हैं अर्थात् औरों से चपन कीहुई वसन्त सम्बन्धी ऋतु को सम्पादन करते इस कर्म का आश्रय करो, जैसे देवता इन्द्र को परिचर्या कर सम्पादन करते हैं इसी प्रकार इष्टका मातृ हो, हे इष्टके ! (तथा, देवतया, अन्निरस्वत्, ध्रुवे, सीद-तम्) उस प्रसिद्ध देवता द्वारा अन्निरा की समान स्थिर होकर स्थित हो ॥ २५ ॥

अपादामि सहमाना सहस्यरातीः सहस्व पृतः

नायतः । सहस्रवीर्यासि सा मां जिन्व ॥ २६ ॥

इसका सविता ऋ०, निष्ठ० जं०, इष्टका देवता है। मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (सहमाना, अपादा, असि, अरातीः, सहस्व, पृतनायतः, सहस्व, सहस्रवीर्या, असि, मा, जिन्व) स्वभाव से शत्रुओं को नष्ट करनेवाली तथा शत्रुओं को न सहनेवाली हो शत्रुओं को तिरस्कार करो, संग्राम की इच्छा करनेवाले शत्रुओं को तिरस्कार करो, तुम अनागत बलवाली हो, मुक्तपर सुगीता हो २

मधुवाता ऋतायुते मधुं क्षरन्ति सिन्धवः ।

माध्वीनः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

इसका गीतम ऋ०, निचृ० गा० छं०, विश्वेदेवा देवता है ।
मंत्रार्थ—(ऋतायुते, वाताः, मधु, क्षरन्ति, सिन्धवः, मधु, नः,
ओषधीः, माध्वीः, सन्तु) यज्ञ की इच्छा करनेवाले यजमान के
निमित्त वायु पुष्परस को बहन करती हैं, स्थन्दमान नदियें मधु
समान जल को क्षरण करती हैं, हमको सम्पूर्ण ओषधी मधुर
रस से युक्त हों ॥ २७ ॥

मधु नक्तमुतोपसो मधुमत् पार्थिवश्च रजः ।

मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

—इसका गीतम ऋ०, गायत्री छं०, विश्वेदेवा दे० है । मंत्रार्थ—
(नः, पिता, द्यौः, मधु, अस्तु, पार्थिवश्च, रजः, मधुमत्, नक्तं, उत,
उपसः, मधु) हमको पितावत् पालन करनेवाला दुलोक अमृत
मय हो, मातारूप पृथ्वी सम्बन्धी रज अमृतमय हो, रात्रि और
दिन अमृतमय हो अर्थात् सब से हमको मंगल हो ॥ २८ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमारः । अस्तु सूर्यः मा-

ध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

इसका गीतम ऋ०, निचृ० गा० छं०, विश्वेदेवा देवता है ।
मंत्रार्थ—(वनस्पतिः, नः, मधुमान्, सूर्यः, मधुमान्, अस्तु,
गावः, नः, माध्वीः, भवन्तु) सम्पूर्ण वनस्पति, हमको मधुररस
से युक्त हों, सूर्य हमको मधुर रसयुक्त हों, गौ हमको मधुर
रसयुक्त हों ॥ २९ ॥

अपां गम्भन्तसीद् मा त्वा सूर्योऽभितापसी-

न्माऽग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनु-

चीक्षस्यानु त्वा दिव्या दृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

इसका गीतम ऋ०, स्वराट् पं० छं०, कूर्म देवता है । मंत्रार्थ—
कूर्म से मजापाते वा आदित्य का ग्रहण है, हे कूर्म ! तुम (अ-
पाम्, गम्भम्, सीद्, त्वा, सूर्यः, मा, अभितापसीद्, वैश्वानरः,

अग्निः, मा, अचिद्धनपथाः, मजाः, अनुधीक्षस्व, दिव्या, वृष्टिः, त्वा, अनुसचताम्) जलों के गंभीरस्थान आदित्यमण्डल में स्थित हो, तुमको सूर्य वहां स्थित होने से मत सन्तप्त करो, संपूर्ण मनुष्यों के हितकारी अग्नि तुमको मत सन्तापित करो, अखंडित अवयववाली इष्टका तुमको निरन्तर देखो और दिव्य वर्षा तुमको सेवन करो ॥ ३० ॥

अग्निं संपुद्रान्तसमं सप्तस्वर्गानि पापं पतिर्वृषभ इष्ट-
कानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र
गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

इसका गोतम अ०, मिष्टुं छं०, कूर्म देवता है । मन्त्रार्थ—
(अपां, पतिः, इष्टकानाम्, वृषभः, अग्नि, स्वर्गान्, संपुद्रान्, समसपत्न, पुरीषं, वसानः, तत्र, गच्छ, यत्र, सुकृतस्य, लोके, पूर्वे, परेताः) जलों के स्वामी इष्टिकाओं की उपधानक्रिया का प्रधान भंग हो तुमने हीन भोग के साधन लोकों को भली प्रकार प्राप्त किया, पुरीष को आच्छादन करते उस स्थान में गमन करो जहां पुण्यात्माओं के लोक में पुरातन कूर्म अग्निपों से उपहित होकर गये हैं ॥ ३१ ॥

मही यौः पृथिवी च न इमे यज्ञं निमिक्षताम् ।

विपुतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

इसकी व्याख्या अ० ११ मं० में होगई ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यन् यतो मृतानि पश्यथ
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

इसकी व्याख्या अ० ४ मं० में होगई ॥ ३३ ॥

ध्रुवांसि ध्रुवोऽतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो
अधिजातवेदाः । स गां यज्या त्रिभुजाऽनुभुजा च
देवेभ्यो हव्यं ब्रह्म प्रजानन् ॥ ३४ ॥

इसका गो० अ०, यु० त्रि० छं०, उवा देवता है । मन्त्रार्थ—
हे उवा ! (ध्रुवा, ध्रुवा, आसि, जातवेदाः, प्रथमम्, इतः, अधि-

जहें) जगत् की धारण करनेवाली तुम स्थिर हो, अग्नि पहिले इस वखा से मकट हुआ है (एभ्यः, योनिभ्यः, सः, प्रजानन्, गायत्र्या, त्रिष्टुभा, च, अनुष्टुभा, देवेभ्यः, हव्यं, वहतु) फिर इन अपने कारणों से मकट होता है वह अग्नि अपने अधिकार को भलीप्रकार जानता हुआ गायत्री त्रिष्टुभ और अनुष्टुभ छन्द की सामर्थ्य से देवताओं के निमित्त हवि को लेजामो ॥ ३४ ॥

इपे राये रमस्व सप्तसे घुम्नेऽऊर्जे अपत्याय ।

सम्राडासि स्वराडासि सारस्वती त्वोत्सौ

मावताम् ॥ ३५ ॥

इसका गो० ऋ०, निचृ० घृ० छं०, उखा दे० है । मंत्रार्थ—
उत्ते ! (इपे, राये, सदसे, घुम्ने, ऊर्जे, अपत्याय, रमस्व, सम्राट्, असि, स्वराट्, असि, त्वा, सारस्वती, उत्सौ, मावताम्) अन्न धन बल यश दुग्ध दधि घृतादि रस और पुत्र पौत्रादि देने के निमित्त यहां दीर्घकाल पर्यन्त स्थित हो तुम भूमिके भलेप्रकार प्रकाशमान हो, स्वर्ग के स्वयं दीप्तिमान राजा हो, तुमको सारस्वती सम्बन्धी बाणी मन पालन करे ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाभ्वांसो देव साधयः ।

अरं धहन्ति मन्यथे ॥ ३६ ॥

इसका भाद्राज ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(देव, अग्ने, ये, ते, साधयः, अश्वांसः, अरं, मन्यथे, वहन्ति, हि, आयुक्ष्व) हे दीप्यमान अग्नि देवता ! जो तुम्हारे चतुरश्रेष्ठ घोड़े शीघ्र तुमको यज्ञ के निमित्त प्राप्त करते हैं उनको ही रथ में जोतो ॥ ३६ ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमा२ । अश्वान् । अग्ने यथोरिंघ

निहोता पूर्यः खदः ॥ ३७ ॥

इसका विरूप ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, देवहूतमान्, अश्वान्, हि, रथी, इव, आयुक्ष्व, पूर्यः, होता, निपदः) हे अग्ने ! देवताओं के अतिशय बुलानेवाले

होनेवाले (अद्रिबुध्नम्, अश्वं, मा, हिंसीः) खुर से पर्वत को खोदनेवाले इस घोड़े को मत मारो ॥ ४२ ॥

अग्रेऽसुमिन्दुमरूपं भुरग्युग्मग्निभीडे पूर्वधितिं
नमोभिः सपर्वभिर्धनुशः कल्पमानो गां मा
हिंसीरदिति विराजम् ॥ ४३ ॥

इसका विरूप ऋ०, नि० भि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(अमसं, इन्दुम्, अरुम्, पूर्वधितिम्, नमोभिः, भुरग्युग्म, अग्नि, ईडे, सः, पर्वभिः, धनुशः, कल्पमानः, अदिति, विराजम्, गां, मा, हिंसीः) क्षयरहित ऐश्वर्य से युक्त रोपरहित पूर्व महर्षियों से क्षयन के योग्य अन्नों से सबके पोषण करनेवाले अग्नि को स्तुति करता हूं, वह अग्नि अमावास्या आदि पर्व, प्रति ऋतु में कर्मों को सम्पादन करता हुआ, अत्यपिहत अदीन दुग्ध दानादि से विराजमान गौ को न मारै ॥ ४३ ॥

यद्वर्त्ता त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिर्मधि जज्ञानाथ
रजसः परस्मात् । महीथ साहसीमसुरस्य
मायामग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

इसका विरूप ऋ०, नि० भि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(अग्ने, परमे, व्योमन्, त्वष्टुःवरुणीम्, वरुणस्य, नाभि परस्मात् रजसः, जज्ञानम्, मही, साहसीम्, असुरस्य, अग्नि, मा, हिंसीः) हे अग्ने ! तत्कृष्ट रणस्थानमें स्थापित रूपोंकी निर्माण करनेवाली वरुणकी नाभितुल्य रक्षणाय दिक्कल्प लोकसे जायमान बड़ी सहस्र मूल्यके योग्य सहस्रों उपकार साधक माणियोंको गन्ता देने वाली अविको मत नष्ट करो ॥ ४४ ॥

यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत
वा दिवस्पतिं येन मजा विष्यकर्म जज्ञान तम-
ग्ने हेहः परिते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

इसका विरूप ऋ०, भि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(यः, अग्निः, अग्नेः, शोकात् अध्यजायत, उत, दिवः पृथिव्याः,

परि) जो अग्निरूप, अज, प्रजापतिके शोकसे उत्पन्न हुआ और युलोकके पृथ्वीके शोकरूप अग्निसे उत्पन्न हुआ (विश्वकर्मा येन मजाः, जज्ञान. अग्ने, ते, हेडः, तम्. पारिवृणक्तु) मजापति ने जिस अज अर्थात् वायुसे प्रजाको उत्पन्न किया है, हे चिति-अग्निदेव ! तुम्हारा क्रोध उस अजको त्यागें ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण-
स्याग्नेः । आ मा घाघापृथिवी अन्तारिक्षं मूर्धं
आत्मा जगत्तस्तस्थुषम्च ॥ ४६ ॥

इसका विरूप ऋ०, विराट् माक्षी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
इसकी व्याख्या अ० ७ । ४२ में होगई ॥ ४६ ॥

इमं मा हिंसीर्दिपादं पशुं सहस्राक्षो
मेधाय चीयमानः । मयुपशुं मेधमग्ने जुपस्व तेन
चिन्वानस्तन्वो निपीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं द्वि-
ष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

इसका विरूप ऋ०, वि० मा० पं० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, मेधाय, चीयमानः, सहस्राक्षः, इमं, दिपादं,
पशुं, मा, हिंसीः) हे अग्ने ! यज्ञ के निमित्त चयन कियेहुए
सहस्रों नेत्रवाले सुवर्णखण्डरूप सहस्रनेत्र तुम इस पुरुषरूप पशु
को मत पीड़ा देना और पीड़ा की इच्छा हो तो (मेधम, मयुम्,
पशुम्, जुपस्व) पवित्र तुरङ्गवदन किम्पुरुष पशु को सेवन करो
(तेन, तन्वः, चिन्वानः, निपीद, ते, शुक्, मयुम्, ऋच्छतु. यं,
द्विष्मः, ते, शुक्, तम्, अच्छतु) उसके सेवन से ज्वालारूप शरीर
पुष्ट करतेहुए तुम यहां स्थित हो, तुम्हारा सन्ताप किम्पुरुष को
माप्त हो, जिससे हम द्वेष करते हैं तुम्हारा सन्ताप उसको माप्त हो ४७

इमं मा हिंसीरिरेकं पशुं कनिकदं वाजिनं
वाजिनेषु गौरमारुण्यमनुतेदिशामि तेन चिन्वा-
नस्तन्वो निपीद गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं
ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

देवता उसके द्वारा पूर्वजन्म में यज्ञादि कर्म करके देवत्व को प्राप्त हुए तथा यज्ञ के योग्य यजमान स्वर्ग को इसी के द्वारा प्राप्त हुए हैं (आरण्यम्, शरमम्, ते, अनुदिशामि) वनका शरम नामक सिंहाती आठ चरण का मृग तुमको देता हूँ (तन्वः, तेन, चिन्वानः, निपीद, ते, शुक्, शरमं, ऋच्छतु, यम्, द्विष्मः, तं, ते, शुक्, ऋच्छतु) शरीर उसके द्वारा पुष्टि को प्राप्त करते हुए तुम यहां स्थित हो तुम्हारी ज्वाला शरम के प्रति प्राप्त हो जिससे हम द्वेप करते हैं उसको तुम्हारी ज्वाला प्राप्त हो ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुपो न्हः पाहि शृणुधी गिरः

रक्षां लोकमुत त्मना ॥ ५२ ॥

इसका उशना ऋ०, नि० गा० छं०, अग्निदेवता हैं । मंत्रार्थ (यविष्ठ, त्वं, गिरः, शृणुधी, दाशुपः, नृन्, पाहि, उत, आत्मना, लोकम्, रक्ष) हे अतिशयतरुण अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियों को श्रवण करो हवि देनेवाले यजमान के मनुष्यों की रक्षा करो और अपने यजमान के अपत्य की रक्षा करो ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्सादयाम्यपां त्वोद्मन्सादयाम्य-
पान्त्वा भस्मन्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिपि
सादयाम्यपां त्वार्यने सादयाम्यर्णधे त्वा सदेने
सादयामि समुद्रे त्वा सदेने सादयामि सरिरे
त्वा सदेने सादयाम्यपां त्वाक्षये सादयाम्यपां
त्वा सधिपि सादयाम्यपां त्वा सदेने सादया-
म्यपां त्वा मधस्थे सादयान्यपां त्वा योनों सा-
दयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पार्थसि
सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि
त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन
त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा

सादयामि पाङ्क्त्येन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

इस कं० में २० मं० हैं । सबका उशना ऋ० छं० १, २

याजुष्यनु० ३, ५, ९, १३, या० वृ०, ४, १०, ११, १२, १४, १५, या० पं०, ६, ७, २०, या, त्रि०, १६, १७, १८, या जु० ११, आसुर्यनु० और सबका इष्टका दे० है । मन्त्रार्थ-हे अपस्या नामक इष्टका ! (अपां, एमन, त्वा, सादयामि) जलों के स्थान में तुमको स्थापन करता हूं । हे अपस्या ! (त्वा, अपां, ओदन् सादयामि) तुझको ओपधियों से स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, भस्मन्, सादयामि) तुमको अभ्र में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, ष्योतिषि, सादयामि) तुमको विद्युत् ष्योति में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, अयने सादयामि) तुझको भूमि में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अर्णवे, सद्ने, सादयामि) तुझको माणके स्थान में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, समुद्रे, सद्ने सादयामि) तुझको मनके स्थान में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, सरिरे, सद्ने सादयामि) तुझको वाणी के स्थान में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपांक्षपे सादयामि) तुझको चक्षु के निवास में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, सधिषि, सादयामि) तुमको श्रोत्र में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां सद्ने सादयामि) तुमको धुलोक में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां सधस्थे सादयामि) तुमको अन्तरिक्ष में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां योनी सादयामि) तुझको समुद्र में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा अपां पुरीषे, सादयामि) तुझको सिकता में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां पायसि सादयामि) तुझको अन्नों में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, गायत्रेण छन्दसा, सादयामि) तुझको गायत्री छन्दके प्रभावसे सादन करता हूं । हे अपस्या (त्रैष्टुभेन, छन्दसा, त्वा, सादयामि) त्रिष्टुप छन्दके प्रभावसे तुझको स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, जागतेन छन्दसा सादयामि) तुझको जगती छन्दके प्रभावसे स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा अनुष्टुभेन छन्दसा

सादयामि) तुम्हको अनुष्टुप् छन्दके मभाव से स्थापन करता हूँ ।
हे अपस्या (त्वा, पांकेन छन्दसा सादयामि) तुम्हको पंक्ति
छन्दके मभाव से सादन करता हूँ ॥ ५३ ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य माणो भौवायनो वसन्तः
प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं
गायत्रादुपांशुरुपांशोऽस्त्रिवृत् त्रिवृतौ रथः
अथ वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया
माणं गृह्णामि पूजाभ्यः ॥ ५४ ॥

इस कं० में १० मं० हैं । सबका उशना ऋ०, छन्द-१ दैवी
त्रि०, २ याजु० जु० ३, ८, या० णि०, ४, ५, ६, या० गा०
९, ७, दै० पं० १० आर्ची गा० है । और सबका माणभृदिष्टका
दै० है । मंत्रार्थ-हे इष्टका जो (अयं, पुरः, भवः, माणः, तस्य,
भौवायनः, प्राणायनः, वसन्तः, वासन्ती, गायत्री, गायत्र्यै गायत्रं
गायत्र्यात्, उपांशुः, उपांशोः, त्रिवृत्, त्रिवृतः, रथन्तरम्, वसिष्ठः,
ऋषिः) यह प्रथम होनेवाला अग्नि है तू इसके रूपवाली है माण
उस भुव नाम अग्निका संतान है माणका पुत्र वसन्त ऋतु है
वसन्त की संतान गायत्री है गायत्री से गायत्र साम उत्पन्न है
गायत्र सामसे उत्पन्न उपांशुग्रह है उपांशुग्रहसे उत्पन्न त्रिवृत्स्तोम
त्रिवृत्स्तोम से निर्मित रथन्तरसाम, सर्वजन्तुओं में अधिष्ठित,
सर्वाधार वशिष्ठ रूप माण ज्ञाता । हे इष्टके (प्रजापति गृहीतया,
त्वया, प्रजाभ्यः, माणम्, गृह्णामि) प्रजापति के द्वारा ग्रहण
की हुई तुम्हारी सहायता से मैं प्रजाओं के निमित्त नीरोग माण-
लाभ के निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्माणं
गोप्सो मानसस्त्रिष्टुप् त्रिष्टुभः स्वारम् ।
स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद्
बृहद् भरद्वाजः ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया
मनो गृह्णामि पूजाभ्यः ॥ ५५ ॥

इस कं० १० मं० हैं । सबका उशना ऋ० । छं० १-२ या०
 वृ० ३, ५ दै० पं०, ४ दै० वृ० ६, ८, ९ या० गा० ७ याजुष्यन्तु०,
 १० आ० गा० है, देवता सबका मनोमृदिष्टका है । मंत्रार्थ—
 यह इष्टका (विश्वकर्मा, अथवा, दक्षिणा) विश्व का निर्माता
 विश्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध यह दक्षिण दिशा में आर्यावर्त्त
 से बहन करती है (मनः, तस्य, वैश्वकर्माणं, मन उस
 विश्वकर्मा का अपत्य है (ग्रीष्मः मानसः) ग्रीष्मः
 मनको अपत्य है (त्रिपुरं ग्रीष्मी त्रिपुषः स्वारं) त्रिपुष्व्छन्द
 ग्रीष्म से मकट है, त्रिपुष्व्छन्द से स्वार साम प्रकटहुआ (स्वारात्
 अन्तर्यामः) स्वार सामसे अन्तर्यामि ग्रहहुआ (अन्तर्यामात्
 पञ्चदशः) अन्तर्याम से पंचदशस्तोम हुआ (पञ्चदशात् बृहत्)
 पञ्चदशस्तोम से बृहत् साम हुआ (भरद्वाजः ऋषिः) अन्न का
 धारण करनेवाला मन सचेतन है । हे इष्टके (प्रजापतिगृहीतया
 त्वया मजाभ्यः मनः गृह्णामि) प्रजापति द्वारा सादर ग्रहण
 कीहुई तुम्हारी सहायता से मजाओं का मन ग्रहण करता हूँ ॥५५॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्धैवव्यचसं
 वर्पाश्चाक्षुष्यो जगती वार्पा जगत्या ऋक् समम्
 ऋक्समाचक्षुः शुक्लात्सप्तदशः सप्तदशा
 द्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया
 चक्षुर्गृह्णामि पूजाभ्यः ॥ ५६ ॥

इस कं० में १० मंत्र हैं । सबका उशना ऋ०, छं०-१ याजुष्यन्तु०,
 २ या० वृ० ३, ४, ६ दै० पं० ५, ७, ९, या० गा०, ८ याजुष्यु०
 १० आ० गा० और देवता सबका चक्षुर्धैदिष्टका है । मंत्रार्थ—
 (अयं, पश्चात्, विश्वव्यचाः, चक्षुः, तस्य, वैश्वव्यचसम्, वर्पा,
 चाक्षुष्या, जगती, वार्पा, जगत्या, ऋक्सामम्, ऋक्सामात्, शुक्लः,
 शुक्लात्, सप्तदशः, सप्तदशात्, द्वैरूपं, जमदग्निर्ऋषिः) यह
 पश्चिमगामी नेश उस रात्रि से उत्पन्न है, ऋतु चक्षु से मकट है,
 जगतीछन्द वर्पाऋतु से मकट है, जगतीछन्द से उत्पन्न ऋक्साम

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥



जिसमें चितिकरण का वर्णन है ऐसे त्रयोदश अध्याय में इष्टका सम्भरण के मंत्र कहे हैं, अब चौदह अध्याय में दूसरी तीसरी और चौथी चिति के मंत्र कहे जायेंगे—

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद,
साधुया । उरुपस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अभिना
ध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

इसका उशना ऋ०, निचृदार्पी त्रिष्टुप् छन्द, अश्विनौ देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (ध्रुवक्षितिः, ध्रुवयोनिः, उरुपस्य, मथमम्, केतुम्, जुषाणा, ध्रुवा, असि, ध्रुवम्, साधुया, योनिम्, आसीद, देवानां, अध्वर्यु, इह, त्वा, सादयताम्) स्थिर निवास वाली अचल कारणवाली उरुप अग्नि के पहले, मथम चितिकप स्थान को सेवन करती हुई स्थिर होओ, स्थिर रेतः सिग्बेला नामक श्रेष्ठ स्थान पर बैठो, देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार इस रेतः सिग्बेला पर तुमको स्थापन करें ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदेने
पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्तिवृमा
ब्रह्म पीपिहि सौमगाय अभिनाध्वर्यु साद-
यतामिह त्वा ॥ २ ॥

इसका उशना ऋ०, नि० घ्रा० वृ० छं०, अश्विनौ देवता हैं । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! (कुलायिनी, घृतवती, पुरन्धिः, पृथिव्याः, स्योने, सदेने, सीद, रुद्राः, वसवः, त्वा, अभिगृणन्तु, इमाः, ब्रह्म, सौमगाय, पीपिहि, अश्विनौ, अध्वर्यु, इह, त्वा, सादय-ताम्) पृथ्वी के यौसने के आकारवाली, होमेद्वारा घृत से युक्त नीचे स्थित प्रथम चिति इष्टकाओं की धारण करनेवाली तुम पृथ्वी के सुखदायक स्थान में स्थित होओ, ग्यारह रुद्र आठ वसु तुमको स्तुत करें, इन मंत्रों को ऐश्वर्य के निमित्त दृष्टि दो यज-

मान का भार्योदय हो, अश्विनीकुमार अध्वर्यु इस स्थल में तुमको स्थापित करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां च सुम्ने वृद्धते
रणाय पितेर्वधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा
तन्वा संविशस्व । अश्विनाध्वर्यु सादय-
तामिह त्वा ॥ ३ ॥

इसका उ० ऋ०, वि० द्रा०, वृ० छ०, अश्विनौ देवता है ।
मंत्रार्थ—हे इष्टते । (दक्षपिता, देवानाम्, रणाय, वृद्धते, सुम्ने,
इह, स्वैः, दक्षैः, सीद) बल की रक्षा करनेवाली तुम देवताओं के
रमणीय बड़े मुख के निमित्त इस दूसरी चिति में अपने बलों से
स्थित होओ, और (आ, सुशेवा, एधि, इव, पिता, सूनवे, स्वा-
वेशा, तन्वा, संविशस्व) सदा मुख की देनेवाली हो निसप्रकार
पिता पुत्र के निमित्त सुखदायक होता है, और मुख प्रवेशवाले
शरीर के साथ यहाँ अवस्थान करो । (अध्वर्यु, अश्विना, इह,
त्वा, सादयताम्) अध्वर्यु अश्विनीकुमार इस स्थान में तुम को
स्थापन करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सोनामे तां त्वा विश्वे
अभि गृणन्तु देवाः स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद
मजाषट्स्मे द्रविणा यजस्व अश्विनाध्वर्यु सा-
दयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

इसका उ० ऋ०, भुरिक् द्रा० वृ० छ०, अश्विनौ दे० है ।
मंत्रार्थ—(पृथिव्याः, पुरीषम्, अप्सोनाम, आसि, ताम्, त्वा,
विश्वेदेवाः, अभिगृणन्तु, स्तोमपृष्ठाः, घृतवती, इह, सीद, मजाषट्
द्रविणा, अस्मे, आयजस्व, अध्वर्यु, अश्विना, इह, त्वा, सादय-
ताम्) हे इष्टके ! तुम पहली चितिकी पूरक अप्स कहिये जलके
कारणीभूत रसरूप हो, उस तुम्हको सम्पूर्ण देतवा सब ओरसे
रतुग करें, प्रिष्ट आदि स्तोम रथन्तरादि पृष्ठ जिसमें पड़े जाते हैं
पेसी हवन होनेयोग्य घृत से युक्त तुम इस दूसरी चिति में ठहरा

को इस दूसरी चितिमें स्थापन करो । (ऋतुभिः सजू, विधाभिः सजू, ययुभिः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः, सजूः, त्वा, वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यु अश्विना, त्वा, इह सादयताम्) हे इष्टके । ऋतुओंके साथके प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिमान् वसुओंके साथ प्रीतिमान् प्राणोंके साथ देवताओंके साथ प्रीतिमान् तुमको विश्व के हितकारी अग्निदेवताकी प्रीतिके निमित्त स्थापन करता हूँ, अध्वर्यु, अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें, (ऋतुभिः, सजूः, विधाभिः, सजूः, रुद्रैः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः सजूः, त्वा वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यु अश्विना, त्वा, इह, सादयताम्) हे इष्टके ! ऋतुओंके साथ प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिमान् रुद्रोंके साथ प्रीतिमान् प्राणोंके साथ देवताओंके साथ प्रीतिमान् तुमको विश्वके हितकारी अग्निदेवताके निमित्त स्थापन करता हूँ अध्वर्यु अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें । (ऋतुभिः, सजूः, विधाभिः, सजूः, आदित्यैः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः, सजूः, त्वा, वैश्वानराय, अग्नये, अध्वर्यु, अश्विना, त्वा, इह, सादयताम्) ऋतुओंके साथ प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिमान् आदित्य के साथ प्रीतिमान् प्राण देवताओंसे प्रीतिमान् तुमको सब विश्व के हितकारी अग्नि देवता की प्रीतिके निमित्त स्थापन करता हूँ, अध्वर्यु, अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें । (ऋतुभिः, सजूः, विधाभिः, सजूः, विश्वैः वैश्वदेवैः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः सजूः, त्वा, वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यु, अश्विना त्वा इह सादयताम्) हे इष्टके । ऋतुओंसे सेवित प्राणोंसे सेवित सम्पूर्ण देवताओंसे सेवित प्राण देवताओंसे सेवित तुमको सब जगत्के हितकारी अग्निदेवताकी प्रीतिके निमित्त गृहण करता हूँ, अध्वर्यु अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें ॥ ७ ॥

प्राणम्मे पाण्डपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि
चक्षुर्मह्यं विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोक्य । अपः

पिन्वौपधीजिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि
द्वियो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

इस कं०में ४ मं० हैं । सबका विश्वदेवा ऋ०. ६, ८, दै० वृ०
१, २, ७, ९, दै० पं०, २, ५, दै, त्रि० १० दै० ज०, ४ गा०
गा० और देवता ६, ८, आप, १, ३, ७, ९, वायुराप, २, ५,
वायु, १०, आप, ४ वायु है । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (मे माणं
पाहि, मे अपानं पाहि, मे, ज्ञानं, पादे) मेरी नाभिसे ऊपर
चलनेवाली माणवायुकी रक्षा करो मेरी नाभिसे नीचे चलनेवाली
अपान वायुकी रक्षा करो मेरे शरीरकी सन्धिगत वायुकी रक्षा करो
हे इष्टके ! तुम (मे, चक्षुः, उर्या, विमदाहि, मे श्रोत्रं श्लोक्यं)
मेरे नेत्रोंको धिस्थिति दृष्टिसे देखनेमें समर्थ करो, मेरे कर्णोन्मिष
को बहुत शब्दों के श्रवणमें समर्थ करो । (अरः पिन्व. औपधीः,
जिन्व, द्विपाद्, अव, चतुष्पात् पाहि, द्विः, वृष्टिम्, परय)
हे इष्टके ! तुम्हारे प्रसादसे यह पृथ्वी वृष्टि के जनसं सिन्धिगद्गो,
औपधियोंका वृक्ष करो द्विपाये माणी मनुष्योंकी रक्षा करो, चौपाये
पशुओंकी रक्षा करो, पुनलोकसे वर्षाको सब ओर भरण करो ॥ ८ ॥

मूर्द्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः स्रग् वयो मग्ने
छन्दो विश्वभो वयोधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा
वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विपुलं छन्दो
वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो ।
व्याघ्रो वयो नाधृष्टं छन्दः सिध्दो धधदछदि-
श्छन्दः पृष्ठवाङ् वयो वृहतीछन्द उश्रा वयः
ककुप्छन्दं कृपभो वयः सुतो वृहती छन्दः ॥ ९ ॥

इस कं०में १९ मंत्र हैं, सबका विश्वदेवा ऋ० । छं०—१, ३, १०,
१७, याजुषी पं०, २, ५, ६, ७, ८, १३, १४, १६, १८, १९,
या० वृ०, ९, ११, १५, याजु० नृ०, ४, १२ या० ज० और सब
का लिङ्गोक्त देवता है । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, छन्दः, वयः, मूर्द्धा)
प्रजापति ने गायत्री छन्द होकर वयद्वारा प्रधान (व्याहण) जाति

की रचना की है । (वयः, वयः, मयन्दं, छन्दः) दुःख से रक्षा करनेवाली क्षत्रिय अवस्था प्रजापति हृष, सुख देनेवाले अनिरुक्त छन्द प्रजापति हृष (आधपतिः, विष्टम्भः, वयः, छन्दः) अधिक पालन करनेवाले जगत् के स्तम्भनकर्त्ता प्रजापति संसाररूप पशु सम्बन्धी अवस्थावाले छन्द हृष (परमेष्ठी, विश्वकर्मा, वयः, छन्दः) परमपद में स्थित होनेवाले सबके सृष्टा प्रजापति वय द्वारा छन्दहृष अर्थात् प्रजापति ने छन्द के प्रभाव से विविध कर्मचारी 'सेवावृत्तियुक्त' शूद्रजाति उत्पन्न की (वयः, विश्वम्, छन्दः, वयः) प्रजापति ने अजा वकरी जानि को एकपद नामक छन्द से उसी अवस्था के अनुसार उत्पन्न किया (विशालं, छन्दः, वृष्णिम्, वयः) द्विपदा गायत्रीरूप छन्द होकर सेवन में समर्थ भेष्य पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (तन्द्रं, छन्दः, पुरुषं, वयः) पंक्ति छन्द होकर जातेहुए किन्नर की अवस्था को उत्पन्न किया (अनाधृष्टं, छन्दः, व्याघ्रं, वयः) विराट् छन्द होकर जातेहुए व्याघ्र पशु को उस अवस्था से प्रजापति ने उत्पन्न किया (छदिः, छन्दः, सिंहम्, वयः) अति जगती आदि छन्द होकर जातेहुए सिंह को उस अवस्था से उत्पन्न किया (वृहती, छन्दः, पटुवाट्, वयः) वृहती छन्द होकर जातेहुए पाँच वर्ष के पीठार भार वहनेवाले पशु को अवस्था द्वारा उत्पन्न किया (ककुप्, छन्दः, उक्षा, वयः) आदि अन्त में अष्ट अक्षर के दो चरण मध्य मध्य का वारह अक्षर का इसप्रकार के ककुप् छन्द होकर जातेहुए उक्षा को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (सतोवृहती, छन्दः, ऋषमम्, वयः) वारह अक्षर के त्रिषादवाले सतावृहती छन्दरूप से गमन करते, भल्लकादि को उसी अवस्था से उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

अनुष्टुप्छन्दः पंक्तिछन्दोऽथेनुर्वयो जगतीछन्दः
अथविर्वयस्त्रिषुप् । छन्दो द्विषाद्वयो विराट्
छन्दः । पंचाविर्वयो गायत्रीछन्दस्त्रिषुप् वयः

उष्णिक् छन्दस्तुर्ध्वाद्बर्षानुष्टुप्छन्दः ॥ १० ॥

अध्यादि (१) ॐ अनङ्वानिति विनियोगादि पूर्ववत् ।
 मन्त्रार्थ—(पंक्तिः, छन्दः, अनङ्वान, वयः) पंक्ति छन्द होकर
 जातेहुए बलीवर्द्ध को उस अवस्था से उत्पन्न किया (जगती
 छन्दः, धेनुः, वयः) जगती छन्द होकर गमन करतेहुए धेनु को
 वय से प्राप्त किया (त्रिष्टुप् छन्दः, त्र्यम्बिः, वयः) त्रिष्टुप्छन्द
 होकर गमन करतेहुए अठारह मासके पशु को वय से उत्पन्न किया
 (विराट् छन्दः, दित्यवाद्, वयः) विराट् छन्द के रूप से गमन
 करते धान्य वहन करनेवाले को उसी अवस्था से उत्पन्न किया
 (गायत्री छन्दः, पंचाभिः, वयः) गायत्री छन्द से गमन करते
 द्वाई वर्ष के पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (उष्णिक्
 छन्दः, त्रिवत्सः, वयः) उष्णिक् छन्द होकर गमन करते तीस
 वर्ष के पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (अनुष्टुप्
 छन्दः, तुर्ध्वाद्, वयः) अनुष्टुप्छन्द होकर गमन करते चार वर्ष
 के पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी अव्ययमानामिष्टकां दृष्ट्व हतं युवम् ।

पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विवाधसे ॥ ११ ॥

इसका विश्वदेवा ऋ०, मुरिगनुष्टुप्छन्द, इन्द्राग्नी तथा स्वय
 मातृणा देवता है । मन्त्रार्थ—(इन्द्राग्नी, युवम्, अव्ययमानाम्,
 इष्टकाम्, दृष्ट्व हत) हे इन्द्राग्नी दोनों देवताओं ! तुम दोनों अचल
 भङ्गगारहित स्वयमातृणा इष्टका को दृढ करो । हे स्वयमातृणा
 इष्टके ! (पृष्ठेन, द्यावापृथिवी, च, अन्तरिक्षम्, विवाधसे) तुम
 अपने ऊपर के भाग में पृथ्वी स्वर्ग और अन्तरिक्ष को बाधित
 करने में समर्थ होओ ॥ ११ ॥

धिश्चकर्म तथा सादयत्तन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यच-

स्वर्तो प्रयस्वतीमन्तरिक्षं पञ्चान्तरिक्षं दृष्ट्व

हान्तरिक्ष मा हिंसीसीः । विश्वस्मै प्राणायोषा-

नायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठायै चरित्राय वायु-

एवाभिपातु मृह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तथा

देवतया अक्षिरस्वन् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

इसका विश्वकर्मा अक्षि, विकृतिरब्धन्द, वायु दे० है । मंत्रार्थ—
हे स्वयमातृण ! (विश्वकर्मा, त्वा, व्यचस्वतीम्, मयस्वतीम्,
अन्तरिक्षस्य, पृष्ठे, सादयतु) विश्वकर्मा प्रजापति तुम अवकाश
युक्त विस्तारवाली को अन्तरिक्ष के ऊपर स्थापन करे । हे इष्टके !
तुम (विश्वस्मै, माणाय, अपानाय, व्यानाय, उदानाय, मतिष्ठाय,
चरिमाय, अन्तरिक्षम्, यच्च, अन्तरिक्षं, दृष्ट्व, अन्तरिक्षं, मा,
द्विष्टसीः) सम्पूर्ण प्राणियों के प्राण अपान व्यान उदान की
वृत्तिलाम अर्थात् वायुबल की दृढता के निमित्त, स्वगृह की मतिष्ठा
और शास्त्र आचरण करने के निमित्त तुम अन्तरिक्ष को गन्धर्वादि
अप्सराओं के धारण योग्य करो, अन्तरिक्ष को दृढ करो, अन्तरिक्ष
को मत पीड़ा दो (वायुः, त्वा, मृह्या, स्वस्त्या, शन्तमेन, छर्दिषा,
अभिपातु, तथा, देवतया, अक्षिरस्वन्, ध्रुवा, सीद) वायु देवता
तुमको बड़ी योगक्षेम की सम्पत्ति से शुभकारी विशेष तेज से सब
ओर से रक्षा करे तुम्हारा जो अधिष्ठात्री देवता है उस देवता से
अनुगृहीत हुई अक्षिरा की समान निश्चल स्थित होओ ॥ १२ ॥

राश्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक्

सम्राडसि मतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगाधि

पश्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं । सबका विश्वदेव अ०, छं०—१ या०
गा०, २, १, या० जु०, ४, याजुष्यु० ५ या० वृ० है और दिग्दे
देवता है । मंत्रार्थ—हे दिश्या इष्टके ! तुम (रात्री, प्राची, दिक्,
असि) राजमान होती पूर्व दिशा गायत्रीरूप हो (विराट्, दक्षिणा
दिक्, असि) नानाप्रकार से विराजमान तुम दक्षिण दिशा
त्रिष्टुपरूप हो । (सम्राट्, मतीची दिक्, असि) मलीप्रकार वि-
राजमान तुम पश्चिमदिशा जगतीरूप हो । (स्वराट्, उदीची दिक्,
असि) स्वयं विराजमान तुम उत्तरदिशा अनुष्टुपरूप हो । (अधि-

पत्नी, वृद्धी, दिक्, असि) स्वयं अधिक रक्षा करनेवाली तुम
पंक्तिरूप हो तुमको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्यन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योति-
ष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानाय
विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुप्रेधिपतिस्तया देवत-
याहिरस्वद् ध्रुवासीद ॥ १४ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ०, शक्वरीछं० वायु देवता है । मंत्रार्थ—
हे इष्टके ! (विश्वकर्मा, ज्योतिष्मती, त्वा, अन्तरिक्षस्य, पृष्ठे,
सादयतु, विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय, व्यानाय, विश्वं ज्योतिः,
यच्छ, वायुः, ते, अधिपतिः तया, देवतया, अहिरस्वत्, ध्रुवा,
सीद) मन्त्रपति वायुरूप तुम्हको अन्तरिक्षके ऊपर स्थापन करे,
यजमानके सम्पूर्ण प्राण, अपान व्यान के निमित्त सम्पूर्ण ज्योति
को दो, वायु देवता तेरा स्वामी है उस अधिष्ठात्री देवता के मन्त्र
से समष्टि प्राणकी समान इस अग्निचयन कार्य में निश्चल ठहरो १४

नमश्च नमस्त्यरच, वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः श्ले-
पोसि कल्पेतां यावापृथिवी कल्पन्तामाप
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः प्रथक् सम ज्यैष्ठ्याय
समन्ताः । ये अग्नयः समन्तसोन्तरा यावापृथिवी
इमे वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा
अभिसंविशन्तु तया देवतयाहिरस्वद् ध्रुवे
सीदतम् ॥ १५ ॥

इसका विश्वेदेव ऋ०, स्वराटविकृति छं०, अतव देवता है ।
मंत्रार्थ—(नमः) श्रावण (नमस्त्यः) मादों शेष की व्याख्या
१३ । २५ में होगई ॥ १५ ॥

इपश्चोर्जश्च शाशदावृतू अग्नेरन्तः श्लेपोसि
कल्पेताम् यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः
कल्पन्तामग्नयः प्रथक् सम ज्यैष्ठ्याय समन्ताः ।
ये अग्नयः समन्तसोन्तरा यावापृथिवी इमे

शारदावृत्तु अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा
अभिसंविशन्तु तया देवतयाहिरस्वद् ध्रुवे
सौदतम् ॥ १६ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, सुरिगुत्कृति छन्द, ऋतु देवता है ।
मंत्रार्थ—(इपः) आश्विन (ऊर्जः) कार्तिक (शारदा) शरद्
(ऋतु) ऋतु के दो अवयव । अ० १३ । कं० २५ में शेष की
व्याख्या होगई ॥ १६ ॥

आयुर्मे पाहि प्राणर्मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं
मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे
पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे
पच्छ ॥ १७ ॥

इस कं० में १० मंत्र हैं । सबका विश्वदेव ऋ०, छं० १-९,
दैवी त्रि०, १, २, ४ से १० तक दे० पं०, सबका लिंगोक्त दे० है ।
मंत्रार्थ—(मे, आयुः, पाहि, मे, प्राणं, पाहि, मे, अपानं, पाहि,
मे, व्यानं, पाहि, मे, चक्षुः, पाहि, मे, श्रोत्रं, पाहि, मे, वाचं, पिन्व,
मे, मनः, जिन्व, मे, आत्मानं, पाहि, मे, ज्योतिः, पाहि) हे
इष्टके ! मेरी आयु की रक्षा करो, मेरे प्राण की रक्षा करो, मेरे
अपान वायु की रक्षा करो, मेरे व्यान वायु की रक्षा करो, मेरे
दोनों नेत्रों की रक्षा करो, मेरे दोनों कानों की रक्षा करो, मेरी
बाणी को कामनाओं से पूर्ण करो, मेरा मन प्रसन्न करो, मेरे
शरीर की भारन्ध समाप्तिपर्यन्त रक्षा करो, मेरे प्राणरूप तेज
की रक्षा करो ॥ १७ ॥

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अघीषय-
श्छन्दः पंक्तिश्छन्दः वृष्णिक् छन्दो बृहती
छन्दोतुष्टु छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्द-
स्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

इस कं० में १२ मंत्र हैं । सबका विश्वदेव ऋ०, छं० १, १९,
२८, २२ दैव्यतुष्टु २, ५, ६, ९, ११, १६, १९, २०,

२३, २४, दै० वृ०, ३, ७, ८, १०, १२, १३, ११, २५,
२६, २७, ३०, ३१, दै० पं० ४, १४, १७, २८, २९, ३१, ३२,
३६, दै० त्रि० और सब कालिदासादे० है। मंत्रार्थ—(ममा छन्दः)
हे इष्टके ! अन्तरिक्ष, लोक को मनन करते तुमको स्थापन करता
हूँ । (मतिमा; छन्दः) मतीतिहारक धुनोके छ्दाकरूप हो
मतिमा छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ, (अस्तीवयः
छन्दः) पतनशील अन्न त्रिलोकीरूप छ्दाकरूप हो, अस्तीवय
छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ (पंक्तिश्छन्दः उष्णिक्
छन्दः, वृहतीछन्दः, अनुष्टुप्छन्दः, विराट्, छन्दः, गायत्री छन्दः
त्रिष्टुप्छन्दः, जगतीछन्दः) पंक्ति छन्दको मनन करते तुमको स्था-
पन करता हूँ, उष्णिक् छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता
हूँ, वृहतीछन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ अनुष्टुप्छन्द
को मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ, विराट्छन्दको मनन करते
तुमको स्थापन करता हूँ, गायत्री छन्दको मनन करते तुमको स्था-
पन करता हूँ, त्रिष्टुप्छन्द को मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ
जगती छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ तुम इन सब
की रूप हो ॥ १८ ॥

करता हूं, नक्षत्र देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, वाग्देवता वाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, मनदेवता वाले० कृषि देवतावाले० हिरण्य देवतावाले० गौ देवतावाले० अज्ञा देवतावाले० अश्वदेवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं ॥ १९ ॥

अग्निदेवता वाता देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा
देवता वसवो देवता रुद्रा देवता अदित्या देवता
मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिदेवतो
देवता धरुणो देवता ॥ २० ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, भुरिग्राही मि० छं० अग्न्यादय दे० है । मंत्रार्थ—(अग्निः, देवता, वातः देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, वसवो देवता, रुद्राः देवता, आदित्याः देवता मरुतो देवता विश्वेदेवाः देवता बृहस्पतिः देवता इन्द्रो देवता बरुणः देवता) अग्नि देवताको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, वायु देवता० करते० सूर्य देवताको मनन करते यह०, चन्द्रमा देवताको मनन करते यह० वसुदेवताओंको मनन करते यह०, रुद्र देवताओंको मनन करते यह० आदित्यदेवताओंको मनन करते० मरुदेवताओंको मनन करते यह० विश्वदेवा देवताओं को मनन करते यह० बृहस्पति देवताको मनन करते यह०, इन्द्र देवताको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं ॥ २० ॥

मूर्ध्नासि राट् ध्रुवासि धरुणा ध्रुवसि धरणी ।

आपुपे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, निचू० जु० छं०, और माणदेवता है । मंत्रार्थ—(राट्, मूर्धा, आसि, धरुणा, ध्रुवा, आसि धर्मा, धरणी आपुपे, त्वा, वर्चसे, त्वा, कृष्यै, त्वा, क्षेमाय, त्वा) देवालाखिले ! तुम मकाशवाइ मूर्धाकी समान उत्तम हो, धारण इतने और स्थिर हो, तुम ध्रुवरूपसे इस स्थलको धारण करो, धारण करनेवाली अमिरूप हो, तुम धरणस्वरूपसे इस स्थलको

धारण करनेमें तत्पर होओ, आणुवृद्धिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ, कान्तिके निमित्त तुमको स्थापन०, अन्नकी वृद्धिके निमित्त तुमको० कल्पाणकी वृद्धिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २१ ॥

यन्त्री राट् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री ।

इप त्वां त्वां इयै त्वा पोपाय त्वा लोकन्ता ।

इन्द्रम् ॥ २२ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, परोष्णिक् छं०, प्राणदेवता है । मंत्रार्थ हे बालखिल्ये ! तुम (यन्त्री राट्, यन्त्री, यमनी, असि, ध्रुवा, धरित्री, असि) नियमसे युक्त विराजमान हो इस स्थानमें विराजमान हो, स्वयं भी नियमवाली सबकी नियम करानेवाली हो स्थिर धरणी भूमिरूप हो, हे बालखिल्ये ! (इपे, त्वा, ऊर्जे त्वा, इयै त्वा, पोपाय त्वा,) अन्न प्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ, बलप्राप्तिके निमित्त तुमको धनप्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ धनप्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृत् भ्रान्तः पंचदशो व्योमाससदशो
ध्रुवो एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवद-
शो भीमशः सविंशो धर्वा द्वाविंशः सम्भ-
रणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः गर्भाः पंच-
विंश ओजस्त्रिणवक्रतुरेकविंशः प्रतिष्ठा
ध्रुवस्त्रिंशो मृध्नस्त्रिंशो चतुस्त्रिंशो नाकः
पट्त्रिंशो विवर्तोष्टाचत्वारिंशो ध्रुवो च-
तुष्टोमः ॥ २३ ॥

इसका मंत्र १८ मंत्र है । ऋ० १ विश्वदेव और सबका विश्व कर्मा है, छं०—१ दै० वृ०, २, ३, ६, १०, ११, १३, १८ दै० त्रि० ४, ५, ७, १४ दै० ज०, ८, १२, १६ दै० पं०, ९, १७ याजुष्य० १५ या० पं०, सबका लिंगोक्त देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! (श्रिवत् आशुः) श्रिवत् स्तोम तथा त्रिलोक में व्याप्त वायु देवता

को मनन करते विष्टव आधुरूप तुमको इस स्थान में स्थापन करता हूँ, (पञ्चदशः भान्तः) पन्द्रह दिनमें इस और वृद्धिपाने वाले पंचदश कलाके अधिपति चन्द्रज्योतिको मनन करते तुमको सादन करता हूँ (व्योमा सप्तदश) अनेक प्रकार से रक्षा करने वाला मजापति सप्तदश स्तोमरूप है, (धरुणः एकविंशः) धारण कर्त्ता प्रतिष्ठा रूप, एकविंश स्तोम है (प्रतूर्तः अष्टादश) सम्बत्सर बारह महीने पांच ऋतु एक सबत्सर इन अठारह अवयववाला है (तपः, नवदशः) तप रूप नवदश स्तोम है, (अभीवर्तः, सविंशः) समावृत्ति रूप सविंश स्तोम है, (वर्चः, द्वविंशः) विशेष बल देनेवाला द्वाविंश स्तोम है, (सम्भरणः त्रयोविंशः) सम्पत् पुष्टिकारक त्रयोविंश स्तोम है, (योनिः चतुर्विंशः) प्रजाका उत्पादक, चतुर्विंश स्तोम है (गर्भाः पञ्चविंशः) सामगर्भ, पञ्चविंश स्तोम है (ओजः प्रिवणः) तेजस्वी, निवण स्तोम है (क्रतुः एकत्रिंशः) यज्ञके उपयोगी, एकत्रिंश स्तोम है (प्रतिष्ठा, त्रयोविंशः) स्थिरांगकोहेतु, त्रयोविंश स्तोम है (ग्रन्थस्य विष्टव चतुस्त्रिंशः) सूर्य का, स्वाराज्य निवासस्थान भुवन देनेवाला, चतुस्त्रिंश स्तोम है (नाकः पट्विंशः) स्वर्गका देनेवाला, पट्विंश स्तोम है, (त्रिवर्तः, अष्टचत्वारिंशः) सामके आवर्तनोंसे युक्त, अष्टचत्वारिंश स्तोम है (धर्मम् चतुष्टोमः) धारक होनेसे, विष्टव पञ्चदश सप्तदश, एकविंश इनचार स्तोमोंका संपूर्ण रूप है ॥ २३ ॥

अग्नेर्भागोसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्मस्पृतं
विष्टस्तोमः इन्द्रस्य भागोसि बिष्णोराधिपत्यं
सत्रं स्पृतं पंचदशस्तोमः नृचक्षसां भागोसि
धातुराधिपत्यं जनित्रं स्पृतं सप्तदशस्तोमः ।
मित्रस्य भागोसि चरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टि-
र्षातं स्पृतं एकत्रिंशस्तोमो वसुनां भागः ॥ २४ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका विश्वदेव ऋ०, छं-१ साम्नी पं०, २ सा० त्रि० ३ साम्नी ज०, ४ आर्चो वृ० और दे० सबका

लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—हे इष्टके जो तुम (अग्नेः भागः, असि, दीक्षायाः, आधिपत्यम्, त्रिवृत्स्तोमः, यज्ञ, स्पृतम्) अग्निकी, भागदा जो तुम्हारे ऊपर दीक्षाका आधिपत्य है इस कारण तुमसे त्रिवृत्स्तोमद्वारा, घातणजाति, मृत्युसे रक्षित हुई है त्रिवृत्स्तोम को मनन करते तुमको सादन करताहूँ (इन्द्रस्य, भागः, असि, विष्णोः आधिपत्यं, पंचदशस्तोमः, जनिं, स्पृतम्) इन्द्रका, भाग हो, तुम्हारे ऊपर, विष्णुका आधिपत्य है, पंचदशस्तोमसे, क्षत्र जातिकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है, (नृवक्षसाम्, भागः, असि, धातुः, आधिपत्यम्, सप्तदशस्तोमः जनिं स्पृतम्) मनुष्योंके शुभाशुभ जात्रवाले देवताओंके, भाग, हो तुम्हारे ऊपर धातुका आधिपत्य है तुमने, सप्तदशस्तोमद्वारा वैश्वजातिकी मृत्युमुखसे रक्षा किया है सप्तदशस्तोमको मनन करते तुमको सादन करताहूँ (मित्रस्य, भागः, असि, वरुणस्य, आधिपत्यं एकविंशस्तोमः, दिवः, हृष्टिः, वातः, स्पृगः) माणोंका भाग हो तुम्हारे ऊपर वरुणका आधिपत्य है एकविंशस्तोमकेद्वारा धुलोक सम्बन्धिनी वर्षा पवन मृत्युमुखसे रक्षित है ॥ २४ ॥

यसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं
चतुर्विंशस्तोमः । अदित्यानां भागोसि स-
रुतामाधिपत्यं गभीस्पृताः पंचविंशस्तोमः ।
अदित्ये-भागोसि पूष्ण आधिपत्यमोजस्पृतं
त्रिणवस्तोमो देवस्य सवितुर्भागोसि बृहस्पते
राधिपत्यं समीचीर्दिशस्पृताश्चतुष्टोमः स्तोमो
यवानां भागः ॥ २५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं सबका विश्वेदेव अ० ङं० १, २ सा० ज०,
१, आर्च्युष्णिक्, ४, आर्ची पं० है देवता सबका लिङ्गोक्त है ।
मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (वसूनाम्, भागः, असि, रुद्राणाम् आधि-
पत्यम्, चतुर्विंशस्तोमः, चतुष्पाद् स्पृतम्) वसुगणका भाग हो
तुम्हारे ऊपर रुद्रोंका, आधिपत्य है, चतुर्विंशस्तोमकेद्वारा तुमने

चौपायोंकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है (आदित्यानां, भागः, असि, मरुतां, आधिपत्यं, चत्वारिंशस्तोमः, गर्भाः, स्पृतम्) आदित्य गणोंका भाग, हो तुम्हारे ऊपर मरुद्गणोंका आधिपत्य है, पंचविंशस्तोमकेद्वारा गर्भोंकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है पंचविंशस्तोम देवताको मनन करते तुमको इसस्थानमें सादन करता हूँ (आदित्ये भागः, असि, पूष्णः, आधिपत्यं, त्रिणवस्तोमः, ओजः स्पृतम्) आदित्यके, भाग हो तुम्हारे ऊपर पूषादेवताका अधिकार है त्रिणवस्तोमद्वारा मजाओंके ओज आठवों धातुकी रक्षाकी है त्रिणवस्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापना करता हूँ (सविषुः देवस्य, भागः, असि, बृहस्पतेः आधिपत्यम्, चतुष्टोमः, समीचीः दिशः स्पृताः) सबके प्रेरक सविता देवका भाग हो तुम्हारे ऊपर बृहस्पति देवताका स्वामित्व है, चतुष्टोम स्तोमकेद्वारा संपूर्ण मनुष्यों के जाने योग्य दिशा मृत्युसे रक्षा की गई चतुष्टोमस्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २५ ॥

यवानाम्भ्रागोऽप्ययवानामाधिपत्यं मजा स्पृताश्च
तुश्चत्वारिंशस्तोमं ऋभूणाम्भ्रागोऽसि विश्वे-
पांतेवानामाधिपत्यम्भूतश्च स्तुतन्त्रयस्त्रिंश-
स्तोमः सहश्च ॥ २६ ॥

इस कं० में १ मं० है। सबका विश्वदेवशक्ति० १ भु० गा० १ स्वराष्ट्र गा० और लिखित देवता है मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (यवानाम्, भागः, असि, अप्ययवानाम्, आधिपत्यं, चत्वारिंशस्तोमः, मजाः, स्पृताः) पूर्वपक्षों के भाग हो तुम्हारे ऊपर कृष्णपक्षकी त्रिपियोंका स्वामित्व है तुमने चत्वारिंशस्तोमके द्वारा प्रजाकी मृत्युमुखसे रक्षाकी (ऋभूणां, भागः, असि विश्वेषाम् देवानां, आधिपत्यम्, त्रयस्त्रिंशस्तोमः, भूतं, स्पृतम्) ऋभुनामक देवताओंका भाग हो तुम्हारे ऊपर संपूर्ण देवताओंका आधिपत्य है, त्रयस्त्रिंशस्तोमके द्वारा तुमने प्राणीमात्रकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है ॥ २६ ॥

सहस्रं सहस्रं च हैमन्तिकावृतं अग्नेरन्तः
 स्लेपोसि कल्पेतां वावापृथिवी कल्पन्तामाप
 ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथक् मम ज्यैष्ठ्याय
 सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा वावापृथिवी
 इमे हैमन्तिकावृतं अभिकल्पमाना इन्द्रमिव
 देवा अभिसंधिंशन्तु तपां देवतपाङ्गिरस्वद्
 ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं०-१. मुरिगति
 ज०, १ भु० आ० वृ० और देवता सबका ऋतु है। मंत्रार्थ—(सहः)
 मार्गशीर्ष (च) और (सहस्रः) पौष (हैमन्तिकौ, ऋतु) हैमन्त
 ऋतु के अवयव हैं। शेष की व्याख्या अ० १३ कं० १५ में होगई २७

एकया स्तुवत प्रजा अधीयन्त मजापतिरधिप-
 तिरासीत् । तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्म-
 णस्पतिरधिपतिरासीत् । पञ्चभिरस्तुवत भूता-
 न्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्त-
 भिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिप-
 तिरासीत् ॥ २८ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं०-१ साक्नी
 त्रि०, २ ति० गा०, ३ सा० ज०, ४ सा० वि० है। मंत्रार्थ—
 (एकया, प्रजाः, अधीयन्त, मजापतिः, अधिपतिः, आसीत्)
 मजापति ने एक ही वाणी के साथ आत्मा की स्तुति की वससे
 सब प्रजा उत्पन्न हुई मजापति उनके स्वामी हुए (तिसृभिः, अ-
 स्तुवत, ब्रह्म, असृज्यत, ब्रह्मणस्पतिः, अधिपतिः, आसीत्)
 प्राण उदान व्यानोंसे स्तुतिकी वेदकी रचनाकी वेदकर्त्ता स्वामी
 हुए (पञ्चभिः, अस्तुवत, भूतानि, असृज्यन्त, भूतानाम्पतिः,
 अधिपतिः, आसीत्) पाँच प्राणों से स्तुति की वससे पञ्चभूत

आसीत्) थोप २ नासिका २ चक्षु २ जिह्वा १ इन सातों की सहायता से स्तुति की सप्तश्रुति प्रकट हुए जगत्कर्त्ता देव उनके स्वामी हुए ॥ २८ ॥

नवभिर्स्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्या-
सीत् । एकादशभिर्स्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्ता-
र्त्तुवा अधिपतय । आसन्नपोदशभिर्स्तुवत
मासाऽसृज्यन्त संवत्सरोधिपतिरासीत्पञ्च-
दशभिर्स्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोधिपतिरासी-
त्सप्तदशभिर्स्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त
पृहस्पतिरधिपतिरासीन्नवदशभिर्स्तुवत ॥ २९ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं, सबका विश्वदेव ऋ०, छं०-साम्नी
पं० २, ३ सां० ज० ४ आर्ष्यु०, ५ आ० वृ०, और सबका सृष्टी-
ष्टिका दे० है । मन्त्रार्थ—(नवभिः, अस्तुवत, पितरः, आदितेः,
अधिपत्नी, आसीत्) सातशिरकेमाण और दो नौवे अर्थात् नव
द्वार शरीरके माणोंकी सहायतासे प्रार्थनाकी वससे पितृ०ण आति-
ष्ठादि उत्पन्न हुए अत्रादिदत्त प्रजापति शक्ति उनकी स्वामिनी
हुई कारण कि पितर अपनी अखण्ड शक्तिसे ही सर्वत्र भ्रातृ
करनेवालोंको प्राप्त होते हैं (एकादशभिः, अस्तुवत ऋतवः, असृ-
ज्यन्त, आर्त्तवाः, अधिपतयः, आसन्) दशमाण ग्यारहवां आत्मा
इन ग्यारहसे, स्तुतिकी वससे वसन्तादि ऋतु प्रकट हुई उनके
ऋतुपालक देवविशेष स्वामी होते हुए (त्रयोदशभिः, अस्तुवत,
मासाः, असृज्यन्त, संवत्सरः, अधिपतिः, आसीत्) दश माण
दोषाद [प्रतिष्ठा] एक आत्मा अभ्यन्तरीय संस्थान से स्तुति
की, उनसे चैत्रादि अधिक मास सहित रचनाकी दो अयन मास
का अभिमानी वर्ष उनका पालक हुआ (पञ्चदशभिः, अस्तुवत
क्षत्रम्, असृज्यन्त, इन्द्राः, अधिपतिः, आसीत्) दश हाथकी
अंगुली दो हाथ दो भुजा एक नाभिका ऊर्ध्वभाग इनके द्वारा
स्तुतिकी सन्निय जातिको उत्पन्न किया, उनका इन्द्र स्वामी हुआ

(सप्तदशभिः, अस्तुवत, ग्राम्याः, पशवः, असृज्यन्त वृहस्पतिः, अधिपतिः, आसीत्) दश पैरकी अंगुलि दो चर दो जानु दो पाद और नाभिका अधोभाग इनके देवताओं सहित स्तुतिकी उनसे ग्रामके गाँ आदि पशुओं की रचना की वृहस्पति देवता उनके स्वामी हुए ॥ २९ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे
अधिपत्नी आस्ताम् । एकविंशत्यास्तुवतैक-
शकाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोधिपतिरासीत् ।
त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त
पूपाधिपतिरासीत् । पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः
पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् । सप्त-
विंशत्यास्तुवत चाचोऽधिपतिर्व्येतां वसधो
क्षुद्रा आदित्या अनुष्णांस्त एवाधिपतय आसन् ॥ ३० ॥

इस कं० में ९ मं० हैं । सबका विशद्वंश ऋ०, छं०-१ नि०
दा० वृ०, १ ध्रु० सा० ज०, ३ नि० सा० ज०, ४ सा० ज०,
५ आ० ज० और सबका सृष्टीष्टिका देवता है । मन्त्रार्थ—
(नवदशभिः, अस्तुवत, शूद्रार्याः, असृज्येताम्, अहोरात्रे, अधिपत्नी,
आस्ताम् । दश हाथ की अंगुलि ऊपर नीचे के छिद्ररूप नौ माणों
से स्तुति की उससे शूद्र और वैश्य जाति उत्पन्न कीं, उनके दिनरात
स्वामी हुए (एकविंशत्या, अस्तुवत, एकशकाः, पशवः, असृज्यन्त,
वरुणः, अधिपतिः, आसीत्) बीस हाथ पैरकी अंगुली दो चरण एक
आत्मा उनसे स्तुति की, एक खुरवाले पशु उत्पन्न किये, वरुण उनका
स्वामी हुआ (त्रयोविंशत्या, अस्तुवत, क्षुद्राः, पशवः, असृज्यन्त,
पूपा, अधिपतिः, आसीत्) बीस हाथ पैरकी अंगुलि दो चरण
एक आत्मा इनके साथ स्तुतिकी इससे क्षुद्र पशु अजाआदि उत्पन्न
किये पूपा देवता उनका स्वामी हुआ (पञ्चविंशत्या, अस्तुवत,
आरण्याः, पशवः, असृज्यन्त, वायुः, अधिपतिः, आसीत्) बीस
हाथ पैरकी अंगुलि दो हाथ दो चरण एक आत्मा के साथ

अथ पंचदशोऽध्यायः ॥



जिसमें चित्ति प्रधान है ऐसे चौदहवें अध्याय में दूसरी तीसरी चौथी चित्तिके मन्त्र कहे । अब पन्द्रहवें अध्यायमें पांचवीं चित्ति के मन्त्र कहे जायेंगे ।

॥ हरिः ॐ ॥ अग्ने ज्ञातान् प्रणुंदानः सपत्नान्
प्रत्यजातान्नुदजातवेदः । अधि नो ब्रूहि सुमना
अहेङ्स्तव स्याम शर्मोस्त्रिवरुंथ उद्भौ ॥ १ ॥

इसका परमेश्वरी ऋ०, त्रिष्टुप् छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (जातवेदः, अग्ने, नः, ज्ञातान्, सपत्नान्, आ, प्रणुद, अजातान्, प्रतिनुद, सुमनाः, अहेङ्, नः, अधिब्रूहि) हे सबकं जानने वाले अग्नि देव हमारे पूर्व उत्पन्न शत्रुओंको सब प्रकारसे अधिकतासे नष्टकरो, अनुत्पन्न शत्रुओंको बिनष्ट करो अरु अन्तःकरणसे क्रोधरहित होकर हमको वर प्रदान करो—हे अग्ने (तव शर्मन्, उद्भौ, त्रिवरुंथे स्याम) आपके सम्बन्धी सुखके आश्रय मनुष्य पशु धन धान्य आदिके प्रभवस्थान, सदोमण्डप हविर्धान्य आग्नीध्र प्रदेश इन तीनों स्थानोंमें, सदा यज्ञ करें ॥ १ ॥

सहसा ज्ञातान् प्रणुंदानः सपत्नान् प्रत्यजाता-
जातवेदो नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो
वृषधस्त्वाम् प्रणुंदानः सपत्नान् ॥ २ ॥

इसका परमेश्वरी ऋषि, त्रि० छन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (जातवेदः, सहसा, ज्ञातान् नः सपत्नान्, आ, प्रणुद, अजातान्, प्रतिनुदस्व, सुमनस्यमानः, नः, अधिब्रूहि, वयम्, आ, स्याम) हे जातप्रज्ञान अग्ने ! बलसे उत्पन्न हुए हमारे शत्रुओंका सब ओरसे नाशकरो भविष्यत्में होनेवालोंकी उत्पात्तिको रोक दो सदातःकरण से क्रोधरहित हो हमको शत्रुओंसे बली कहो, तुम्हारे प्रसादसे हम सब प्रकार अधिक हों, (नः, सपत्नान्, प्रणुद) हमारे शत्रुओंका नाश करो ॥ २ ॥

पोहशीस्तोम ओजो द्रविणं चतुधत्वारिंश
स्तोमो वर्चो द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्वप्नो
नाम तान् त्वा विश्वे अभिष्टगन्तु इवः । म्ता-

मंपृष्ठा घृतवत्सीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व रे

इसका परमेष्ठी ऋ०, छं० १-आ० त्रि०, २ आसुर्यनु०, ३
निष्ठ० त्रि० और देवता सबका इष्टिका है । मंत्रार्थ-हे इष्टके !
(पोहशीस्तोमः, ओजः द्रविणं) पंचदशकला और पक्षका स्वामी
आदित्यरूप पोहशवृत्तिरूप स्तोमके प्रभावसे तुमको स्थापन करता
हूँ, इस स्थानमें तेज और धनकी माप्ति हो, हे इष्टके ! (चत्वारि
ंशः, वर्चः द्रविणम्) चौबालीस आद्युत्तियुक्त चतुधत्वारिंशस्तो
रूप वज्र कान्तिरूप धन प्राप्ति (अस्तिः, नाम, अग्नेः, पुरीषम्,
असि, ताम्र, त्वा, विश्वे, देवाः, अभिष्टगन्तु, स्तोमपृष्ठा, घृत-
वत्सी, इह, सीद, अस्मे, प्रजावत्, द्रविणं, आयजस्व) रक्षक नाम
से युक्त, पंचदश कलावाले चन्द्ररूप अग्निके पूर्ण करनेवाले हो
उस तुमको सम्पूर्ण देवता स्तुति करें, सम्पूर्ण स्तोमपृष्ठ मंत्रोंके
प्रभावसे होमहुए घृतसे संयुक्त होती तुम इस चौबीस चित्तिके ऊपर
ठहरो । हमको इसके फलरूपसे पुनयुक्त धनदो ॥ ३ ॥

पृथुश्छन्दो धरिश्छन्दः शम्भुश्छन्दः पारि-
श्रुश्छन्दः आच्छच्छन्दो मनुश्छन्दो वपश्च-
श्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सारि-
श्छन्दः क्रकृश्छन्दः शिकृश्छन्दः काव्यं छन्दो
अंकुषं छन्दोक्षरपंक्तिश्छन्दः पदपंक्तिश्छन्दो
विप्रारपंक्तिश्छन्दः सुरोअज्ज्छन्दः ॥ ४ ॥

इस कं० में ४० मं० हैं । सबका परमेष्ठी ऋ० है । छं०—१,
२, ५, ६, ७, ८, ११, १३, १९, २०, २१, २२, २३, २७,
२८, २९, ३१, ३५, ३७, ३९, देवी छं० २, ४, ९, १०, १२,
१४, २५, २६, ३०, ३२, ३४, ३६, ३८, ४०, दे० पं० १६,
१८, २४, ३८, दे० त्रि०, १६, १७, दे० ज० है और सबका

इष्टका दे० है । मंत्रार्थ—हे इष्टके (एवञ्छन्दः, धरिवश्छन्दः, शम्भूश्छन्दः, परिभूश्छन्दः, आच्छन्दः, मनश्छन्दः, व्यचश्छन्दः, सिन्धुश्छन्दः, समुद्रश्छन्दः, सरिरश्छन्दः, ककुब्धश्छन्दः, त्रिककुब्धश्छन्दः, काव्यश्छन्दः, अक्काश्छन्दः, अक्षरपंक्तिश्छन्दः, पदपंक्तिश्छन्दः, त्रिप्यारपंक्तिश्छन्दः, क्षुराभ्रजश्छन्दः) जिसमें सब प्राणी चलते हैं ऐसे भूलोकको मनन करतेभुमको स्थापन करताहूँ प्रथममण्डलसे व्याप्त अन्तरिक्षलोक, सुखदायक धुलोकको मनन करते सबभोर से व्याप्त होकर वर्तमानदिशाको मनन करते, अपने रसंभ शरीरको आच्छादन करनेवाले अन्नको० प्रजापतिरूप मनको० सब जगत्को व्याप्त करने वाले आदित्यको० नादियों द्वारा शरीर को व्याप्त करनेवाले प्राणवायुको० तमूद्रके समान गम्भीर विकल्पयुक्त मन को० मुखसे निकलने वाली वाणीको० शरीरको दीक्षकर धारण करने वाले प्राणको० पिये हुए जलको तीन प्रकार का करने वाले उदानको० प्रयी विद्या अर्थात् वेदत्रयको० कुटिलगति चलने वाले जलको० नाशरहित स्वर्गलोक को०, जिसमें चरण रखेजातेहैं उस भूलोकको०, जहां सकल वस्तु विस्तारितहैं उस दिशा पाताल को०, तीव्रतासे आकाश को लिखने प्रकाशनेवाले विद्यत्पुञ्ज वा आदित्यको मनन करते हुए स्थापन करताहूँ ॥ ४ ॥ :

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो विषच्छन्दो
बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो वि-
षधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः संस्तु-
च्छन्दोऽनुपुच्छन्दः एवश्छन्दो धरिवश्छन्दो व्य-
श्छन्दो व्यस्कृच्छन्दो विष्पद्मश्छन्दो विशालं
छन्दश्छन्दिरश्छन्दो दूरोद्गुणं छन्दस्तन्द्रश्छन्दो
अंकाङ्कश्छन्दः ॥ ५ ॥

ऋष्यादि—पूर्ववत् मंत्रार्थ—(आच्छच्छन्दः, प्रच्छच्छन्दः, संयच्छन्दः, विषच्छन्दः, बृहच्छन्दः, रथन्तरं छन्दः, निकायश्छन्दः, विषधश्छन्दः, गिरश्छन्दः, भ्रजश्छन्दः, संस्तुच्छन्दः, अनुपुच्छन्दः, एवश्छन्दः, धरिवश्छन्दः, व्यश्छन्दः, व्यस्कृच्छन्दः, विष्पद्मश्छन्दः, विशालं छन्दः, दूरोद्गुणं छन्दः, तन्द्रश्छन्दः, अंकाङ्कश्छन्दः) ॥ ५ ॥

परिवर्द्धन्तः, वयश्चन्दः, वयस्कृच्छन्तः, विपरीदश्चन्दः, विशा-
लश्चन्दः, छदिश्चन्दः, दूरोदणं चन्दः, तन्द्रश्चन्दः, अक्षुब्धश्चन्दः)
शरीरका आच्छादक अन्नहै उसको मनन करते०, शरीरगच्छा-
दक जलके व्यापारकी निर्वर्तक रात्रिको० विशेष व्यापार परिवर्तक
दिन को० जहाँ रयादि द्वारा गमन करते हैं उस भूलोकको०,
अत्यन्त शब्दकारक वायुको०, जहाँ भूत मेन रूपसे विविधप्रकार
के पाप भोगे जाते हैं उस अन्तरिक्षको०, भक्षणयोग्य अन्नको०,
प्रकाशवान् अग्निको०, वैखरी वाणीको० मध्यमा वाणीको०
पृथ्वी लोकको० प्रधामण्डलको० बाल्यादि अवस्था के हेतु
अन्नको० बाल्यादिकारक जाठराग्निको० विविध पेदवर्ष की
मातिवाले स्वर्गको०, स्पर्धामूलक अहंस्वको०, जहाँ मनुष्य अनेक
भकारसे शोभित होते हैं उस भूतलको०, सूर्यकी किरणोंसे आच्छा-
दित होने वाले अन्तर्गिक्षको० ज्ञानको० अज्ञानको०, अस्तित्वताके
निर्दर्शन अथवा गति पापाणादि युक्त जलको मनन करते तुमको
स्थापन करता हूँ ॥ ५ ॥

गुणिमना मत्यायं सत्यजिन्व्य प्रतिनिता धर्मिणा
धर्मजिन्वावित्या दिवा दिधं जिन्व्य सन्धिना-
न्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व्य प्रतिधिना पृथिव्या
पृथिवीं जिन्व्य विष्णुभेत्त वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व्य मव-
यान्हाहर्जिन्वानुषा रात्र्या रात्रौ जिन्वोशिजा
वसुभ्यो वसुजिन्व प्रकृतेनादित्येभ्य आदित्या-
जिन्व तन्तुना रायः ॥ ६ ॥

इस के में २९ मं० हैं सबका परमेष्ठी अ० छं० १, २, ६, ९,
१७, या० पं० ३, ८, १८, २६, २९, या० वृ० ४, ५, १०, या० ज०
७, २०, याजुष्यु०, ११ सा० उ०, १३, १४, १५, १६, या०
वि० २९, २१, २२, २३, २४, २५, २७, २८, याजुष्यु०, सयका
इष्टका देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (रात्रिमना, सत्याय, सत्य,
जिन्व) अनेक प्रभावसे सत्यके निमित्त सत्य वाणीको गीति करो

(मतिना, धर्मणा, धर्म, जिव) देहमें गतिवाले अन्नके प्रभाव से, धर्म के निमित्त धर्मको प्रीतिकरो, (अन्वित्या, दिवा, दिवं जिव) देहमें गतिवाले अन्नके प्रभावसे, दिव्य लोकके निमित्त पुनोक्तको प्रीतिकरो, (सन्धिना, अन्तरिक्षेण, अन्तरिक्षं, जिव) पलादिके आधार अन्नके प्रभावसे अन्तरिक्षके निमित्त अन्तरिक्ष को प्रीतिकरो, मतिधिना, पृथिव्या, पृथिवीम् जिव) मत्प्रेक इन्द्रियके आधार अन्नके प्रभावसे, अन्तरिक्ष के निमित्त पृथिवी को प्रीतिकरो (विष्टम्भेन, वृष्ट्या, वृष्टिम्, जिव) देहादिके स्तम्भ करने वाले अन्नके प्रभावसे वृष्टिके निमित्त वर्षाको प्रीतिकरो (मयया, अन्हा, अहः, जिव) देहमें गमनागमनकारी अन्नके प्रभाव से दिनके निमित्त दिनको प्रीतिकरो (अनुया, रात्र्या, रात्री, जिव) देहान्तर्गत ७२ नाडियों में गमनागमनकारी अन्नके प्रभाव से रात्रिके निमित्त रात्रिको प्रीतिकरो, (उशिना, वसुभ्यः, वसुन्, जिव) समस्त प्राणियों के आकांक्षणीय अन्नके प्रभावसे, वसुओंके निमित्त वसुगणको प्रीतिकरो (प्रकृतेन, आदित्येभ्यः, आदित्यान्, जिव) सुखानुभवके कारण अन्नके प्रभावसे आदित्यों के निमित्त आदित्योंको प्रीतिकरो ॥ ६ ॥

• तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिव सधसर्पेण
ध्रुताय श्रुतं जिन्वेडेनौपधीभिरौपधीर्जिन्वोत्तमेन
तनूभिस्तनूजिन्व वयोधसार्धातेनार्धातजिन्वा-
त्तिजिता तेजमा तेजो जिव ॥ ७ ॥

ऋग्यादि ६ मंत्र में कहादिये । मंत्रार्थ—(तन्तुना, रायस्पोषेण, रायस्पोषम् जिव) शरीरके बर्द्धक-अन्नके प्रभावसे धनकी पुष्टिके निमित्त धनकी पुष्टिको प्रीतिकरो (सधसर्पेण, ध्रुताय, श्रुतं, जिव) मति इन्द्रियमें फैलनेवाले अन्नके प्रभावसे शास्त्रके निमित्त शास्त्रको प्रीतिकरो (एडेन ओपधीभिः, ओपधीः, जिव) प्रसिद्ध अन्नके प्रभावसे ओपधियों के निमित्त ओपधियोंको प्रीतिकरो (उत्तमेन, तनूभिः, तनूः, जिव) पृथ्वीके उत्कृष्ट पदार्थ अन्नके प्रभावसे

तनुओंके निमित्त शरीरोंको प्रीतिकरो (वयोधसा, अधीतेन अधी-
तम्, जिन्व) शरीरके उपचयकारी अन्नके प्रभावेसे अध्ययन के
निमित्त अध्ययनको प्रीतिकरो (अभिजिता, तेजसा, तेजः, जिन्व)
बलकारी अन्नके प्रभावेसे तेजके निमित्त तेजको प्रीतिकरो ॥ ७ ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्प-

दसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा त्रिवृदसि ॥ ८ ॥

ऋष्यादि ६ ठे मंत्र में कहादिये । मंत्रार्थ—हे इष्टके (प्रतिपद,
असि, प्रतिपदे, त्वा) जिससे जीवनका अस्तित्व प्राप्त होता है
ऐसे अन्नरूप हो, अन्नप्राप्ति के निमित्त तुमको उपधान करता हूँ
तुम—(अनुपद, असि, अनुपदे, त्वा) इन्द्रियोंको स्वस्वकार्य में
समर्प करनेवाले अन्नरूप हो अन्नके निमित्त तुमको उपधान
करता हूँ तुम (सम्पद, असि, सम्पदे, त्वा) सम्पत्तिप्रतिपादक
अन्नरूप हो अन्नसम्पत्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ (तेजः,
असि, तेजसे, त्वा) शरीरमें तेजोदायक अन्नरूप हो तेजके निमित्त
तुमको सादन करता हूँ ॥ ८ ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि
विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा क्रमोस्याक्रमाय
त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोस्तुत्क्रमाय
त्वोत्क्रान्तिस्तुत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्ज-
जिन्व ॥ ९ ॥

ऋष्यादि ६ ठे मंत्र में लिखचुके । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम
(विष्टु, असि, विष्टुते, त्वा) कृपि वृष्टि और बीजसं उत्पन्न
अन्नरूप हो, अन्नके निमित्त तुमको सादन करता हूँ—तुम (प्रवृत्त
असि, प्रवृत्ते, त्वा) सब माणियोंको कार्यमें प्रवृत्तिकारी अन्न
रूप हो, कार्यप्रवृत्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ (विष्टु
असि, विष्टुते त्वा) मत्पेक इन्द्रियको उस २ कार्यमें प्रवर्तक
अन्नरूप हो प्रवृत्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ (सवृत्त,
असि, सवृत्ते, त्वा) जीवनके सहचारी अन्नरूप हो अन्नके निमित्त

तुमको सादन करता हूं । तुम (आक्रमः, असि, आक्रमाय, त्वा) क्षुधाका तिरस्कार करनेवाले अन्नरूप हो, अन्नप्राप्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूं (संक्रमः, असि, संक्रमाय, त्वा) संतान-नोत्पत्तिका बीज अन्नरूप हो, संतानप्राप्तिके निमित्त तुमको उप-द्विश करता हूं, तुम (उत्क्रमः, असि, उत्क्रमाय, त्वा) अन्नका निदानमूल अन्नरूप हो, उत्क्रमके निमित्त तुमको सादन करता हूं, (उत्क्रान्तिः असि, उत्क्रान्त्यै त्वा) उत्कृष्ट गमनवाले अन्न रूप हो उत्क्रान्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूं ॥ १ ॥

राश्वसि प्राची दिग्बसंयस्ते देवा अधिपतयो-
ग्निर्होमीनां प्रतिधृत्ता विवृत त्वा स्तोमः पृथि-
व्याऽश्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथ-
न्तरं साम् प्रतिष्ठित्वा अन्तरिक्षे ऋषयस्त्वा
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु
विधृत्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदना
नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं सबका परमेष्ठी ऋ०, १ वि० वा० प्रि०
छं०, २ प्रा० वृ० छं०, लिङ्गोक्तं देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टदे !
तुम (राश्वी, प्राची, दिक्, असि, वसवः, देवा ते, अधिपतयः,
अग्निः, होतानाम्, प्रतिधृत्ता, विवृत्स्तोमः, त्वा पृथिव्या, श्रयतु,
आज्यं, उक्थं, अव्यथायै, स्तभ्नातु, रथन्तरं, साम्, अन्तरिक्षे,
प्रतिष्ठित्यै, प्रथमजाः, ऋषयः, देवेषु, दिवः, मात्रया, वरिष्णा,
त्वा, प्रथन्तु, विधृत्ता, च, अयम्, अधिपतिः, च, त्वा, ते, सर्वे,
संविदानाः, नाकस्य, पृष्ठे, स्वर्गलोके, यजमानं, च, सादयन्तु)
राजमान पूर्वदिशा दूर हो आठवसु देवता तुम्हारे पालक हैं, अग्नि
देवता तुम्हारी सम्पूर्ण वाधाओंका निवारक है, विवृत्स्तोम तुम
को पृथ्वीमें स्थापन करो, आज्यनामक शस्त्रव्यथाहीनता अर्थात्
दृढ़ताके निमित्त तुमको दृढ़ करे, रथन्तर साम् अन्तरिक्षलोकमें
प्रतिष्ठाके निमित्त तुमको दृढ़ करे प्रथमोत्पन्न प्राण देवता आकाश

की पांशुमातना उरुगानिस्तारसे तेरा विस्तार करै इष्टका निष्पादन करनेवाला और यह इष्टकापानक भी तुमको विस्तारित करै, इस प्रकार वे सम्पूर्ण वसुमादि देवता एकमात्रसे स्थित हुए तुल्य स्वरूप लोकक ऊपर स्वर्गलोकमें यज्ञमानको अवश्यही प्राप्त करै ॥

विराडसि दक्षिणां दिमुद्रास्तै देवा अधिपतय
इन्द्रो हेतीनां प्रतिघृत्ता पंचदशस्त्वा स्तोमः
पृथिव्यां श्रयतु प्र उगमुक्थमन्यथायै स्तभ्नातु
बृहत्साम् प्रतिष्ठित्वा अन्तरिक्षं ऋषयस्त्वा
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया चरिष्णा प्रथन्तु
विघृत्ता चायमधिपतिश्च ते त्या सर्वे संविद्वाना
नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥११॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वः य भुरिग्राह्यी त्रि० च०, लिङ्गोक्त देवता है (प्रथमजा इत्यस्य प्रा० घृ० छन्दः) मंत्रार्थ—हे इष्टके! तुम (विराट्, दक्षिणा, दिक्, आसि, रुद्राः, देवाः, ते, अधिपतयः इन्द्रः, हेतीनाम्, प्रतिघृत्ता, पंचदशः, स्तोमः, स्वा, पृथिव्याम्, श्रयतु, गउगं, उक्थम्, अव्यथायै, स्तभ्नातु, बृहत्साम्, अन्तरिक्षं, प्रतिष्ठित्यै०) विशेष विराजमान दक्षिण दिशा हो रुद्र देवता तुम्हारे पालक हैं, इन्द्र देवता व्याधियोंका निघर्षक है, पंचदश स्तोम तुमको पृथिवीमें स्थापित करै गउगनामक उक्थद्वृत्ताके निमित्त तुमको स्तंभित करै, बृहत्साम अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठाका कारण हो, शेष पूर्वकी समान है ॥ ११ ॥

विराडसि प्रतीची दिगांष्ट्रियास्तै देवा अधि-
पतयो वरुणो हेतीनां प्रतिघृत्ता संसदशस्त्वा
स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु मरुत्पतीर्षमुक्थमन्य-
थायै स्तभ्नातु वैरूपं साम् प्रतिष्ठित्वा अन्त-
रिक्षं ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया
चरिष्णा प्रथन्तु विघृत्ता चायमधिपतिश्च ते
त्या सर्वे संविद्वाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके

यजमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

इसका परमेष्ठी ऋषि, पूर्वभ्य नि० त्रा० ज० छं०, वा प्रथमजा इत्युत्तरस्य त्रा० वृ० छं०, लिङ्गोक्त दे० है। मंगार्थ—हे इष्टके। तुम (स्वराट्, प्रदीची, दिक्, आसि, आदित्यः, देवाः, ते अधिपतयः, वरुणः, हेतीनाम्, प्रतिधर्त्ता, सप्तदशः, स्तोमः, त्वा, पृथिव्यां, श्रयतु, मरुत्वतीयम्, उक्थं, अज्ययायै, स्तभ्नातु, वैरूपं, साम, गतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) विशेष दीक्षिमान् पथिमादिशा हो आदित्य देवता तुम्हारे पालक हैं, वरुण दुःखों का निवारक है, सप्तदश स्तोम तुमको पृथ्वीमें दृढकरो मरुत्वतीय शस्त्र दृढताके निमित्त तुमको स्थापन करै वैरूप साम गतिष्ठाके निमित्त अन्तरिक्षमें तुमको दृढकरै शेष पूर्ववत् ॥ १० ॥

स्वराट्स्वदीची दिक् मरुतस्ते देवा अधिपतयः
स्तोमो हेतीनां प्रतिधर्त्ता एकविंशस्तोमः
पृथिव्यां श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमज्ययायै स्त-
भ्नातु वैराज्यं सामं गतिष्ठित्या अन्तरिक्ष-
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया
परिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते
त्वा सर्वे संविद्वाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे त्वाके
यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वभ्य भुरित्त्रा० त्रि० छं०, लिङ्गोक्त देवता है। प्रथमजा इत्युत्तरस्य त्रा० वृ० छं०) मंगार्थ—हे इष्टके तुम (स्वराट्, उदीची, दिक्, आसि, महतः, देवाः, ते, अधिप-
तयः, सोमः, हेतीनां, प्रतिधर्त्ता, एकविंशः, स्तोमः त्वा, पृथि-
व्याम्, श्रयतु, निष्केवल्यम्, उक्थम्, अज्ययायै, स्तभ्नातु, वैराज-
्यं साम, गतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) सर्वे विराजमान होनेवाली
उत्तर दिशा हो, मरुत देवता तुम्हारे पालक हैं, सोम व्याधियों का
निवारक है, एकविंशस्तोम तुमको पृथ्वीमें स्थापन करो, निष्केवल्य
नाग शस्त्र दृढताके निमित्त तुमको स्थापन करो, वैराजसाम गतिष्ठा

के निमित्त तुमको अन्तरिक्षमें दृढकरो । शेषं पूर्ववत् ॥ १३ ॥
 अधिपत्यासि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधि-
 पतयो बृहस्पतिर्हन्तीनां प्रतिघूर्ता त्रिणवत्रय-
 स्त्रिंशो त्वा स्तोमौ पृथिव्याथ श्रयतां वैश्व-
 देवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै, स्तभ्नीताथ,
 शाकरैद्युते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षं ऋष-
 यस्तथा प्रथमजा देवेषु दिवो माघ्रया घरिष्णा
 प्रथन्तु विघूर्ता चापमर्षिपतिश्च ते त्या सर्वे
 संविद्वाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं
 च सादयन्तु ॥ १४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वस्य धा०, ज० छं० लिहोक्त दे० ।
 यस्तेव्युत्तास्य ग्राही त्रि० छं० । मंत्रार्थ हे इष्टके! तुम (अधि-
 पत्नी, बृहती, दिक्, असि, विश्वे, देवाः, ते, अधिपतयः, बृहस्पतिः
 हन्तीनाम्, प्रतिघूर्ता, त्रिणवत्रयस्त्रिंशो, स्तोमौ, त्वा, पृथिव्या,
 श्रयताम्, वैश्वदेवाग्निमारुते, उक्थे, अव्यथायै, स्तभ्नी नाम, शाक्वर-
 रैवते, सामनी, प्रातोष्टेभ्यै, अन्तरिक्षे०) अधिक पालन करनेवाली
 बड़ी ऊँच दिशा हो, सम्पूर्ण देवता तुम्हारे पालक हैं, बृहस्पति
 देवता त्रिघूर्ता लोका निवाकर है, त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोम तुमको पृथ्वी
 में स्थापित करै वैश्वदेव अग्निमारुत उक्थ दृढताके निमित्त तुमको
 स्थापित करै शाक्वररैवत दोनोसाम प्रतिष्ठाके निमित्त अन्तरिक्षमें
 तुमको स्थापित करै । शेषं पूर्ववत् ॥ १४ ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सरश्च
 रथोजाश्च सेनानी ग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला
 च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दृढरूपावः पशवो हेतिः
 पौकषेयो ब्रधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते
 नोषन्तु ते नो मृदयन्तु ते यन्धिष्मो यश्च नो
 द्वेष्टि तमेष्टाज्जम्भे दधमः ॥ १५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० कृतिभक्त० लिहोक्त दे० है । मंत्रार्थ—(अयं

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथं प्रोतश्चासम-
रथश्च सेनानीग्रामण्यौ प्रम्लोचन्ती चानुम्लो-
चन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेति-
स्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो वन्तु ते नो मृडयन्तु
ते यं द्विप्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेपाज्जम्भे दधमः ॥१७॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, विराट् कृतिरर्द्ध०, लिङ्गोक्त दे० है । मंत्रार्थ
(अयं, पश्चात्, विश्वव्यचाः, तस्य, रथं प्रोतः, च, असमरथः,
सेनानीग्रामण्यौ, प्रम्लोचन्ती, च, अनुम्लोचन्ती, अप्सरसौ, च,
व्याघ्राः, हेतिः, सर्पाः, प्रहेतिः) यह पश्चिम दिशामें स्थापित इष्टका
रूप सब विश्वका प्रकाशक आदित्य है, उसका रथयुद्धमें धैर्यवान्
शूर और अनुपम रथी सेनापति और ग्रामपालक वर्षाशक्तु हैं,
अपने वेशविन्यासादि द्वारा सर्वसाधारणका मन हरने में समर्थ
और एकबार सुगन्ध होकर फलेश पानेवाले व्यक्तिको फिर मोह
करने वाली दोनों अप्सरा हैं और व्याघ्रजीव शस्त्र है, सर्प तक्षिण
शस्त्र है, शेष पूर्ववत् ॥ १७ ॥

अयमुत्तरात्संपदसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च
सेनानी ग्रामण्यौ विश्वाची च घृताची चाप्सर-
सावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते
नो वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विप्मो यश्च नो
द्वेष्टि तमेपां जम्भे दधमः ॥ १८ ॥

इसका परमे० ऋ०, भु० ग० घृ० छं०, लिङ्गोक्त दे० है ।
मंत्रार्थ- (अयं, उत्तरात्, संपदसुः, तस्य, तार्क्ष्यः, च, अरिष्टनेमिः,
सेनानीग्रामण्यौ, च, विश्वाची, च, घृताची, अप्सरसौ, च,
आपो, हेतिः, वातः, प्रहेतिः) यह उत्तर दिशामें स्थापित इष्टका
धनसे प्राप्त होनेवाला यह है, उसका अन्तरिक्षमें तक्षिण पक्षरूपी
आयुधोंका विस्तार करनेवाला और अरिष्टनाशक अमतिहत
आयुधवाला सेनानी और ग्रामपालक शस्त्र शक्तु है संसार
में विदित और घृताकी भोजन करनेवाली दो अप्सरा हैं, जल शस्त्र है,

और पवन तीक्ष्ण शस्त्र है, शेषं पूर्ववत् ॥ १८ ॥

अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुपेणश्च
सेनानीग्रामणौ । उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्स-
रसायवस्फूर्जन् हेतिर्विश्रुत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो
अस्तु ते नोचन्तु ते नो मृढयन्तु ते ये द्विष्मो
यश्च नो द्वेष्टि तमेपां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

इसका परम० अ०, नि० कृ० छं०, लि० दे० है । मंत्रार्थ
(अयं, उपरि, अर्वाग्वसुः, तस्य, सेनजित्, च, सुपेणः, सेनानी-
ग्रामणौ, न, उर्वशी, च, पूर्वचित्तिः, अप्सरसौ, च, अवस्फूर्जन्,
हेतिः, विश्रुत्, प्रहेतिः) यह मध्यदिश में वर्त्तमान इष्टकापर्जन्य
है, उसके सेना जीतनेवाले और सुन्दर सैन्यवाले सेनापति और
ग्रामरालक हेमन्तकृदु हैं और विस्तीर्ण काम को वश में करने
वाली और अधिकरूप होने से पुरुषों का मन हरने करनेवाली
पूर्वचित्ति नाम दो अप्सरा हैं और भयका हेतु वज्रका शब्द शस्त्र
है, वितनी तीक्ष्ण शस्त्र है, इनको नमस्कार है, इत्यादि पूर्ववत् १९

अग्निर्मूर्धा त्रिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अवाधे रेतोऽसि जिन्वति ॥ २० ॥

मंत्रार्थ-इसकी व्याख्या ३ अ० ११ कं० में होगई ॥ २० ॥

अयमाग्निः सप्तसिणो वाजस्य शनिनस्पतिः मूर्धा
कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

इसका परम० अ०, नि० गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(अयं, अग्निः, सप्तसिगः, शनिनः, वाजस्य, पतिः, कविः,
रयीणाम्, मूर्धा) यह अग्नि सप्त संख्यावाले शन संख्यावाले
अन्नका स्वामी क्रान्तदर्शी और सब धनोंमें प्रधान धनवाला है २१

स्वामिने पुण्ड्रदध्यधर्वा निरमन्यत । मूढनो
विश्वस्य वाचतः ॥ २२ ॥

मंत्रार्थ-इसकी व्याख्या ११ अ० ३२ कं० होगई ॥ २२ ॥

भुवो प्रजस्य रजसश्च नेता यत्रा निगृह्णः सचसे

त्रिवाभिः । दिवि मूर्धनं दधिपे स्वर्पां जिह्वा-
मग्ने चकृषे हव्यघाहम् ॥ २३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-
इसकी व्याख्या १३ अ० १५ काण्डिका में होगई ॥ २३ ॥

अघोध्यग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुर्मेषा-
तीमुपासम् । यहा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र
भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ २४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं० है अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(जनानां, समिधा, अग्निः, अघोधि, इव, आयतीम्, धेनुम्,
उपासम्, प्रति, मानवाः, नाकम्, अच्छ, प्रसिस्रते, इव, वयाः
यहा, प्रोज्जिहानाः,) ज्ञान यद्वा द्विजतर्पण, सत्यादिसे सम्पन्न
अग्निहोत्रियोंकी समिधासे अग्नि प्रज्वलित होते हैं, दीप्तिमान्
इसकी किरणें स्वर्गके चारोंओर से फैलती हैं, जिसप्रकार पक्षी
बड़े पक्षोंसे वृक्षोंकी शाखाओंसे आकाशको छूते हैं ॥ २४ ॥

अघोषाम कृषे मेधाय वषां वन्दारु वृषभाय
वृष्णे । गविष्ठिरा नमसा स्तोममग्नौ दिव्याय
रुक्मर्षुरुव्यं चमश्रेत् ॥ २५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
उद्गाता कहते हैं-हम (कवेयः, मेधाय, वृषभाय, वृष्णे, वन्दारु
वषां, अघोषाम, गविष्ठिरः, नमसा, स्तोमं, अग्नौ, अश्वत्, इव,
दिवि, रुक्मं, उरुव्यं चमम्) क्रान्तदर्शी यज्ञके योग्य श्रेष्ठ कामना
पूर्ण करनेमें समर्थ अग्निके निमित्त स्तुतिवन्दना करनेवाले वचनको
कथन करते हैं । वाणीमें स्थिर होता हुआ पुरुष अन्नसे युक्त स्तुति
को आहवनीय अग्निमें अर्पण करता है, जिसप्रकार स्वर्गमें रोच-
मान आदित्यको सन्ध्यावन्दन सूर्यवपस्यानादिमें प्रयुक्त कीहुई
बड़ी स्तुति अर्पित होती है ॥ २५ ॥

अयमिह प्रथमोवापि धातुभिर्होता यजिष्ठो
अश्वरेण्वीर्जः यममवानो भृगवो विरुचुर्नैषु

चित्रं विभुं विशे विशे ॥ २६ ॥

इसकी व्याख्या ३ अ० १५ कं० में होगई ॥ २६ ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ठ जागृविग्निः सुदक्षः

सुविताय नव्यसे घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा

धुमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥

इसका परमेष्ठी अ०, नि० दा० ज० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (जनस्य, गोपाः, जागृविः, सुदक्षः, घृतप्रतीकः, शुचिः, अग्निः, नव्यसे, सुविताय, भरतेभ्यः, अजनिष्ठ, दिविस्पृशा, बृहता, धुमत्, विभाति) यजमानोंका रक्षक कर्म में साधधान अति उत्साहयुक्त घृत को मुख में रखनेवाला पवित्र अग्नि नहीं । यज्ञ के निमित्त ऋत्विजोंके द्वारा प्रकटहुआ वह अग्नि स्वर्ग को स्पृश करनेवाली बड़ी कान्तिर्यों से प्रकाशवान् होता है ॥ २७ ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दञ्छिभि-

गुणं वने वने । स जायसे मध्यमानः सहो

महत्त्वामाहुः सहस्रपुत्रमङ्गिरः ॥ २८ ॥

इसका परमेष्ठी अ०, विराट्पार्षी ज० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(अङ्गिरः, अग्ने, अङ्गिरसः, त्वाम्, गुहाहितम्, वने वने, शिथ्रियाणं, अन्वविन्दन्, सः, महत्सहः, मध्यमानः, जायसे, त्वाम्, सहसा, पुत्रं, आहुः) अनेक रूपसे यज्ञमें विचरनेवाले हे अग्नि देव, अङ्गिरा ऋषिके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने तुमको निगूढ़ देशमें स्थित अनेक वनस्थितियों में निवास करने वालेको ढूँढकर प्राप्त किया, वह तुम अब बड़े बलसे मध्यमान होनेके कारण अरणीसे उत्पन्न होते हो, तुमको इसी कारण मुनि, बलका पुत्र ब्रह्मज्योति कहते हैं ॥ २८ ॥

सखायः संवः सभ्यञ्चमिष्य स्तोमं चाग्नये ।

वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नष्टे सहस्वते ॥ २९ ॥

इसका परमे० अ०, वि०, ज०, छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ— यजमानने कहा हे ऋत्विजो ! (सखायः, वः, क्षितीनां, वर्षिष्ठाय,

ऊर्जः, नद्ये, सहस्रवते, अग्नये, सम्यञ्चं, इपं, च, स्तोमं, समम्) मित्ररूप तुम मनुष्योंके अष्टगम जलके पौत्ररूप बहे चलवाले अग्नि देवताके निमित्त समीचीन नवीन हविरूप अन्नको और स्तोत्रको सम्पादन करो ॥ २९ ॥

सधेऽसमिधस्यसे वृषस्रग्ने विश्वान्यय आ । इह-

स्पदे समिधस्यसे स नो वसून्याभरं ॥ ३० ॥

इसका परमेश्वरी ऋ०, विराटनु० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (वृषन्, अग्ने, अर्यः, विश्वानि, सम, आ, संयुक्तसे इहस्पदे, समिधस्यसे, सः, इत्, नः, वसूनि आभर) हे सेवन करनेवाले अग्निदेव ! स्वामी तुम सम्पूर्ण यज्ञफलोंको सबभारसे यजमान को प्राप्त कराते हो, पृथ्वीके स्थान उत्तरवेदीमें कर्मके निमित्त मदीप्त हाते हो, वह तुम ही हमारे निमित्त धनोंको सवप्रकार लाकर मदानकरो ॥ ३० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तमहवन्ते विधु जन्तवः । शोचि-

त्कैशं पुरुमियाग्ने हव्याय बोधवे ॥ ३१ ॥

इसका परमेश्वरी ऋ०, वि० नु० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (चित्रश्रवः, पुरुमियाः, अग्ने, विधु, जन्तवः, तं, त्वां, हव्याय, बोधवे, हवन्ते) कीर्ति और ऐश्वर्य से अतिविचित्र यजमानों के मित्र हे अग्ने ! प्रजाओंमें अतिविद्यमान उस तुमको हवि वहन करनेके निमित्त पुलाते हैं ॥ ३१ ॥

एना यो अग्नि नमस्तोजो न पातमाहुवे । मिय-

धचेतिष्ठमरुनिधे स्वध्वरं विश्वस्य दत्तममृतम् ॥ ३२ ॥

इसका परमेश्वरी ऋ०, वि० वृ० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (एना, यो, अग्नि, नमस्तोजो, न, पातम्, आहुवे, मिय, धचेतिष्ठम्, अरतिम्, स्वध्वरम्, विश्वस्य, दत्त, अमृतम्, अग्निम्) गृहद्वारे इस अन्नद्वारा जलाके पीने यजमानकी प्रीति के कारण अतिशय वैश्वानरकी ज्ञानदाना सदा उद्यमी अष्ट यज्ञवाजे सम्पूर्ण के गृहपाकादि कार्य करने से दत्तरूप मरणरहित अग्नि

को स्तुति पूर्वक आवाहन करते हैं ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।

स योजते अरुपा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्याहुतः ॥ ३३ ॥

इसका परमेश्वर ऋ०, नि० दु० छं० अग्नि० दे० है मंत्रार्थ-
अमृतं, विश्वस्य, दूतं, अमृतं, विश्वस्य, दूतम्, सः, अरुपा, विश्व-
भोजसा, योजते, स्वाहुतः, सः, दुद्रवत्) मरणधर्मरहित सब
के दूतवत् कार्यकर्ता मरणधर्मरहित सम्पूर्ण के दूत जिस अग्नि
को हम श्लाते हैं, वह अग्नि क्रोधरहित श्रेष्ठ सब यज्ञके भाग भोगने
वाले दो अश्वोंको अपने रथमें योजना करता है, स्थासु होकर
भलीप्रकारसे आहुतिको प्राप्त हुआ वह अग्नि शीघ्र प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

स दुद्रवत्स्याहुतः स दुद्रवत्स्याहुतः । सुशमी

यज्ञः सुशमी वसूनां देवराधो जनानाम् ॥ ३४ ॥

इसका परमेश्वर ऋ० बृहती छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ--(सुशमा,
सुशमी, यज्ञः सः स्वाहुतः, दुद्रवत्, स्वाहुतः, सः, जनानाम्, देव,
राधः, वसूनाम्, दुद्रवत्) श्रेष्ठ अतिव्रजोंसे युक्त शुभकर्मवाला
यज्ञ है उसमें वह अग्नि शुभ प्रकारसे आवाहन किया हुआ वह जहां
पजमानोंका दीप्यमान धन है वहां वसु रुद्र आदि देवगणोंके तीन
सवतके यज्ञमें जाता है ॥ ३४ ॥

अग्ने वाजं ह्य गोमत ईशानः सहसो यदो

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

इसका परमेश्वर ऋ० सवित्र छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ--
(सहसः, यदो, जातवेदः, अग्ने, गोमतः, वाजस्य, ईशानः, अस्मे-
महि, श्रवः, धेहि) धनके पुत्र ज्ञानसम्पन्न हे अग्ने धेनुयुक्त अश्व
के आधिपति तুম, हमारे निमित्त बड़े धनको दो ॥ ३५ ॥

स इधानो वसुक्विश्विग्निरीडेन्यो गिरा रेवट-

स्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

इसका परमेश्वर ऋ०, नि० दु० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ
(पुर्वणीकः, सः, इधानः, वसुः, कविः, गिरा, ईडेन्यः, अग्निः,

उतो न वत्सुपूर्वा उक्थेयुं शवसस्पत इपथ
स्तोतृभ्य आभर ॥ ४३ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० प० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(सु-
चन्द्र, आसमि, सर्पिषः, उमे, दर्षी, श्रीणीपे, उतो, शवसः, पतं,
वक्थेयु, नः, दुपूर्वाः, स्तोतृभ्यः, इषम्, आभर) चन्द्रमा की समान
आज्हाद करनेवाले हे अग्ने ! तुम अपने मुखमें घृतपान करने के
निमित्त दोनों दर्षीके आकारवाले हाथोंको ग्रहण करते हो और
हे बलके अधिपति ! शस्त्रनाम स्तुतिवाले यज्ञोंमें हमको धनोसे
पूर्ण करो स्तुति करनेवालोंको अन्न दो ॥ ४३ ॥

अग्ने तमव्याभ्यं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रथ हृदि-
स्पृशम् । आध्यामा त ओहैः ॥ ४४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, परंपत्ति छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, अय, ते, तम्, क्रतुं, ओहैः, स्तोमैः, आ, आध्याम, न,
अश्वम्, न हृदिस्पृशम्, भद्रम्) हे अग्ने ! आज तुम्हारे उस यज्ञ
को तुम्हारे नामरूप कर्मके प्रतिपादन करनेवाले फलप्राप्तक साम
मंत्रोंसे सबप्रकार समृद्ध करते हैं, जैसे अनेक स्तुतिपत्रोंसे अश्वमेध
के घोड़ोंको श्रावण समृद्ध करते हैं जिसप्रकार अतिमिय चिरकाल
से मनमें स्थित कल्याणरूपी यज्ञके संकल्पको समृद्ध करते हैं ४४

अधाह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।

रथीर्भूतस्य बृहतो बभूव ॥ ४५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, भु०, प०, छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ—
(अग्ने, अय, हि, दक्षस्य, साधोः भद्रस्य, ऋतस्य, बृहताः, क्रतोः,
रथी, बभूव) हे अग्ने ! इसके अनन्तर अवश्य समृद्ध सम्पत्क
प्रकारसे अनुष्ठान किए कल्याणरूप अमोघ फलवाले बड़े हमारे
यज्ञके, सारथी जिसप्रकार रथका निर्वाह करता है तिसप्रकार नि-
र्वाहक हुआये ॥ ४५ ॥

एभिर्वा अर्कैर्मघानो अर्वाङ् स्वर्णज्योतिः ।

अग्ने विश्वेति सुमना अनीकैः ॥ ४६ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पदपंक्ति छं०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (अग्ने, नः, एभिः अर्कैः, सुमनाः, विश्वेभिः अनीकैः, नः अर्वाङ् आ भव, न, स्वर्ज्योतिः) हे अग्ने ! हमारे इन पदहुए मन्त्रों से मसन्नमन होकर अग्ने सम्पूर्ण सुखों से सब प्रकार हमारे सम्मुख हजिये, जैसे सूर्य आकाश में उदित होकर सम्पूर्ण जगत्के सम्मुख होता है ॥ ४६ ॥

अग्नि॑ होतारं मन्ये दास्व॑न्तं वसु॑न् सनु॑न्
सहसो जा॒तवे॑दसं वि॒पु॒ष॒त जा॒तवे॑दसम् । य
ऊ॒र्ध्वा दे॒वो दे॒वा॒न्त्या कृ॒पा । घृ॒तस्य
वि॒भ्रा॒ष्टि म॒नु॒वा॒ष्टि॒शो॒चि॒षा जु॒हान॑स्य सर्पि॑षः ॥ ४७ ॥

इसका परमे० ऋ०, अतिद्वन्द्व छं०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (यः, देवः, स्वध्वरः, ऊर्ध्वपा, देवाऽन्त्या, कृपा, शोचिषा, आ-जुह्वानस्य, सर्पिषः, घृतस्य, विभ्राष्टिम्, अनुवाष्टि, अग्नि, होतारं, दास्वन्तम्, वसुम्, सहसः, सनुं, जातवेदसं, जातवेदसं, विमं, न, मन्ये) जो दानादि गुणयुक्त शुभयज्ञवाला अग्नि ऊँची, देवताओं के समीप जानेवाली समर्प ज्वालासे सबभोर होमेहुए अङ्क २ में फैलनेवाले घृतके निरन्तर पानको इच्छा करता है, उस अग्नि को देवताओंका बुलानेवाला दानशील वासदेनेवाला ब्रह्मज्योति का पुत्र सब प्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न सर्व शास्त्रके ज्ञानवाले ब्राह्मण की समान जानता हूँ ॥ ४७ ॥

अग्ने॑ त्वन्मो अ॒न्तं॑ म॒ वृ॒त आ॒ता शि॒वो भ॑वा
वरू॑पः, वसु॑रग्निर्वसु॑श्रवा अ॒र्चा नक्षि॑रुमर्च॑म॒
रु॒चि॒न्दाः । त॒न्त्वा शो॒चि॒ष्ठ दी॒दि॒षः । सु॒म॒नार्थ
नून॑मी॒महे॑ सखि॑भ्यः ॥ ४८ ॥

मन्त्रार्थ—इसकी व्याख्या [१ अ० २५, २६] काण्डिका में होई ॥ ४८ ॥

येन॑ ऋ॒पय॑स्तप॑सा स॒त्रमा॑य॒न्नि॒न्धा॒ना अ॒ग्नि॑
स्वर्गा॑भर॑न्तः । तस्मि॑न्न॒हं नि॒र्द॒ष्टे ना॒के अ॒ग्नि॑

यमाहुर्मनवस्तीर्णवर्हिपम् ॥ ४९ ॥

इसका परमे० अ०, आर्षो त्रि०, छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्नि, इन्धाताः, स्वः, आमरन्तः, ऋषयः, येन, तपसा, सत्रम् आयन्, तस्मिन्, नाके, अग्नि, अहं, निदधे, मनवः, स्तीर्णवर्हि-पम्, आहुः) अग्नि को मदीश करते स्वर्गको स्वीकार करते अपि जिस चित्तकी एकाग्रतारूप तपसे यज्ञ करनेको उद्यत हुए उस तपके होनेपर स्वर्गलोकमें प्राप्त करानेवाले अग्निको मैं स्थापन करता हूँ, मनन करने में प्रधान विद्वान् जिस अग्निको यज्ञ साधन सहित कहते हैं ॥ ४९ ॥

तत्पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरनु वा
हिरण्यैः । नाकं गृष्णानाः सुकृतस्य लोके वृतीये
पृष्ठे अधिरोचने दिवः ॥ ५० ॥

इसका परमेष्ठी अ०, भु०, ना०, त्रि०, छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(देवाः, वृतीये, दिवः, पृष्ठे, सुकृतस्य, रोचने, लोके, नाकं, अधिगृष्णानाः, पत्नीभिः, पुत्रैः, वा, भ्राताभिः, उत, हिरण्यैः, तम्, अनुगच्छेम) हे विद्वान् आत्वनों ! भूमिसे तीसरे ध्रुव लोक के ऊपर शुभकर्म के फलरूप दीप्यमान आदित्यमण्डलमें दुःखहनि स्थानको स्वीकार करते हुए हम ली, पुत्र, भाई और सुवर्णादि द्रव्योंके साथ उस अग्निका सेवन करें इससे हमको तीसरे लोक की प्राप्ति हांसी ॥ ५० ॥

आ वाचो मध्यमारुहद्गुरुरधमग्निः सत्पति-
श्चेकितानः । पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतद-
धस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

इसका परमे० अ०, स्वराडार्षो त्रि०, छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(अयं, गुरुरधः, सत्पतिः, चेकितानः, पृथिव्याः, पृष्ठे, निहितः, दविद्युतवः, अग्निः, वाचः, मध्यं, आरुहन्, ये, पृतन्यवः अधस्पदम्, कृणुताम्) यह जगत्का कर्ता, सत्पुरुषोंका पालक शान्ति पृथिवीके ऊपर स्थापित अत्यन्त प्रकाशवान् अग्नि चयनके

मध्यस्थानमें स्थित हुआ, जो पुद्गली इच्छावाले पापी हैं तिनको चरणोंके अधोभागमें करे ॥ ५१ ॥

अयमग्निर्वीरतनो वयोधाः सहस्रियो योतता-
मप्रयुञ्जन् । विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य
उपप्रयाहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

इसका परमे० ऋ०, निच्युदार्पी त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अयम्, वीरतनः, वयोधाः, सहस्रियः, अग्निः, अप्रयुञ्जन्, योतताम्, सरिरस्य, मध्ये, विभ्राजमानः, दिव्या, धामानि, उप-प्रयातु) यह बड़ा वीर हविग्रहणकरनेवाला सहस्र इष्टकाओंसे केतुर्गुण अग्नि देवता कर्मोंमें प्रमाद न करता हुआ प्रज्वलित हो, त्रिलोकीके मध्यमें दीप्यमान दिव्य स्थानोंको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

सुप्रवर्ध्वध्वमुपमंप्रयाताग्ने पथो देवयानान-
कृणुध्वम् । पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताः
सीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, मु० गा० प० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ हे ऋषियों ! तुम (प्रवर्ध्वध्वम्, उप, सम्प्रयातु, अग्ने, देवयानान्, पथः, कृणुध्वम् पुनः, पितरा, युवाना, कृण्वानाः, एतम्, तन्तुं, त्वयि, अतन्वाताः सीत्) इस अग्निके समीप आसो, समीप आकर भनेमकार प्राप्त करो, हे अग्ने, देवयान मार्गको सिद्ध करो, फिर वाणी और मनको तरुण करतेहुए ऋषियोंने इस यज्ञ को तुझमें क्रमपूर्वक विस्तार दिया है ॥ ५३ ॥

उद्बुधस्वग्ने, प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्तं सध
सृजेथामयं च । अस्मिन्सधस्ये अध्युत्तरस्मिन्
विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

सबका परमे० ऋ०, आ० त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, त्वं, उद्बुधस्व, प्रतिजागृहि, इष्टापूर्त्तं, संसृजेथाम्, अयम्, च, विश्वेदेवाः, यजमानः, च, सधस्ये, अस्मिन्, उत्तरस्मिन्, अधिः सीदत) हे अग्ने तुम सावधान होओ, औत्तस्मार्चकर्ममें यजमान

से संसर्ग करो तुम्हारे मसादसे यह इष्टपूर्व से निष्पाप यजमान भी देवताओं के साथ स्थितियोग्य इस सबसे उत्कृष्ट स्वर्गलोक में निरकाल तक निवास करे ॥ ५४ ॥

येन वहंसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं
यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ५५ ॥

इसका परमं० ऋ०, नि० अ० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, येन, सहस्रं, वहंसि, येन सर्ववेदसं तेन, नः, इमम्, यज्ञम्, देवेषु, गन्तवे, स्वः, नय) है अग्ने जिस सामर्थ्यसे सहस्र दक्षिणावाले यज्ञको प्राप्त करातेहो जिस सामर्थ्यसे सर्वस्व दक्षिणावाने यज्ञको प्राप्त कराते हो उस सामर्थ्यसे हमारे इस छोटे यज्ञको देवताओंके प्रति गमन करनेको स्वर्गमें प्राप्त करो यज्ञके स्वर्गमें गमन होनेसे हमारा भी वहां गमन होगा ॥ ५५ ॥

अपन्ते योनिर्ऋतिवृत्तौ यतो जातो अरोचथाः ।

तज्ज्ञानन्नगन्तु आरोहाथां नो वर्द्धया रुपिम् ॥ ५६ ॥

इस मंत्र की व्याख्या ३ । १४ अ० के १२ । १२ मंत्र में होगई ५६

तपश्च तपस्पृश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तः श्लेषो-
ऽसि कल्पेतां यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओष-
धयः कल्पन्तामन्नयः प्रधुङ् मम उपैष्ठयाण
सवताः । ये अन्नयः समनसोन्तुरा यावापृथिवी
इमे शैशिरावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव
देवा अभिसंविशन्तु तथा देवतायास्त्रिस्वद्
ध्रुवे मादतम् ॥ ५७ ॥

इसका परमं० ऋ०, स्वरादुत्कृति छं०, ऋतु दे० है । मंत्रार्थ (तपः) माघमास (तपस्यः) फाल्गुनमास, (शैशिरावृतू) शिशिर ऋतुक अवयव हैं । शेषकी व्याख्या १३ । १५ में होगई १७
प्रमेष्टा त्वां सादयतु दिवस्पृष्टे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायानाय चानाय विश्वज्यो-
तिर्षच्छ । सूर्यस्तेधिपतिस्तथा । देवतायास्त्रि-

रुक्मद्भुवासीद ॥ ५८ ॥

इसका परमेष्ठी श्रु०, शक्वगी छं०, सूर्य देवता है । मंत्रार्थ—हे इंद्रके (परमेष्ठी, ज्योतिष्मतीम्, स्वा, दिवः, शृष्टे सादयतु, सूर्यः, ते, अधिपतिः) विश्वकर्मा वायु रूप ज्योतिष्मती तुम्हको धुनोक के ऊपर स्थापनकरे सूर्य तुम्हारा स्वामी है ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणार्थो सीद ध्रुवा त्वम् इन्द्राग्नी

स्वा दृढस्पतिरस्मिन्पुनोनायसीपदन् ॥ ५९ ॥

ता अस्य सुददोहसः सोमं धी श्रीणन्ति पृथ्वयः

जन्ममन्देवानां विशस्त्रिध्वारोचने दिवः ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा अधीष्टुधन्ममुद्रव्यंचसं गिरः ।

रुथीतमधे रुथीनां वाजानां सत्पन्तिस्पतिम् ॥ ६१ ॥

इन तीन मंत्रों की व्या० [१२ अ० ५४-५५-५६ क०] में होगई ॥ ५९-६०-६१ ॥

प्रोथुदस्वो न यवसेविष्यन्दा महः संवरणा-

ग्रयस्थात् । आदस्य वातो अनुवाति शोचिरधं

स्म तं व्रजनङ्कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, विराट् त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (यदामहः, संवरणात्, व्यस्थात्, प्रोथत्, न, अश्वः, अधिष्यन्, यवसे, आत्, शोचिः, वातः, अस्य, अनुवाति, अधः, ते, व्रजनं, कृष्णम्, अस्तिस्म) जिस समय बड़े अरणीकाष्ठसे अग्नि प्रकाशित होती है, तब शब्द करती है जिसप्रकार घोड़ा भोजनकी इच्छा करता हुआ घासके निमित्त शब्द काता है अग्नि के प्रज्वलित शब्दके उपरान्त प्रज्वलित करनेवाला वायु अग्नि की ज्वालाको देखकर बहन करता है, इसके उपरान्त हे आने ! उस समय तुम्हारा यह गमन कृष्णवर्ण होता ही है ॥ ६२ ॥

आपोष्वा सदेने सादयाम्यवन्तश्छायायां धी

समुद्रस्य हृदये । रुक्मीवतीम्मास्वतीमायाया-

म्मास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० ब्राह्मणुष्णिगं, स्वयमातृणा दे० है ।
 मंत्रार्थ-हे स्वयमातृणे ! (अवतः, समुद्रस्य, आयोः, व्यायायाम्,
 हृदये, सद्मे, रश्मिवतीम्, भास्वनीम्, त्वा. सादयानि) जगत्के
 पालन करनेवाले वर्षासे जगत्को आर्द्र करनेवाले आयु नामसे
 प्रसिद्ध आदित्यदेवताके आश्रयरूप प्रधान हृदयरूप स्थानमें बहुत
 किरणोंसे युक्त प्रकाशवान् तुमको स्थापन करताहूँ (त्वम्, याम्
 आभासि, पृथिवीम्, ऊरु, अन्नरिक्षं, आ) तुम धुनोंको प्रकाश
 करती हो, भूगोकको प्रकाश करती हो, विस्तीर्ण अन्नरिक्षको
 प्रकाशवान् करती हो ॥ ६३ ॥

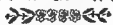
परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे व्यचस्वतीम्प्रः
 धस्वतीन्दिवं यच्छ दिवं नृधृदिवस्मा हिंसीः ।
 विश्वस्मै भाणायापांनार्य व्यानायापानायां प्रति-
 ष्ठाये चुरित्राय । सूर्यस्त्याभिषातु मध्या स्व-
 स्त्याच्छर्हिषा शान्तमेन तया देवसंयादिरस्वद्
 ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

इसकी व्या० १४ अ० के १२ मं० १५ अ० ५८ मं० में होगई ६४
 सहस्रस्य प्रमांसि सहस्रस्य प्रतिमांसि सहस्र-
 स्योन्मांसि साहस्रोसि सहस्रां प त्वा ॥ ६५ ॥

इसका मधुञ्जय ऋ०, देवी जगती याजुष्यनुष्टुप् दे० देवी पं०
 छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ-हे अग्ने तुम (सहस्रस्य, प्रमांसि,
 सहस्रस्य, प्रतिमा, अंसि, सहस्रस्य, उन्मानं, अंसि, साहस्रः,
 अंसि, सहस्राय, त्वा) सहस्र इष्टकाओं की प्रमाण हो, तुम सहस्र
 इष्टकाओंकी प्रतिनिधि हो, तुम सहस्र इष्टकाओंकी तुष्टा हो,
 तुम सहस्र इष्टकाओंके उपयुक्त हो, अनन्त फलप्राप्तिके निमित्त
 तुमको प्रोक्षण करता हूँ ॥ ६५ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत याजुष्येयसंहिताका सातवाक

अथ षोडशोऽध्यायः ।



(रुद्राध्यायः)

जिसमें पञ्चम वित्ति प्रधान है ऐसे पंचदश अध्याय में चयनके मंत्र समाप्त करके सोलहवें अध्याय में शतरुद्रिय होम के मन्त्र वर्णन करते हैं—

॥ हरिः ॐ ॥ नमस्ते रुद्र मन्त्रार्थऽउतो ते इपये

नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

इसका परमेश्वरी ऋ०, गायत्री छ०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—
(रुद्र, ते, मन्त्रार्थ, नमः, उतो, ते, इपये, नमः, उत, ते, बाहुभ्याम्, नमः) हे दुःखके दूर करनेवाले अथवा ज्ञान के देनेवाले अथवा पापीजनों को उनका कर्मफल देकर, हलानेवाले रुद्रोव ! आपके क्रोधको नमस्कार है और तुम्हारे बाणोंको नमस्कार है अर्थात् हे रुद्रदेव ! आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओंपर पड़ें हमको शान्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

या ते रुद्र शिवा तनुरघोरापपाकाशिनी ।

तपा नस्तन्वा शान्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ २ ॥

इसका परमेश्वरी ऋ०, आर्षी स्वराटजु० छ०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—(गिरिशन्ता, रुद्र, या, ते, शिवा, अघोरा, अपपाकाशिनी, तनुः, तपा, शान्तमया, तन्वा, नः, अभिचाकशीहि) कैलाश पर्वत पर वा वेदवाणी में स्थित होकर प्राणियों के सुख को बढ़ानेवाले वा भेष में स्थित होकर वर्षा से सुख देनेवाले हे रुद्र । जो तुम्हारी शान्त मद्गलरूप, सौम्य, पुण्यफल की देनेवाली पराशक्ति है उस परमानन्दरूप शरीराकार शक्ति से हमको देखिये ॥ २ ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते द्विभर्षस्तवे । शिवा-

क्लिरिश् ताङ्कुं मा हिंथसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

इसका परमेश्वरी ऋ०, वि० अ० छं, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—
(गिरिशन्त, गिरिभ, याम, हपुम्, अस्तवे, हस्ते, विमर्ष, ताम्,

शिवाम्, कुरु, पुरुषम्, जगत्, मा, हि०सीः) हे वेदवाणी में स्थित होकर जगत् का कल्याण करनेवाले, कैलास वा वेदवाणी में स्थित होकर माणियों की रक्षा करनेवाले तुम जिस वाण को शत्रुओं के नाश करने को हाथ में धारण करते हो हे रक्षक उस वाण को कल्याणकारी करो, पुत्रपौत्रादि और जगत् के गवाश्वादि को मत मारो अपवा जीवात्मा और इन्द्रियों के समूह को संसार बन्धन से नष्ट न करो, किन्तु सद्गुणदेश देकर मोक्ष प्राप्त कराओ ३

शिवेन वचसा त्वा गिरिशच्छां वदामसि ।

यथोक्तः सर्वमिन्द्रगदयक्ष्मं सुमना असत् ॥ ४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० अ० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— (गिरिश, शिवेन, वचसा, त्वा, अच्छा, वदामसि, तं, सर्वं, इत्, जगत्, यथा, अयक्ष्मं, सुमनाः, असत्) हे वेदवचन में शयन करनेवाले परमात्मन् हम भद्रलंकारी वेदरूप स्तुतिवचन से, तुम को प्राप्त होने के निमित्त प्रार्थना करते हैं, हमारे सब ही जंगम अनुष्ण पशु आदि वा इन्द्रिये जिसप्रकार गीरोग वा संसाररोग से मुक्त शुभ मनवाले हो सो करो ॥ ४ ॥

अध्यवोचदधि०क्ता प्रथमो दैव्यो भिपक् ।

अहीन् जम्भयन् सर्वाश्च यातुधान्योध-

राचीः परासुव ॥ ५ ॥

इसका मंत्रापति ऋ०, भु० गा० वृ० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ अध्यवोक्ता, प्रथमः, दैव्यः, भिपक्, अध्यवोचत्, च, सर्वाः, अहीन्, जम्भयन्, सर्वाः, अधराचीः, यातुधान्यः, च, परासुव । तारकमन्त्रका उपदेश करनेवाले सब देवताओंमें मुख्य पूजनीय देवताओंके हितकारी संसाररोगके नाशक रुद्र हमको सबसे अधिक देवा मरामन्त्रका उपदेश दें, और सब सर्पादिकी समान दसनेवाले कामादिका विनाश करतेहुए सम्पूर्ण अधोगमनशील कामकरूप राक्षसीको भी हमसे दूर करें ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्रो अरुण उत वज्रः सुमंगलः ।

ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रितास्सहस्रशो
वैपाथ्ये हेड ईमहे ॥ ६ ॥

इसका मन्त्रापति श्रु०, निवृ० पं० छं०, रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ
(च, यः, असौ, ताम्रः, अरुणः, उत, वधुः, सुमहलः, च, ये,
सहस्रशः, रुद्राः, एनम्, अभितः, दिक्षु, श्रिताः, एषाम्, हेडः, ईमहे)
और जो यह प्रत्यक्षरुद्रः सूर्यरूप उदयसमयमें अत्यन्त लालवर्ण
अरुणसमय रक्तवर्ण और मध्याह्न समयमें पिङ्गलवर्ण मंगलरूप
कमौंका विस्तार करनेवाले हैं और जो सहस्रों रुद्रांशरूप देवता
इनके सपथोर दिशाओंमें स्थित हैं, इनका क्रोध जोकि हमारे
अपराधसे मकट हुआ है उसको हम माक्तिद्वारा निवारण करते हैं ।

असौ यो वसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं

गोपा अदृशन्नदभन्मुदहाप्युः स दृष्टो मृदयाति नः ॥ ७ ॥

इसका मन्त्रापति श्रु०, विराट्पार्षी पंक्ति छं०, रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ
(यः, असौ, नीलग्रीवः, उत, विलोहितः, अवसर्पति, एनं, गोपाः,
अदृशन्न, उदहाप्यः, अदृशन्न, सः, दृष्टः, नः, मृदयाति) जो यह
विपधारणसे अरुणसमय नीलग्रीव और विशेष रक्तवर्ण आदित्य
रूपसे उदयअस्त करते निरन्तर गमन करते हैं इनको वेदोक्तसंस्कार
हीन गोपालतक देखते हैं, जल लेजानेवाली नारी पर्यन्त भी
देखती है वह रुद्र दर्शनपथमें प्राप्त होते ही हमको सुखी करे, अथवा
गोप कहिये इन्द्रियगोलकोकी रक्त इन्द्रियशक्तियाँ देखती हैं,
और उदहारी कहिये अमृतको प्राप्त करानेवाली प्रशाशक्तियें दे-
खती हैं वह रुद्र दर्शन देते हुए हमको मोक्षमुख दें ॥ ७ ॥

नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुपे ।

अथो ये अरुण सत्वानो हन्तेभ्योकाक्षमः ॥ ८ ॥

इसका मन्त्रापति श्रु०, वि०, पं०, छं०, रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ—
(नीलग्रीवाय, सहस्राक्षाय, मीढुपे, नमः, अस्तु, अथो, अस्य, ये
सत्वानः, तेभ्यः, अहम्, नमः, अकरम्) नीलकण्ठ सहस्रेणसे
सब जगत्को देखनेवाले इन्द्ररूप वा विराटरूप सेवनेमें समर्प

पर्जन्यरूप वा वरुणरूप रुद्रके निमित्त नमस्कार हो और इस रुद्र देवताके जो अनुचर देवता हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

प्रमुञ्च धन्वंनस्त्वमुभयोरान्त्र्योर्ज्याम् ।

याश्च ते हस्त इपवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, वि०, पं०, छं० रु० देवता है । मंत्रार्थ (भगवः, धन्वनः, उभयोः, आन्त्र्योः, ज्याम्, त्वम्, प्रमुञ्च, व, याः ते, हस्ते, इपवः, ताः, परावप) हे परैश्वर्य सम्पन्न भगवन् ! आप धनुषकी दोनों कोटियोंमें स्थित ज्याको दूरकरो उतार लो और जो आपके हाथमें बाण हैं उनको दूर त्यागदो हमारे निमित्त सौख्यपूर्ति होजाओ ॥ ९ ॥

विज्यन्धनुः कपर्दिना विशाल्यो वाणवान् ॥

उत । अनेशन्नस्य या इपव अमुरस्य निपङ्गधिः ॥ १० ॥

इसका प्रजापति ऋ०, धु०, गा० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (कपर्दिनः, धनुः, विज्यं, उत, वाणवान्, विशाल्यः, अस्य, याः, इपवः, अनेशनः, अस्य, निपङ्गधिः, आधुः) जटाजूटधारी रुद्रका धनुष उपाराहित और तरकस भालावाले बाणोंसे, रीता हो, इन ईश्वर के जो बाण हैं वे अदर्शनको प्राप्त हो इनका खज्ज रखने का कोश खज्जसे रीता हो, क्योंकि योगसंजीवन्मुक्त मैं बंधके योग्य नहीं हूँ ॥ १० ॥

या ते हेतिमीदृष्टम् हस्ते बभूव ते धनुः ।

तयोस्मान्विश्वतस्त्वमंक्षमया परिभुज ॥ ११ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, वि०, छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (मीदृष्टम्, ते, या, हेतिः, ते, हस्ते, धनुः, बभूव, तया, अयक्षमया, त्वम्, विश्वतः, अस्मान्, परिभुज) हे ज्ञानाभूतसे सीचनेवाले तुम्हारे जो ज्ञानरूप आयुध है आपके हाथमें जो प्राणरूप धनुष है, उस संसाररोगरूपी उपद्रव से रहित धनुष से आप सब ओरसे हमको पालन करो अर्थात् हममेंकों की संसारबन्धनसे रक्षा करो ११

परि ते धन्वंनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।

अथो य इषुधिस्तवारो अस्मत्त्रिषेहि तम् ॥ १२ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—हे रुद्र ते, धन्वनः, हेतिः, विश्वतः, अस्मान्, परिवृणक्तु, अथो, यः, गव इषुधिः, तम्, अस्मत्, आरे, त्रिषेहि) हे रुद्र । तुम्हारे धनुषसम्बन्धी आयुध सबओरसे हमको त्यागें, और जो तुम्हारा तरकस है उसको हमसे दूर स्थापन करो ॥ १२ ॥

अवतस्य धनुष्वधो सहस्राक्ष शतेषुधे ।

निशीर्य शत्यानां मुखं शिवो नः सुमनां भव ॥ १३ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, नि० छं०, रु० देवता है । मंत्रार्थ—सहस्राक्ष, शतेषुधे, त्वम्, धनुः, अवतस्य, शत्यानाम्, मुखं, निशीर्य, नः, शिवः, सुमनाः, भव) हे विराटरूप होनेसे सहस्रनेत्र हे सहस्र तरकसवाने ! तुम धनुषको ज्यारहिम कम्के बाणोंके मुख भाला रहित करके हमारे निमित्त शान्त और शोभनचित्त हजिये क्योंकि मैं सायुज्यके योग्य हूँ ॥ १३ ॥

नमस्तु आयुधायानां तताय त्रिष्णवे । उभाभ्या-

मुत ते नमो बाहुभ्यान्तव धन्वने ॥ १४ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, भु० गा० छं० रु० देवता है । मंत्रार्थ—हे रुद्र (ते, अनां तताय, आयुधाय, नमः, ते, उभाभ्याम्, बाहुभ्याम्, उत, तव, धृष्णवे, धन्वने, नमः) आपके धनुषपर न चढ़ायेहुए बाणके निमित्त नमस्कार है आपके दोनों बाहुओंके निमित्त और आपके शत्रुओंको मारनेमें प्रयत्न धनुषके निमित्त प्रणाम है ॥ १४ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकस्मा न उक्ष-

न्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितर-

भ्योत मातरस्मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिपः ॥ १५ ॥

इसका कुरस ऋ०, नि० जगती छं०, रु० देवता है । मंत्रार्थ—हे रुद्र (नः, महान्तं, मा, वधीः, उत, नः, अर्भकं, मा, नः, उक्षन्तम्, मा, उत, नः, उक्षितम्, मा, नः, पितरं, मा, उत, नः, मातरं, मा, नः, प्रियाः, तन्वः, मा, रीरिपः) हमारे छद्म गुरु पितृ-

पगड़ीधारण करनेवाले सभ्यगण नगरोंमें बिचरनेवाले, शून्यमस्तक गिरिवनमें फिरनेवाले दोनों प्रकारके दलोंके हृदयमें स्थित परमात्माको नम० है, दल बल कौशलसे दूसरोंकी गृहभूमि आदि हरने वालों के पालकको नम० है, मनुष्यों के डराने को बाण धारण करनेवाले और धनुष साथ लेकर चलनेवाले आपको नम० है, कुलुधों के दमनार्थ धनुषपर ज्या चढ़ानेवाले को नम० है और धनुषपर बाण चढ़ानेवाले आपको नम० है और बाण को छोड़ने वाले आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २२ ॥

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः
स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य
आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च
वो नमः ॥ २३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, निचृ० ज० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—
(विसृजद्भ्यः, नमः, च, विध्यद्भ्यः, वः, नमः, स्वपद्भ्यः, नमः, च, जाग्रद्भ्यः, वः, नमः, शयानेभ्यः, नमः, च, आसीनेभ्यः, वः, नमः, तिष्ठद्भ्यः, नमः, च, धावद्भ्यः, वः, नमः)
पापियों के दमनार्थ बाण छोड़नेवाले को नम० और शत्रुओं के लक्ष्य को वेधनेवाले आपको नम० है, सोनेवालों के अन्तर में स्थित को नम० है और जाग्रत अवस्थाके अनुभवी आपको नम० है, सुषुप्ति अवस्थावालों के अन्तर में स्थित आपको नम० है, और बैठेहुओं के अन्तर में स्थित आपको नम० है और वेगयुक्त गतिवालों के अन्तर में स्थित आपको नम० है ॥ २३ ॥

नमस्सभाभ्यस्सभापतिभ्यश्च वो नमो नमो-
ऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नमः आन्याधि-
नीभ्यो विविर्घ्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उर्गाणा-
भ्यस्तृप्तिभ्यश्च वो नमो नमः ॥ २४ ॥

इसका कुत्स ऋ०, शकवरी छं०, रु०दे० है । मंत्रार्थ—सभाभ्यः नमः, च सभापतिभ्यः, वः नमः, अश्वेभ्यः, नमः, च, अश्वपतिभ्यः

वः, नमः, आख्याधिनीभ्यः, नमः, च, विविध्यन्तीभ्यः, वः, नमः, उगणाय, नमः, च, वृद्धितीभ्यः, वः, नमः) सभारूपको नम० है [सभादिमें रुद्रदृष्ट करनी चाहिये] सभापतिरूप आपको नम० प्रत्येक यश्वोंके अन्तरमें स्थितको नम० अश्वोंके अधिपतिको नम० है देवसेनाओंमें स्थितको नम० है, विशेषकर वेधनेवाली देवसेनाओंमें स्थित आपको नम० है उत्कृष्ट भृत्यसमूहवाली ब्राह्मीआदि माताको नम० है, युद्धमें प्रहार करनेवाले दुर्गादिमें स्थित आपको नम० है ॥ २४ ॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो
 व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो
 गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्व-
 रूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भु०, श०, जं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—
 (गणेभ्यः नमः, च, गणपतिभ्यः, वः, नमः व्रातेभ्यः, नमः, च, व्रात-
 पतिभ्यः, वः, नमः, गृत्सपतिभ्यश्च वः, नमः, विरूपेभ्यः, नमः,
 च, विश्वरूपेभ्यः, वः, नमः) गणरूप को नम० है और गणोंके
 अधिपति आपको नम० है, समूहरूपको नम० है और व्रातोंके
 अधिपति आपको नम० है बुद्धिमानोंको नम० है और बुद्धिमानों
 के रक्षक आपको नम० है नग्न सुयुद्ध जटिलादि विकृतरूपको
 नम० है और सर्वरूप नानाविधरूप आपको नम० है ॥ २५ ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो
 राधिभ्यो अरधेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यस्सं-
 गृहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भके-
 भ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

इसका कुत्स ऋ०, मुरिग० ज० जं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—
 (सेनाभ्यः, नमः, च, सेनानिभ्यः, वः, नमः, राधिभ्यः, नमः,
 च, अरधेभ्यः, वः, नमः, क्षत्तृभ्यः, नमः, च, संगृहीतृभ्यश्च वः,
 नमः, महद्भ्यः, नमः, च, अर्भकेभ्यः, वः, नमः) सेनारूपको

नम० है, और सेनापतिरूपको नम० है, रथीरूपको नम० है, अरथीको नम० है, रथके अधिष्ठातृके अन्तरमें स्थितको नम० है और सारथियोंके अन्तरमें स्थित आपको नम० है, जाति विद्या ऐश्वर्यमें पूज्यको नम० है और प्रमाणादिसे अल्परूप आपको नम० है ॥ १६ ॥

नमस्तक्ष्मभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुला-
लेभ्यः कर्मारिभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः
पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृग-
युभ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥

इसका कुत्स ऋ०, निचृब्धकरी छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (तक्ष्मभ्यः, नमः, च, रथकारेभ्यः, वो, नमः, कुलालेभ्यः, नमः, च, कर्मारिभ्यः, वो, नमः, निषादेभ्यः, नमः, च, पुञ्जिष्ठेभ्यः, वो, नमः, श्वनिभ्यः, नमः, च, मृगयुभ्यः, वो, नमः,) काष्ठकी शिल्पविद्याके जाननेवालोंमें व्याप्तको नम० है और विमान रथ-निर्माणकारी उत्कृष्ट तत्ताके अन्तरमें स्थित आपको नम० है प्रशंसित मृत्तिकाके पात्र बनानेवालोंमें स्थितको नम० है और लोहेके शस्त्र बनानेवालोंमें स्थितको नम० है और गिरिवारी भीलादि में स्थितको नम० है और पक्षिघानक-पुल्कसादि में स्थित आपको नम० है कुत्तोंके गलेमें रस्सी बाँधकर धारण करनेवालों के अन्तरकी जाननेवालेको नम० है और मृगोंकी कामनावाले व्याधोंके अन्तर स्थित आपको नम० है ॥ २७ ॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भ्रूवाय
च रुद्राय च नमः शुर्षाय च पशुपतये च नमो
नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ २८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आर्षीज० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (श्वभ्यः, नमः, च, श्वपतिभ्यः, वो, नमः, च, भ्रूवाय, नमः, च, रुद्राय, नमः, च, शुर्षाय, नमः, च, पशुपतये, च, नीलग्रीवाय, नमः, च, शितिकण्ठाय) कुक्कुरों के अन्तरमें स्थितको नम० है और कुक्कुरोंके अधिपति किरातोंके

अन्तरमें स्थित आपको नमः है और जिनसे सब जगत् उत्पन्न होता है उनको नमः है और दुःख दूर करनेवाले देवको नमः है और पापका नाश करनेवालेको नमः है और प्राणियोंके अधिपति को नमः है और नीलवर्ण शीवावालेको नमः है और नीलकण्ठ वाले को नमः है ॥ २८ ॥

नमः कपर्दिने च व्युत्सकेशाय च नमः सहस्रा-

क्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च

शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय च पुंमते च ॥ २९ ॥

इसका कुत्स ऋ०, सु० ज० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—

(कर्पादिने, च, व्युत्सकेशाय, नमः, च, सहस्राक्षाय, च, शतधन्वने नमः, च, गिरिशाय, शिपिविष्टाय, नमः, च, मीढुष्टमाय, च, पुंमते, नमः) जटाजूटधारीको भी नमः है, पुण्डितकेशको नमः है और सस्त्रलोचन इंद्ररूपको नमः है और बहूत धनुषधारण करनेवालेको नमः है और पर्वतपर शयन करनेवालेको और सब प्राणियोंके अन्तरमें व्यापक विष्णुरूपको नमः है और मेघरूपसे वृत्तिकर्ताको और बाणधारीको नमः है ॥ २९ ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो वृद्धाय च

वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सृष्टे च नमोऽष्टपाय

च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

इसका कुत्स ऋ०, वि० भि० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (ह्रस्वाय, च, नमः, च, वामनाय, च, वृद्धाय, च, वर्षीयसे, नमः, च, वृद्धाय, च, सृष्टे, नमः, च, आष्टपाय, च, प्रथमाय, नमः) अल्पशरीर को भी नमः है और संकुचित अवयवमें व्याप्त वामनरूपको नमः और बड़े शरीरवालेको और अतिवृद्धको नमः है और अधिक अवस्थावालेको और विद्यागविनयादि गुणयुक्त ज्ञानियोंके साथ वर्तनेवाले युवाको नमः है और जंगलमें प्रथम प्रकट होनेवाले को और सबमें प्रथम ब्रह्मरूपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

नमः आशवे चाजिराय च नमः शीघ्राय च

शीर्ष्याय च नम ऊर्ध्वाय च वावस्वन्याय च नमो
नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराडार्षी पं० छ० रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (आश्वे,
च, च, अजिराय, नमः, च, शीर्ष्याय, च, शीर्ष्याय च, नमः,
च, ऊर्ध्वाय, च, वावस्वन्याय, नमः, च, नादेयाय, च, द्वीप्याय,
नमः,) जगद्व्यापकको और गतिशील गंगादि तीर्थरूपको नमः
है और वेगवाली वस्तुमें विद्यमान और जलप्रवाहमें विद्यमान
आत्मश्लाघी को नमः है और जलतरंगमें वर्तमान वा भूतव्यास
आदि पदार्थमें वर्तमान और स्थिर जलोंमें विद्यमानको नमस्कार
है और नदीमें वर्तमानको नमस्कार है और द्वीपमें होनेवाले व्यास-
रूपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय
चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय
च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्व० त्रि० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—
(च, ज्येष्ठाय, च, कनिष्ठाय, नमः, च, पूर्वजाय, च, अपरजाय,
नमः, च, मध्यमाय, च, अपगल्भाय, नमः, च, जघन्याय, च,
बुध्न्याय, नमः) और ज्येष्ठरूपको और कनिष्ठरूपको नमस्कार
है [अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में प्रथम उत्पन्न होने से ज्येष्ठरूप
तिसके भीतर भी विद्यमान और उसके पीछे जो कुछ उत्पन्न
हो रहा है उस सबके हृदयमें भी विद्यमान होने से कनिष्ठरूप है]
और जगत् की आदि में हिरण्यगर्भरूप से उत्पन्न और प्रलय
काल में कालाग्निरूप से होनेवाले को नमस्कार है और सृष्टि
संहार के अन्तर देवतिर्यगादिरूप से होनेवाले को नमः, और
अपगल्भ अव्युत्पन्न इन्द्रिय इन्द्रियादिप्रकाशरहित अपदरूप को
नमः और गवादिके पीछे होनेवाले स्वेदज कृमि कीटादि में
वर्तमान को नमः है और वृक्षादि की मूल में पोषकरूप से वर्त-
मान को नमस्कार है ॥ ३२ ॥

नमस्सोम्याय च प्रतिसूर्याय च नमो याम्याय
 च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च
 नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आ० त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (सोम्याय, च, नमः, प्रतिसूर्याय, नमः, च, याम्याय, च, क्षेम्याय, नमः, च, श्लोक्याय, च, अवसान्याय, नमः, च, उर्वर्याय, च, खल्याय, नमः) गन्धर्वनगर में होनेवालेको भी नम० है और विवाहादिकार्यमें हाथमें बंधे मंगलसूत्रमें विद्यमानको नम० और पापियों को दुःखदेनेवाले यममें वर्त्तमानको और क्षेममें होनेवालेको नम० और इस संसारमें यशःप्रचार के कारणभूत और वेदोंमें स्थित को नम० है और उपजाऊ भूमिमें उत्पन्न हुए धान्यादिमें भी विद्यमानको नम० है और धान्य निकालनेके स्थानमें होनेवालेको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च
 प्रतिश्रवाय च नम आशुपेणाय चाशुरधाय च
 नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥

इसका मनापति ऋ०, स्वराडार्पी त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (वन्याय, च, नमः, कक्ष्याय, नमः, च, श्रवाय, च, प्रतिश्रवाय, नमः, च, आशुपेणाय, च, आशुरधाय, नमः, च, शूराय, च, अवभेदिने, नमः) वनमें वृक्षादिस्वरूपको भी नम० है, और तृण-चरलीमें होनेवालेको नम० है, और शब्दरूपको नम० है और मति ध्वनिमें विद्यमानको नम० है और शीघ्र चलनेवाले रथोंकी श्रेणी में विद्यमानको नम० है और युद्धविशारदोंके हृदयमें विद्यमान को और शत्रुका हृदय वेधनेवाले शस्त्रमें भी विद्यमानको नम० है।

नमो विलिम्बे च कवचिने च नमो वर्म्मिणे च
 वरूधिने च नमः श्रुताय च श्रुतमेनाय च नमो
 दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥ ३५ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराडार्पी त्रि० छं०, रुद्र देवता है।

मंत्रार्थ—(च, विहिमने, नमः, कवचिने, नमः, च, वामिणे, नमः, च, वरूथिने, नमः, च, धुताय, च, श्रुतसेनाय, च, नमः, हुन्दुभ्याय, च, आहनन्याय, नमः) और शिरावाणधारी को नमः है और कवचधारी को नमः और मंत्रमय कवचधारी को नमः है और चौदह भुवनवासी को नमस्कार है और प्रसिद्ध को नमः है और गसिद्ध सेनावाले को भी नमः है और रणके वाजे में विद्यमान को और वाजे के दण्डे आदि में विद्यमान को नमस्कार है ॥३५॥

नमो धृष्णधे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे

चेपुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः

स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्व० त्रि० छं०, इन्द्र दे० । मंत्रार्थ (च, धृष्णां, च, प्रमृशाय, नमः, च, निषङ्गिणे, नमः, च, इपुधिमते, नमः, च, तीक्ष्णेषवे, च, आयुधिने, नमः, च, स्वायुधाय, च, सुधन्वने) और मगलमरूप अपने पक्षकी रक्षा करनेवालेको नमः है और विचारशील पंडितरूपको नमः है और खड्गधारीको नमः है और तारकसधारीको नमः है और तीक्ष्णबाणधारी को और अन्य आयुधधारीको नमः है और शोभन आयुध विशुद्ध धारीको और पिनाकधनुषधारीको नमस्कार है ३६ ॥

नमः सुत्याय च पथ्याय च नमः काव्याय च

नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो

नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

इसका कुत्स ऋ०, नि०, त्रि०, छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—(च, सुत्याय, च, पथ्याय, नमः, च, काव्याय, च, नीप्याय, नमः, च, कुल्याय, च, सरस्याय, नमः, च, नादेयाय, च, वैशन्ताय, नमः) और मुक्तिदाताको और मुक्तिमार्ग में दर्शन देने वालेको नमः है और दुर्गम मार्गमें दर्शन देनेवालेको और संसारवृक्ष स्वरूपको नमस्कार है और नहरके मार्गमें स्थितको और सरोवरोंमें विद्यमानको नमः है और नदीमें जलरूप से

स्थितको नमस्कार है ॥ ३७ ॥

नमः कृष्णाय चावट्याय च नमो वीरूपाय
चातुर्ष्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च
नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भु० पं० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—(च, कृष्णाय, च, अवट्याय, नमः, च, वीरूपाय, च, आतुर्ष्याय, नमः, च, मेघ्याय च, विद्युत्याय, नमः, च, वर्ष्याय, च, अवर्ष्याय, नमः) और कूपमें आत्मारूपसे विराजमानको० और गर्तजल में विराजमानको नमस्कार है और महापकाशमें स्थितको० और धूपमें विद्यमानको नमस्कार है और मेघमें विद्यमानको० और बिजली में विराजमानको नमस्कार है और वर्षाकी धारा में स्थितको० और वृष्टिके प्रतिबन्धमें स्थितको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

नमो वात्याय च रेभ्याय च नमो वास्तव्याय
च वास्तुपाय च नमो सोमाय च रुद्राय च नमः
स्तार्त्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराट्याय पं० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (च, वात्याय, च, रेभ्याय, नमः, च, वास्तव्याय, च, वास्तुपाय, नमः, च, सोमाय, च, रुद्राय, नमः, च, तार्त्राय, च, अरुणाय, नमः) और वायुगवाहमें विराजमानको० और प्रनयकी पवनमें रहनेवालेको नमस्कार है और वास्तुगृहमें विराजमानको० और गृहभूमिके देवताको नमः है और चन्द्रमामें स्थितको और दुःख नाशकको नमः है और सायंकालके सूर्यमें स्थितको नमः है और प्रमातकालीन सूर्यमें स्थितको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमः शङ्खे च पशुपतये च नमः उग्राय च भीमाय
च नमोग्रेव्याय च दूरेव्याय च नमो हस्त्रे च
हर्नीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमः
स्तारार्य ॥ ४० ॥

इसका परमे० वा १० देवा ऋ०, भु० श० छं०, रुद्र दे० है।

मंत्रार्थ- (शत्रुघ्ने, नमः, च, पशुपतये, नमः, च, उग्राय, च, भीमाय, नमः, च, अग्नेवधाय, च, दूरेवधाय, नमः, च, हन्त्रे, नमः, हनीयसे, नमः, हरिकेशेभ्यः, वृक्षेभ्यः, नमः, ताराय, नमः) कल्याणरूप वेदवाणी वालेको नमस्कार है और प्राणियोंके पालकको नमः है और शत्रुओंके मारनेको कठिन आयुध उठाये कठिन अन्तःकरणवाले को० और शत्रुमयोत्पादक भयानक को नमः है और सन्मुख के शत्रुका वध करनेवालेको० और दूरके शत्रुका वध करनेवाले को नमः है और मारनेवालेके रूपमें स्थित स्यावर पदार्थ के लयकारीको नमः है और अतिशय हन्ता सदाको मृत्युका अभाव करनेवालेको नमः है हरे पक्षवाले कल्पतरुरूपको नमः संसारके तारनेवालेको नमस्कार है ॥ ४० ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय

च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

इसका परमेश्वर प्र० वा० देवा आ०, स्व० वृ० ज्ञ०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ- (शम्भवाय, नमः) इसलोकके कल्याणकारी जिन से सुख होता है अथवा सुखरूप संसाररूप मुक्तिरूपको नमः है (च, मयोभवाय, च, शंकराय, नमः) और संसारके सुखदाता पारलौकिक कल्याणको नमः है और लौकिक सुखदेनेवालेको नमः है (च, मयस्कराय, च, शिवाय, नमः) और मोक्षसुख देनेवालेको नमः है और कल्याणरूप निष्पापको नमः है (च, शिवतराय) और भक्तोंके अत्यन्त कल्याणकारक तथा निष्पाप करनेवालेको नमस्कार है ॥ ४१ ॥

नमः पाय्याय चाचार्याय च नमः मृतरण्याय

चोत्तरण्याय च नमः स्तीर्याय च कूल्याय च

नमः शष्प्याय च केन्याय च ॥ ४२ ॥

इसका परमेश्वर प्र० दे० आ०, निचू० जि० ज्ञ०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ- (च, पाय्याय, च, अचार्याय, नमः, च, मृतरण्याय, च, उत्तरण्याय, नमः, च, स्तीर्याय, च, कूल्याय, नमः, च, शष्प्याय,

च, फेन्याय, नमः,) और समुद्रके पारमें भी विद्यमानको० और सागरके इस पारमें भी विद्यमानको नमः० है जहाजमें विद्यमान को और ढोंगेमें भी विद्यमानको नमः० है और सागरादिके गर्भ में विद्यमानको० और जलपणालीमें प्रकट होनेवालेको नमः० है और गंगादिके तटमें उत्पन्न कुश अकुरादिमें विद्यमानको नमः० है और सागरादिके फेनमें होनेवालेको नमः० है ॥ ४२ ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाहाय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपादिने च पुलस्तये च नमः हरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥

इसका परमेश्वी प्रजापतिर्वा देवा आ०, जगतां अ०, रुद्र दे० है ।
 मंत्रार्थ—(च, सिकत्याय, च, प्रवाहाय, नमः, च, किंशिलाय, च, क्षयणाय, नमः, च, कपादिने च, पुलस्तये, च, हरिण्याय, च, प्रपथ्याय, नमः) और तीर्थरज्जुको और ब्रवाहकूपको नमस्कार है और नदी आदिके भीतर घुसकरादिमें विद्यमानको और स्थिरजलमें विद्यमानको नमः० है और जटाजूटयुक्त व प्रजलमें विद्यमानको और समुद्ररहित ऊपरभूमिमें विद्यमानको और बहुत सेवित्तमार्ग में विद्यमानको नमः० है ॥ ४३ ॥

नमो ब्रज्याय च गोष्ठ्याय च नपेस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्ट्याय च नमः काट्याय च गहरेष्ट्याय च ॥ ४४ ॥

इसका परमेश्वर आ०, आपी त्रि० अ०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—(च, ब्रज्याय, च, गोष्ठ्याय, नमः, च, सत्प्याय, च, गेह्याय, नमः, च, हृदय्याय, च, निवेष्ट्याय, नमः, च, काट्याय, च, गहरेष्ट्याय) और गोचोरणस्थानमें विद्यमान और ब्रजमें विद्यमान को नमः० है और शयनशय्यायुक्त को और घरमें देवतारूपसे विराजमानको नमः० है और हृदयमें जीवरूपसे स्थितको और हिम-समुद्रमें विराजमानको नमः० है और दुर्गम मार्गमें विराजमानको और गिरिगुहामें विराजमानको नमः० है ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाथ्यस-
व्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय
च नम ऊर्वाय च सूर्वाय च ॥ ४५ ॥

इसका परमेष्ठी प्रनापतिर्वा ऋ० निचूदा त्रि० छं०, रुद्र दे० है।
मंत्रार्थ—(च, शुष्क्याय, च, हरित्याय, नमः, च, पाथ्यसव्याय,
च, रजस्याय, नमः, च, लोप्याय, च, उलप्याय, नमः, च, ऊर्वाय,
च, सूर्वाय, नमः) और सूखे काष्ठादिमें विराजमानको और
हरेपत्तेआदिमें विराजमानको नम० है और धूलिमें विराजमान
को और रजोगुणमें विद्यमानको नम० है और अगम्य देशमें
विराजमानको और बलवजादि तृणमें विराजमानको नम० है
और उर्वरभूमिमें विराजमानको नमस्कार है और महापलपकी
अग्निमें विराजमानको नम० है ॥ ४५ ॥

नमः पूर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमा-
णाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते
च नम इपुकृद्भ्यो धनुकृद्भ्यश्च चो नमो नमो
चः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यो नमो विचि-
न्वत्केभ्यो नमो विक्षिण्त्केभ्यो नम अनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, स्वराट् प्रकृति छं०, रुद्र दे०। मंत्रार्थ—
(च, पूर्णाय, च, नमः, च, उद्गुरमाणाय, च, अभिघ्नते, नमः,
च, आखिदते, च, प्रखिदते, नमः, इपुकृद्भ्यः, च, धनुकृद्भ्यः
च, नमः) और पर्णमें विद्यमानको और पर्णपतित वर्णस्थित देशरूप
में विद्यमानको नम० है और निरन्तर उद्यमको और शत्रुओंको
संहारकको नम० है और अमकोको सदा दुःखदाता त्रिविधतापके
नाशकको और त्रिविधतापके उत्पन्नकर्त्ताको नम० है वाणके उत्पन्न
करनेवालेको और धनुषके रचनेवाले आपको नमस्कार है (देवानां,
हृदयेभ्यः, किरिकेभ्यः, च, नमः, विचिन्वत्केभ्यः, नमः, विक्षिण्त्के-
भ्यः, नमः, अनिर्हतेभ्यः) जो देवताओंके हृदयस्वरूप प्रधान
आग्नि वायु सूर्यके हृदयरूप सृष्ट्यादि द्वारा जगत्को सृजन करते

हैं ऐसे आपको नमस्कार है जो देवताओंका हृदयस्वरूप हैं जो
 सृष्टिआदिसे जगत्का पालन करते हैं जो धर्मात्मा और पापात्माओं
 को पृथक् करते हैं उन अग्नि वायु सूर्य के हृदयको नमस्कार है,
 विविध पापोंको दूर करनेवाले अग्निआदिको नमस्कार है अर्थात्
 जो देवताओंका हृदयस्वरूप विचित्रतक सृष्टिआदिसे जगत्का संहार
 करते हैं अग्नि वायु सूर्यके हृदयस्वरूप हैं उनको बारंवार नमः है
 सृष्टिकी आदिमें होनेवाले रुद्रावतारको नमस्कार है ॥ ४६ ॥

द्राप्ते अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसाम्
 मजानामिषाम्पशूनाम्माभेर्मा रोक् च नः
 किञ्चुनाममत् ॥ ४७ ॥

इसका परमे० मजा० ऋ०, भु० गा० रु० छ०, रुद्र दे० है ।
 मंगार्थ—(द्रापे, अन्धसः, पते, दरिद्र, नीललोहित, नः, आसाम्,
 मजानां, पशूनां, मा, भेः, मा, रोक्, च, किञ्चन, मा, आम-
 मत्) हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले हे सोमके पालक अद्वितीय
 होनेसे सहायशून्य हे नील और लोहित शुक्लकृष्ण उभयात्मक
 शिव ! हमारे इन पुत्र पौत्रादिको इन पशुओंको मत भय दो तथा
 गजापशुओंका भोग मत करो और किसीप्रकार भी हमें तथा हमारी
 प्रजा पशुको मत रुग्ण करो सबप्रकार मजापशुमें भोगल करो ४७

इमा रुद्राय त्वसे कपर्दिने स्यंदीराय प्रभरा-
 महे मतीः । यथा शमसद्विपदे चतुष्पदे विश्व-
 स्पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नतुरम् ॥ ४८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आपीज० छ० रुद्रदेवता है । मंगार्थ (यथा,
 द्विपदे, चतुष्पदे, शं, अस्मिन्, ग्रामे, विश्वं, पुष्टं, अनातुरम्, असत्,
 इमाः, मतीः, त्वसे कपर्दिने, स्यंदीराय, रुद्राय, प्रभरामहे)
 जिसप्रकार पुत्रादिमें गवादिपशुओंमें सुखकी प्राप्ति हो तथा इस
 ग्राममें सम्पूर्ण प्राणिसंग्रह पुष्ट उपद्रव रहित हो उसीप्रकार हम
 इन अपनी बुद्धियों को महावली जाटिल सूरवीरोंके निवासभूत
 रुद्रादेवताके निमित्त समर्पण करते हैं ॥ ४८ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।

शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृद जीवसे ॥ ४९ ॥

इसका परमे० मजा० ऋ०, आर्ष्यनु० छं० रुद्र दे० । मंत्रार्थ-
(हे रुद्र, या, ते, शिवा, विश्वाहा, शिवा, भेषजी, रुतस्य, शिवा,
भेषजी तनूः, तया, नः जीवसे, मृद) हे शंकर जो आपका शान्त
निरन्तर कल्याणकारी औपधीरूप संसारकी व्याधि निवृत्त करने
वाला तथा शरीरव्याधिकी समीचीन औपधीरूप शरीर वा
शक्ति है उस शक्तिसे हमको जीवनके लिये सुखी करो ॥ ४९ ॥

परि नो रुद्रस्य हेतिर्दृष्टुं परि त्वेषस्य दुर्मति-

रघायोः अघोस्थिरा मघवद्भयस्तनुष्व मीद्व-

स्तोकाय तनयाय मृद ॥ ५० ॥

इसका परमे० मजा० ऋ०, आ० त्रि० छं०, रुद्र दे० है ।
मंत्रार्थ- (रुद्रस्य, हेतिः, नः, परितृण्यतु, त्वेषस्य, अघायोः, दुर्मतिः,
परि, मीद्वः, मघवद्भयः, स्थिरा, अघतनुष्व, तोकाय, तनयाय,
मृद) रुद्रके सम्पूर्ण आयुष हमको परित्याग करै पापियों पर
क्रोधित अर्थात् कोपनस्वभाव, दण्डदेनेकी इच्छावाली दुर्मति हम
को सबमकार त्याग करे हे अभिलषित फलदा । हविरूप धनसे
युक्त यजमानोंके भय दूरकरनेको दृढ धनुषोंको व्याहीन करो
हमारे पुत्र पौत्रादिको सुख दो ॥ ५० ॥

मीदुष्टम् शिवतम शिवो नः सुमना भव ।

परमे वृक्ष आयुधान्निधाय कृत्ति वसुतान आचर-

पिनाकम्बिभ्रदागहि ॥ ५१ ॥

इसका परमे० म० ऋ०, नि० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ-
(मीदुष्टम्, शिवतम, नः, शिवः, सुमनाः, भव, परमे, वृक्षे, आ-
युधे, निधाय, कृत्ति, वसुतानः, आचर, पिनाकं, बिभ्रत्, आगहि)
हे अतिशय अभिलषित फलदाता अत्यन्त कल्याणकर्त्ता हमको
शान्त सुन्दरमनवाने होओ दूरस्थित वा जँने वृक्षपर अपना त्रिशूल
(यका) मृगचर्म धारणकीये आगमन कीजिये पिनाक धनुषको

धारण किये आगमन कीजिये ॥ ५१ ॥

विकिरिद्र विलोहित, नमस्ते अस्तु भगवः ।

यास्ते सहस्रं हेतयोन्यस्मन्निवपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

इसका पर० ऋ०, आर्पण० छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ—
(विकिरिद्र, विलोहित, भगवः, ते, नमः, अस्तु, ते, याः, सहस्रं,
हेतयः, ताः, अस्मत्, अन्यम्, निवपन्तु) हे अनेक उपद्रव नष्ट
करनेवाले हे शुद्धस्वरूप भगवन् ! आपको नमस्कार हो तुम्हारे
जो सहस्रों शस्त्र हैं वह हमको छोड़कर और कहीं उपद्रवियों पर
पड़ें ॥ ५२ ॥

सहस्राणि सहस्रशो वाहोस्तव हेतयः ।

तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

इसका पर० ऋ०, निचु० छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ—(भगवः,
तव, वाहोः, सहस्राणि, सहस्रशः, हेतयः, ईशानः, तासाम्, मुखा,
पराचीना, कृधि) हे भगवन् ! पदैश्वर्यसम्पन्न ! आपके मुखाओं
में बहुत मकार के सहस्रों खट्वाणूनादि आयुध हैं, जगत् के पति
आप उन संहारकारी आयुधों के मुखों को हमसे पराङ्मुख करो ५३

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।

तेषां सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

इसका पर० ऋ०, विराडा० छं० रुद्र देव० । मंत्रार्थ—(ये,
असंख्याताः सहस्राणि, रुद्राः, भूम्याम्, अधि, तेषाम्, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अतन्मसि) जो असंख्य सहस्रों रुद्र भूमि के ऊपर
स्थित हैं उनके धनुष सहस्र योजन दूर फैले हैं ॥ ५४ ॥

अस्मिन्महत्पर्णवेन्तरिक्षे भवा अधि ।

तेषां सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

इसका पर० ऋ०, भुरिगा०, छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ
(अस्मिन्, अन्तरिक्षे, महाते, अर्णवे, अधिभवाः, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अतन्मसि) इस अन्तरिक्ष में और बड़े सागर अर्थात्
आकाशागानामसे प्रसिद्ध नक्षत्र-पुञ्जरूप धाराम्बाहमें आश्रय

करके जो रुद्र स्थित हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर
ज्यारहित करके हम निर्भय होते हैं ॥ १५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः ।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वा नि तन्मासि ॥ १६ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (नील-
ग्रीवाः, शितिकण्ठाः, रुद्राः, दिवं, उपश्रिताः, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अवतन्मासि) नीलग्रीव श्वेतरुण्ठवाले विपभक्षणसे
कितना एक कण्ठ श्वेत और कितना एक नील है ऐसे जो रुद्र ध्रुलोक
में आश्रय किये हुए हैं उनके सब धनुषोंको सहस्रयोजन दूर ज्यारहित
कर हम निर्भय होते हैं ॥ १६ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः ।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वा नि तन्मासि ॥ १७ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (नील-
ग्रीवाः, शितिकण्ठाः, शर्वाः, अधः, क्षमाचराः, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अवतन्मासि) नीलीगर्दनवाले श्वेतकण्ठवाले जो
शर्वनामक रुद्र नीचे पातालमें वर्तमान हैं उनके सब धनुष सहस्र-
योजन दूर ज्यारहित करके हम निर्भय होता है ॥ १७ ॥

ये वृक्षेषु शप्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वा नि तन्मासि ॥ १८ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ (ये,
शप्पिञ्जराः, नीलग्रीवाः, विलोहिताः, वृक्षेषु, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अवतन्मासि) जो हरितवर्ण नीलग्रीवावाले विशेष
रक्तवर्ण वृक्षोंमें वर्तमान हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर
ज्यारहित करके हम भय होते हैं ॥ १८ ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वा नि तन्मासि ॥ १९ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ (ये, भूतानां
अधिपतयः, विशिखासः, कपर्दिनः, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजन,

अवतन्मसि) जो देवविंशकोंके अधिपति हैं तथा शिखाहीन मुण्डिताशिर हैं जो जटाजूटसे युक्त हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर ज्वारहित करके निर्भय होते हैं ॥ ५९ ॥

ये पथाम्पश्चि रक्षय ऐलवृदा आयुर्धुवः । तेषां धि
सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६० ॥

इसका पर० ऋ०, आर्ष्यनु० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ—(ये, पथाम्, पथिरक्षयः, ऐलवृदाः, आयुर्धुवः, तेषाम्, धन्वानि सहस्र-योजने, अवतन्मसि) जो लौकिक वैदिक मार्गोंके अधिपति मार्गों के पालक राज्यशासनकारी जीवनपर्यन्त युद्ध करनेमें रहते हैं उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर ज्वारहितकरके निर्भय होते हैं ॥ ६० ॥

ये तीर्थानि प्रचरेन्ति सुकाहस्ता निपक्षिणाः ।

तेषां धि सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

इसका पर० ऋ०, निचु० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ—(सुकाहस्ताः, निपक्षिणाः, तीर्थानि, प्रचरेन्ति, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजने, अव-तन्मसि) जो आयुध विशेष हानको हाथमें लिये तथा त्वग्धा-रण किये काशी मयागादि तीर्थोंमें फिरते हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर ज्वारहित करके निर्भय होते हैं ॥ ६१ ॥

ये संपु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबन्तो जनान् ।

तेषां धि सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

इसका पर० ऋ०, विराहार्ष्यनु० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ (ये, अन्नेषु, जनान्, विविध्यन्ति, पात्रेषु, पिबन्तो, तेषाम्, धन्वानि सहस्रयोजने, अवतन्मसि) जो अन्नभोजन करनेमें प्राणियोंको विशेषकरके ताड़न करते हैं अर्थात् धातुकी विषमता पर रोगोंको उत्पन्न करते हैं पात्रोंमें जल दूधआदि पीतहुए जनोंको कृत्स्न जल आदिसे रोगग्रसित करते हैं उनके सम्पूर्ण धनुषोंको सहस्रयोजन दूर ज्वारहित करके अभय होते हैं ॥ ६२ ॥

य एतावन्तं द्यु मूर्धा धि सञ्च दिशो रुद्रा चितं-

स्थिरे । तेषां धि सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

इसका पर० ऋ०, निचुं० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ--(च, ये, रुद्राः, एतावन्तः, च, मया ये सः, दिशः, वितस्थिरे, तेषाम्, घन्वानि, सहस्र-
योजने, अवतन्मसि) और जो रुद्र इन दशों दिशाओं में और इन
कहेहुओं में भी अधिक सपूर्ण दिशाओं में आश्रित हैं उनके धनुषों
को सहस्रयोजनकी दूरीपर व्यापारित करके समय होते हैं ॥ ६३ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषं वः ।

तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो-

दीचीर्दशोऽर्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नो वन्तु

ते नो बृहपन्तु ते यन्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि

तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ--(ये, दिवि, येषाम्, वर्षम्, इषः, तेभ्यः, रुद्रेभ्यः, नमः, तेभ्यः, दश, प्राचीः, दश दक्षिणाः, दश प्रतीचीः, दशोदीचीः, दशोर्वाः, नमः, ते, नः, अवन्तु, ते, नः, बृहपन्तु, ते, यः, यः, ना, द्वेष्टि, तम् एषाम्, जम्भे, दध्मः) जो रुद्र ध्रुवलोकमें विद्यमान हैं जिन रुद्रों के दृष्टि ही वाण हैं उन रुद्रों के पूर्व दिशामें दश अंगुली होकर अर्थात् हाथ जोड़कर दक्षिण में दश अंगुली होकर पश्चिममें दश अंगुली होकर उत्तरमें दश अंगुली होकर ऊर्ध्व में दश अंगुली अर्थात् करजोड़ प्रार्थना करता हूँ उनको नमस्कार दो, वे रुद्र हवारी रक्षा करें, वे हमको सुखी करें वे रुद्र जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है उसको इन रुद्रों के दाढ़में स्थापन करते हैं ॥ ६४ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो येन्तरिक्षे येषां वात इषं वः ।

तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो-

दीचीर्दशोऽर्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नो वन्तु

ते नो बृहपन्तु ते यन्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि-

तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ ६५ ॥

इसका पर० ऋ०, प्रेति० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ--(रुद्रेभ्यः,

नमः, अस्तु, ये, अन्तरिक्षे, येषाम्, इषवः, वातः) उन रुद्रोंको नमस्कार हो, जो अन्तरिक्षमें विद्यमान हैं, जिनके बाण पवन है अर्थात् पवनद्वारा जो सृजन पालन और आधी आदिसे संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेषपूर्ववत् ॥ ६५ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ।

तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दशपृथिवीर्दशो-

दीचीर्दशोऽर्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोषन्तु

ते नो मृडयन्तु ते यन्द्धिष्मो यश्च नो द्वेष्टि

तमेपाञ्जम्भे दधमः ॥ ६६ ॥

इसका परमं० ऋ० वृ० छं० रुद्र दे० है । मंत्रार्थ--(रुद्रेभ्यः, नमः, ये, पृथिव्याम्, येषाम्, इषवः, अन्नम्) उन रुद्रोंको नमस्कार है जो रुद्र पृथ्वीमें स्थित हैं जिनके बाण अन्न हैं जो अन्नद्वारा ही सृजन पालन और मिथ्याहार विहारसे रोग उत्पन्न कर प्राणि-योंका संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेषपूर्ववत् ॥ ६६ ॥

इति एकचपञ्चदशतमोऽध्यायः वाजसनेयिसंहितायां सायनाद योऽयं

अध्याय समाप्त

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

सोलहवें अध्यायमें शतरुद्रोंका होम कहकर अब सप्तहवें अध्याय में चित्परापरिक आदिके मंत्रोंको कहते हैं ।

॥ हरिः ॐ ॥ अम्सन्नुर्जम्पर्वते शिश्रियाणामृद्धय

ओपधीभ्यो वनस्पतिभ्यो आधि सम्भृतमयः ।

तान् इषमूर्जन्यस्त मरुतः सधराणाः अस्मधस्ते

क्षुन्मयि तु ऊर्यन्द्धिष्मस्तन्ते शुर्गच्छतु ॥ १ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं, सबका मेधातिथि अ०, छन्द १ आ० त्रि०, २ दै० वृ०, ३ या वृ०, और दे० १-मरुत २-अस्मा, ३-धुक् है । मंत्रार्थ--(मरुतः, सधराणाः, अश्मन्, पर्वते, शिश्रियाणाम्, ऊर्जम्, अद्भ्यः ओपधीभ्यः, वनस्पतिभ्यः, आधि,

सम्पृगम्, पयः, ताम्, इषम्, ऊर्जम्, नः, धत्त) हे महद्गण !
 प्रसिद्धिदाता तुम पापाणामे विन्व्याचल हिमालयादि पर्वतोंमें
 आश्रित सारभूत वनका हेतु जलोंसे ओषधियोंसे वनस्पति अश्व-
 त्यादि से अधिक सिद्ध तथा गौद्वारा सम्पादित दूध अर्थात् मेघ
 जनित जलरूप और गौसे उत्पन्न दुग्धरूप प्रसिद्ध अन्न और रस
 को हमारे निमित्त स्थापन कीजिये अर्थात् हमें दीजिये (आस्मिन्
 ते, जुर्) हे प्रस्तररूप ! सर्वभक्षक अग्ने ! तुमको जुधा मास हो
 अर्थात् बहुत इवि भोगो (अरमन्, ते, ऊर्क, मयि) हे प्रस्तर !
 तुम्हारा सारभाग मेरे विषे स्थित हो, हे अग्ने (ते, शुक, तं,
 अच्युतं यं, द्विष्मः) तुम्हारा कोष उस मनुष्यको प्राप्त हो जिस
 के साथ हम द्वेष करते हैं अर्थात् जो कोई हमारा शत्रु हो तुम्हारा
 दाह उसको प्राप्त हो ॥ १ ॥

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्येका च दश
 च दश च शतञ्च शतञ्च सहस्रेञ्च सहस्रेञ्चा-
 युतञ्च युतञ्च नियुतञ्च नियुतञ्च प्रयुतञ्च अर्बुदञ्च
 न्यर्बुदञ्च समुद्रञ्च मध्यञ्चान्तञ्च परार्द्धञ्चैता
 मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्यमुत्रासुर्गिमल्लोके ॥ २ ॥

इसका मेधातिथि अ०, नि०, वि०, जं०, अग्नि दे० । मं०
 (अग्ने, इमाः, इष्टकाः, मे, धेनवः, सन्तु, एका, च, दश च, शतं,
 च, शतं, च, सहस्रं च, स, स्रं, च, अयुतं, च, अयुतं, च, नियुतं,
 च, नियुतं च, प्रयुतं, च, प्रयुतं, च, अर्बुदं, च, न्यर्बुदञ्च, समुद्रः,
 च, मध्यञ्च, अन्तः, च, परार्द्धः, अग्ने- एताः, इष्टकाः, अमुत्र, च,
 अमुष्मिन्, लोके, मे, धेनवः, सन्तु) हे अग्नि देवता यह जो
 पांच विनिमें स्थापित इष्टका हैं तुम्हारे प्रसादसे इसलोकमें मेरे
 निमित्त अभिमत फल देनेवाली गोरूप हो उनकी संख्या कहते हैं
 जो एक ही दशसे गुणा करनेपर दशसंख्या और दशगुणा करने
 से सौ संख्या और सौको दशगुणा करनेसे ही सहस्र होता है,
 और सहस्रको दशगुणा करनेसे अयुत संख्या होती है (१००००) ।

और अयुगको दशगुणा करनेसे लाख १००००० संख्या और
नियुगको दशगुणा करनेसे दशलाख १०००००० संख्या होती है
और इसको दशगुणा करनेसे करोड़ १००००००० संख्या होती
है इसको दशगुणा करनेसे अर्बुद और इसका दशगुणा करनेसे न्य-
र्बुद (अब्ज) और इसका दशगुणा करनेसे खर्व और खर्व का
दशगुणा करनेसे निखर्व इसका दशगुणा करनेसे महापद्म इसका
दशगुणा शङ्ख इसका दशगुणा समुद्र और इसका दशगुणा मध्य
और इसका दशगुणा करनेपर अन्त और इसका दशगुणा करनेसे
परार्द्ध संख्या होती है हे अग्ने ! यह इष्टका दूसरे जन्ममें और
दूसरे लोकमें मेरी कामधुधा गौएं हों, अर्थात् इष्टका परार्द्ध संख्या
तक एकत्र स्थायी होती है और कामधुधा है इसकारण मार्धना है
कि हमको इसलोक परलोक और परजन्म किसी कालमें भी
कामनारूप दधदानसे कातर न करें ॥ २ ॥

अतथे स्थ अत्रावृथं अतुष्टा स्थ अत्रावृथं ।

घृतश्लेषुतो मधुश्लेषुतो विराजो नाम कामदुघा

अक्षरपमाणाः ॥ ३ ॥

इसका मेधा० श्रु० विराटार्पी पं० छं०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—
 हे इष्टके! तुम (ऋगाष्टकः, अथर्वः स्य, ऋतावृध०, ऋतुष्टाः, धृतरपुतः,
 मधुःपुतः, विराजः, नाम, कामदुघाः, अक्षीपमाणः, स्य) सत्य
 वा यज्ञकी बढ़ानेवाली वसन्तादिरूप हो, यज्ञकी वृद्धि करनेवाली
 वसन्तादि ऋतुओंमें स्थित हो, तथा धृतकी क्षरण करनेवाली मधु
 की क्षरण करनेवाली, विराज नामसे प्रसिद्ध कामना पूर्ण करने
 वाली, सत्य रहितहो, मुझे सब कामना दा ॥ ३ ॥

समुद्रस्य त्वाधकृपाग्ने परिर्वपयामसि । प्राचक्रो

अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ४ ॥

इसका मे० ऋ०, सु० गा० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्प-
(अग्ने, समुद्रस्य, अवकया, त्वा, परिज्ययामसि, अस्मभ्यम्,
पावकः, शिवः, भव) हे अग्ने ! जलके शैवालद्वारा तुमको सब

ओरसे वेष्टन करताहूं हमारे निमित्त शोधक कल्याणकारी होओ ४
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिण्ययामसि ।

पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ५ ॥

इसका मे० ऋ० भु० गा० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, हिमस्य, जरायुणा, त्वा, परिण्ययामसि, अस्मभ्यम्,
पावकाः, शिवः, भव) हे अग्निदेव ! हिमके जरायुवत् उत्तीर्ण
स्थान शैवालसं तुमको सब ओरसे वेष्टन करताहूं, हमारे निमित्त
शोधक कल्याणकारी हूजिये ॥ ५ ॥

उप जमन्नुप वेतसेवन्तर नदीप्या । अग्ने पित्त-
मपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमन्नो यज्ञ-
स्पाद्यकवर्णं शिवं कृधि ॥ ६ ॥

इसका मे० ऋ० आर्षी० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, जमन्, उपावन्तर, वेतसे, उप, नदीपु आ, अपाम्, पित्तम्
असि, मण्डूकि, ताभिः, आगहि, सा, इमम्, अस्माभिः, यज्ञम्,
पावकवर्णम्, शिवं, कृधि) हे अग्ने ! पृथ्वीके ऊपर आओ वेतस
शाखाको अवलम्बन करो, सब नदियोंमें शिवारको अवलम्बन
करो, हे अग्ने तुम जलोंके तेजःस्वरूप हो, हे मण्डूकी ! तुम भी
जलोंको पित्तस्वरूप हो, इसकारण पूर्वोक्त जलोंके साथ आगमन
करो, अर्थात् जिनका अग्नि पित्त है जिससे तुम उत्पन्न हो, जो
तुम अग्निकी शान्तिके निमित्त इधर उधर लेजाईजाती हो, सो
तुम इस हमारे ध्यान लक्षणवाले यज्ञको अग्नि की समान तेज-
स्वी फलदायक करो ॥ ६ ॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।

अन्यास्तै अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्म-
भ्यं शिवो भव ॥ ७ ॥

इसका मंत्रा ऋ०, आर्षी० वृ०, छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ—
(इदम्, अपाम्, न्ययनम्, समुद्रस्य, निवेशनम्, ते, हेतयः अस्मत्,
अन्यान्, तपन्तु, अस्मभ्यम्, पावकाः, शिवः, भव) यह चित्तिमे

स्थित अग्निका स्थान जलोंकी प्राप्तिका साधन समुद्रका गृहरूप है हे अग्ने ! आपकी ज्वाला हमारे विरोधियोंको ताप दें क्लेश दें हमारे निमित्त शोधक और कल्याणकारक हों ॥ ७ ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिहया ।

आ देवान्यक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

इसका वसुयुक्तापि, आ०, गा०, छं०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ— (पावक, देव, अग्ने, रोचिषा, मन्द्रया, जिहया, देवान्, आवक्षि च, यक्षि) हे शोधक ! देव अग्ने तुम ज्वालासूत आहवनीयरूप और आनन्दस्वरूप होता की वाणीरूपसे स्थित तुम देवताओंको आवाहन करो और यजेन करो ॥ ८ ॥

स नः पावक दीदिवोग्ने देवाथि इर्वावह । उप-

यज्ञथि हविश्च नः ॥ ९ ॥

इसका मेधा० अ०, नि०, गा० छं०, अग्नि दे० । मन्त्रार्थ— (पावक, दीदिवः, अग्ने, सः, देवान्, नः, इह, आवह, च, नः हविः, यज्ञम् उप) हे शोधक ! दीप्तिमान् अग्निदेव ! वह तुम देवताओंको हमारे इस यज्ञमें दुनाओं और हमारी हवि यज्ञके समीप देवताओंको प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

पावकया यद्वितयन्त्या कृपा क्षामन् रुच

उपसो न भानुना । तूर्वक्षपामन्नेतदास्य नूरण

आ यो घृणेन तं तृपाणो अजरः ॥ १० ॥

इसका भारद्वाज अ० निच० ज० छं० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ— (यः, पावकया, वितयन्त्या, कृपा, क्षामन्, रुचे, नः, उपसः, भानुना, सः, तृपाणः, अजरः, एतदास्य, यामन्, रुणे, तूर्वेन, नः, घृणे, नु, आ) जो अग्नि पवित्रकरणेवाला दृढ़ चयन करने वाला सामर्थ्य से पृथ्वीपर शोभाको प्राप्त होता है, जैसे उपःकाल अपने मकाशसे शोभा देता है, जो पूर्णहुतिके पानकी इच्छा करने वाला जरारहित अग्नि गमनमें कुशल घोड़ेसे कार्य लेनेवाले युद्ध में शत्रुओंको मारतेहुएकी समान दीप्तिसे निश्चय है । सधर्मा

शोभा देता है, उस अग्निको आर्कषण करते हैं ॥ १० ॥

नमस्ते हरंसे शोचिषे नमस्ते अम्बुर्विषे ।

अन्यास्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं

शिवो भव ॥ ११ ॥

इसका लोपागुद्रा ऋ०, भु० वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
हे अग्ने ! (ते, हरंसे, शोचिषे. नमः, ते, अम्बुर्विषे, नमः, अम्बु,
ते, हेतयः, अस्मत्, अन्यान्, तपन्तु. अस्मभ्यं, पावकः, शिवः भव)
तुम्हारी सब रसोंको आर्कषण करनेवाली तेजःस्वरूप ज्वालाको
नमस्कार है । तुम्हारे पदार्थ प्रकाशक तेजको नमस्कार हो, आप
की ज्वाला हमसे दूसरोंको तपाओ, हमको शोधक कल्याणकारक हो

नृपदे वेदं नृपदे वेदं वार्षपदे वेदं वनसदे वेदं

स्वर्बिदे वेदं ॥ १२ ॥

इस कं० में ५ भं० हैं, सबका लोपागु० ऋ०, छं०, १ । ५
दै० वृ० २-३-४-५-६ पं० और देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ—
यह अग्नि (नृपदे वेदं, अम्बुपदे, वेदं, वार्षपदे, वेदं, वनसदे, वेदं
स्वर्बिदे, वेदं) मनुष्योंमें जठराग्नि रूपसे स्थित प्राणरूप है उस
की प्रीतिके निमित्त यह आहुति दी जाती है, सो सम्यक् रूप से
गृहीत हो, जो अग्नि समुद्रादि जलके मध्यमें बढ़वाग्नि रूपसे
स्थित है, उसका आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि
यज्ञीय कुशादिके ऊपर निवास करते हैं, उनकी प्रीतिके निमित्त
यह आहुति दी जाती है भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि वृक्षसमूह
में दावाग्नि रूपसे स्थित है, उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दी
जाती है भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि स्वर्लोकके प्रधान अभिष्व
सूर्य नामसे प्रसिद्ध है उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं,
भलीप्रकार गृहीत हो ॥ १२ ॥

ये देवा देवानां यज्ञियां यज्ञिषां नाथः सम्बत्सु-
रीणमुपेभ्यामासते । अहुतादो हविषां यज्ञे
अहिमन्त्स्वयम्पियन्तु मधुनो घृतस्य ॥ १३ ॥

इसका लोषामुद्रा ऋ०, नि० ज० छं०, प्राण देवता है । मंत्रार्थ-
(ये, देवाः, बहुतादः, अस्मिन्, यज्ञे, मधुनः, घृतस्य, हविषः,
स्वयं, पिबन्तु, यज्ञियानां, देवानां, यज्ञियाः, सम्बत्सरीणम्, भागं
उपासते) जो देवता बिना स्वाहाकार किये अन्नको भक्षण करते
हैं, वे प्राणरूप देवता इस चयनरूप यज्ञमें मधु, घृत अर्थात् मधु
घृत दधिरूप हविका भाग स्वयं ही स्वाहाकारके बिना पान करें
जो कि यजन करनेयोग्य देवताओंके मध्यमें यज्ञयोग्य दीप्तिमान्
हैं वे सम्बत्सरमें होनेवाले यज्ञके भागका सेवन करते हैं ॥ ११ ॥

ये देवा देवेभ्यः अधि देवत्वमायन्त्ये ब्रह्मणा पुर
एतारो अस्य । येभ्यो न कृते पर्वते धाम किञ्चन
न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुपु ॥ १४ ॥

इसका लोषामुद्रा ऋ०, आ० ज० छं०, प्राण दे० । मंत्रार्थ
(ये, देवाः, देवेषु, अधिदेवत्वम्, आयन्, ये, अस्य, पुरः, एतारः,
येभ्यः, ऋते, किञ्चन, धाम, न, पर्वते, ते, न, दिवः, न, पृथि-
व्याम्, स्नुपु, अधि) प्राणादि देवताओंने इन्द्रादि देवताओंमें
जो अधिप्रातृत्व प्राप्त किया है अर्थात् देवगणोंमें प्रधान देवत्व पाया
है जो प्राण इस जगिके आगे गमन करते हैं जिन प्राणोंके बिना
कोईभी शरीर चेष्टा नहीं करसकता वे प्राण न पृथलोकमें न पृथ्वी
में हैं किन्तु मत्स्येक इन्द्रियमें वर्तमान हैं ॥ १४ ॥

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याधस्तं अस्मत्तपन्तु हेतयः पात्रको अस्म-
भ्यधे शिवो भव ॥ १५ ॥

इसका लोषामुद्रा ऋ०, विरा० पं०, छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ- (प्राणदाः, अपानदाः, व्यानदाः, वर्चोदाः, वरिवोदाः,
अस्माकं, पात्रकः, शिवः, भव, ते, हेतयः, अस्मत्, अन्यान्,
तपन्तु) हे अग्ने ! तুম प्राण देनेवाले अपानदेनेवाले सर्व शरीर
वर्षी व्यानवायु देनेवाले बलदाता धनके देनेवाले होओ, हमको
शोधक कल्याणकारी होओ ज्वालारूप आयुध हमसे दूसरों

ताप देयं ॥ १५ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासुद्विष्वन्यत्रिणम् ।

अग्निर्नो वनते रुधिम् ॥ १६ ॥

इसका भर० ऋ०, नि० या० छं०, अग्निं दे० । मंत्रार्थ (अग्निः, तिग्मेन, शोचिषा, विश्वं, अत्रिणं, नियासत्, अग्निः, नः, रायम् वनते) अग्नि तीक्ष्ण तेजसे सम्पूर्ण यज्ञवित्तकारी राक्षसादिको दूरकर अग्नि हमको धनदेय ॥ १६ ॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदपिहोता न्यसी-
दत्पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः

प्रथमच्छदधरान् आविवेश ॥ १७ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्वकर्मा ऋ०, नि०, पि० छं० विश्वकर्मा दे० है । मंत्रार्थ— यः, अषिः, होता, नः, पिता, इमा, विश्वा, भुवनानि, जुह्वन् न्यपीदत्, सः, प्रथमच्छत्, आशिषा, द्रविणम्, इच्छमानः, अवरात्, आविवेश) जो अनीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ संहार-रूप होमका कर्त्ता हम सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन करनेवाला है जो इन सम्पूर्ण लोकोंका संहारकाता हुआ स्वयं स्थित हुआ यह परमेश्वर प्रथम एक अद्वितीय रूपको छादन करता मैं बहुतरूप होकर प्रकट होऊँ इस अभिलाषासे जगत् रूप धनको इच्छा करता हुआ अभिव्यक्त उपाधिवाले मायाके विकारयुक्त जीवोंमें प्रवेश-करणया ॥ १७ ॥

किंस्त्विदासीदधिष्ठानमारम्भणकृतमस्त्विद्वक्-

थासीत् । यतो भूमिञ्जनयन् विश्वकर्मा विद्या-

सौणोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १८ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०, भु० पं० छं० विश्वकर्मा देवता है । मंत्रार्थ— (स्त्विद, अधिष्ठानम्, किम्, आसीत्, आरम्भणम्, कथा, कृतम्, आसीत्, यतः, विश्वचक्षाः, विश्वकर्मा, भूमिम्, याम् जनयन्, महिना, विशौणोत्) प्रश्न है कि यावाभूमिका निर्माण करतेमें इस परमात्माका रहनेका आश्रय क्या था ? घट

को बनानेमें मृत्तिकाकी समान उपादानकारण रूप जगन्निर्माण की सामग्री, किया बतानेवाली वेदवाणी क्या थी ? जिससे अतीत अनागत वर्तमानकालको एकसाथ देखनेवाले विश्वकर्त्ता परमात्मा ने इस विस्तृत भूलोक और धुलोकको सृजन करके अपनी वही सामर्थ्यसे विशेष आच्छन्न किया है, आप सर्वदर्शी भावसे सर्वत्र विराजमान हैं ॥ १८ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुकृत
विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यान्धर्मति सम्पतये-
द्याधुमी जनयन् देवं एकः ॥ १९ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० आदि, भु०, त्रि०, जे०, विश्वकर्मा देवता है । मंत्रार्थ—(विश्वतश्चक्षुः, उत, विश्वतोमुखः, विश्वतोबाहुः उत, विश्वतस्पात्, एकः, देवः, द्यावाधुमी, जनयन्, बाहुभ्याम्, सन्धर्मति, पतये, सम्) सबओर नेत्रवांला और सबओर मुख वाला सबओर भुजावाला और सबओर धरणीसे युक्त एक अद्वितीय परमात्मा धुलोक और भूलोकको अधिष्ठानशून्य होकर प्रकट करता हुआ अपनी भुजाओंसे संयोगको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

किञ्चिद्विद्वन्कृत् स वृक्ष आसं यतो द्यावापृ-
थिवी निष्ठतक्षुः । मनीषिणो मनसां पृच्छन्ते दु-
तयदुध्यातिद्रुयनानि धारयन् ॥ २० ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० ऋ०, भु० त्रि० जे०, विश्वकर्मा दे० मंत्रार्थ—प्रश्न (किञ्चिद्विद्वन्, कृत्, स, वृक्ष, आसं, यतः, द्यावापृथिवी, निष्ठतक्षुः, मनीषिणो, भुवनानि, धारयन्, यत्, अध्येतिष्ठत, तत्, मनसा, इव, उ, पृच्छन्ते) कहो तो वह कारणरूप वन किस प्रकारका था और वह कार्यरूप वृक्ष कौन था जिस वनवृक्षसे विश्वकर्माने स्वर्ग और पृथ्वी अलंकृत की है हे विद्वानो ! मनका निग्रहकरनेवालों सब भुवनोंको धारण करते हुए विश्वकर्माने जो स्थान अधिष्ठित किया उसको मनसे आलोचनाकर उस प्रसिद्धको पूछो ॥ २० ॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा
विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षासखिभ्यो हविषि
स्वधावः स्वयं यजस्व तन्व्यं वृधानः ॥ २१ ॥

इसका भु० वि० ऋ०, आर्षी त्रि० छं० विश्व० दे० । मंत्रार्थ
(स्वधावः, विश्वकर्मन्, ते, या, परमाणि, या, अवमा, उत, या,
मध्यमा, धामानि, इमा, धामानि, सखिभ्यः, आशिक्ष, हविषि,
तन्वम्, वृधानः, स्वयम्, यजस्व) स्वधावान् बहुत अन्नसे युक्त
सब जगत्के कर्त्ता ईश्वर आपके जो उत्कृष्ट जो निकृष्ट और जो
मध्य धेणीके स्थान हैं इन ऊपर नीचे और मध्यके लोकोंको
अन्न यजमानोंको सबप्रकारसे दीजिये। तथा यजमानकी दीहुई
हविके उपस्थित होनेमें अपने शरीरको वृद्धिको प्राप्त करते आप
ही यजन कीजिये हम यजन करतेहैं यह हम कैसे कहसकतेहैं कौन
मनुष्य तुमको यजन करनेको समर्प है ! इससे मैं कहताहूँ स्वयं
यजन करो ॥ २१ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व
पृथिवीमुत धाम् । सुधन्वन्प्रे अभितः सपत्ना
इहास्माकंमघवा सूरिरंस्तु ॥ २२ ॥

इसका भु० वि० ऋ०, निचृदा० त्रि० छं०, विश्वक० देवता
है । मंत्रार्थ—(विश्वकर्मन्, हविषा, वावृधानः, पृथिवीम्, उत,
धाम्, स्वयं, यजस्व, अभितः, अन्धे, सपत्नाः, सुधन्तु, इह, मघवा
अस्माकं, सूरिः, अस्तु) हे परमात्मन् ! मेरे दियेहुए हविरूप
अन्नसे प्रसन्नहुए आप मेरे यज्ञमें पृथिवीके आश्रित जीवोंको
और धुलोकके आश्रित जीवोंको मेरे ऊपर अनुग्रह कर स्वयं ही
यजन करा, और तुम्हारे मसादसे सब औरसे दूसरे शत्रु वा का-
मादि मोहको प्राप्त हो, इस यज्ञमें इन्द्र यज्ञद्रष्टा ब्रह्मा हमको आत्म
ज्ञानके उपदेशक हों ॥ २२ ॥

वाचस्पति विश्वकर्माण्युतयं मनोजुवं वाजं अघा
हुंवेम । स नो विश्वानि इषानानि जोषाविश्वः ।

शम्भूरक्षसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्द्धनेन ज्ञातारमिन्द्रमकृणोर-
बुद्धयम् । तस्मै विश्वाः समनमन्त पूर्वीरघमुग्रो
विह्वले यथासत् ॥ २४ ॥

इन दोनोंकी व्याख्या अ० ८ मं० ४५, ४६ में होगई है ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरौ घृतमेने अजन
नमनमाने । यदेदन्ता अददहन्त पूर्वे आदि-
दद्यावापृथिवी अप्रयेताम् ॥ २५ ॥

इसका मु० वि० अ०, आ० वि० छं० वि० क० देवता है ।

मंत्रार्थ—(यदा, इत्, पूर्वे, अन्ता, अददहन्त, आत्, इत्, दद्यापृ-
थिवी, अप्रयेताम्, चक्षुषः, पिता, मनसा, धीरः, हि, एने, नमन
माने, घृतम्, अजनयत्) जिससमय पूर्वमहर्षियोंने द्यावा भूमिके
अन्तर्दिशाओंको दृढ़ किया, इसके अनन्तर ही द्यावापृथिवी विश्वा
युक्त हुई तब सम्पूर्ण षोडशको पालन करनेवाला मनसे धीर होता
ही इन नममान द्यावापृथिवीमें घृतजलको उत्पन्न करताहुआ २५ ।

विश्वकर्मा विमना आदिहाया धाता विधाता
परमोत्त सन्दृक् । तेषांष्टिमानि समिपा भदन्ति
यत्रा सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः ॥ २६ ॥

इसका मु० वि० अ० आर्षी वि० छं० विश्वक० दे० । मंत्रार्थ

(यन, सप्त, ऋषीन्, परण, एकम्, आहुः, विश्वकर्मा विमनाः,
आत्, विहायाः, धाता, विधाता, उत्त, परमः, सन्दृक्, तेषाम्,
इष्टानि, इषा, सम्मदन्ति) जिस लोकमें सप्त ऋषियोंको विश्व-
कर्माके साथ एक कहतेहैं जिनका जगन्निर्माता श्रेष्ठमन सम्पूर्ण
कर्मका ज्ञाता और आकाशमें व्यापक, धारण पोषण स्थिति करने
वाला सबका उत्पादक और सबसे उत्कृष्ट परमात्मा सम्यक् देखने
वाला है उस लोकमें उन ऋषियोंके अभिलाषित वस्तु आहुतिके
रसभूत अन्नके संग आनन्दसे मोदयुक्त होकर पुष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि

वेदं भुवनानि विश्वा । धी देवानां नामधा एकं
एव तथै सम्पृक्षम्भुवना यन्त्यन्या ॥ २७ ॥

इसका भु० वि० अ० निचृदा० त्रि० छं० विश्वकर्मा दे०
मंत्रार्थ—(यः, नः, पिता, जनिता यः, विद्याता, विश्वा, धामानि
भुवनानि, वेद, यः, एकः, देवानां, नामधाः, अन्या, भुवना, सम्पृक्षं
ते, यन्ति) जो विश्वकर्मा परमेश्वर हमारा पालक उत्पादक है
जो विशेषकर धारण करनेवाला है सम्पूर्ण स्थान और प्राणियों
को जानता है जो एक होकर भी देवताओं के अनेक नामों को धारण
करता है और भक्तजन प्रश्नोत्तर करते हुए उन परस्मामा में प्रवेश
करते हैं ॥ २७ ॥

त आर्यजन्तु द्रविण्यं समस्मा अर्ययः पूर्वं
जरितारो नभूना । अमूर्ते मूर्ते रजसि निपत्ते
ये भूतानि समकृण्वन्तिमानि ॥ २८ ॥

इसका भु० वि० अ० निचृदा० त्रि० छं० विश्वकर्मा दे० ।
मंत्रार्थ (ते, जरितारः, पूर्वं, अर्ययः, अस्मै, द्रविण्यं, समाय गन्त,
नभूना, ये, अमूर्ते, मूर्ते, रजसि निपत्ते, इमानि भूतानि, सम, अकृण्वन्)
वे स्तुतिकरनेवाले विश्वकर्मा के रचे पूर्वकालीन अपि इस भूत
समूह को जलकण धन सम्पन्न प्रकार से देते हुए अधिकता से कामना
को देते हुए, जो अभी सत्रह अवयववाले लिङ्गशरीरों से भली प्रकार
मेरित अन्तरिक्ष लोक में स्थित हो इन प्राणियों को रचते हुए २८

परो दिवा पुर एना पृथिव्या परो देवेभिरंसु-

र्य्यदस्ति । कथं स्विद्वर्ममप्यमन्दध्र आपो

पत्र देवाः समर्पयन्तु पूर्वं ॥ २९ ॥

इसका भुव० वि० अ०, आर्यो त्रि० छं०, विश्वकर्मा दे० है ।
मंत्रार्थ—(यत्, अस्ति, दिवः, परः, एना, पृथिव्या, परः, देवेभिः,
अमूर्ते, पः, इत्स्व, आपः, प्रयमं, कं, गर्भम्, दध्ने, कास्वित्,
यत्र, पूर्वं, देवाः, समर्पयन्तु) जो ईश्वरका तत्त्व हृदयकमल में
विद्यमान है वह पुलोकसे भी दूर अर्थात् दुर्लभ है, इस पृथ्वीसे भी

दूर है और जलोंने पहले किसके गर्भको धारण किया यह तो देखो कि उसने प्रथम जलको उत्पन्न किया जिस समय उसको प्रथम गर्भमें धारण किया वह गर्भ कैसा आश्चर्यरूप है जहां प्रथम के देवता तथा महर्षि जगत्को देखेहुए ॥ २९ ॥

तमिद्गर्भप्रथमन्दध्र आपो यत्र देवास्तमग-
च्छन्त विश्वे । अजस्य नामावध्येकमपितं यस्मि-
न्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ३० ॥

इसका भु० वि० ऋ०, आपो त्रि० छं०, विश्वकर्मा देवता है । मंत्रार्थ—(आपः, प्रथमं, तमिद्, गर्भं, दधिरे, यत्र, विश्वे, देवाः, समगच्छन्त, अजस्य, नामौ, एकं, अपिगम् यस्मिन्, वि-
श्वानि, भुवनानि, अधितस्थुः) जलोंने पहले उसको ही गर्भ में धारण किया क्योंकि गर्भमें सम्पूर्ण देवता एकत्र होकर बसते हैं उस गर्भका आधार क्या है ? जन्मरहित परमेश्वरकी नाभिस्था-
नीय मध्यमें एक अविभक्त अनन्तभूत त्रिचित् बीजगर्भरूप स्था-
पित किया जिसमें सम्पूर्ण भूतसमूह स्थित हुए, अर्थात् वह-
सत्रका आश्रय है उसका कोई आश्रय नहीं है ॥ ३० ॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्ययुष्माकमन्तर-
म्यभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप
उक्थुशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥

इसका भु० वि० ऋ०, भु० पं० छं०, विश्वकर्मा देवता है ।
मंत्रार्थ—[उपदेश करते हैं] (यः, इमा, जजान, युष्माकम्, अन्तरम्,
अन्यत्, वभूव, तं, न, विदाथ, नीहारेण, च, जल्प्याः, प्रावृताः, असुतृपः
उक्थुशासः, चरन्ति) जिस परमात्माने इस सब जगत्को उत्पन्न
किया है और जो अहंकारादिसे युक्त जीवोंके अन्तरमें, वास्तवमें
अहंकारको छोड़नेपर जानेयोग्य ईश्वरतत्त्व है उसको तुम नहीं
जानते हो कारण कि कुहरसदृश अज्ञानसे और भ्रमदेवता हैं मनुष्य
हैं, यह मेरा गृहक्षेत्र है, इत्यादि असत् वातासे आच्छादित हुए
किस प्रकारसे हो गणपोषणकी चिन्तामें नगे ईश्वरतत्त्वके न वि-

चारनेवाले परलोकके भोग पानेको सकाम यज्ञोंमें स्तुति करते थे ।
मायी विचरते हैं ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिह्यन्वर्वो अभवद्
द्वितीयः । तृतीयः पिता जनितापधीनामपाद्गर्भं
व्यदधात् पुरुषा ॥ ११ ॥

इसका भु०, वि०, अ०, ब्रा० उ० छं०, विश्व० दे० । मंत्रार्थः
प्रज्ञापकके मध्यगणोंकी सृष्टिकहेसे प्रज्ञापकके बीचमें मयम (विरव-
कर्मा, देवः, अजनिष्ट, आव्, इत्, द्वितीयः, गन्धर्वः, अभवत्)
देवतिथ्यादि जगत्का भेद करनेवाला सत्यलोकवासी, धनुर्मुख
देव ग्रादुभूतहुआ, अर्थात् आदित्यके अन्तर पुरुषरूपसे मकट
हुआ अनन्तर दूसरी सृष्टिमें गन्धर्व पृथ्वीको धारण करनेवाला
अग्नि अथवा मानाविद्यामें चतुरदेवयोनि, मकट हुआ (तृतीयः,
ओषधीनाम्, जनिता, पिता, अपाम्, गर्भम्, पुरुषा, व्यदधात्)
तीसरा ओषधियोंका उत्पादक पालक पर्जन्यरूप हुआ वह पर्ज-
न्य उत्पन्न होनेही आहुतिके परिणामभूत जलोके गर्भको बहुत
प्रकारसे धारण करताहुआ ॥ ३२ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघ्नः
क्षोभेणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनो निमिष एकः
वीरः शतश्रु सेना अजयत्साकभिन्द्रः ॥ ३३ ॥

इसका मतारथ क्र०, आर्षी शि० छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ-
(आशुः, शिशानः, वृषभः, न भीमः, घनाघ्नः, चर्षणीनाम्, क्षो-
भणः, संक्रन्दनः, अनिमिषः, एकवीरः, इन्द्रः, साकम्, शतश्रु सेनाः
अजयत्) शीघ्रगामी वज्रनाशककारी वर्णने के स्वभावकी उपमा
वाला भयकारी शत्रुओंका अतिशय घातक मनुष्योंके शोभका हेतु
बारंबार गर्जन करनेवाला, देवता होनेसे पतक न लगानेवाला,
अत्यन्त सावधान अद्वितीय वीर इन्द्र एकसाय ही सौ सौ शत्रु
सेनाको जीतताहुआ ॥ ३३ ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युक्कारेण दुश्चय-

युनेन घृष्णनां । तदिन्द्रेण जयत् तत्संहृष्टं

युधो नर इपुहस्तेन वृष्णां ॥ ३४ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, विराट् प्रा० छं० इन्द्र दे० है मन्त्रार्थ-
(युधः, नरः, घृष्णनां, संक्रन्दनेन, युत्कारेण, अनिमिषेण, इपु-
हस्तेन, जिष्णुना, दुःस्वप्नेन, वृष्णा, इन्द्रेण, सत्, जयत्, तत्, संहृष्टम्) हे युद्ध करनेवाले मनुष्यों ! प्रगल्भ मयरहित शब्द
करनेवाले, बहुत युद्ध करनेवाले एकविध हाथमें बाण धारणाके
जयशील अजेय कामनाओंके वर्णनेवाले, इन्द्रके मयावसे उस शत्रु
सेनाका जय करो और उस सेनाको बशमें काके बिनष्ट करो ॥ ३४

स इपुहस्तैस्सनिपट्भिर्बिषी सधैर्यं सयुध
इन्द्रो गृणेन । सधैर्यं सजितसोमपा बाहुशर्घ्व-
धन्वा प्रतिहिताभिरस्तां ॥ ३५ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, आर्षी मि० छं० इन्द्र देवता है मन्त्रार्थ-
(सः, बशी, इपुहस्तैः, निपट्भिः, संस्रष्टा, सः, गृणेन, युधः, सः
इन्द्रः, संस्रष्टजित्, सोमपाः, बाहुशर्घ्वः, समधन्वा, प्रतिहिताभिः,
अस्ता) वह जितेन्द्रिय बाण हाथमें लिये धनुषधारियोंसे युद्धके
निमित्त संसर्ग करनेवाला वह शत्रुसमूहोंसे युद्ध करनेवाला है वह
इन्द्र युद्धके निमित्त इकट्ठ हुए शत्रुओंको जीतनेवाला यजमानोंके
यज्ञमें सोमपान करनेवाला बाहुओंके बलसे युक्त उत्कृष्ट धनुषवाला
अपने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुओं पर चलता है, वह इन्द्र
हमारी रक्षा करे ॥ ३५ ॥

वृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहा मित्रान् अप-
वाचमानः । प्रभञ्जन्तसेनाः प्रयुगो युधा जयेन्त-
स्माकमेघ्यविता रथानाम् ॥ ३६ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, आर्षी मि० छं० वृह० दे० है । मन्त्रार्थ-
(वृहस्पते, रक्षोहा, रथेन, परिदीया, मित्रान्, अपवाचमानः,
सेनाः, प्रभञ्जन्, युधा, प्रयुगः, जयेन्, अस्माकं, रथानां, अविता
एधि) 'वाम्बं, वृहती'-वाणीके पति व्याकरणकर्त्ता होनेसे इन्द्र

स्नाकृ० सेना अवतुं प्रयुत्सु ॥ ३९ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, नि० त्रि० वं० इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ—
(अद्यः, वीरः, शमन्युः, दुश्च्यवनः, पृतनापाट्, अधुध्यः, इन्द्रः
युत्सुः, गोत्राणि, सहसा, अभिगाहमानः, अस्माकम्, सेनाः, प्रा-
वतु) शत्रुओं पर दयारहित, विकान्त अनेक प्रकारके क्रोधयुक्त,
जिसका कोई व्यवहित न करसके अजेय संग्राममें सेनाको सहकर
तिरस्कार करनेवाला जिसके संग कोई युद्ध नहीं करसकता, सो
इन्द्र युद्धोंमें अशुरकुलोंको एकसाथ ही विलोडित करता हुआ,
हमारी सेनाकी रक्षा करे ॥ ३९ ॥

इन्द्रं आसन्ननेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरः पृतु

सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनाञ्जयन्तीना-

मरुतां यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥

इसका अतिरथ ऋ०, ब्राह्मणु० वं० इन्द्रादय दे० है । मंत्रार्थ—
(बृहस्पतिः, इन्द्रः, आसाम्, अभिभञ्जतीनाम्, जयन्तीनाम्, देव
सेनानाम्, नेता, यज्ञः, सोमः, दक्षिणा, पुरः, पृतु, मरुतः अग्रम्
यन्तु) बृहस्पति-इन्द्र इन शत्रुओंको मर्दन करनेवाली विजयशील,
देवसेनाओंके शिक्तक हैं, यज्ञपुरुष विष्णु, सोम, दक्षिणा, आग्ने-
गमय करें, गणदेवता सेनाके अग्रभागमें गमन करें ॥ ४० ॥

इन्द्रस्पृष्टृष्णो वरुणस्य राज्ञां आदित्यानां मरुतां

शर्धे उग्रम् । महामनसां भुवनव्ययानां घोषां

देवानाञ्जयन्तामुदस्थात् ॥ ४१ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, आ० त्रि० वं०, इन्द्रादिदे० है । मंत्रार्थ—
(महामनसाम्, भुवनव्ययानाम्, जयन्तां, देवानां, आदित्यानाम्,
मरुतां, वृष्णाः, इन्द्रस्पृष्टः, राज्ञः, वरुणस्य, उग्रम्, शर्धे, घोषः, उद-
स्थात्) महानुभाव, लोकनाशकसामर्थ्यवाले, विजयपानेवाले,
देवता, आदित्य, मरुत, कामनाकी वर्षा करनेवाले इन्द्र और
राजा वरुणको उग्रसंज्ञका जयशब्द मरुतद्वारा ॥ ४१ ॥

उद्धर्क्षीय मघवन्नायुषान्युत्सत्त्वंतां मामकानां

मनांसि । उद्धृष्टान् वाजिनां वाजिनान्युद्ध-
थानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥

इसका अ० प्र० अ० ब्रा० उ० छ० इन्द्र देवता है । मन्त्रार्थ
(मघबन्, आयुधानि, उद्धृष्य) हे इन्द्र अपने शत्रुओं को भस्मिकार
हर्षितकरो (मामकानां, सत्वानां, मनांसि, उत्) मेरे धीरोंके
मनोंको हर्षित करो (वृद्धान्, वाजिनां, वाजिनानि, उत्) हे
वृधनाशक ! घोषोंकी शीघ्रगतियोंको उत्तम करो (जयतां, रथानां,
घोषाः, उद्यन्तु) विजयशील रथोंके जयघोष उच्चारण किये जायें ४२

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इष-
वस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्य-
स्मान् उ देवा अबन्ताह्वेषु ॥ ४३ ॥

इसका अ० प्र० अ०, नि० आ० मि० छ०, इन्द्रादि दे० है मन्त्रार्थ
(ध्वजेषु, समृतेषु, इन्द्रः, अस्माकम्, अस्माकम्, याः, इषवः,
ताः, जयन्तु) पताकाओंसे पताकाओंके मिलनेपर इन्द्र हमारी
रक्षाकरे और हमारे जो बाणहैं वह शत्रुओंको नष्ट करनेमें जयपावें
(अस्माकं, वीराः, उत्तरे, भवन्तु) हमारे शूर शत्रुओंके धीरोंसे
उत्तम हों (उ, देवाः, आह्वेषु, अस्मान्, अबन्त) और देवता संग्रा-
होंमें हमारी रक्षा करे ॥ ४३ ॥

अमीषां चित्तमप्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्ये-
परेहि । अभिप्रेहि निर्देह हृत्सु शोकैरान्धेना-
मित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥

इसका अ० प्र० अ०, ब्रा० उ० छ०, इन्द्रादय देवता है ।
मन्त्रार्थ--(अन्धे, अमीषां, चित्तं, प्रतिलोभयन्ती, अङ्गानि, गृहाणा,
परेहि, अभिप्रेहि) हे शत्रुओंके प्राणोंको कष्ट देनेवाली व्याधि
इम पौरियोंके चित्तको मोहित करती हुई और धीरियोंके शरीरोंको
ग्रहण करती हुई दूर चलीजा, सब ओरसे शत्रुओंको पकड़कर चला
(हृत्सु, शोकैः, निर्देह) उनके हृदयोंको शोकोंसे दग्धकर (अभिप्रेहि,
अन्धेन, तमसा, सचन्ताम्) हमारे धीरीगाढ़ अन्धकारसे व्याप्त हों ४४

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

गच्छामिश्रान्प्रपद्यस्य मामीषां कञ्चनोच्छ्रियः ॥ ४५ ॥

इसका अर्थ ० अ०, आ० अ० छ०, इषु देवता है। मंत्रार्थ (मन्त्रांसेत, शरव्ये, अवसृष्टा, परापत) वेदमंत्रोंसे तीक्ष्ण किये हुए हे वाणरूप ब्रह्मास्त्र ! हमारे छोड़ेहुए तुम बैरिसेनापर गिरो (अमिश्रान्, गच्छ, प्रापद्य) बैरियोंपर पहुँचो और उनके शरीरोंमें प्रवेश करो (अमीषां, कञ्चन, मा, उच्छ्रियः) इनमेंसे किसीको भी शेष न छोड़ो ॥ ४५ ॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो धुः शर्म यच्छतु । उग्रा बः

सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासंथ ॥ ४६ ॥

इसका अर्थ ० अ०, वि० आ० अ० छ०, योधा दे० है। मंत्रार्थ (नरः, प्रेत, जयत) हे हमारे वीरपुरुषों बैरिसेनाके ऊपर शीघ्र-जाओ और जय पाओ (इन्द्र, धुः शर्म, यच्छतु) इन्द्र तुमको धियरूप सुख दें (बाः, बाहवः, उग्राः, सन्तु) तुम्हारे भुजदण्ड शस्त्रप्रदानमें समर्थ हों (यथा, अनाधृष्याः, असंथ) जिसप्रकारकि तुम किसीसे तिरस्कार न पाओ ॥ ४६ ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा

स्पर्धमाना । तां गृह्णत् तमसापव्रतेन यथामी

अन्यो अनपन्नजानन् ॥ ४७ ॥

इसका अर्थ ० अ०, नि० आ० त्रि० छन्द, मरुत् दे० है। मंत्रार्थ—(मरुतः, या, असौ, परेषाम्, सेना, ओजसा, स्पर्धमाना नः, आ-अभ्यैति, ताम्, अपव्रतेन, तमसा, गृह्णत्, यथा अमी, अन्यान्यम्, न, जानन्) हे मरुत् देवताओ ! जो यह बैरियोंकी सेना बलसे ईर्ष्या करती हुई हमारे सामनेको आ रही है, उसको अकर्मण्यभावके अन्धकारसे ढकदो कि जिसमें वह बैरिसेना के पुरुष एक दूसरे को न पहिचानें और परस्पर शस्त्र चलाकर नष्ट होलायें ॥ ४७ ॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

तत्र इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा
शर्म यच्छतु ॥ ४८ ॥

इसका अथ० अ०, पंक्ति छ०, बृहस्पति अदिति दे० है। मंत्रार्थ (यज्ञ, वाणाः, विशिखाः, कुमारारुच, सम्पतन्नि) जिस युद्धमें वैरी के चलाये हुए बाण फैली हुई शिखावाले बालकोंकी समान गिरते हैं (तव, बृहस्पतिः, अदितिः, इन्द्रः, नः शर्म, यच्छतु) उस युद्धमें बृहस्पति अदिति और इन्द्र हमको विजयमुख दें (विश्वाहा, शर्म, यच्छतु) वह सकल वैरियोंका नाशक कल्याण दें ॥ ४८ ॥

मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्या राजा-

मृतेनानुधस्ताम् । उरोर्वरीणो वरुणस्ते कृणोतु

जघन्तुन्त्वानुं देवा मन्दन्तु ॥ ४९ ॥

इसका अथ० अ०, त्रि०, छ० सोम वरुण देवता हैं। मंत्रार्थ (ते, मर्माणि, वर्मणा, छादयामि) पुरोहित कहता है कि-हे यज्ञमान ! तेरे मर्मस्थानोंको कवचसे ढकता हूँ (राजा, सोमः, त्वा, अमृतान, अनुवशाम्) ब्राह्मणोंका राजा सोम तुझको मृत्युको हटानेवाले कवचसे आच्छादन करे (वरुणः, ते, उरोः, वरीयधः, कृणोतु) वरुण तेरे कवचको बढ़से बढ़ा करे (देवाः, जघन्तुम्, त्वा, अनुमदन्तु) अन्य देवता विजय पातहुए तुझको ब्रह्मा-हित करें ॥ ४९ ॥

उदेनमुत्तरान्न्याग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण

संस्तृज मृजया च बहुङ्कृधि ॥ ५० ॥

इसका अथ० अ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(घृतेन आहुत, अग्ने, एनम्, उत्तराम्, नय) होम करता हुआ कहे कि-हे घृतसे हत अग्ने ! इस यज्ञमानको ऐश्वर्य वा मनकी उत्तमता पर पहुँचाओ (रायस्पोषेण, संस्तृज) धनकी पुष्टिसे युक्त करो (च, मृजया, बहुम्, कृधि) और पुत्रपौत्र आदि सन्तानसे बहुत कुटुम्ब-वाला करो ॥ ५० ॥

इन्द्रे मर्यतराग्र्य सजातानामसहृशी । समेन

वर्चसा सृज देवानां भागदा असत् ॥ ५१ ॥

इसका अण० आ०, अनु० छ०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ (इन्द्र, इमम्, प्रतराम्, नय) हे इन्द्र ! इस यजमानको बड़े पेशव पर पहुँचाओ (सजातानां, वशी, असत्) प्रतिबालोंको बशमें करनेवाला हो (एनम्, वर्चसा, संसृज) इसको तेजसे संयुक्त करो (देवानाम्, भागदा, असत्) देवताओंको भाग देनेवाला हो ॥ ५१ ॥

यस्य कुर्मो गृहे एविस्ताभग्ने चर्द्धया त्यम् । तस्मै
देवा अधियुवन्त यच्च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

इसका अण० आ०, अनु० छ०, लिङ्गोक्त दे० है । मंत्रार्थ— (अग्ने, यस्य, गृहे, हविः, कुर्मः, तम्, त्वम्, चर्द्धय) हे अग्निदेव ! जिसके घरमें पुरोडाशका हवि करते हैं, उस यजमानको तुम षडाओ (देवाः, तस्मै, अधियुवन्) देवता उस यजमानको सन से अधिक कर्दें (अयं, ब्रह्मणः, पतिः, च) यह यजमान वैदिक कर्मका स्वामीभी हो ॥ ५२ ॥

उकुत्वा विश्वेदेवा अग्ने भरन्तु चिस्तिभिः ।

स नो भय शिवस्त्वथ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥

इसकी व्याख्या १२ वें अध्यायके ३१ वें मंत्रमें होगई ॥ ५३ ॥

पञ्च दिशो दैर्वाश्शमन्तु देवीरपामतिन्दुर्म-
तिम्याभ्रमाणाः । रायस्पोपे यज्ञपतिमाभजन्ती

रायस्पोपे अधि गृहो अस्थात् ॥ ५४ ॥

इसका अण० आ०, त्रि० छ०, दिक्क दे० है । मंत्रार्थ— (दैवीः, पञ्च, देवीः, दिशः, अमतिम्, दुर्मतिम्, अपवाधमाणाः, रायस्पोपे, यज्ञपतिम्, आभजन्तीः, यज्ञम्, अवन्तु) इन्द्र, यम, वरुण, सोम और ब्रह्मासे सम्बन्ध रखनेवालीं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्य यह पाँच दिशाएँ हमारी बुद्धिकी मन्दता और पापबुद्धिकी नष्ट करती हुई और धनकी पुष्टिमें यजमानका भागी करती हुई, हमारे यज्ञकी रक्षा करें (यज्ञः, रायः, पोपे, अधि, अस्थात्) हमारा यह धनकी पुष्टिमें अधिक-वृद्धि-पावै ॥ ५४ ॥

समिद्धे अग्नावधिं मामहान उक्थपं इह्यो
गृभीत । तप्तं घर्मस्पंगिगृह्या यजन्तोर्जा ययज्ञ-
मयंजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

इसका अम० अ०, त्रि० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(देवाः,
यत्, तप्तम्, घर्मम्, पंगिगृह्या, ययम्, अयजन्त, ऊर्जा, अयजन्त,
इह्यः, उक्थपः, गृभीतः, मामहानः, अग्नी, समिद्धे, अधि)
ब्रह्मा आदिके स्थानमें वरण किये हुए अध्वर्यु आदि जब मज्ज्वलित
[१७ वें अध्यायमें वर्णित] प्रवर्गको ग्रहण करके यजपुरुषका
पूजन करते हैं और जब हविष्य अन्नसे यजन करते हैं तब स्तुति
के योग्य यज्ञ उक्थ शस्त्रवाला यज्ञ प्राप्त होता है, देवताओंका परमपूजक
यजमान अग्निके मज्ज्वलित होनेपर तेजस्वी होता है ॥ ५५ ॥

दैव्याय घर्मे जापदे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः ।
पंगिगृह्या देवा यज्ञमायन्देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो
अस्थुः ॥ ५६ ॥

इसका अम० अ०, घृह० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(देव
श्रीः, श्रीमनाः, शतपयाः, दैव्याय, घर्मे, जापते) हवि देनेके द्वारा
देवताओंकी सेवा करनेवाला, यजमानमें मन रखनेवाला,
भक्तोंको धन देनेके निमित्त मन करनेवाला दूध आदि
सैकड़ों प्रकारकी सामग्रीवाला यज्ञ देवताओंके हितकारी
वर्षा आदिके द्वारा वा यज्ञके द्वारा जगत्का रक्षक हमारी दीहुई
मीतिपर हविको स्वीकार करनेवाले अग्निक निमित्त होता है (देवाः
पंगिगृह्या, ययम्, आयन्) ऋत्विज उस अग्निको पाकर यज्ञको
प्राप्त करते हैं (देवाः, देवेभ्यः, अध्वर्यन्तः अस्थुः) दीप्तिमान्
ऋत्विज देवताओंके निमित्त यज्ञ करनेकी इच्छासंस्थित होते हैं ५६

वीतये हविः शमितये शमिना यजद्वयं तुरीयो
यज्ञो यधं हव्यमेति । ततो वाका आशिषो
नो जुपन्ताम् ॥ ५७ ॥

इसका अम० अ०, वृह० छ०, हविर्यज्ञ देवता है । मंत्रार्थ—

(तुरीयः, यज्ञः, यज्ञ, हव्यम्, वीतं, शमिता, यजध्वै, शमितं, हविः, पंति, ततः, आशिषः, वाका, नः, जुपन्ताम्) चौथा यज्ञ, जिसमें हवनयोग्य देवताओंके भिन्न और परमशान्तरूप अश्वर्य के द्वारा हवनकरने के निमित्त संस्कार किया हुआ हवि प्राप्त होता है, इसमें यज्ञसे उठे हुए अमीष्ट अर्घ्यके कहनेवाले तीनों वेदोंके वचन हमको फलीभूत हों ॥ ५७ ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सद्यिता ज्योतिरुद-
यान् अजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्या-
न्सम्पश्यन् विद्याभुवनानि गोपाः ॥ ५८ ॥

इसका अम० ऋ०, वि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (सूर्य-
रश्मिः, हरिकेशः, सद्यिता, ज्योतिः, पुरस्तात्, उदयान्) सूर्य जिस
की किरण हैं, कणकवर्ण ज्वालारूप केशवाला, प्राणिनोंको अ-
पने २ व्यापारमें लभानेवाला ज्योतिरूप अग्नि पूर्व दिशासे प्रकट
होता है (गोपाः, विद्यान्, पूषा, तस्य, प्रसवे, विद्या, भुवनानि,
सम्पश्यन्, अजस्रम्, याति) धर्मरक्षक विद्यान् सूर्य वस प्रसज्योति
की आशामें रहकर सकल भुवनोंको देखता हुआ निरन्तर चलता है ५८

विमानं एष दिवो मध्यं आस्त आपमिवान्
रोदसी अन्तारिक्षम् । स विश्वाचीरभिषष्टे
घृतार्चीरन्तरा पूर्वमपरिच्छ केतुः ॥ ५९ ॥

इसका विश्वायसु ऋ०, वि० छ०, आदित्य दे० है । मंत्रार्थ-
(एषः, विमानः, दिवः, मध्यं, आस्ते) यह जगतकी रचनेकी
शक्तिवाला सूर्य स्वर्गके मध्यमें स्थित है (रोदसी, अन्तारिक्षं,
अपमिवान्, सः, विश्वाचीः, घृतार्चीः, अभिषष्टे) पृथिवी स्वर्ग
और अन्तरिक्षको सब ओर तेजसे परिपूर्ण करता हुआ वह सूर्य
वेदी और जुबेको देखता है (पूर्व, अगर्, अन्तरा, केतुः, च) इस
लोक और अन्य लोकोंमें स्थित मनुष्योंके चित्तको भी जानता है ५९

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिम्वितु-
राविवेश । मध्यं दिवो निर्दितः पृश्निरश्मा

विचक्रमे रजसस्थात्पन्तौ ॥ ६० ॥

इसका अम० ऋ०, बि० छ०, आदित्य दे० है । मंत्रार्थ (उक्षा, समुद्रः, अश्वाः, सुपर्णः, दिवः, मध्ये, निहितः, पृश्निः, अरुणः, पूर्वस्थ, पितुः, योनि, आश्रयेश, विचक्रमे) वर्षासे सींचनेवाले, आससे गीला करनेवाले, आकाशमें व्याप्त, श्रेष्ठ गतिवाले, धुलोकमें स्थित, विचित्रवर्ण अनेकों प्रकारकी किरणोंसे व्याप्त उदयके समय अरुणवर्ण सूर्यने पूर्वदिशाके विषे स्वर्गस्थान में प्रवेश किया और विचरण किया (रजसः, अन्तौ, पाति) वह ब्रह्माण्डकी सब ओरसे रक्षा करता है ॥ ६० ॥

इन्द्रं विदधा अवीरुधन्समुद्रव्यं च सृष्टिः । रुधी-

तम ॥ रुधीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

इसकी व्याख्या अ० ११ मं० ५६ में हो चुकी ॥ ६१ ॥

देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत् ।

यक्षदग्निर्देवो देवाँ आ च वक्षत् ॥ ६२ ॥

इसका विधृति ऋ०, अनु० छ०, यज्ञ दे० है । मंत्रार्थ (देवहूः, यज्ञः, आवक्षत् च, यक्षत्,) देवताओंको बुलानेवाला यज्ञ देवताओंको बुलावे और यजन करे (सुम्नहूः, यज्ञः, आवक्षत्) धन पुत्र आदि सफल सुखोंको प्रकट करनेवाला यज्ञ देवताओंको बुलावे (च, देवः, अग्निः, देवान्, आवक्षत्, च) और देवता अग्नि देवताओंको आवाहन करे और यजन करे ॥ ६२ ॥

वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अधा-

सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरारं अकः ॥ ६३ ॥

इसका विधृति ऋ० अथ० छ०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ (इन्द्रा, वाजस्य, प्रसवः, उद्ग्राभेण, मा, उदग्रभीत्) इन्द्र अन्नकी उत्पत्ति और दानके द्वारा मुझको अनुगृहीत करे (अधा, निग्राभेण, मे, सपत्नान्, अधरान्, अकः) और मेरे शत्रुओंको मॉगनेकी इच्छा से नीचां करो ॥ ६३ ॥

उद्ग्राभश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवा अवीरुधन् ।

अथा सपत्नानिन्द्राग्नीं मे विपूचीनां व्यस्यताम् ६४

इसका विधृति ऋ०, अनु० छ०, इन्द्राग्नी दे० है । मंत्रार्थ--
(देवाः, उदग्राभं, च, निग्राभं, च, ग्रह, अवीवृधन्,) देवता
हमको चढ़ाई और हमारे शत्रुओंको निन्दा और यज्ञसाधक वेदों-
को मृष्टि दें (अथा, इन्द्राग्नी, मे, सपत्नान्, विपूचीनान्, व्यस्य-
ताम्) और इन्द्र तथा अग्नि देवता मेरे शत्रुओंको अनेकगतिवाला
करके विनष्ट कर दें ॥ ६४ ॥

अमध्वमग्निना नाकमरव्यधे हस्तेषु विभ्रतः ।

विद्यस्पृष्टं स्वर्गत्वा मित्रा देवेभिराध्वम् ॥ ६५ ॥

इसका विधृ ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ--(उरव्यं
हस्तेषु विभ्रतः, अग्निना, नाकं, क्रमध्वम्) हे ऋत्विजों! उवा-
पाश्र्वमें संस्कार की हुई आग्निकों हाथोंपर धारण करते चिरय अग्नि
के साथ स्वर्गलोकको जाओ (दिवः, पृष्ठम्, स्वः, गत्वा, देवेभिः
मित्राः, आध्वम्) स्वर्गके ऊपर ब्रह्मलोकमें जाकर देवताओंके
साथ होकर स्थित होओ ॥ ६५ ॥

प्राचीमनुप्रदिशम्प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अ-

ग्निर्भवेद् । विश्वा आशा दीधानो विभाहो

धेहि द्विपदं चतुष्पदं ॥ ६६ ॥

इसका विधृ० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ--(अग्ने,
विद्वान्, प्राचीम्, प्रदिशं अनु गेहि) हे उवापाश्र्वमें स्थित अग्ने!
अपने अधिकारको जाननेवाले तুম श्रेष्ठ दिशाकी ओरका ध्यान
देकर जाओ (इह, अग्नेः, पुरः, भव) यहाँ अग्नि के अग्रगामी
वनो (विश्वाः, आशाः, दीधानः, विभाहि) सकल दिशाओंको
प्रकाशित करतेहुए विशेष प्रदीप्त होओ (नः, द्विपदं, चतुष्पदं,
ऊर्जं, धेहि) हमारे पुत्रादि परिवार और गौ आदि पशुओं को
अन्न दो ॥ ६६ ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षादिवृमा-

रुहम् । दिवो नाकस्य पुष्टात्सृज्योतिरगामुहम् ६७

इसका विष्ट० ऋ०, पिषीलिकामध्या वृहती छं०, अग्नि दे० है, मंत्रार्थ—(अहं, पृथिव्याः, अन्तरिक्षं, आरुह्य) मैं यजमान पृथ्वीसे ऊँचा होता हुआ अन्तरिक्षपर चढ़ा हूँ (अन्तरिक्षात्, दिवं, आरुह्य) अन्तरिक्षसे ऊपर-स्वर्गलोकमें चढ़ गया हूँ, (अहं, दिवः, नाकः, पृष्ठात्, स्वः, ज्योतिः, अध्यगाम्) मैं स्वर्गके दुःखरहित स्थानसे ऊपर सूर्यमण्डलको प्राप्त हुआ हूँ ॥ ६७ ॥

स्वर्ग्यन्तो नापेक्षन्त आ ध्याथ रोहन्ति रोदंसी ।

यज्ञं ये विश्वतो धारथ सुविद्वाथ सो विते निरे ॥ ६८ ॥

इसका विष्ट० ऋ०, अनु० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(ये, सुविद्वांसाः, विश्वतो धारय, यज्ञम्, विने निरे, रोदंसी, धाम्, आरोहन्ति, स्वर्ग्यन्तः, नः, अपेक्षन्ते) जो भाक्तिज्ञानसे सम्पन्न योगीजन सब जगत्को धारण करनेवाले यज्ञको करते हैं, जरा मृत्यु शोक आदिको रोकनेवाले स्वर्गपर चढ़ते हैं और स्वर्गमें गमन करते हुए क्लृप्त होनेसे पुत्र पौत्रादिकी अपेक्षा नहीं करते हैं ॥ ६८ ॥

अग्ने मेहि प्रथमो देवपता चक्षुर्देवानां सुत म-
र्यानाम् । इयं क्षमाणा भृगुभिः सजोपाः स्व-
र्यन्तु यजमानाः स्तुति ॥ ६९ ॥

इसका विष्ट० ऋ०, त्रि० छं०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—(अग्ने, देवपतां, प्रथमः, देवानां, सुत, मर्यानाम्, चक्षुः, मेहि (हे अग्ने ! तुम देवताओंके चाहनेवाले यजमानोंमें मुख्य हो तथा देवता और मनुष्योंके चक्षुरूप हो इसकारण आओ (इयं क्षमाणाः, भृगुभिः, सजोपाः, यजमानाः, स्तुतिः, स्वः, यन्तु) यज्ञ करनेकी इच्छा वाले और महात्मा ब्राह्मणोंके साथ प्रीति करनेवाले यजमान कल्याण पूर्वक स्वर्गलोकको जायें ॥ ६९ ॥

नक्षोपा सा समनसा विरूपे धापयंते शिशुमेकं
समीची । यात्रा क्षामा रुक्मो अन्तर्विभांति
देवा अग्निन्धारन्द्रविणोदाः ॥ ७० ॥

इसकी व्याख्या ११ वे अ० के २ मंत्रमें होगई ॥ ७० ॥

अग्नें सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतन्ते प्राणाः सदसं
यवानाः । त्वं साहस्रस्य राय ईशिपे तस्मै ते
विधेम वाजाय स्वाहा ॥ ७१ ॥

इसका विधृ० ऋ०, वि० पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(सहस्राक्ष, शतमूर्धन, आग्ने, ते, रात, प्राणाः, सदसं, यवानाः,
त्वं, सहस्रस्य, रायः, ईशिपे) हे अग्नन्तमेव और अग्नन्तमू वांवाले
अग्ने ! आपके सैंकड़ों प्राण हैं सदसों व्यान हैं, तुम अग्नन्त धन
के स्वामी हो (तस्मै, ते, वाजाय, विधेम, स्वाहा) ऐसे यज्ञस्वरूप
आपको हम दान देते हैं श्रेष्ठ होम हो ॥ ७१ ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।

आसान्तरिक्षमापूण ज्योतिषा दिवमुत्तमान्

तेजसा दिशमुद्दह ॥ ७२ ॥

इसका विधृ० ऋ०, पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(सुपर्णः
गरुत्मान्, असि) हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ परवानो पक्षीरूप हो (पृ-
थिव्याः, पृष्ठे, सीद) पृथ्वीके ऊपर स्थित होओ (भासा, अन्त-
रिक्षं, आपूण) कान्तिसे अन्तरिक्षको पूर्ण करो (ज्योतिषा, दिवं,
उत्तमान्) अपनी ज्योतिसे सुनोकको ऊँचा उदराओ (तेजसा,
दिशः, उद्दह) अपने तेजसे दिशाओंको हड़ बा दीत करो ७२

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमा-

सीद साधुया । अस्मिन्मधस्थे अध्वुस्तस्मिन्वि-

श्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ७३ ॥

इसका विधृ० ऋ०, वि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(अग्ने,
आजुह्वानः, सुप्रतीकः, पुरस्तात्, स्वं, साधुया, योनि, आसीद)
हे अग्ने ! आजुह्वान कियेहुए तुम प्रसन्नमुख होकर पूर्व दिशामें
अग्ने श्रेष्ठ स्थानपर स्थित हूजिये (विश्वेदेवाः, यजमानः च,
अस्मिन्, उत्तरास्मिन्, मधस्थे, अध्वुस्तस्मिन्) हे विश्वेदेवाओं तुम
और यजमान इस परमश्रेष्ठ अग्निके साथ उगम स्थानरूप यज्ञ

शालामे स्थित होशो ॥ ७३ ॥

तांश्चैतनुर्धरेणस्य चित्रांमाहं वृणे सुमतिं
विश्वजन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत्वपीनां
सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥ ७४ ॥

इसका कण्व ऋ०, वि० छ०, सविता दे० है । मंत्रार्थ- (वरेण्य
स्य, सवितुः, तां, चित्रां, विश्वजन्यां, सुमतिं, अहं, आवृणे) मर्त्य-
नायोग्य प्रेरक ईश्वरकी, उस अनेकोंप्रकारके फल देनेमें तमर्त्य
सर्वोद्देष्टकारिणी श्रेष्ठ बुद्धिको मैं स्वीकार करता हूँ (कण्वः, अस्य,
यां, प्रपीनां, सहस्रधारा, पयसां, महीं, गां, अदुहत्व) ज्ञानीने इस
प्रेरक परमात्माकी जिस अतिपुष्ट अनन्तधारावाली अमृतद्वारा सर्व
सिद्धि देनेवाली बुद्धिको दुहा ॥ ७४ ॥

विधेम ते परमे जन्ममग्ने विधेम स्तोमैरधरे
सधस्ये । यस्माद्योनैरुदारिथा यजे तम् त्वे
हवीर्धाम जुहुरे समिधे ॥ ७५ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, वि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (अग्ने,
परमे, जन्मम, ते, विधेम) हे अग्ने ! परमोत्तम जन्मवाले स्वर्ग
में तुम्हारे निमित्त हवि देते हैं (अवरे, सधस्ये, स्तोमैः, विधेम)
उससे नीचे अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे स्थितको स्तोत्र पढ़कर हवि देते
हैं (यस्मात्, योनेः, उदारिथ, ते, यजे) क्योंकि तुम इष्टका चित्ति-
रूप स्थानमें प्रकट हुए हो उन आपको मैं पूजता हूँ (समिधे, त्वे,
हवीर्धाम, जुहुरे) और इसी कारण यलीयकार प्रज्वलित तुम्हारे
विषे अतिवज्र हवियोंको होमने हैं ॥ ७५ ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या

यविष्ठ । त्वं च शश्वन्त उर्षयन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

इसका यविष्ठ ऋ०, वि० अ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
(यविष्ठ, अग्ने, अजस्रया, सूर्या, प्रेद्धः, नः, पुरः, दीदिहि) हे
अतिरूप अग्निदेव ! अजस्र लाटोंवाली जवानासे अत्यन्त प्र-
काशवान् तुम, हमारे आगे प्रदीप्त होओ (शश्वन्तः, वाजाः, त्वाम्)

उपयन्ति) निरन्तर होनेवाले अन्नरूप हवि तुमको अर्पित होगे ७६

अग्ने तमयाध्वन्न स्तःभिः क्रतुन्न भद्रं हृदि
स्पृशाम् । अर्घ्या मा तु ओहिः ॥ ७७ ॥

इसकी व्याख्या १५ वें अध्यायके ४४ मंत्रमें होगई ॥ ७७ ॥

चितिञ्जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमं
व्यीतहोत्रा क्रतावृषः । पत्ये विश्वस्य भूमनो
जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यध्वं हविः ॥ ७८ ॥

इसका अष्टमं, अतिजगती छं, विश्वकर्म दे० है मंत्रार्थ—
(मनसा, घृतेन, चित्त, जुहोमि) मन लगाकर घृणके द्वारा इस
चित्तमें स्थित अग्निको आहुति देकर पसन्न करना हूँ (यथा,
इह, वीतहोत्राः, क्रतावृषः, देवाः, आगमन्) जिसप्रकार इसयज्ञ
में आहुतिकी अभिनापावाले सत्य वा यज्ञके हृदिकर्त्ता देवता
प्रकट हों (विश्वाहाः, भूमनः, विश्वस्ये, पत्ये, विश्वकर्मणे, अदा-
भ्यम्, हविः, जुहोमि) सकल दिगोंमें महान् जगत्पानि जगदुत्पा-
दकके निमित्त स्वादयुक्त हवि देते हैं ॥ ७८ ॥

सुप्त ते अग्ने समिधस्सुप्तं जिह्वास्सुप्तं अर्ध-
पस्सुप्तं धामं त्रिपाणि । सुप्त होत्रास्सुप्तधा

त्वा यजन्ति सुप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ ७९ ॥

इसका सप्तमं अ०, त्रि०, छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अग्ने सुप्त, समिधः) हे अग्ने ! आपकी शमी आदि सात समिधा
हैं (सुप्त, जिह्वाः) सात ज्वाला रूप जिह्वा हैं (सुप्त, अर्धपः)
सात अर्ध हैं (सुप्त, त्रिपाणि, धाम) सात गायत्री आदि छन्द
रूप त्रिपाणि हैं (सुप्त, होत्राः, त्वा, सुप्ता, यजन्ति) सात होता
तुमको अग्निष्टोम आदि सात प्रकारके यज्ञोंसे पूजते हैं (सुप्त, योनीः
घृतेन, आपृणस्व, स्वाहा) तुम सात चित्तियोंको घृतसे पूर्ण करो,
येष्ट होम हो ॥ ७९ ॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च
ज्योतिष्मांश्च शुक्रश्च अन्तुपाश्चात्यथैहाः ॥ ८० ॥

इसका सप्तार्थ ऋ०, उणिक् छं०, मरुत् देवता । मंत्रार्थ—
(शुक्ज्योतिः, च, त्रिज्योतिः, च, सत्यज्योतिः, च, उपोतिष्मान्
च, शुक्राः, च, धृताः, च, अस्यधृशः) शुद्ध तेजस्वी, विविध
ज्योतिवाले, सत्यप्रकाशमय, ज्योतिवान्ते दीप्तिमान् सत्य वा पशु
की रक्षा करनेवाले और पापोंसे रहित मरुत्गण हमारे यज्ञमें आवैं
ईदृक् चान्यादृक् च सदृक् च प्रतिसदृक् च । मि-

तरच सन्मिमतश्च सभराः ॥ ८१ ॥

इसका सप्तार्थ ऋ०, गाय० छं०, मरुत् दे० है । मंत्रार्थ—
(ईदृक्, च, अन्यादृक्, च, सदृक्, मत्तिसदृक्, च मितः, च, संमितः
च, सभराः) इस पुरोडाशको ग्रहण करनेवाले और दूसरे पुरोडाश
को देखनेवाले, समानदृष्टि और मत्स्येकको समान देखनेवाले और
मानको प्राप्त और सम्यक् एकीभावे मानको प्राप्त और समान
भावको धारण करनेवाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८१ ॥

धृतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च ध्रुवणश्च । धर्ता च वि-
धर्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥

प्राण्यादि करके मंत्रको समान हैं । मंत्रार्थ—(धृतः, च, सत्यः,
च, ध्रुवः, च, ध्रुगः, च, धर्ता, च, विधर्ता, च, विधारयः)
सत्यस्वकृप, सत्त्वस्तुमं प्रकट और स्थिर तथा धारणकर्ता, धर्ता
और विशेष धारणकरनेवाले और विविधप्रकारसे धारण करने-
वाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८२ ॥

धृतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुपेणश्च ।

अग्निमित्रश्च दूरे अग्निमित्रश्च गणः ॥ ८३ ॥

इसका सप्त० ऋ०, उणि० छं०, मरुत् दे० है । मंत्रार्थ (धृत-
जित्, च, सत्यजित्, च, सेनजित्, च, सुपेणः, च, अग्निमित्रः,
च, दूरेमित्रः, च, गणः) यज्ञको जीतनेवाले और सत्यको जीतने-
वाले एवं शत्रुसेनाको जीतनेवाले और अष्ट, सेनावाले मित्रोंके
समीप रहनेवाले और शत्रुओंसे दूर रहनेवाले और सत्त्वको गिनने-
वाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८३ ॥

ईदृशांस एतादृशांस ऊपुणः सदृशांसः प्रतिसदृ-
चांस एतन् । मितासंरच समितासो नो अथ
सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥ ८४ ॥

इसका सप्त० ऋ०, जगती छं०, मरु० दे० है । मंत्रार्थ—(ईदृ-
शांसः, उ, एतादृशांसः, उ, सरचांसः उ, प्रतिसदृशांसः, न, मि-
तासः, उ, समितासः, उ, सरमसः, मरुतः, अथ, नः, अस्मिन्
यज्ञे, एतन्) इस लक्षणको देखनेवाले और इसप्रकारके देखनेवाले
और भली प्रकार देखनेवाले और समान देखनेवाले और प्रत्येक
को देखनेवाले और प्रमाणयुक्त और इकट्ठेहोकर प्रमाण करनेवाले
आदरपानेवाले मरुत देवता आज हमारे इस यज्ञमें आँव ॥ ८४ ॥

स्वतन्वाँश्च मघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च ।

क्रीडी च शाकी चोज्जयी ॥ ८५ ॥

इसका सप्त० ऋ०, स्वराङ्गा० छं०, मरु० दे० है । मंत्रार्थ—(स्वतवान्,
च, मघासी, च, सान्तपनः, च, गृहमेधी च, क्रीडी, च, शाकी, च,
उज्जयी) स्वाधीनबन्धयुक्त और पुरोडाश भक्षण करनेवाले और
शत्रुओंको ताप देनेवाले और गृहधर्मसे युक्त और सदा क्रीड़ा
करनेवाले और समर्थ और सदा जयशील मरुत देवता हमारे
यज्ञमें आँव ॥ ८५ ॥

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च सासदान्वा-

भियुग्वा च विलिप्तः स्वाहा ॥

यह विमुख नामक मंत्र अध्याय ३९ का ७ वां मंत्र है, मस-
वश इसकी व्याख्याभी यहाँ की जाती है । मंत्रार्थ—(उग्रः, च,
भीमः, च, ध्वान्तः, च, धुनिः, च, सासदान्, च, अभियुग्वा,
स्वाहा) उत्कृष्ट और भयंकर और शत्रुओंको अन्धाकरनेवाले और
शत्रुओंको कँपानेवाले और शत्रुओंको हरानेवाले और भक्तोंको
सुख देनेवाले और शत्रुओंको हटानेवाले इन मरुतगणोंको आ-
हुति दी जाती है श्रेष्ठ होम हो ॥

इन्द्रन्दैवीर्विशो मरुतानुवर्तमानोभवन्पथेन्द्र-

नदैवीर्विशो मरुतोनुवर्त्मानोभवन् । एवमिमं
यजमानन्दैवीश्च विशो, मानुषीथ्यानुवर्त्मानो
भवन्तु ॥ ८६ ॥

इसका सप्त० ऋ० शक्वरी छ०, मरुदे० है । मंत्रार्थ (दैवीः, मरुताः, विशाः, इन्द्रश्च, अनुवर्त्मानः, अभवन्) देवसम्बन्धी मरुत्-
रूप प्रजा इन्द्रकी अनुगामिनी हुई (यथा, दैवीः, मरुताः, विशाः, इन्द्रं,
अनुवर्त्मानः, अभवन्, एवं, दैवाः, च, मानुषीः, च, विशाः, इमं,
यजमानं, अनुवर्त्मानः, भवन्तु) जिसप्रकार देवसम्बन्धी मरुत्-
प्रजा इन्द्र की अनुगामिनी हुई इसीप्रकार देवलोक और मनुष्य-
लोककी प्रजा इस यजमानकी अनुगामिनी हों ॥ ८६ ॥

इमं स्तनमूर्जस्वन्तन्धयापाम्पपीर्जमाने सरि-
रस्य मध्ये । उत्संजुवस्व मधुमन्तमर्धन्तसमुद्रि-
यं सदनमाविशस्व ॥ ८७ ॥

इसका सप्त० ऋ०, वि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने,
सरिरस्य, मध्ये, इमं, ऊर्जस्वन्तं, अपां, गपीन्, स्तनम्, धय)
हे अग्ने । भूलोकके मध्यमें वर्तमान तुम, इस श्रेष्ठरसवाले घृण-
धाराओंसे पूर्ण सुकृष्ण स्तनको पियो (शर्वन्, मधुमन्तं, उत्सं
जुवस्व) हे सब और गमन करनेवाले अग्ने । मधुरस्वादवाले
घृणसे पुक्त सुकृष्ण कूपको सेवन करो (समुद्रियं, सदनं, आवि-
शस्व) चयनयागवाले घरमें प्रवेश करो ॥ ८७ ॥

घृतमिममिक्षं घृतमस्य योनिर्घृतेऽश्रितो घृतम्बस्य
धाम । अनुष्वयमावह मादयस्व स्वाहा कृतं
घृपम विक्षि हव्यम् ॥ ८८ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(घृगम्
मिमिक्षे) मैं घृतको अग्निके मुखमें सींचना चाहता हूँ (घृतं,
अस्य, योनिः) घृत इस अग्निका उत्पत्तिस्थान है (घृतं, श्रिताः)
घृणमें आश्रित है (घृतं, उ, अस्य, धाम) घृत ही इसको तेज
करनेवाला है (अनुष्वयं, आवह, मादयस्व) हे अह्वर्यु ! दहिका

संस्कार करनेके अनन्तर अग्निका आवाहन करो वृषभ, स्वाहाकृतं, हविः, वत्ति) और कहो कि—हे कामवाओंको पूर्ण करनेवाले! स्वाहा कहकर होमाहुआं हवि देवताओंको प्राप्त कराओ॥

समुद्रादूर्म्मिमधुमान् उदारदुपाधेशुना सममृत-
त्वमानत् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा
देवानाममृतस्य नाभिः ॥ ८९ ॥

इसका वामदेव ऋ०, मि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(मधु-
मान्, ऊर्मिः, समुद्रात्, उदारत्) मधुरसवाली तरंग घृतस्व
समुद्रसे उठी (अंशुना, समु; अमृतत्वम् उपानत्) फिर प्राणयुक्त
अग्निके साथ मिलकर अमृतत्वको प्राप्त हुई (यत्, घृतस्य, गुह्यं,
नाम, देवानां, जिह्वा) जो उस घृतका गुप्तनाम भुक्तिमें पड़ा है,
वह देवताओंकी जिह्वा है (अमृतस्व, नाभिः, अस्ति) अमृतकी
नाभि है अर्थात् जो भी खाता है वह दीर्घायु होता है ॥ ८९ ॥

वृषभाम प्रव्रवामाघृतस्यास्मिन्पञ्चे धारयामा
नमोभिः । उपेक्ष्या शृणवन्नस्यमानुजचतुः-
ष्टहोवमीद्वार एतत् ॥ ९० ॥

इसका वामदेव ऋ०, मि० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(वृषभ-
अस्मिन्, पञ्चे, घृतस्य, नाम, प्रव्रवाम) हम इस यज्ञमें घृतका
नाम लेकर स्तुति करते हैं, क्योंकि—घृत देवताओंको प्यारा है (नमो-
भिः, धारयामः) अन्नोंके द्वारा यज्ञको धारण करते हैं (वृषभा,
शस्यमानं, उपेक्ष्यन्तः) वृषभा नामधारी ऋत्विक् स्तुति कियेजाते
हुए घृतके नामको सुने (चतुःशृणुः, गौरः, एतत्, अवमीत्)
चार होता वाला गौरवर्ण यह घृत आहुतिके परिणामसे यज्ञफल
को प्रकट करता है ॥ ९० ॥

चत्वारिंशद्गन्धर्वा अस्या पादा द्वेऽशीर्षे सप्त
हस्तासो अस्या । त्रिधा बद्धो वृषभो रौरवीति
महो देवो मर्त्यान् आविवेश ॥ ९१ ॥

इसका वामदेव ऋ०, विराट् आर्षी मि० छ०, यज्ञरूप देवता

काष्ठां भिन्दन्नुर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ९५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(घृतस्य, यद्वाः, धाराः, पतयन्ति) घृतकी बड़ी २ धाराएं सुवेस गिरतीहैं (सिन्धोः, शूयनासः; यात-ममयः, गाध्वने, इव) जैसे कि--नदी की शीघ्रगमनवाली पवनसे चलायमान ताड़ने विपमत्यानमें पहुँचीहैं (काष्ठाः, भिन्दन् ऊर्मिभिः, पिन्वमानः, अरुपः, वाजी, न) जैसे कि- संग्रामकी दिशाओंको विदीर्ण करता हुआ संग्रामभेदनके धमसे निकले हुए पसीनोंसे पृथ्वीको सींचता हुआ क्रोधरहित उत्तम, योद्धा गमन करता है ॥ ९५ ॥

अभिप्रवन्त समनेच योपाः कल्याण्यः समयमाना

सो अग्निम् । घृतस्य धारास्तमिधो न सन्त ता

जुषाणा इत्येति जातयेदाः ॥ ९६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(घृतस्य, धाराः, समानाः कल्याण्यः, समयमानाः, योपाः, इव, अग्नि, अभिप्रवन्त) घृतकी धाराएं, समान मनवालीं रूपयौवनसम्पन्न भुसकुराती हुई स्त्रियोंकी समान अग्निके गति गमन करतीहैं (ताः, समिधः, न सन्त) वह धाराएं अग्निको दीप्त करनेवालीं अग्निको व्याप्त करतीहैं (जातयेदाः, जुषाणाः, इत्येति) मज्ञावाला अग्नि गसन्न होकर उन धाराओं की इच्छा करता है ॥ ९६ ॥

कन्या इव बहुतुमेत्या उ अज्ययज्जाना अभि-

चाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य-

धारं अभितत्पवन्ते ॥ ९७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(यत्र, सोमः, सूयते, यत्र, यज्ञः) जहां सोमका अभिपव होता है, जहां सौत्रामणि आदि यज्ञ होता है (नत्, उ, घृतस्य, धाराः; अभिचाकशीमि) 'तहां' ही घृतकी धाराएं जाती हुई देखनाहूँ (इव, अजि, अज्यजानाः, कन्याः, बहुतुं, एतवै, पवन्ते) जैसे कि सुन्दर रूबती वा अतुल्यकोमल कर-ती हुई कन्याएं पतिके समीप प्राप्त होनेको गमन करतीहैं ॥ ९७ ॥

अभ्यर्पत सुष्टुतिर्द्वयं वाजिष्ठास्मासु भद्रा द्रवि-

गानि धत्त । इमं यज्ञं प्रपत देवता नो घृतस्य
धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥

इसका वाम०, त्रि० छ०, देवा दे० है । मंत्रार्थ- (सुष्टुभिः, गव्यं, अर्पितं, अभ्यर्पित) हे देवताओं ! श्रेष्ठ स्तुतिवाने घृतयुक्त यज्ञमें आगमन करो (घृतस्य, धाराः, मधुमत्, पवन्ते) जहां घृतकी धाराएं मधुरस्वादवाली गिरती हैं (नः, इमं, यज्ञं, देवता, नयत) हमारे इस यज्ञको देवलोकमें पहुँचाओ (अस्मासु भद्राः, द्रविणा-नि, धत्त) हमारे यहां कल्याण और अनेकों प्रकारके धनोंको स्थापन करो ॥ ९८ ॥

धामन्ते विद्वद्भुवनमधिश्चितमन्तः समुद्रे हृद्य-
न्तरायुपि । अपामनीके समिधे य आभृतस्तम-
श्याम् मधुमन्तन्त ऊर्मिमम् ॥ ९९ ॥

इसका वाम० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (समुद्रे, हृदि, अन्तरायुपि, विश्वम्, भुवनम्, ते, धामन, अधिश्चितम्) हे अग्ने ! जो समुद्र में हृदयमें तथा आयुमें अर्थात् ब्रह्माके जीवन-पर्यन्त जितने माणिसमूह हैं वह सब तुम्हारी विभूति का आश्रय करके स्थित हैं (यः, ऊर्मिः, समिधे, अपां, अनीके, आभृतः, तं, मधुमन्तं, ते, ऊर्मिमम्, अश्याम्) जो घृतकी तरंग अक्षरोंसे युद्ध करके जलोके भीतरसे लाई गई आपकी कृपासे उस रसयुक्त तुम्हारी तरंगको भक्षण करके अर्थात् हमको देवभाव प्राप्त हो ९९

इति यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका माण्डुकाद सहित
सप्तदश अध्याय समाप्तः ।

अथ अष्टादशोऽध्यायः ।

सत्रद्वे अध्यायमें चित्ति आरोहण आदि के मंत्र कहे अब
अठारहवें अध्यायमें वसोर्धारादि मंत्र कहे जायेंगे । यहाँ से २९
कण्डिकापर्यन्त के मंत्रोंको पढ़ताहुआ बड़े सुवे में घृत लेकर नि-
रन्तर धारापातसे छोड़ताहुआ हवन करे, इसी को वसोर्धारा कहते हैं
चाजंश्च मे प्रसूचश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च

मेधीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे
 श्रवश्च मे धुनेश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन
 कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

इसका देवा ऋ०, शक्वरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (यज्ञेन, मे, वाजः, कल्पन्ताम्, च, मे, प्रसवः, च, मे, प्रयतिः, च, मे, गतिगिः, च) इस यज्ञके फलसे देवता मेरे निमित्त अन्नको सिद्ध करें अर्थात् दें और मुझको देने और भोजन करनेकी आज्ञाभी दें मुझको शुद्धि भी मुझको अन्नकी उत्पत्ति भी दें (च, मे, धीतिः, च, मे, क्रतुः, च, मे, स्वरः, च, मे, श्लोकः) मेरे निमित्त ध्यान विचार और मुझको भेष संकल्प वा यज्ञ भी और मुझको सुन्दरशब्द और स्तुति भी दें (च, मे, श्रवः, च, मे, श्रुतिः, च, मे, ज्योतिः, च, मे, स्वः) मुझको वेदमंत्रोंके भवणकी सामर्थ्य और मुझे ब्राह्मणभागके सुननेकी शक्ति और मुझे प्रकाश तथा मेरे निमित्त स्वर्ग भी दें अर्थात् मुझको यज्ञके फलसे यह सब पदार्थ प्राप्त हों ॥ १ ॥

प्राणश्च मेपानश्च मे व्यानश्च मेसुश्च मे चित्तश्च
 मे आधीतिश्च मे वाक् च मे मनश्च मे अक्षुश्च
 मे ओश्रश्च मे दक्षश्च मे बलश्च मे यज्ञेन कल्प-
 न्ताम् ॥ २ ॥

इसका देवा० ऋ०, नि० अतिज० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च, मे, प्राणः) और मेरे निमित्त प्राणवायु (च, मे, अपानः) और मेरे निमित्त अयोरायु (च, मे, व्यानः) और निमित्त सब शरीरमें विचरनेवाला वायु (च, मे, असुः) और मुझको महत्ति वाला वायु (च, मे, चित्तम्) और मुझको मानस संकल्प (च, मे, अधीतम्) और मुझको वाही ज्ञान (च, मे, वाक्) और मुझको वाणीकी सामर्थ्य (च, मे, मनः) और मुझको मन (च, मे, चतुः) और मुझको दृष्टि (च, मे, श्रोत्रं) और मुझको सुननेकी शक्ति (च, मे, दक्षः) और मेरे निमित्त ज्ञानकी

ऋषी (च, मे, बलम्) और मुष्को बल (यज्ञेन, कल्पन्ताम्)
यज्ञफलसे प्राप्त हो ॥ २ ॥

ओजश्च मे सहश्च मे आत्मा च मे तनूश्च मे
शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च
मे परंऽपि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे
जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

इसका देवा ऋ०, भु० शक्व० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, ओजः, च, मे, सहः) मुझ बलकी कारण शरीरकी
आठवीं धातु ओज और देहबल (च, मे, आत्मा, च, मे, तनूः)
मुझ आत्मज्ञान और सुन्दर शरीर (च, मे, शर्म, च, मे, वर्म)
मुझ सुख और कवच (च, मे, अङ्गानि, च, मे, अस्थीनि)
मुझ पुष्ट अङ्ग और अस्त्रियोंकी दृढ़ता (च, मे, परंऽपि, च, मे,
शरीराणि) मुझ अंगुलियोंके पोरुओंकी दृढ़ता और देहकी नी-
रोगता (च, मे, आयुः, च, मे, जरा, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझ
सुखमय आयु और वृद्धावस्थापर्यन्त आयुयज्ञके फलसे देवता दें ३

ज्यैष्ठ्यश्च मे आधिपत्यश्च मे मन्युश्च मे
भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे
महिमा च मे वरिमा च मे ध्रिमा च मे धर्मिमा
च मे द्राघिमा च मे वृद्धश्च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अत्यष्टि छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, ज्यैष्ठ्यं, च, मे, आधिपत्यम्) मुझ वड़ाई और मभुता
(च, मे, मन्युः, च, मे, भामः) मुझ दोषोपर कोप और अनु-
चित अपराध पर कोप (च, मे, अमः, च, मे, अम्भः) मेरे अर्थ
गंभीरता और श्रेष्ठ जल (च, मे, जेमा, च, मे, महिमा) मेरे
निमित्त जीतनेकी शक्ति और प्रतिष्ठा (च, मे, वरिमा, च, मे,
ध्रिमा) मुझ सन्तानादिकी अधिकता तथा स्थान आदिका
विस्तार (च, मे, धर्मिमा, च, मे, द्राघिमा) मुझ दीर्घजीवी-

पना और वंशपरम्पराकी प्राप्ति (च, मे, वृद्धं, च, मे, वृद्धिः यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मेरे निमित्त अधिक भन्नादि तथा विद्यादि गुणोंकी धनति यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ ४ ॥

सत्यञ्च मे धृदा च मे जगञ्च मे धनञ्च मे
यिष्वध मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे
जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे
सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

इसका देवा ऋ०, वि० शकरी छ०, अग्नि दे, हैमंमार्थ-(च, मे, सत्यं, च, मे धृदा) मेरे अर्थ यथार्थ भाषण तथा परलोकपर विश्वास (च, मे, जगत्, च, मे, धनम्) गौ आदि पशु तथा सुवर्ण आदि धन (च, मे, विश्वं, च, मे, महः) सुभै स्थावर पदार्थ एवं प्रकाश (च, मे, क्रीडा, च, मे, मोदः) सुभै क्रीडा एवं क्रीडाके देखनेका आनन्द (च, मे, जातं, च, मे, जनिष्यमाणं) सुभै पुत्रसे उत्पन्न सन्तान और होनेवाली अपत्य सन्तान (च, मे, सूक्तं, च, मे, सुकृतं, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) सुभै शुभदायक ऋचाओंका समूह और पाठ करने से शुभअदृष्ट यज्ञके फलसे प्राप्त हो ५

ऋतञ्च मेऽमृतञ्च मेऽयुक्षमञ्च मेऽनामयञ्च मे
जीवातुञ्च मे दीर्घायुञ्च मेऽनमिषञ्च मेऽभयञ्च
मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सृषाञ्च मे सुदिनञ्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

इसका देवा ऋ०, मुरिगतिशक० छ०, अग्नि देवगौ है मंमार्थ (च, मे, ऋतं, च, अमृतं) सुभै यज्ञादि कर्म तथा इसका स्वर्गादिफल (च, मे, अयक्षमं, च, मे, अनामयत्) रोगका नाश तथा साधारण व्याधिका अभाव (च, मे, जीवातुः, च, मे, दीर्घायुस्त्वम्) आशु बढ़ानेवाली भौषध तथा दीर्घायु (च, मे, अनमिषम्, च, मे, अभयम्) शत्रुओंका अभाव और निर्भयता (च, मे, सुखं, च, मे, शयनम्) सुभै सुख तथा सेन (च, मे, सृषाः, च, मे, सुदिनं यज्ञेन कल्पन्ताम्) सुभै सन्ध्यावन्दनादिरुक्त सप्रभात और यज्ञ-

जानादियुक्त दिन यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ १ ॥
 यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे
 विश्वश्च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रश्च मे
 सुश्च मे पुसुश्च मे सीरश्च मे लयश्च मे यज्ञेन
 कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

इसका देवा ऋ०, मि० अतिजग० छ०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—
 (च, मे, यन्ता, च, मे, धर्ता) मुझे गुरु आदि नियन्ता एवं प्रजा
 पालनकी शक्ति (च, मे, क्षेमः, च, मे, धृतिः) मेरे निमित्त वर्षा-
 मान धनकी रक्षा तथा आपसिमैं चित्तकी स्थिरता (च, मे, विश्व
 च, मे, महः) सबकी अनुकूलता और पूजा सत्कार (च, मे,
 संविच्, च, मे, ज्ञात्रं) वेद शास्त्रादिका ज्ञान और विज्ञानकी शक्ति
 (च, मे, सुः, च, मे, पुसुः) आशा देनेकी सामर्थ्य एवं पुनादि
 को उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य (च, मे, सीरं, च, मे, लयः, यज्ञेन,
 कल्पन्ताम्) मुझे हल आदिके द्वारा अन्नकी प्राप्ति और खेतीके
 विघ्नोंका नाश इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ७ ॥

ज्ञश्च मे मयश्च मे मिषश्च मेऽनुकामश्च मे
 कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणश्च
 मे भद्रश्च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे
 यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

इसका देवा ऋ०, मि० शकरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 (च, मे, शं, च, मे, मयः) मुझे शारीरिक सुख तथा परलोकका
 सुख (च, मे, मिषम्, च, मे, अनुकामः) प्रीति उत्पादक वस्तु तथा
 सहज यत्न साध्य पदार्थ (च, मे, कामः, च, मे, सौमनसः)
 विहित विषयभोगका सुख एवं मनको स्वस्थ करनेवाले बान्धव
 (च, मे, भगः, च, मे, द्रविणम्) सौभाग्य तथा धन (च, मे,
 भद्रं, च, मे, श्रेयः) इमलोकका कल्याण तथा परलोकका कल्याण
 (च, मे, वसीयः, च, मे, यशः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) निवासयोग्य
 धनसे पूर्ण घर तथा कीर्ति भी इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ८ ॥

उर्कं च मे सूत्रतां च मे पर्यञ्च मे रसरञ्च मे
घृतञ्च मे मधुञ्च मे सग्धिञ्च मे सर्पीतिञ्च मे
कृपिञ्च मे वृष्टिञ्च मे जैत्रञ्च म औद्भिद्यञ्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

इसका देवा ऋ०, शक्वरी छ० आग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(च, मे, उर्कः, च, मे, सूत्रता) मुझ अन्न तथा सत्त्व और प्रियवाणी
(च, मे, पर्यः, च, मे, रसः) दूध तथा दूधका सार (च, मे, घृतं
च, मे, मधु) वी तथा सहद (च, मे, सग्धिः, च, मे, सर्पीतिः)
धान्यबोके साय खान पान (च, मे, कृपिः, च, मे, वृष्टिः) धान्य
की सिद्धि एवं अन्न उत्पन्न होनेके अनुकूल वर्षा (च, मे, जैत्र,
च, मे औद्भिद्यम्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) जपकी शक्ति तथा आम्नादि
वृत्तोंकी उत्पत्ति भी मुझ यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ९ ॥

वृधिञ्च मे रायञ्च मे पुष्टञ्च मे पुष्टिञ्च मे विभु
ञ्च मे प्रभुञ्च मे पूर्णञ्च मे पूर्णतरञ्च मे कुषञ्च
मेक्षितञ्च मेऽक्षञ्च मे क्षुञ्च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

इसका देवा ऋ०, नि० शक्वरी छ० आग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(च, मे, रायिः, च, मे, रायः) मुझको सुवर्ण तथा मौक्तिक आदि
मणि (च, मे, पुष्टं, च, मे, पुष्टिः) धनकी पुष्टि तथा शरीरकी
पुष्टि (च, मे, विभु, च, मे, प्रभु) व्यापकताकी शक्ति एवं ऐश्वर्य
(च, मे, पूर्ण, च, मे, पूर्णतरं) धन पुत्रादिकी अधिकता तथा
हाथी घोड़ों आदिकी अधिकता (च, मे, कुषञ्च, च, मे, अक्षितं)
यवोंसे रहित धान्य तथा अक्षय अन्न (च, मे, अन्नं, च, मे, भुत
यज्ञेन, कल्पन्ताम्) भात आदि सिद्धान्न तथा भोजन पचानेकी
शक्ति भी यज्ञके फलसे देवता दें ॥ १० ॥

विश्वञ्च मे वेद्यञ्च मे भूतञ्च मे भविष्यञ्च मे
सुगञ्च मे सुपुष्ट्यञ्च म क्रुदञ्च म क्रदिञ्च मे
फलसञ्च मे फलसिञ्च मे अतिरञ्च मे यज्ञेन

कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

इसका देवा ऋ० भुरिक् शक्वरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
(च, मे, वित्तं, च, मे, वयम्) और भुक्तको पूर्वमाप्त धन तथा आगै
माप्तव्य धन भी (च, मे, भूतं, च, मे भविष्यत्) पूर्वमाप्त क्षेत्रादि
एवं भविष्यत्में प्राप्त होनेवाले क्षेत्रादि भी (च, मे, सुगं, च, मे,
सुपच्यम्) सुखगम्य देश एवं परमपथ्य पदार्थ (च, मे, ऋद्धं
च, मे, ऋद्धिः) बड़ेमारी यज्ञका फल तथा यज्ञ आदिकी समृद्धि
(च, मे, वल्लभं, च, मे, वल्लुप्तिः) कार्यसाधक अपरिमित धन तथा
कार्यसाधनकी शक्ति (च, मे, मतिः, च, मे, सुमतिः, यज्ञं, क-
ल्पन्ताम्) पदार्थमात्रका निश्चय तथा दुर्घट कार्यका निश्चय इस
यज्ञके फलसं देवता दें ॥ ११ ॥

वृंहयश्च मे यचाश्च मे मापाश्च मे तिलाश्च
मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे मियह्वश्च मेऽण-
वश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधू-
माश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

इसका देवा ऋ०, भु० अग्निशक्व० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, व्रीहयः, च, मे, यवा) भुक्त चावलों के धान तथा जौ
(च, मे, मापाः, च, मे, तिलाः) उड़द तथा तिन (च, मे,
मुद्गाः, च, मे, खल्वाः) मूँग तथा चने (च, मे, मियह्वः, च,
मे, अणवः) कंगनी चैना (च, मे, श्यामाकाः, च, मे, नीवाराः)
समा कांदो तथा धन के मुख्यन्त नीवारादि (च, मे, गोधूमाः,
च, मे, मसूराः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) गेहूँ और मसूर इस यज्ञ के
फल सं देवता दें ॥ १२ ॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पथ-
ताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिर-
ण्यञ्च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहश्च मे
सीसञ्च मे अणु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

इसका देवा ऋ० भुरि० अतिश० छ० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ (च, मे अरमा, च, मे, मृत्तिका) मुझै सुन्दर वापाण तथा श्रेष्ठ मृत्तिका (च, मे, गिरयः, च, मे, पूर्वताः) गोवर्द्धनादि छोटे पर्वत तथा हिमालयादि पहाड़ (च, मे, सिकताः, च, मे, वनसायः) सुन्दर रेती तथा बिनाफून आए फलदायक वृक्ष (च, मे, दिग्गयः, च, मे, भयः) सुवर्ण गया लांहा (च, मे, श्यामं, च, मे, लोहम्) ताँबा कांसा आदि गया फौलाद (च, मे, सीसं, च, मे, वज्रं, यज्ञं, कल्पन्ताम्) सीसा धातु तथा रौंगा इस यज्ञके फल सै देवता दें ॥ ११ ॥

अग्निश्च मे आपश्च मे ओषधश्च मे ओषधश्च मे कृष्टपद्याश्च मे अकृष्टपद्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्यश्च मे वित्तश्च मे वित्तश्च मे भूतश्च मे भूतिश्च मे यज्ञं कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

इसका देवा ऋ०, मि० अष्टि छ० अग्नि दे० है मंत्रार्थ (च, मे, अग्निः, च, मे, आपः) मुझै पृथिवीके अग्निकी अनुकूलता तथा अन्तरिक्षक जनकी अनुकूलता (च, मे, वीरयः, च, मे, ओषधयः), भद्रतुण आदि तथा पकतेही मूखनेवाली ओषध (च, मे, कृष्टपद्याः, च, मे, अकृष्टपद्याः) हल चनाकर उत्पन्न होनेवाले तथा अन्न हलगेते उत्पन्न होनेवाले अन्न (च, मे, ग्राम्याः, च, मे, पशवः) गौ भैंस आदि ग्राम्यपशु तथा हाथी आदि वनक पशु (च, मे, वित्तं, च, मे, वित्तं) पूर्वलभ्यन तथा होनहार धनकी कामना (च, मे, भूतं, च, मे, भूतिः, यज्ञं, कल्पन्ताम्) विद्यमान पुत्रादि तथा अपना उपार्जन किया हुआ धन इस यज्ञके फल सै हमको देवता दें ॥ १४ ॥

वसुं च मे वसुतिश्च मे कर्मं च मे गार्तिश्च मे अर्थश्च मे एमंश्च मे इत्या च मे गार्तिश्च मे

यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

इसका देवा ऋ०, विराडा० वृ० ज्ञ०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—
(च, मे, वसुः, च, मे, वसनिः) मुझै गौ आदि घन तथा निवा-
सस्थान (च, मे, कर्म, च, मे, शक्तिः) अग्नि होत्रादि कर्म तथा
वसुके अनुष्ठानकी शक्ति (च, मे, अर्थाः, च, मे, यमः) इच्छित
पदार्थ तथा प्राप्तियोग्य पदार्थ (च, मे, इत्या, च, मे, गतिः) इष्ट
प्राप्तिका उपाय एवं इष्टप्राप्ति (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञके फल से
प्राप्त हों ॥ १५ ॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे स-
विता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे
पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० प्रा० प० ज्ञ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, अग्निः, च, मे, इन्द्रः) मुझै अग्नि और इन्द्र (च, मे,
सोमः, च, मे, इन्द्रः) सोम तथा इन्द्र (च, मे, सविता, च, मे,
इन्द्रः) सविता और इन्द्र (च, मे, सरस्वती, च, मे, इन्द्रः) सर-
स्वती तथा इन्द्र (च, मे, पूषा, च, मे, इन्द्रः) पूषा तथा इन्द्र (च,
मे, बृहस्पतिः, च, मे, इन्द्रः) बृहस्पति तथा इन्द्र (यज्ञेन, कल्पा-
न्ताम्) यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥ १६ ॥

मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे
धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे
मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

इसका देवा ऋ० वि० शक्व० ज्ञ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च,
मे, मित्रः, च, मे, इन्द्रः) मुझै मित्र एवं इन्द्र देवता (च, मे,
वरुणः, च, मे, इन्द्रः) वरुण तथा इन्द्र (च, मे, धाता, च, मे, इन्द्रः)
धाता तथा इन्द्र (च, मे, त्वष्टा, च, मे, इन्द्रः) त्वष्टा तथा इन्द्र

च, मे, मरुतः, च, मे, इन्द्रः) मरुत तथा इन्द्र (च, मे, विश्वेदेवा
च, मे, इन्द्रः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) विश्वेदेवा तथा इन्द्र इस यज्ञके
फलसे अनुकूल भावसे प्राप्त हों ॥ १७ ॥

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च
म यौरश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च
मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

इसका देवा अ०, भु० शक० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, पृथिवी, च, मे, इन्द्रः) सुभं पृथ्वी तथा इन्द्र (च,
मे, अन्तरिक्षम्, च, मे, इन्द्रः) अन्तर्लोक गया इन्द्र (च, मे,
यौः, च, मे, इन्द्रः) स्वर्ग तथा इन्द्र (च, मे, समाः, च,
मे, इन्द्रः) वर्षाका अधिष्ठात्री देवता तथा इन्द्र (च, मे, नक्षत्राणि
च, मे, इन्द्रः) नक्षत्र तथा इन्द्र (च, मे, दिशः, च, मे, इन्द्रः,
यज्ञेन कल्पन्ताम्) दिशा और इन्द्र यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों

अधिश्व मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिप-
तिश्च म उपाधिश्व मेऽन्तर्यामिश्च म ऐन्द्रवा-
यवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रति
पृथानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

इसका देवा अ०, नि० अत्य० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
(च, मे, अंशुः, च, मे, रश्मिः) सुभं अंशु तथा रश्मि नापक
ग्रह (च, मे, अदाभ्यः, च, मे, अधिपतिः) अदाभ्य तथा अन्याम,
ग्रह (च, मे, उपांशुः, च, मे, अन्तर्यामः) उपांशु तथा अन्तर्याम
ग्रह (च, मे, ऐन्द्रवायवः, च, मे, मैत्रावरुणः) ऐन्द्रवायव तथा
मैत्रावरुण ग्रह (च, मे, आश्विनः, च, मे, प्रतिपस्थानः) आश्विन
तथा प्रतिपस्थान ग्रह (च, मे, शुक्रः, च, मे, मन्थी, यज्ञेन,
कल्पन्ताम्) शुक्र और मन्थी ग्रह यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥

से प्राप्त हो ॥ १९ ॥

आग्नयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मे ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

इसका देवा ऋ०, स्वराट् अतिष्ठति छ०, अग्निं देवता है ।
मंत्रार्थ- (च, मे, आग्नयणः, च, मे, वैश्वदेवः) सुभे आग्नयण
और वैश्वदेव (च, मे, ध्रुवः, च, मे, वैश्वानरः) ध्रुव तथा
वैश्वानर (च, मे, ऐन्द्राग्नः, च, मे, महावैश्वदेवः) ऐन्द्राग्नि
तथा महावैश्वदेव (च, मे, मरुत्वतीयाः, च, मे, निष्केवल्यः)
मरुत्वतीय तथा निष्केवल्य (च, मे, सावित्रः, च, मे, सारस्वतः)
सावित्र तथा सारस्वत (च, मे, पात्नीवतः, च, मे, हारियोजनः)
पात्नीवत एवं हारियोजनग्रह (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञके द्वारा
अनुकूलतासे प्राप्त हो ॥ २० ॥

सुवदश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे आवाणश्च मेऽधिपत्रणे च मे पूतभृश्च मे आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे वर्हिश्च मेऽवमृधश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

इसका देवा ऋ०, विराट् अतिष्ठति छ०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ- (च, मे, सुवः, च, मे, चमसाः) मेरे अर्थ जुहू तथा चमस (च, मे, वायव्यानि, च, मे, द्रोणकलशः) वायव्यपात्र एवं द्रोणकलश (च, मे, आवाणः, च, मे, अधिपत्रणे) आवाण एवं काष्ठफलक (च, मे, पूतभृत्, च, मे, आधवनीयः) सोमपात्र पूतभृत् तथा आधवनीय (च, मे, वेदिः, च, मे, वर्हिः) वेदी एवं कृशा (च, मे, अवमृधः, च, मे, स्वगाकारः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) अनुभूयस्मान् तथा शम्भवाक पात्र यज्ञके द्वारा प्राप्त हो ॥ २१ ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मे र्कश्च मे सूर्यश्च मे
प्राणश्च मे मेघश्च मे पृथिवी च मे दितिश्च
मे दितिश्च मे चौश्च मे हुलेयः शक्वरयो दिशश्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

इसका देवा ऋ० भुरि० शक्व० छ०, अग्निदेव० है । मंत्रार्थ-
(च, मे, अग्निः, च, मे, घर्मः) मुझे अग्निष्टोम और घर्म
(च, मे, र्कः, च, मे, सूर्यः) मुझे पुरोडाशका, यज्ञ और सूर्य
का चरु (च, मे, प्राणः, च, मे मेघः) मुझे प्राण और अश्व
मेघयज्ञ (च, मे, पृथिवी, च, मे, दितिः, च, मे, अदितिः) मुझे
पृथिवी दिति और अदितिदेवता (च, मे, चौः, च, मे हुलेयः) मुझे
धुलोक और विराट् पुरुषके अवयव (च, मे, शक्वरयः, च, मे
दिशः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे शक्तिये और पूर्वादिशाओंकी
अनुकूलता इस यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ २२ ॥

व्रतश्च मे ऋतवश्च मे तपश्च मे सम्बत्सरश्च
मेऽहोरात्रे ऊर्ध्वीवे वृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

इसका देवा ऋ०, पंक्ति०, छ०, अग्नि देव० है । मंत्रार्थ—(च,
मे, व्रतं, च, मे, ऋतवः) मुझे नियम तथा ऋतुएं (च, मे,
तपः, च, मे, सम्बत्सरः, च, मे, अहोरात्रे) मुझे तप, सम्बत्सर
तथा दिन रात (च, मे, ऊर्ध्वीव, च, मे, वृहद्रथन्तरे, यज्ञेन,
कल्पन्ताम्) मुझे जानु तथा वृहद्रथन्तर साम इस यज्ञके फलसे
देवता दें ॥ २३ ॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे
पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव
च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश
च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च
मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे
नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च

तिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च
 मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे
 सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च ॥ नव-
 विंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रि-
 ंशच्च मे एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च
 मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

इसका देवा ऋ०, पूर्वार्द्धका संकृति तथा उत्तरार्द्धका विराट्
 संकृति छंद, अग्नि देवता है । यहाँसे अयुग्मस्तोम होमके मंत्र
 हैं, जोकि—संव कामनाओंके दाता हैं । मंत्रार्थ—(च, मे, एका,
 च, मे, तिस्रः) मुझे एक और तीन (च, मे, तिस्रः, च, मे,
 पंच) मुझे तीन तथा पाँच (च, मे, पंच, च, मे, सप्त) पाँच तथा
 सात (च, मे, सप्त, च, मे, नव) सात तथा नौ (च, मे, नव,
 च, मे, एकादश) मुझे नौ और ग्यारह (च, मे, एकादश, च,
 मे, त्रयोदश) ग्यारह और तेरह (च, मे, त्रयोदश, च, मे, पंच
 दश) तेरह और पंद्रह (च, मे, पंचदश, च, मे, सप्तदश) पं-
 द्रह और सत्रह (च, मे, सप्तदश, च, मे, नवदश) सत्रह तथा
 उन्नीस (च, मे, नवदश, च, मे, एकविंशतिः) उन्नीस तथा इ-
 क्कीस (च, मे, एकविंशतिः, च, मे, त्रयोविंशतिः) इक्कीस तथा
 तीस (च, मे, त्रयोविंशतिः, च, मे, पञ्चविंशतिः) तीस तथा
 पच्चीस (च, मे, पञ्चविंशतिः, च, मे, सप्तविंशतिः) पच्चीस तथा
 सत्ताईस (च, मे, सप्तविंशतिः, च, मे, नवविंशतिः) सत्ताईस तथा
 उनवीस (च, मे, नवविंशतिः, च, मे, एकत्रिंशत्) उनवीस तथा
 इकतीस (च, मे, एकत्रिंशत्, च, मे, त्रयस्त्रिंशत्, च, मे, त्रयस्त्रि-
 शत्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे इकतीस, तैंसीस तथा फिर तैंसीस
 इन संख्याओंसे कहेजानेवाले संसारके संकल उत्तम पदार्थ मुझे
 इस यज्ञके फलसे देवता प्राप्त करवें ॥ २४ ॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे
 द्वादश च मे पौर्णमासी च मे पौर्णमासी च मे विंशति-

तिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे
 चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टा-
 विंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च
 मे पट्त्रिंशच्च मे पट्त्रिंशच्च मे चत्वारि-
 ंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारि-
 ंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारि-
 ंशच्च मे युजेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

इसका देवा ऋ०, उत्कृति छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (च, मे, चत्सः, च, मे, अष्टौ) मुझै चार तथा आठ (च, मे, अष्टौ, च, मे, द्वादश) आठ तथा बारह (च, मे, द्वादश, च, मे, पौडश) बारह तथा सोलह (च, मे, पौडश, च, मे, विंशतिः) सोलह तथा बीस (च, मे, विंशतिः, च, मे, चतुर्विंशतिः) बीस तथा चौबीस (च, मे, चतुर्विंशतिः, च, मे, अष्टाविंशतिः) चौबीस तथा अट्ठाईस (च, मे, अष्टाविंशतिः, च, मे, द्वात्रिंशत्) अट्ठाईस तथा बत्तीस (च, मे, द्वात्रिंशत्, च, मे, पट्त्रिंशत्) बत्तीस तथा छत्तीस (च, मे, पट्त्रिंशत्, च, मे, चत्वारिंशत्) छत्तीस तथा चालीस (च, मे, चत्वारिंशत्, च, मे, चतुश्चत्वारिंशत्) चालीस तथा चौवालीस (च, मे, चतुश्चत्वारिंशत्, च, मे, अष्टचत्वारिंशत्, च, मे, अष्टचत्वारिंशत्, युजेन, कल्पन्ताम्) चौवालीस अष्टचालीस तथा फिर अष्टचालीस । इन सब संख्याओंसे कहेजानेवाले पदार्थ यज्ञके द्वारा देवता मुझै दें ॥ २५ ॥

उपविंश्च मे उपवी च मे दित्यवाद् च मे दित्यौही
 च मे पञ्चाविंश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च
 मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाद् च मे तुर्यौही च मे
 युजेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

इसका देवा ऋ०, ब्राह्मी वृहती छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (च, मे, त्र्याविः, च, मे, त्र्यवी) मुझै देव वर्षका षड्वार तथा देव वर्षकी बलिषा (च, मे, दित्यवाद्, च, मे, दित्यौही) दो

वर्षका बछड़ा तथा दो वर्षकी बछिया (च, मे, पंचाभिः, च, मे
पञ्चावी) ढाई वर्षका वृष तथा ढाई वर्षकी गौ (च, मे, त्रिवत्सः,
च, मे, त्रिवत्सा) तीन वर्षका वृष तथा तीन वर्षकी गौ (च,
मे, तुर्यवाट, च, मे, तुर्योद्दी, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) साढ़े तीन वर्ष
का वृष तथा साढ़े तीन वर्षकी गौ यज्ञके फलसे देवता दें ॥ २६ ॥

पृष्टवाट च मे पट्टौही च म उक्षा च मे यशा च
म ऋषभश्च म वेष्टच मेऽनृचाश्च मे धेनुश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

इसका देवा ऋ०, मि० घ्रा० उ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, पृष्टवाट, च, मे, पट्टौही) चार वर्षका वृष तथा चार वर्ष
की गौ (च, मे, उक्षा, च, मे, यशा) संचनमें समर्थ वृष तथा
यन्त्र्या गौ (च, मे, ऋषभः, च, मे, वेष्ट) तरुण वृष तथा
गर्भघातिनी गौ (च, मे, अनृवान्, च, मे, धेनुः, यज्ञेन, कल्प-
न्ताम्) बोझा उठानेमें समर्थ वृष तथा नईव्याही हुई गौ यज्ञके
फलसे देवता भुक्त दें अर्थात् में सब प्रकारके बैल तथा गौओंको
पालनेवाला होऊँ ॥ २७ ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा
ऋतये स्वाहा धसवे स्वाहाहर्षतये स्वाहान्ते
मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय चैनधिशिनाय स्वाहा
धिनधिशिनं आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौत्र-
नाय स्वाहा भुवनस्पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा
पूजापतये स्वाहा इगन्ते राणिमन्त्राय यन्तासि
यमंन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा पूजानान्त्वाधिपत्याय ॥ २८ ॥

इसका देवा ऋ०, आर्चीवृह० छ०, अग्नि दे० है । अब सकल
कामनाप्रद नामग्रह होम कहने हैं । मंत्रार्थ (वाजाय, स्वाहा) अधिक
अन्नउत्पादक चैत्रमासक निर्मित अष्ट होम हो (प्रसवाय, स्वाहा)
बैशाखक मिमित्त अष्ट होम हो (अपिजाय, स्वाहा) जलक्रीड़ाने

रतिदायक ज्येष्ठके अर्थ श्रेष्ठ आहुति हो (क्रतवे, स्वाहा) याग-
 रूप आपाद के निमित्त० (वसेवे, स्वाहा) चातुर्मास्यकी यात्रा
 के निषेधक श्रावणके नि० (अहर्गतये, स्वाहा) तथाकारक भाद्र-
 मासके निमित्त० (मुग्धाय, अन्हे, स्वाहा) तुषारसे मोहकारक
 आश्विनके नि० (अमुग्धाय, वैशिशिनाय, स्वाहा) षोडश घटने
 से विनाशी कार्तिकके निमित्त०, अदिनंशिने, आन्त्यायनाय, स्वाहा)
 विनाशरहित अस्तमें स्थित विष्णुरूप मार्गशीर्षिके० (अन्त्याय,
 भौवनाय, स्वाहा) स्वरूपमें होनेवाले लोकोंके पोषक पौषमास
 के नि० (भुवनस्य, पतये, स्वाहा) सम्पूर्ण प्राणियोंके पालक
 माघमास के निमित्त० (अधिपतये, स्वाहा) वर्षान्तके कारण
 अधिक पालक फाल्गुनके नि० (प्रजापतये, स्वाहा) बारहों
 मासके अधिष्ठात्री देवता, प्रजापतिके निमित्त यह आहुति दी जाती
 है । हे प्रजापति अग्ने ! (इयम्, ते, राष्ट्र, यमता, मित्राय यन्ता,
 असि) यह यज्ञस्थान तुम्हारा राष्ट्र है अग्निष्टोमादि कर्मोंमें
 सबके नियन्ता तुम सत्त्वरूप इस यज्ञमानके प्रेरक हो (ऊर्जे,
 त्वा, वृष्ट्यै, त्वा, प्रजानाम्, आधिपत्याय, त्वा) अधिक भक्तके
 निमित्त, तुमको अभिषिक्त करता हूँ, वर्षाके निमित्त तुमको अभि-
 षिक्त करता हूँ और प्रजाओंपर प्रभुता पानेके निमित्त तुमको
 अभिषिक्त करता हूँ ॥ २८ ॥

आयुर्गुण्यज्ञेन कल्पतामृणाणो गुण्यज्ञेन कल्पताञ्च
 क्षुर्यज्ञेन कल्पताथ ओन्नं गुण्यज्ञेन कल्पतां वाग्
 गुण्यज्ञेन कल्पताममनो गुण्यज्ञेन कल्पतामात्मा गुण्यज्ञेन
 कल्पतामृद्धा गुण्यज्ञेन कल्पताञ्ज्योतिर्यज्ञेन
 कल्पताथ स्वर्ग्यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठं गुण्यज्ञेन कल्पतां
 गुण्यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक्
 च सामं च वृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्देवा अग-
 न्नामृता अभूम पूजार्णतेः पूजा अश्रुम् वेद्
 स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका देवाः ऋ०, विराट् विकृति छ०, अग्निदे० है। मंत्रार्थ कल्पहोम (यज्ञेन, आयुः, कल्पताम्) यज्ञके फलसे आयु बढ़े (यज्ञेन, माणः, कल्पताम्) यज्ञफलसे माण बलिष्ठ हो (यज्ञेन, चक्षुः, कल्पताम्) यज्ञसे नेत्रोंकी ज्योति बढ़े (यज्ञेन, श्रोत्रं, कल्पताम्) यज्ञफलसे श्रवणशक्ति उत्तम हो (यज्ञेन वाक् कल्पताम्) यज्ञफलसे वाणी उत्तमहो (यज्ञेन, मनः, कल्पताम्) यज्ञफलसे मन स्वच्छ हो (यज्ञेन आत्मा कल्प०) यज्ञफलसे आत्मा बली हो (यज्ञेन, ब्रह्म, कल्प०) यज्ञफलसे वेद प्रसन्न हो (यज्ञेन, ज्योतिः, कल्प०) यज्ञफलसे परमात्मज्योति प्राप्त हो (यज्ञेन, स्वः, कल्पताम्) यज्ञफलसे स्वर्ग प्राप्त हो (यज्ञेन, पृष्ठं, कल्पताम्) यज्ञके प्रभावसे सर्वोपरि सुख प्राप्त हो (यज्ञेन, यज्ञः कल्पताम्) यज्ञके प्रभावसे महायज्ञ करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो (स्तोमः, यजुः, ऋक्, च, साम, च, वृद्धत्, च, रथन्तरम्, च, देवाः स्वः, अगन्म) वृद्धत् पञ्चदश आदि स्तोम, यजुर्मंत्र, ऋचा और गीतिमन्त्र और वृद्धत्साम और रथन्तर सामभी यज्ञके फल से प्रसन्न हों, हम इस यज्ञके फलसे देवभाव पाकर स्वर्गको प्राप्तहुए (अमृताः अभूम्) अमरहुए (प्रजापतेः, प्रजाः अभूम्) हिरण्यगर्भकी प्यारी सन्तानहुए (वेद, स्वाहा) इन सब देवताओंको यह आहुति दी गई, भलीप्रकार गृहीत हो यहाँ तक बसोर्धारा मंत्र हुए ॥ २९ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मानरम्पदीमादिगित्ताम व-
चसा करामहे । यस्यामिदं विश्वम्भुवन्माविधेश
तस्यान्तो देवस्संविता धर्मसाविपत् ॥ ३० ॥

अब वाजपेय सम्बन्धी सात मंत्र कहते हैं, इस मन्त्रकी व्याख्या अध्याय ९ में ५ में होगी ॥ ३० ॥

विश्वे अथ मरुतो विश्वं कुंती विश्वे भवन्तुग्नयः
समिद्धाः । विश्वे नो देवा अवसा मभन्तु वि-

इयंमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ३१ ॥

इसका लुशोधानाक ऋ०, त्रि० छ०, विश्वेदेवा देवता है ।
मंत्रार्थ—(अथ, विश्वे, मरुतः, आगमन्तु) आज इस यज्ञमें संपूर्ण मरुत् देवता आवें (विश्वे, ऊनी, विश्वेदेवाः, नः, अवसा, विश्वे, अग्नयः, समिदाः, भवन्तु) संपूर्ण रुद्र आदित्य आदि गण देवता इस निमित्तसे आवें, संपूर्ण देवता हमारे हविको ग्रहण करनेके निमित्त आवें, गार्हपत्य आदि सब अग्नि मदीप्ता हों (विश्वं, द्रविणं, वाजः, अस्तु) गौ, भूमि, सुवर्ण आदि संपूर्ण धन और अन्न हमको प्राप्त हों ॥ ३१ ॥

वाजो नः सुप्तं पुदिशश्चतस्रो वा परावतः । वाजो

नो विश्वेदेवेदेवेसाताविहार्यतु ॥ ३२ ॥

इसका लुशोधानाक ऋ०, अनु०, छ० अन्न देवता है । मंत्रार्थ (वाजः, सप्त, मादिशः, वा, परावतः, चतस्रः, इह, धनस तौ, वाजः, नः, विश्वैः, देवैः, अस्तु) हमारा अन्न सात दिशा अर्थात् भू आदि तीन लोक और पूर्वादि चारदिशा तथा दूर स्थित महः आदि चार लोकोंको पूर्ण करे, इस लोकमें धनाविभागका समय आनेपर अन्न हमारी संपूर्ण देवताओं सहित रक्षा करे ॥ ३२ ॥

वाजो नोः अथ प्रसुवाति दानं वाजो देवान्

ऋतुभिः कल्पयाति वाजो हि मा सर्ववीरज्ज-

जान् विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥

इसका लुशो० ऋ०, त्रि० छ०, अन्न दे० है । मंत्रार्थ (अथ, वाजः, नः, दानं, प्रसुवाति) आज अन्नका अधिष्ठात्री देवता हमको दानके निमित्त प्रेरणा करे (वाजः, ऋतुभिः, देवान्, कल्पयाति) अन्न ऋतुओंके साथ देवताओंको यथास्थानपर कल्पना करे (वाजः, हि, मा, सर्ववीरम्, जजान) अन्नहो मुझको पुत्र पौत्रादियुक्त करे (वाजपतिः, सर्वाः, आशाः, जयेयम्) अन्नका स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको वशीभूत करने में समर्थ होऊँ ३३

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान्
हविषा वर्धयति । वाजो हि मा सर्ववीर्यचकार
सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

इसका लुशो० त्रि० छ०, अन्न दे० है । मंत्रार्थ—(वाजः, नः, पुरस्तात्, उत, मध्यतः) अन्न हमारे आगे और मध्यमें स्थित हो (वाजः, हविषा, देवान्, वर्धयति) अन्न हविसे देवताओंको वृद्ध करता है (वाजः, हि, मा, सर्ववीर्यं, चकार) अन्नने ही सुभक्तों को पुत्र पौत्रादिसे युक्त किया (वाजपतिः, विश्वाः, आशाः, भवेयम्) अन्नका स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको जीतने में समर्थ होऊँ ॥ ३४ ॥

सम्नां सृजामि पयसा पृथिव्यास्सम्नां सृजाम्य

अग्निरोपधीभिः । सोऽहं वाजं सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

इसका लुशो० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(अग्ने पृथिव्याः, पयसा, मा, संसृजामि) हे अग्ने पृथिवीके रससे अपने को संयुक्त करता हूँ (अग्निः, औपधीभिः, मा, सग्) जलों और औपधियोंसे अपनेको संयुक्त करता हूँ (सः, अहं, वाजं, सनेयम्) वह मैं अन्नकी उपासना करता हूँ अथवा हे अग्ने ! जो मैं औपधिजलसे हवनद्वारा तुमको संयुक्त करता हूँ वह मैं अन्नका उपासक हूँ ॥ ३५ ॥

पथः पृथिव्यास्पृष्ट ओपधीषु पथो दिव्यन्तरिक्षे

पथोधाः । पथस्वतीः प्रदिशस्सन्तु मर्त्याम् ॥ ३६ ॥

इसका लुशो० ऋ०, विराट् छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(पृथिव्याः, पथः, धाः) हे अग्ने ! पृथ्वीपर हमारे देनेके अर्ध रस को धारण करो (ओपधीषु, पथः) औपधियोंमें रस डालो (दिवि, पथः) तुलोकमें रसको स्थापन करो (मर्त्या, प्रदिशः, पथस्वतीः, सन्तु) आहुति देनेसे मेरे अर्घ दिशा विदिशाएँ रसयुक्त हों ॥ ३६ ॥

देवस्य त्वा सावितुः प्रमवेरिवनोर्वाहुभ्याम् ।

पूषणो हस्ताभ्यां सरस्वत्यै वाचो यन्तु र्यन्त्रेणाग्नेः

साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ १७ ॥

इसका लुशो० ऋ०, आर्षीपंक्ति छ०, लिंगोक्त दे० है । यजमान के अभिषेकका मंत्र मंत्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, वाहुभ्यां, पूष्णः, इत्याभ्यां, सरस्वत्यै, वाचः, यन्तुः, यन्त्रेण, अग्नेः साम्राज्येन, त्वा, अभिषिञ्चामि) सवितादेवकी आज्ञामें वर्तमान में अश्विनीकुमारकी वाहु और पूषा देवताके हाथोंसे, तथा सरस्वतीकी वाणीसे प्रजापतिके नियमवश अग्निके चक्रवर्त्तीपनेसे हे यजमान तुम्हारा अभिषेक करता हूं ॥ १७ ॥

ऋतासाहृतधाम्नाग्निर्गन्धर्वस्तस्योपधयोऽप्सरसो मुदो नाम । स न इदमग्रहं ध्रुवम्पातु तस्मै स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥

इसमें २ मंत्र है । दोनों का लुशो० ऋ०, विराट् उ० छ०, देवता १ म का गन्धर्व और २ यका अप्सरस है । होमके मंत्र मंत्रार्थ—(ऋतापाद्, ऋतधामा, गन्धर्वः, अग्निः, सा, नः, इदं ग्रहं, क्षयं, पातु) सत्यवक्ता अविनाशी धामवाला पृथ्वीका धारक गन्धर्व नामक अग्नि, हमारी इस आक्षणजाति और क्षान्तिजाति की रक्षाकरै (तस्मै, स्वाहावाद्) उसको यह आहुति देतेहैं भली-प्रकार गृहीत हो (मुदः, नाम, ओपधयः, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) प्राणियोंको प्रतप्त करनेवालों मुद नामक ओपधियें गन्धर्वनामा अग्नि की अप्सरा अर्थात् भोगने योग्यहैं वह भी हमारी रक्षाकरैं उन ओपधियोंको यह आहुति देताहूं, भलीप्रकार गृहीत हो ॥ १८ ॥

सुहृतो विश्वसामासूर्योगन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । स न इदमग्रहं ध्रुवम्पातु तस्मै स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

इसमें १ मंत्र है । ऋ० दोनोंका लुशो०, छ० १ का आर्षी वृहती २य का साम्नी वृ०, देवता १ म का गन्धर्व २य का अप्सरस है । मंत्रार्थ—(सुहृतः, विश्वसामा, सूर्यः, गन्धर्वः) दिन

रागको मिलानेवाला और जिसकी सब सामग्र्य स्तुति करते हैं
ऐसा गन्धर्व गन्धर्व है (सः, नः, ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी
ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजातिकी रक्षाकरे, (तस्मै, स्वाहावाट्)
उसको आहुति देते हैं भलीप्रकार ग्रहण कीजाय (आयुवः, नाम,
मरीचयः, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) परस्पर मिलनेके
स्वभाववाली आयुव नामक किरणें उसकी अप्सरा हैं वह हमारी
रक्षाकरें उनको आहुति देते हैं ॥ ३९ ॥

सुपुष्पाः सूर्यरश्मिचन्द्रमां गन्धर्वस्तस्य नक्ष-

त्राप्यप्सासौ भेकुरयो नाम । स न हृदम्ब्रह्म

क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

इसमें २ मंत्र हैं । ऋ० दोनोंका लुशो०, छं १० म का माजा-
पत्या त्रि० २ य का आर्ची गा०, दे० क्रमसे गन्धर्व और अप्स-
रस है । मंत्रार्थ—(सुपुष्पाः, सूर्यरश्मिः, चन्द्रमा, गन्धर्वः,) यज्ञ
के द्वारा पुत्र देनेवाली सूर्यकी किरणोंसे किरणोंवाला चन्द्रमा
नामक भूमिका धारक होनेसे गन्धर्व है (सः, नः, इदं, ब्रह्म क्षत्रं,
पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रिय जातिकी रक्षा
करे (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको आहुति दी जाती है (भेकुरयः,
नाम, नक्षत्राणि, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) कान्ति करने
से भेकुरिनामक नक्षत्र उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें
उनकी प्रीतिके निमित्त आहुति देते हैं ॥ ४० ॥

इषिरो विश्वव्याचा घातो गन्धर्वस्तस्यापो अ-

प्सरस ऊज्जो नाम । स न हृदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातु तस्मै

स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । ऋ० दोनोंका लुशो०, छं० क्रमसे आर्ची
सृह० आर्ची गा० है, दे० क्रमसे गन्धर्व तथा अप्सरस है । मंत्र
(इषिरः, विश्वव्याचाः, वायुः, गन्धर्वः) शीघ्रगामी सर्वव्याप्त
भूमिको धारण करनेसे गन्धर्व नामक वायु है (सः, नः, इदं,
ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति

की रक्षा करे (तस्मै, स्वाहावाद्) उसको आहुति दीजाती है (ऊर्जे, नाम, आपः, तस्य, अप्सरसः ताभ्यः, स्वाहा) माणियों को जीत देनेवाले रस नामक जल उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें, उनके निमित्त आहुति देते हैं ॥ ४१ ॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसं

स्ताषा नाम । स न इदम्व्रत्तं जुत्रम्पातु तस्मै

स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । दोनोंका लुशो०, छ० क्रमसे आर्षी गा० साम्नी धनु०, देवता पूर्ववत् है । मंत्रार्थ—(भुज्युः, सुपर्णः, यज्ञः, गन्धर्वः) माणियों का पालक स्वर्ग में गमन करनेवाला पृथ्वी को धारण करने से गन्धर्व नामक यज्ञ है (सः, नः इदं, व्रत्तं, जुत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति तथा क्षत्रियजाति की रक्षा करे (तस्मै, स्वाहावाद्) उसको आहुति दीजाती है (स्ताषा, दक्षिणाः, तस्य, अप्सरसः) यज्ञ और यजमान की स्तुति करनेवाली स्ताषा नामक दक्षिणा उस यज्ञ की अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें (ताभ्यः, स्वाहा) उनको आहुति देते हैं ॥ ४२ ॥

प्रजापतिर्विद्वक्कर्मामनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्

सामान्यप्सरस एष्ट्यो नाम । स न इदम्व्रत्तं

जुत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । आ० दोनोंका लुशो०, छन्द क्रमसे साम्नी जग० आर्षी गाय० है, देवता पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, विश्वकर्मा, मनः, गन्धर्वः) प्रजापालक सब कृत्र करनेवाला मनरूप गन्धर्व है (सः, नः इदं, व्रत्तं, जुत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति की रक्षा करे (तस्मै, स्वाहावाद्) उसको आहुति देते हैं (एष्ट्यः, नाम, ऋक्सामानि, तस्य, अप्सरसः) अभीष्ट देने से एष्टि नामवाली ऋक् और साम उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें, उनको आहुति देने हैं ॥ ४३ ॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि
गृहा यस्य वेद । अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै तत्राय महि
शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

इसका लुशो० ऋ०, प्रतारपंक्ति छ०, प्रजापति देवता है ।
• मंत्रार्थ—(भुवनस्य, पते, प्रजापते, यस्य, ते, उपरि, गृहाः, वा,
यस्य, इह, सः, नः, अस्मै, ब्रह्मणे, अस्मै, तत्राय, महि, शर्म,
यच्छ, स्वाहा) हे संसार का पालन करनेवाले प्रजापते ! जिन
आपके स्वर्गलोक में घर हैं, अथवा जिन आपके इस लोक में घर
हैं ऐसे आप हमारी इस ब्राह्मणजाति और इस क्षत्रियजाति के
निमित्त महान् सुख को दीजिये, इस दी हुई आहुति को
स्वीकार कीजिये ॥ ४४ ॥

समुद्रोऽसि नभस्यान्तर्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूः
भि मा वाहि स्वाहा मारुतोऽसि मरुतांगणः
शम्भूर्मयोभूभि मावाहि स्वाहाऽवस्पूरसि
दुवस्वाक्शम्भूर्मयोभूभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

इसमें ३ मं० हैं । ऋ० सबका लुशो०, छ० १ मका नि०
गाय० २ । इ.य का आर्षो ७०, दे० सबका वायु है । मंत्रार्थ—
(समुद्रः, नभस्वाद्, आर्द्रदानुः, शम्भूः, मयोभूः, असि) हे
वायो तुम अगाधजलसे आर्द्र आकाशचारी वर्षासे पृथ्वीको भीला
करनेवाले इसलोक को सुख देनेवाले तथा परलोकका सुख देने-
वाले हो (मा, अभि, वाहि) मेरे सन्मुख होकर चलो वा मेरे
अनुकूल रहो (मारुतः, मरुतां, गणः, असि) हे वायो ! तुम
अन्तरिक्षचारी और शुक्रजपोति आदि मरुद्गण हो (शम्भूः,
मयोभूः, मा, आभि, वाहि, स्वाहा) तुम इसलोक और परलोकों
का सुखदेते हो मेरे सन्मुख अपना वहनरूपप्रकाश करो इस आहुति
को स्वीकार करो (अवस्था, असि) हे वायो जगत्के रक्षक हो
(दुवस्वाक्, शम्भूः, मयोभूः, मा, आभि, वाहि, स्वाहा) अन्न
के उत्पादक इसलोक तथा परलोक का सुख देनेवाले हो मेरे

सम्मुख अपना बहनरूप प्रकाश करा इस आहुति को स्वीकार करो ॥ ४५ ॥

यास्मै ऽअग्ने सूर्ये रुचो पिबंमानन्वन्ति गरिमभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ४६
इसकी व्याख्या अ० १३ मं० २२ में होगई ॥ ४६ ॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोप्वर्धेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभः सर्वाभी रुचन्नो भक्ष बृहस्पते ४७
इसकी व्याख्या अ० १३ मं० २३ में होगई ॥ ४७ ॥

रुचन्नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच्यं राजंसु नस्कृधि ।

रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ४८ ॥

इसका लुगो० अ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। घी की आहुति देय मंत्रार्थ—(नः, ब्राह्मणेषु, रुचं, धेहि) हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों में कान्तिको स्थापन करो (नः, राजंसु, रुचं, कृधि) हमारे क्षत्रियों में कान्ति करो (विश्वेषु, शूद्रेषु, रुचम्) वैश्य और शूद्रों में कान्तिको स्थापन करो (मयि, रुचा, रुचं, धेहि) मुझमें कान्तिके साथ अविच्छिन्न कान्तिको स्थापन करो ॥ ४८ ॥

तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यज

मानो हविर्भिः । अहं हमानो वरुण इ वोद्धु-

रंशस्मान् आयुः प्रमोषीः ॥ ४९ ॥

इसका श्रुतः शेष अ०, त्रि०, छ०, वरुण दे० है मंत्रार्थ (वरुण, यजमानः, हविर्भिः, तत्, आशास्ते) हे भुक्ति क्रिये हुए वरुण ! यजमान हवियोंके द्वारा जो कुछ याचना करता है (तत्, ब्रह्मणा, वन्दमानः, त्वा, यामि) वह वेदके द्वारा स्तुति करता हुआ आप-को शरण आकर याचना करता हूँ (उरुशंस, इह, अहं हमानः, वोधि) हे परम भाराध्यदेव ! यहां क्रोध न करते हुए तुम मेरी प्रार्थनाको जानो (नः, आयुः, सा, प्रमोषीः) मेरी आयुको मत नष्ट होने दो ॥ ४९ ॥

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण
शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः
स्वाहा ॥ ५० ॥

इसमें १ मं० है । ऋषि सबका शुनःशेष, छन्द १ । ३ । ४ । ५
का दै० मि०, २ का दै० पंक्ति, देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ
(स्वः, न, घर्मः, स्वाहा) दिन की समान आदित्य देवता की
मीति के निमित्त यह आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः,
न, अर्कः, स्वाहा) सूर्य की समान अग्नि को आदित्य में स्थापन
करता हूँ, उसकी मीति के निमित्त दीहुई आहुति गृहीत हो
(स्वः, न, शुक्रः, स्वाहा) दिन की समान शुक्लवर्ण आदित्य
के निमित्त दीहुई आहुति भलीप्रकार गृहीत हों (स्वः, न, ज्योतिः,
स्वाहा) स्वर्गदाता अग्नि को अग्नि में स्थापन करता हूँ उसकी
मीति के अर्थ दीहुई आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः, न,
सूर्यः, स्वाहा) सम्पूर्ण देवताओं के रूप की समान सूर्य को उत्तम
करता हूँ अर्थात् भ्रान्ति से अनेकत्व की प्रतीति होती है वास्तव
में एक सूर्य ही नाना रूप है ॥ ५० ॥

अग्निं युनाज्म शवसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं
वयसा वृहन्तम् । तेन वयङ्गमेव ब्रध्नस्य विष्टुषं
रुद्रो रुद्राणां अधि नाकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

इसका शुनःशेष ऋषि त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (दिव्यं,
सुपर्णं, वयसा, वृहन्तं, अग्निं, शवसा, घृतेन, तेन, ब्रध्नस्य विष्टुषं,
वयं, गमेम) स्वर्गमें वर्धमान सुन्दर गतिवाले धुपसे बड़े हुए अग्नि
को वक्र और घृतसे सयुक्त करता हूँ, इससे हम आदित्य के लोक-
को जायें (आंध, स्वः, रुद्राणाः, उत्तमं, नाकम्) उसके ऊपर
स्वर्गमें जाते हुए उत्तम दुःखरहित लोकमें गमन करें ॥ ५१ ॥

इमौ ते पक्षावजरो पतत्रिणौ याम्याथे रक्षाः
सप्तदशस्यग्ने । ताभ्यामपतेम हृतांसु
यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुंजाः ॥ ५२ ॥

इसका शुनः शेष ऋ०, विराट् प्रा० अ० छं०, अग्नि दे० है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, इमौ, पक्षौ, अजरौ, पतत्रिणौ) हे अग्ने !
 तुम्हारे यह दोनों दहिने बाएं पर जरारहित सड़नेवाले हैं
 (याभ्यां, रक्षांसि, अपहंसि) जिनसे तुम राक्षसों को नष्ट करते
 हो (ताभ्यां, उ, सुकृतां, लोकं, पतम) उनसे ही हम पुण्यात्माओं
 के लोक को गमन करें (यत्र, प्रथमजाः, पुराणाः, ऋषयः,
 जग्मुः) जहाँ प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५२ ॥

इन्दुर्दक्षः ऽयेन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो
 भुरग्युः । महान्मधस्थे ध्रुव आनिपत्तो नमस्ते
 अस्तु मां दिव्यसीः ॥ ५३ ॥

इसका शुनः० ऋ०, आर्षीप० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 (इन्दुः, दक्षः, ऽयेनः, ऋतावा, हिरण्यपक्षः, शकुनः, भुरग्युः, महान्,
 ध्रुवः, मधस्थे, आनिपत्तः, ते, नमः, अस्तु, मां, दिव्यसीः) हे
 अग्ने ! तुम चन्द्रमाकी समान आनन्दके दाता, उत्साहयुक्त आकाश
 में बाजकी समान वेगसे गमन करनेवाले, सत्पसम्पन्न सुवर्णमय
 पक्षवाले पक्षीकी समान फैले पक्षवाले जाठराग्निरूपसे पोषक
 बड़े प्रभाववाले स्थिर ब्रह्माके स्थानमें स्थित, आपको बारंबार
 नमस्कारहां, मुझे किसी प्रकारकी पीढ़ान देकर मेरी रक्षा करना ॥ ५३ ॥

दिवो मूर्धासि पृथिव्यानाभिर्होषामोपधीनाम् ।
 विश्वायुः शर्ममप्रथा नमं स्पधे ॥ ५४ ॥

इसका शुनः० ऋ०, परोक्षिणक छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 (दिवः, मूर्धा, पृथिव्याः, नाभिः, अपां, ओपधीनां, ऊर्क, विश्वायुः,
 शर्म, सप्रथाः, असि) हे अग्ने तुम स्वर्गके मस्तकरूप हो, पृथिवीके
 नाभिरूप हो आर्षात् सब तुमसे ही जीवित रहते हैं, तुम जल तथा
 औपधियोंके सार हो, विश्वभरके जीवन हो, सबके शरणदाता
 तथा सब मार्गमें वर्तमान हो (पथे, नमः) स्वर्गके मार्गरूप
 आपको प्रणाम है ॥ ५४ ॥

विश्वस्य मूर्द्धन्निधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृद-
यमस्वायुरपो दत्तोदधिभिर्भिन्त द्विषस्पृज्जन्धा-
दन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

इसका शुनः० ऋ०, महापंक्ति जगती छ०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(श्रितः, विश्वस्य, मूर्धन, अधितिष्ठसि) हे सूर्यरूप अग्ने
तुम सुपुष्पोंमें व्याप्तद्वय सबके शिरमें स्थित हो (ते, हृदयं, समुद्रे)
तुम्हारा हृदय समुद्रमें है (आयुः, अशु) जीवन जनोंमें है क्योंकि
जल से वृक्ष पुष्ट होकर उनसे अग्नि प्रकट होती है (दिवः, पृज-
न्धात्, अन्तरिक्षात्, पृथिव्याः, तवः, वृष्ट्या, नः, यव) दुलोक
से, मेघ से, अन्तरिक्ष से, भूमि से जहाँ जल हो तहाँ से लाकर
वर्षा के द्वारा हमारी रक्षा करो (उदधि, भिन्त) मेघ को बिदीर्ण
करो (अपः, दत्त) जलोंको दो ॥ ५५ ॥

इष्टो यज्ञो मृगुभिराग्नीर्हो वसुभिः । तस्य न
इष्टस्य पूतस्य द्रविणैर्द्वारगमेः ॥ ५६ ॥

इसका गालव ऋ०, उष्णिक् छ०, यज्ञ देवता है । मंत्रार्थ—
(द्रविण, नः, इष्टस्य, पूतस्य, तस्य, इह, आगमेः) हे धन !
हमारे मित्र और मेरी इस यज्ञमान के यहाँ आओ (आशीर्वातः,
यज्ञः, मृगुभिः, वसुभिः, इष्टः) इच्छित वस्तु देनेवाला यज्ञ नाक्षत्र
और देवताओं के द्वारा पूर्ण किया गया ॥ ५६ ॥

इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तु न इष्ट्यहविः । स्व-
मेदन्देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥

इसका गालव ऋ०, गायत्री छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(इष्टः, अग्निः, हविः, आहुतः, नः, इष्टे, पिपर्तु) यज्ञ के द्वारा
पूजित अग्नि हवि के द्वारा तृप्त किया हुआ हमारे मनोरथ को पूर्ण
करे (इदं, नमः, देवेभ्यः, स्वगाः) यह हवि सब देवताओं के
निमित्त हो, स्वयं पहुँचनेवाला है ॥ ५७ ॥

यदाकृतात्ममसुप्तोद्दो वा मर्जसो वा सम्भृत-
व्यक्षुपो वा । तदनु मेतं सुकृतांस्तु लोकं यज्ञ

ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५८ ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, जगती छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (तव, अनु. सृष्टतां, लोकं, उ, भव) है ऋत्विजों ! तम उस मजापतिके कियेहुए कर्मको सम्पादन करके पुण्यात्माओंके लोक-को अवश्य प्राप्त होओ (यत् संभृतं, आकूणात्, या, ह१, वा, मनसः, वा, चक्षुषः, सममुस्रोत्) जो कर्म पूर्ण सामग्री से युक्त है, तथा जो मजापतिके अभिप्राय वा हृदयसे वा मनसे, अथवा चक्षु आदि इन्द्रियोंसे ग्रहणाने रचा है, उसकं करनेसे पवित्र लोक-को गमन करो (यत्र, प्रथमजाः, पुराणाः, ऋषयः, गग्मुः) जिसलोकमें प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५८ ॥

एतच्छ्रुत्वा सधस्थः परितो ददामि यमावहान्छेत्पुत्रि-
ज्जातवेदाः । अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अह्म तश्च
स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ ५९ ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, त्रि०, छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (सधस्थः, जातवेदाः, यं, शेषधि, आवहात्) है देवताओंके स्थान भूतस्पर्श ! सर्वज्ञ अग्निने सुखके खमानेकर यज्ञसेफनको जिसे सौंपा है (एतं, ते, परिददामि) इस यज्ञमानको तुम्हारे अर्पण करता हूँ (यज्ञपतिः, वः, अन्वागन्ता) है देवताओं ! यज्ञ के समाप्त होनेपर यह यज्ञमान तुम्हारे पास आवैगा (अत्र, परमे, व्योमन्, तं, जानीत, स्म) इस उत्तम परम विस्तारवाने स्वर्गमें प्राप्तहुए उस यज्ञमानको तुम जानो, अर्थात् स्वर्गमें पहुँचने पर सत्कार करो ॥ ५९ ॥

एतज्जानाथ परमे व्योमन्देवाः सधस्था विद-
रूपमस्य । यद्वागच्छेत्पुत्रिभिर्देवयानैरिष्टापूर्तै-
ः श्रुत्वाथाविर्स्मै ॥ ६० ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, त्रि०, छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ- (परमे, व्योमन्, सधस्थाः, देवाः, एतं, जानाथ) उत्तम स्थान स्वर्ग में रहनेवाले है देवताओं ! इस यज्ञमानको जानो (अस्य,

क्षपं, विद्) इसके क्षप को जानो (यदा, देवयानैः, पयिभिः, आगच्छात्) जब देवयान भागों से आगमन करे (इष्टापूर्ते, अस्मै, आविः, कृणवाथ) तब श्रौत स्मार्त्त कर्म के फल इस यजमान के निमित्त प्रकाशित करो ॥ ६० ॥

उद्वुद्धवस्थाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्तं सध-
सृजेथामघधं । अस्मिन् सपस्थ अहधुन्तरस्मि-
न्विध्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६१ ॥

इसकी व्याख्या अ० १९ कण्डिका ५४ में होगई ॥ ६१ ॥

येन यदासि सहधं येनाग्ने सध्वेदसम् । तेनेमं
यज्ञतां नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

इसकी व्याख्या अ० १९ कण्डिका ५५ में होगई ॥ ६२ ॥

प्रस्तरेण परिधिनां सुचा वेद्या च वर्हिषा ।

अचेमं यज्ञन्नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

इसका विश्वकर्मा अ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(नः, प्रस्तरेण, परिधिना, सुचा, वेद्या, वर्हिषा, अचा, इमं, यज्ञं, गन्तवे, स्वः, नय) हे अग्ने हमारे सुक्का आधार दर्भ का घुटा, बाहुमान के तीन काठ, जुहू आदि, वेदी, कुशा, अचा आदि से सम्पन्न इस यज्ञ को देवताओं में प्राप्त करने के निमित्त स्वर्ग को लेजाओ ॥ ६३ ॥

यद्वत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याच्य दक्षिणाः ।

तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥

इसका विश्व० अ०, नि० अनु० छ०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(वैश्वकर्म्मणः, अग्निः, नः, तत्, स्वः, देवेषु, दधत्)
विश्वकर्माका अग्नि हमारे उस दानको स्वर्गलोकमें देवताओंमें
स्थापन करे (यत्, दत्तं, यत्, परादानं, यत्, पूर्व, च, याः, दक्षिणाः)
जो कि-नामाता आदि को दिया है, जो परोपकारके निमित्त
दुःखियोंको दिया है, जो स्मृतिके अनुसार कुपोत्सर्जन आदि
किया है और जो यज्ञकी दक्षिणा हैं ॥ ६४ ॥

यत्र धारा अनपेता मघोर्धृतस्थं च याः ।
तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वदेवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

इसका वि० ऋ०, नि० अनु० छ०, अग्निदे० है। मंत्रार्थ-
(वैश्वकर्म्मणः, अग्निः, तत्, स्वः, देवेषु, नः, दधत्) विश्व-
कर्मासम्बन्धी अग्नि तहां स्वर्गमें देवताओंमें हमको स्थापन करे
(यत्र, मघोः, घृतस्थ, च, याः, धाराः, अनपेताः) जहां शब्द
की घृतकी और दध ही आदि की धाराएं स्थापित होती हुई
स्थित हैं ॥ ६५ ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृ-
तम्सऽआसन् । अर्कस्मिधातू रजसो विमानो-
ऽजस्रो घृभो हविरस्मि नाम ॥ ६६ ॥

इसका देवश्रवा देववात ऋ०, नि० छ०, अग्नि देवता है।
मंत्रार्थ-(जातवेदाः, अर्कः, त्रिधातुः, रजसः, विमानः, अजस्रः,
अग्निः, अजन्मा, अस्मि) सब सृष्टिका स्वामी, अर्चनीय यज्ञ,
मिथेवस्वरूप, जल का निर्माता अविनाशी अग्नि उत्पात्तिसे ही मैं
हूँ (मे, चक्षुः, घृत) मेरी आँखें घृत हैं घृत होमनेवाले को देखता
हूँ (मे, आस्य, अमृतम्) मेरे मुख में हविरूप अमृत है (घर्मः,
नाम, हविः, अस्मि) मेघरूप और नाम से पुरोडाशादिक
भी मैं हूँ ॥ ६६ ॥

ऋचोऽनामास्मि यजूंषि नामास्मि सामानि
नामास्मि । ये ऽअग्नयः पाञ्चजन्या अस्याम्पृ-
थिव्यमधि तेषामसि त्वमुत्तमः प्रनो ज्जिवातवे
सुव ॥ ६७ ॥

इसमें २ मंत्र हैं। दोनों का देवश्रवा देववात ऋ०, छन्द क्रम
से ऋची जगती और अनुष्टुप् है, देवता क्रमसे आत्मा और
अग्नि है। मंत्रार्थ-(ऋचः, नाम, अस्मि) ऋग्वेद नामवाला हूँ
(यजूंषि नाम) यजुर्वेद नामक अग्नि हूँ (सामानि, नाम, अस्मि)
सामवेद नामक मैं हूँ (अस्याः, पाञ्चज्या, अधि, ये, पाञ्चजन्याः,

अग्नयः, तेषां, त्वं, उत्तमः, असि) इस पृथिवी पर जो मनुष्यों के हितकारी अग्नि हैं, हे यज्ञाग्ने तुम उनमें श्रेष्ठ हो (नः, जीवा-
तवे, प्रभुव) हमारे चिरजीवनके निमित्त आज्ञा दो ॥ ६७ ॥

वार्जहत्याय शर्वसे पृतनापाह्याय च । इन्द्र त्वा
वर्त्तयामासि ॥ ६८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, नि० गा० छ० इन्द्र देवता है इसका
पाठ करै । मंत्रार्थ—(इन्द्र, वार्जहत्याय, च, पृतनापाह्याय, शर्वसे,
त्वा, आवर्त्तयामासि) हे इन्द्र ! वृत्रासुरके मारनेवाले, शत्रुसेना
का तिरस्कार करनेमें समर्थ, बलदर्शनके निमित्त तुम्हारा बार-
बार आवाहन करते हैं ॥ ६८ ॥

सहदानुम्पुरुहूतक्षिपन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिण्कु-
णारुम् । अभिवृजं वर्द्धमानुम्पियारुमुपादमिन्द्र
नवसा जघन्य ॥ ६९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, आर्षी त्रि० इन्द्र, इन्द्र दे० है ।
(पुरुहूत, इन्द्र, क्षिपन्तं, कुणारुं, सहदानुं, महस्तं, सम्पिण्कु)
अनेकोंबार भक्तोंसे आवाहन किये हुए हे इन्द्र निकट बसनेवाले,
दुर्बल कहनेवाले शत्रुको हाथोंसे राहिन करके चूर्ण करो (इन्द्र,
वर्द्धमाने, पियारुं, वृजं, अपादं, अभिजघन्य) हे इन्द्र ! वृद्धि
को प्राप्त होते देवताओंको मारनेवाले वृत्रासुर वा पापको गति
हीन करके मारो ॥ ६९ ॥

विनं इन्द्रमृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

यो अस्मान् अभिदासत्यधरङ्गमया तमः ॥ ७० ॥

इसकी व्याख्या अ० ८ मं० ४४ में होई ॥ ७० ॥

सृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आज-
गन्थापरस्याः । सूकथं सथंशायं पविमिन्द्र ।

तिग्मं विशन्नून्ता इह विमृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥

इसका जय ऋ०, त्रि० छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ—(इन्द्र,
भीमः, कुचरः, गिरिष्ठाः, सृगः, न, परावतः, आजगन्थः,
पविमिन्द्र)

हे इंद्र ! भयानक दीप्तनेवाले ढराधनी चालवाले पर्वतकी गुफा में सोनेवाले सिंहकी समान अनिद्र स्थानोंसे आओ (सुकं, तिरमं पति, संशय, शून्य, विताहिद) शत्रुके शरीरमें प्रवेश करनेवाले तक्षिण सत्साहसरे वज्रको पैना करके शत्रुओंको विशेषरूपसे ताड़ना करो (मृधः, नुदस्व) संग्रामोंको विशेष प्रेरणा करो वा दूर करो ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न ऊनय गा प्रयांतु परावतः अग्निर्नः

सुष्टु नीरुप ॥ ७२ ॥

इसका जय ऋ० गायत्री छ०, वैश्वानर देवता है । मंत्रार्थ— (वैश्वानरः, अग्निः, नः, सुष्टुतीः, उप, नः, ऊनये, परावतः मयातु) सब माणियोंका हितकारी अग्नि देवता हमारी सुन्दर स्तुतियोंको सुननेके निमित्त और हमारी रक्षा करनेको दूर देशसे आवे ॥ ७२ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्पृष्टो विश्वा

ओपधीराधिवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो अ-

ग्निस्स नो दिवा स रिपस्पांतु नक्तम् ॥ ७३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, त्रि० छ०, वैश्वानर देवता है । मंत्रार्थ— (वैश्वानरः, अग्निः, दिवि, पृष्टः) सब माणियोंका हितकारी अग्नि देवता शुलोकमें आदित्यरूपसे पूजागया अर्थात् वह आदित्यरूप क्या है, इस प्रकार सुभुशुओंने प्रश्न करके विचार किया (पृथिव्यां, पृष्टः) अन्तरिक्षमें जलके अमिलारूपोंने बूझा कि जो विजलीरूपसे प्रकाश करता है यह कौन है ! (विश्वाः, ओपधीः, आविवेश) जो सकल ओपधोंमें प्रवेश कर गया (सः, पृष्टः) वह बूझा गया कि—जीवनके कारणरूप ताप पाक प्रकाश आदिसे प्रजाओंका उपकार करनेवाला यह कौन है (सहसा, पृष्टः) जो बलपूर्वक अध्वर्युसे मयः हुआ मनुष्योंसे बूझा गया कि—यह कौन है जो अरणी काठमें से निकाला जाता है (सः, दिवा, नक्तम्, नः, रिपः, पांतु) वह अग्नि दिन रात बधवा कण्डसे हमारी रक्षा

करे अथवा सर्वत्र अग्नि मूर्ध विद्यत रूप परमात्मा है वह सदा हमारी रक्षा करे ॥ ७३ ॥

अश्याम तद्धाममग्ने तद्योती अश्याम रयिध
रयिवस्सुवीरम् । अश्याम वाजंमभि वाजयन्तो
अश्याम द्युम्नमजरंजरन्ते ॥ ७४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (अग्ने, तव, ऊती, तं, कामं, अश्याम) हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा से हम उस आभलापाको प्राप्त हों (रयिः, सुवीरं, रयि, अश्याम) हे धनवान् आपकी कृपासे हम सुन्दर पुत्र और श्रेष्ठधनको पावें (वाजयन्ताः, वाजं, अभि, अश्याम) अग्निका पूजन करते हुए हम तुम्हारी कृपासे अन्नको सब ओर से पावें (अजर, ते, अजरं, द्युम्न, अश्याम) हे जरारहित ! तुम्हारे जीर्ण न होनेवाले यश को पावें अर्थात् सदा यशस्वी हों ॥ ७४ ॥

युधन्ते अथ रश्मिमाहिकाममुत्तानहंस्तानमसो-
पसथ । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्त्रेधना
मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ७५ ॥

इसका उत्कील ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मं०—(अग्ने, उत्तानहस्ताः, यथं, नमसा, उपसथ, अथ, यजिष्ठेन अस्त्रेधना, मन्मना, मनसा, कामं हविः, ते, रश्मि) हे अग्ने ! दानके निमित्त खुले हुए हैं दाथ जिनके ऐसे हमने नमस्कारपूर्वक निकट जाकर आज यज्ञ करनेमें तत्पर अग्न्यगनि एकाग्र देवताओंकी माहिमा और आत्माके स्वरूपको जाननेवाले रुाधान मनसे इच्छित हविको आपके अर्पण दिया (विप्रः, देवान्, यक्षि) हे अग्ने ! बुद्धिमान् तुम देवताओंको वृत्त करो ॥ ७५ ॥

धामच्छट्ग्निरिन्द्रो वृष्ट्या देवो बृहस्पतिः ।

सचेतसो विश्वे देवा यज्ञमप्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

इसका उत्कील ऋ०, शनु० छ०, विश्वदेवा दे० है । मंत्रार्थ (धामच्छत्, सः, देवः, अग्निः, इन्द्रः, वृष्ट्या, बृहस्पतिः, सचेतमः,

विश्वेदेवाः, नः, यज्ञं, भुमे, प्रावन्तु) लोकोंकी न्यूनताको पूर्ण करनेवाले, रीतोंको भरनेवाले वा परमधाममें विराजमान, दिव्य गुणधारी, अग्नि, देवराज इन्द्र, चतुर्मुख ब्रह्मा, देवगुरु बृहस्पति तथा परम बुद्धिमान् विश्वेदेवा वा सम्पूर्ण देवता हमारे यज्ञको इष्टस्थान स्वर्गमें स्थापन करें ॥ ७६ ॥

त्वं यंचिष्ट दाशुषो नृः पाहि शृणुधी गिरः ।

रक्षां लोकमुत्तमना ॥ ७७ ॥

इस मंत्रकी व्याख्या अ० ११ मं० १२ में होगई है, जिसका सरल भाव यह है कि—हे नित्यतत्त्व अग्निदेव तुम हमारी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंको सुनो यजमानके वंश और सम्बन्धियों की बिना याचनाके ही रक्षा करो ॥ ७७ ॥

इति श्री यज्ञवल्क्यनारद माध्यन्दिनीय शास्त्राका मापाद्यवाद सहित
अष्टादश अध्याय समाप्तः ।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ।

॥ हरिः ओं ॥ स्वादीन्त्वां स्वादुनां तीव्रान्ती-
ब्रेणामृतांममृतेन मधुमतीम्मधुमता सृजामि
सोमोऽस्यश्विभ्यामप्यस्य सर-
स्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राग्णे पच्यस्व ॥ १ ॥

अब तीन अध्यायोंमें सौत्रामणि यज्ञके मंत्र कहे जायेंगे, इस यज्ञकी धनसमृद्धि, पशुवृद्धि और बिनेद्वय राज्यको फिर चाहने-वाले करते हैं, सोमरस बनानेके मंत्र । मंत्रार्थ—(स्वादीं, तीव्रां, अमृतां, मधुमतीं, त्वा, स्वादुना, तीव्रेण, अमृतेन, मधुमता, सो-नेन, संसृजामि) हे अन्नरस ! अग्निस्वादु तीव्र अमृतकी समान मधुर और गुणकारी मीठे रससे भरेद्वय तुम्हको, स्वादु तीव्र अमृतसमान मधुररस भरे सोमके साथ मिनाताहूँ (सोमः, असि) हे सोममिले अन्नरस तुम सोम हो (अश्विभ्यां, पच्यस्व) दोनों अश्विनीकुमारोंके निमित्त पको (सरस्वत्यै, पच्यस्व) सर-

स्वतीके निमित्त पाचित होओ (सुत्राग्रे, इन्द्राय, पच्यस्व)
रक्षा करनेवाले इन्द्रके निमित्त पाचित होओ ॥ १ ॥

परीतो पिञ्चता सुतथे सोमो य उतमथे
हविः । दधन्वापो नर्या अप्सवन्तरासुपाव
सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, हरती ऋ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—(यः, सोमः, हविः, वा, यः, नर्यः, दधन्) हे ऋत्विजो ! जो सोम श्रेष्ठ हवि है और जो सोम मनुष्योंका हितकारी होताहुआ यजमान को धारण करताहै (अप्सु, अन्तः, सोमं, अद्रिभिः, आसुपाव) जलोंमें वर्षमान जिस सोमको पत्थरोंसे अर्धवर्णने अभिपुत्र किया है (सुतं, इतः, परिपिञ्चत) उस अभिपुत्र सोमको इसगौके दूध से सींचो अर्थात् देवताओंके श्रेष्ठ हविमें गौ का दूध मिलाओ रे घ्रायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यर्कसोमो अतिदुतः ।

इन्द्रस्य युज्यस्सखा । घ्रायोः पूतः पवित्रेण प्रा-
र्कसोमो अतिदुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

इसमें २ मं० हैं । दोनोंका आभूति श्रु०, गायत्री ऋ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—(अत्यद्, अतिदुतः, सोमः, वायोः, पवित्रेण पूतः) अधोमुख शीघ्रतासे निकला हुआ सोम वायु देवताके पवित्रसे शुद्ध हुआ (इन्द्रस्य, युज्यः, सखा) इन्द्रका योग्य सखा है अर्थात् हे सोम तुम शीघ्र इस पात्रमें प्रवेश करसकते हो वायु देवताके अनुग्रहसे तुम पवित्रके द्वारा पवित्र होतेहो, इन्द्रके योग्य रूपारे सखा हो (माहू, अतिदुतः, सोमः, वायोः, पवित्रेण, पूतः, सोमः, इन्द्रस्य, युज्यः, सखा) पूर्वमुख निकलाहुआ सोम वायुके पवित्रासे पवित्र हुआ जोकि—इन्द्रका योग्य सखाहै अर्थात् हे सोम तुम शीघ्र ही इस पात्रमें से निकलसकते हो, वायुदेवताके अनुग्रहसे तुम पवित्र के द्वारा पवित्र होते हो ॥ ३ ॥

पुनाति ते परिधुतथे सोमथे सूर्यस्य दुहिता ।
वारिण शश्वता तना ॥ ४ ॥

के भोज्य पदार्थों को सम्पादन करो (ये, वहिषः, नमः, उक्ति, यजन्ति) जो कुशासनपर बैठे हुए हविरूप अन्न को लेकर मंत्रोच्चारण करते हुए होमते हैं (उपयामगृहीतः, असि) हे सोम ! तुम उपयामरात्र में गृहीत हो (आश्विभ्याः त्वा) अश्विनीकुमारों की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः, ते, योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (तेजसे, त्वा) तेज के निमित्त तुमको यहाँ सम्पादन करता हूँ (सरस्वत्यै, त्वा) हे पयोग्रह ! तुमको सरस्वती देवता की प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ (भीषाय, त्वा) हे दूसरे पयोग्रह ! वीरता पाने के निमित्त तुमको यहाँ स्थापन करता हूँ (सुशाम्ये, इन्द्राय, त्वा) हे तृतीय पयोग्रह ! रक्षक इन्द्र देवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (वनाय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है वज्र के निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ ६ ॥

नाना हि यान्देवहितं स देस्कृतम्मा स संसृ-
क्षाधाम्परमे व्योमन् । सुरा त्वमासि शुष्मिणी
सोम एष मा मा हिंसीः स्वां योनिमा
प्रविशन्ती ॥ ७ ॥

इसका आभूति ऋ०, जगती छ०, सुरासोम दे० है । अभि-
मंत्रण करै । मंत्रार्थ - (हि, वां, देवहितं, नाना, सः, कृतं) हे
सुरासोम क्योंकि तुम दोनोंके, देवताओंके हितकारी पुण्यस्थान
किपेगए हैं (परमे, व्योमन्, मा, संसृक्षाधाम्) इसकारण आ-
काशकी समान विशाल हवनस्थानमें संयोग मतकरो, क्योंकि
आहवनीयमें दूध और दक्षिणाग्निमें सुरा होमीजाती है अतः अलग
रहो (त्वं, शुष्मिणी, सुरा, आसि) हे सुरारस तुम बलवान् देव-
ताओंके स्वीकार करने योग्य रसयुक्त हो (एषः, सोमः, स्वां
योनिं, प्रविशन्ती, सोमं, मा, हिंसीः) यह सोमशान्त है इसकारण
अपने स्थान दक्षिणाग्निमें प्रवेश करते हुए सोमको पीड़ा मत दो ७

उपयामगृहीतोऽस्याग्निनन्तेजः सारस्वतं विर्यं

मैन्द्रम् बलेम् । उप ते योनिर्मादाय त्वानन्दाय
त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

इसका आपृति ऋ०, वि० आ० प० छ०, सोमदे० है ।
मंत्रार्थ—(उपयामगृहीतः, अस्ति) उपयामपात्र में गृहीत हो (तेजः,
आश्विनम्) तेजःस्वरूप तुमको अश्विनीकुमारकी प्रीतिके निमित्त
ग्रहण करता हूँ (एषः, ते, योनिः) हे मयम सुराग्रह ! यह
तुम्हारा स्थान है (मोदाय, त्वा) आनन्दके निमित्त तुमको यहां
स्थापन करता हूँ (वीर्यं, सारस्वतं) हे द्वितीय सुराग्रह ! वीर्यस्वरूप
तुमको सरस्वती देवताकी प्रीति के निमित्त उपयामपात्र में ग्रहण
करता हूँ (आनन्दाय, त्वा,) हे द्वितीय सुपाग्रह आनन्दकी प्राप्ति
के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करता हूँ (बलं, ऐन्द्रम्)
हे सुवीर्यसुराग्रह बलकी प्राप्ति के निमित्त इन्द्रदेवताकी प्रसन्नता
के अर्थ उपयामपात्र में तुमको ग्रहण करता हूँ (महसे, त्वा)
हे सुवीर्यसुराग्रह ! महस्वको पानेकी कामनासे तुमको यहां
स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमासि वीर्यं मायि
धेहि बलमसि बलममयि ऐन्द्रोऽसि ऐन्द्रो मयि
धेहि मन्त्रमासि मन्त्रं मायि धेहि सहोऽसि सहो
मायि धेहि ॥ ९ ॥

इसमें ९ मंत्र हैं । सबका आपृति ऋ०, है, छन्द १ । १ का
आसुरी जगती, १ । १ । १ का आसुरी त्रि०, ४ का ग्राजा० अनु०
और देवता १ । २ । ३ । ४ । १ का सुरासोम तथा ४ का सुरा
हैं । मंत्रार्थ—(तेजः, अस्ति, तेजः, मयि, धेहि) हे दूध ! तेजको
बढ़ानेवाले हो, मुझमें तेजको धारण करो (वीर्यं, अस्ति, वीर्यं,
मयि, धेहि) तुम वीरताहो मुझमें वीरताकी स्थापन करो (बलं,
अस्ति, बलं, मयि, धेहि) तुम बलहो मुझमें बलको धारण करो
(ओजः, अस्ति, मयि, ओजः, धेहि) हे सुगारस ! तुम कान्ति हो
मुझमें कान्तिको स्थापन करो (मन्त्रः, अस्ति, मन्त्रं मयि, धेहि) तुम

अङ्कार हो मुझमें सद्भावके अङ्कारको धारण करो (सहः, अस्ति, सहः, मयि, धेहि) तुमबल हो मुझमें बल स्थापन करो ॥ ९ ॥

या व्याघ्रं विपूचिकोभौ घृकञ्च रक्षति श्वेनम्प-
ताश्रिणाथ सिधेहथसेमम्पात्वथहसः ॥ १० ॥

इसका हैमवर्चि ऋ०, अनु० ऋ० विपूचिकां दे० है । नाभिसे ऊपर नीचे इसको पढ़कर अध्वर्यु और प्रतिमस्थाता यजमानको श्वेनपिच्छसे पवित्र करे । मंत्रार्थ—(या, विपूचिका, व्याघ्र, च, घृकं, उभौ, रक्षति) जो सर्वत्र फ़ैलनेवाला उदररोग व्याघ्र और भेड़ियोंके समूहकी रक्षा करता है (श्वेनं, पताश्रिणं, सिधम्) श्वेन पत्नी और सिधकी रक्षा करता है (सा, इमं, अहसा, पातु) वह इस यजमानकी पापरूप व्याधिसे रक्षा करे अर्थात् सिध भेड़िये आदिको विपूचिका रोग नहीं होता है, तैसेही हमारे इस यजमानको भी न हो ॥ १० ॥

यदापिपेय मातरंस्पृश प्रमुदिनो धयन् । एतस्त
दग्नेऽनृणो भवाम्यहंतौ पितरौ मया । सम्पृचं
स्थ सम्माभद्रेणं पक्त विपृचंस्थ विमां प्राप्सनां
पृक्त ॥ ११ ॥

इसमें १ मं० है । सबका हैमवर्चि ऋ०, १ का वृहती २ । ३ का मि० छन्द है । देवता १ का अग्नि, २ का पयोग्रह, ३ का सुराग्रह है । १ से अध्वर्यु यजमान को अग्नि दिखावे, मंत्रार्थ—(प्रमुदितः, धयन्, अहं, यत्, मातरं, आपिपेय, अग्ने, तत्, एतत्, अनृणः, भवामि) अति प्रसन्नता से स्तन पीतेहुए पुत्ररूप में जो माता को चरणों से ताड़ित किया है अग्ने ! वह मैं यह तुम्हारी साखी में तीनों ऋणों से मुक्त होता हूँ (मया, पितरौ, अहंतौ) मुझ से माता पिता पीड़ित नहीं हुए अर्थात् जो पुत्र मृत्युपकार नहीं करसकता वही मा बाप का हन्ता है । पयोग्रह को स्पर्श करे (सम्पृचः, स्थ, मा, भद्रेण, सम्पृक्तम्) हे पयोग्रह संयोजक हो इसकारण मुझको कन्याण से संयुक्त करो । सुरा

शत्रु को स्पर्श करे—(निपृणः, स्प, मा, पापना, निपृक्त) हे
 सुराग्र! तुम वियोजक हो इसका गगन मुझको पाप से अलग करो ॥

देवा यज्ञमन्तन्वत भेषजन्निपज्ञाश्विना । वाचा

सरस्वती भियमिन्द्रायिन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

यहाँ से २० ऋषिदेका ब्राह्मणका छह संस्काररदिन रसको पीनेसे
 इन्द्रके वन, वीर्य, गधानताका अमुरोंने हरलिया तब जो रात दिन
 त्याज्य मद्य को सुरा कहकर पीने हैं, उनके पनिन होनेमें तो कुछ
 भी मन्देह नहीं है अतएव श्रुति कहती है—(देताः, भेषजं, यज्ञं,
 अन्वग) देवताओंने इन्द्रके औपधरूप सौत्रामणि यज्ञको विस्तृत
 किया (भिपज्ञा, अश्विनां, सारस्वती, वाचा, वीर्याणि, दधतः)
 वैद्य अश्विनीकुमार और प्रथीरूप सरस्वती वाणीके द्वारा इन्द्रमें
 सामर्थ्य धारण कीगई ॥ १२ ॥

दक्षायै रूपं शप्पाणि प्रायणीयस्य तो
 फयानि । क्रयस्य रूपं सोमस्य लाजाः सोमांश
 शानो मधु ॥ १३ ॥

(शप्पाणि, दीक्षायै, तौकमानि, प्रायणीयस्य, रूपं, लाजाः,
 क्रयस्य, सोमस्य, रूपं, मधु, सोमांशवः) नए उत्पन्न हुए घीदि
 इस यज्ञकी दाक्षाके निमित्त आवश्यक होते हैं, गवीन प्रकट जो
 प्रायणीय इष्टकारूप जानने खिले मोललिये सोमका रूप है, गठि
 खिले सोमके खण्ड हैं ॥ १३ ॥

आतिथ्यरूपम्मासंरम्महावीरस्य नग्नहुः रूपमुप
 सदांमेनत्तिष्ठो रात्रीः सुरा सुता ॥ १४ ॥

(मामरं, आतिथ्यरूपम्) आतिथ्यके निमित्त घीदि श्यामाक
 लाना आदिमिनाहुआ चूर्ण है (नग्नहुः, महावीरस्य) २६
 वस्तुओंका मिलकर बनाहुआ नग्नहु पदार्थ महावीरस्यानी है
 (तिस्रः, रात्रीः, आसुता, सुरा, उासदां, स्त्रीम्) तीनरात अभि-
 पण किया हुआ सुगरस उपमद नामक इष्टिका रूप है ॥ १४ ॥

सोमस्य रूपं क्रयस्य परिशुत परिपिच्यते ।

अद्विष्यन्नुत्तमं भेषजमिन्द्राग्निन्द्रोऽसुखं १५

(इन्द्राय, ऐन्द्रं, भेषजं, सरस्वत्या, अग्निव्यां, दुग्धं, परि-
पुष्टं, परिपिच्यते) इन्द्रके निमित्त इन्द्रमन्थनी औषध, सरस्वती
और अश्विनीकुमारोंके लिये दहादुआ दूध अभिषु। मदीपधि
रस सुराके संग तीन दिन सौंवाजानाहै वह (कर्तव्य, सोमस्य,
दधम्) कषकिवेदुष सोमका दध है अर्थात् सोमके साथ परिपेक
करनेको अश्विनीकुमार, रास्वती और इन्द्रके निमित्त भिक्ष १
गकारके दूधकी आवश्यकताहै ॥ १५ ॥

आसन्दी रूपं राजासन्धे येद्यं कुम्भी सुरा-
धानी ॥ अन्तर उत्तरवेद्या रूपकारोत्तरो
भिषक् ॥ १६ ॥

(आसन्दी, राजासन्धे) यजमानके अभिषेक की चौकी सोम
की मधिकाका दध है (सुराधानी, कुम्भी, वेद्यं) सुरा रखनेकी
कलशी सोमकी वेदीकादध है (अन्तरः, उत्तरवेद्या, दधम्)
दोनों वेदियोंका मध्यभाग लगनेदीका दध है (कारोत्तरः, भिषक्)
सुरापावनकी चननी इन्द्रकी औषाधै ॥ १६ ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते वर्हिषां वर्हिरिन्द्रियम् ।

यूपेन यूपं आप्यते प्रणीतो अग्निर्गुणिना ॥ १७ ॥

(वेद्या, वेदिः, समाप्यते) वर्तमान वेदीके द्वारा सोमकी
वेदी भलेप्रकार प्राप्त होतीहै (वर्हिषा, वर्हिः, इन्द्रियम्) वर्षा-
मान कुशासे सोम सम्बन्धी कुशाप्राप्त हातीहै तथा चन प्राप्त होताहै
(यूपेन, यूपः, आप्यते) वर्तमान यूासे सोम सम्बन्धी यूप प्राप्त
होताहै (अग्निना, प्रणीतः, अग्निः) वर्षमान अग्निसे प्रणीत
नामक अग्नि प्राप्त होतीहै ॥ १७ ॥

द्विर्दानं पटुश्विनाग्नेधिं यत्सरस्वतो । इन्द्रा-

येन्द्रोऽसुखं सवस्कृतम्पत्नीशालुहार्हपत्यः ॥ १८ ॥

(यत्, अश्विना, दानं) जो अश्विनी कुमार हैं वह द्वि-
र्दान है (यत्, सरस्वती, आग्नीधम्) जो सरस्वतीहै वह आग्नीध

है (इन्द्राय, ऐन्द्रं, सदः, पत्नीशालं, कृतं, गार्हपत्यः) इन्द्रके निमिरा जो इन्द्रकी देवताशाला स्थान पत्नीशाल नामक रचा गया वह गार्हपत्य है ॥ १८ ॥

प्रेषेभिः प्रैषानामोत्प्राप्तीभिर्गृहीतस्य । प्रया-

जेभिरनुयाजान्धपट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

(प्रैषभिः, प्रैषान्, आमोति) भोजनरूप प्रैषनामक यज्ञकर्मों

से प्रैषों को पाता है (आमीभिः, यज्ञस्य, आमीः) प्रयाज याज्यों

से यज्ञ की प्रसन्न करनेवाली क्रियारूप प्रयाजों को पाता है

(प्रयाजेभिः अनुयाजान्) प्रयाजों से उत्तम यज्ञकर्मरूप प्रयाजों

को, अनुयाजों से अनुकूल यज्ञ पदार्थरूप अनुयाजों को पाता है

(वपट्कारेभिः, आहुतीः) वपट्कारों से वपट्कारों को और

आहुतियों से आहुतियों को पाता है ॥ १९ ॥

पशुभिः पशूनामोति पुरोडाशैर्हविष्यैः ।

छन्दोभिः सामधेनीर्याज्याभिर्वपट्कारान् ॥ २० ॥

(पशुभिः, पशून्, आमोति) पशुओं से पशुओं को पाता है

(पुरोडाशैः, हविष्यैः, आमोति) पुरोडाश नामक हवियों से

हवियों को प्राप्त होता है (छन्दोभिः, सामधेनीः) छन्दों से

छन्दों को, सामधेनियों से सामधेनियों को प्राप्त होता है (या-

ज्याभिः, वपट्कारान्) याज्यों से याज्यों को वपट्कारों से वपट्-

कारों को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

धानां कर्मभः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।

सोमस्य रूपं हविषं आमिक्षा वाजिनमधु ॥ २१ ॥

(धानाः, कर्मभः, सक्तवः, परीवापः, पयः, दधि, सोमस्य,

रूपम्) भुनेद्रूप धान्य खिले, उदमन्य, सक्त, हविष पंक्ति, दध,

दही सोम का रूप है (आमिक्षा, मधु, वाजिनं, हविषः) गरम

दूध में दही डालनेपर होनेवाला गाढ़ाभागरूप आमिक्षा, शहत

और अन्न हविका रूप है अर्थात् सोमकी सामग्री है ॥ २१ ॥

धानानां रूपं कुचं लम्परीणपर्यं गोधूमाः ।

सक्तूनां रूपम्बदरसुष्याकाः करम्मस्थं ॥ २२ ॥

(कुबलं, धानानां, रूपं) इस यज्ञ में कोमल बेर के फल पूर्वोक्त धान की खिलोंका रूप हैं (गोधूमाः, परिषापस्य) गेहूं हविष्पंक्ति का रूप हैं (बदरं, सक्तूनां, रूपं) बदरीफल सक्तुओं का रूप हैं (उपवाकाः, करम्मस्थ) जो करम्मे का रूप हैं ॥ २२ ॥

पयसो रूपं यथया दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । सोमस्य

रूपं याजिनं सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

(यत्, यथा, पयसः, रूपं) जो यव हैं वह दूध का रूप हैं (कर्कन्धूनि, दध्नः, रूपं) बड़े बदरीफल दही का रूप हैं (याजिनः, सोमस्य, रूपं) अन्न सोम का रूप है (आमिक्षा, सौम्यस्य) दधि मिला गरम दूध सोम में पके हुए चरुका रूप है ॥ २३ ॥

आभ्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याधावो अनुरूपः ।

यजेति धार्याद्वपम्रगाथा ये यजामुहाः ॥ २४ ॥

शास्त्रसम्पत्ति कहते हैं—(आभ्रावय, इति, स्तोत्रियाः) सुनाओ यह शब्द स्तोता हैं (मत्याथावः, अनुरूपः) पीछे सुनाया जाता है यह उत्तर तीन ऋचावाले अनुवाक का रूप है (यज, इति, धार्यारूपं) यजन करो यह शब्द धार्या का रूप है (येयजामुहाः, मगाथाः) येयजामहे यह शब्द मगाथा का रूप है ॥ २४ ॥

अर्द्धैरुक्थयानां रूपम्पदैरामोति निषिदः ।

प्रणवैः शुक्लाणां रूपम्पयसा सोमं आप्यते ॥ २५ ॥

(अर्धैः, उक्थयानां, रूपं, आप्यते) अर्द्ध ऋचाओं से उक्थों का रूप पाया जाता है (पदैः, निषिदः, आमोति) मत्येक पदों से न्युंखों को पाता है (प्रणवैः, शुक्लाणां रूपं) प्रणवों से शुक्लों का रूप पाया जाता है (पयसः, सोमः) दूध से सोम प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

अश्विभ्यां प्रातः सवनमिन्द्रैर्नैन्द्रमाख्यं न्दिनम् ।

वैश्वदेवस्य सरस्वत्या तृतीयमासस्य सवनम् ॥ २६ ॥

सवनसम्पत्तिको कहते हैं—(अश्विभ्यां, प्रातः, सवनं) अश्विनी

कुमारोंके द्वारा प्रातःसवन मिलाता है (इन्द्रेण, ऐन्द्रं माध्यन्दि-
नम्) इन्द्रके द्वारा इन्द्रदेवतावाला माध्यन्दिन सवन प्राप्त होता है
(सरस्वत्या, वैश्वदेवं, तृतीयं, आत्मम्) सरस्वतीके द्वारा विश्वे-
देवाका तीसरा सवन प्राप्त हुआ अर्थात् तीनोंकालमें इन देवताओं
की आराधना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

वायव्यैर्वीयव्यान्यामोति सतेन द्रोणकलशम् ।

कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीरामोति ॥

(वायव्यैः, वायव्यानि, आमोति) वायव्य सोमपानोंके द्वारा
वायव्य पानोंको पाता है (सतेन, द्रोणकलशम्) कलशकों धनान
के बेलके पात्रसे द्रोणभरके कलशकों पाता है (कुम्भीभ्यां, अम्भृणौ
सुते) सौ छिद्रवाली भारी और दक्षिणाग्निपरके सुराधानी पात्र
से पूतभृत् और आघवनीयको सोमाभिषव होनेपर पाता है (स्था-
लीभिः, स्थालीः, आमोति) स्थालियों के द्वारा स्थालियों का
प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः ।

छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नां च भृथ आप्यते ॥ २८ ॥

(यजुर्भिः, ग्रहाः, आप्यन्ते) यजुर्भोंके द्वारा ग्रह प्राप्त होते हैं
(ग्रहैः, स्तोमाः, विष्टुतीः, च) ग्रहोंके द्वारा स्तोम और अनेकों
प्रकारकी स्तुति सम्पन्न होती है (छन्दोभिः, उक्थाः, शस्त्राणि)
छन्दोंसे उक्थ और कथन करनेयोग्य स्तुतियाँ सम्पन्न होती हैं (साम्ना
अवभृथः, आप्यते) सामसे अवभृथ प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

इडाभिर्भक्षानामोति सूक्तवाकेनाशिषः शंयुना

पत्नीसंयाजान्तसमिष्टयजुषां सुधेस्थाम् ॥ २९ ॥

(इडाभिः, भक्षान्, आमोति) अन्नोंसे मध्य पदार्थोंको पाता
है (सूक्तवाकेन, आशिषः) सूक्तवाक्योंके द्वारा आशीर्वादोंको पाता
है (शंयुना, पत्नीसंयाजान्) शंयुहोमसे शंयुको और पत्नीसंयाज
से पत्नीसंयाजोंको पाता है (समिष्टयजुषां, संस्थाप) यजुःसमूह
से संस्थाको पाता है ॥ २९ ॥

वृत्तेन दीक्षामामोति दीक्षयामोति दक्षिणाम् ।

दक्षिणां श्रद्धामामोति श्रद्धयां सत्यमाप्पते ॥ ३० ॥

(वगेन, दीक्षां, आमोति) हुनशेषमक्षणरूप चार रात्रिके व्रत से दीक्षाको पाता है (दीक्षया, दक्षिणां, आमोति) दीक्षासे दक्षिणा को पाता है (दक्षिणा, श्रद्धां) दक्षिणा से आस्तिक्यबुद्धि को (श्रद्धया, सत्यं, आप्पते) और आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाके द्वारा सत्यस्वरूप परमात्माको पाता है ॥ ३० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यज्ञे वैश्रमण्या कृतम् । तदेत-

त्सर्वमामोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

(एत. देवैः, व्रतणा, कृतम्) जो देवताओं ने और व्रता मजा पणिं किया है (यज्ञरूप, एतावत्, रूपम्) उस यज्ञका इतना ही रूप है (सौत्रामणीसुते, यज्ञे, एतत्, सर्वं, आमोति) सौत्रामणि यज्ञमें सुरासोमका अभिषेक होनेपर वह यज्ञ याग संपूर्ण प्राप्त होता है । अर्थात् जो मद्यपान करते हैं वह भ्रष्ट होजाते हैं उनका तेज बल बुद्धि नष्ट होजाता है, जैसे कि-स्वर्गके अधिपति इन्द्रका जातारहा, तब वह सौत्रामणिके द्वारा चिकित्सा से ठीक हुआ, इसकारण पुरुषको चाहिये कि-मद्यपानादि नीचकर्मोंसे बचै यही इस प्रकारका औपचारिक उपदेश है ॥ ३१ ॥

सुरावन्तर्महिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति

महिषा नमोभिः । दधानाः सोमं न्दिवि देवतां

सुमं मेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

इसका है मर्वाचि ऋ०, मि० छ०, अग्नि सरस्वती इन्द्र दे० हैं । अध्वर्यु होम करे । मंत्रार्थ—(नमोभिः, दिवि, देवतासु, सोमं, देवानां, महिषाः, महिषदं, सुरावन्तं, सुवीरं, यज्ञं, हिन्वन्ति) नमस्कार वा श्रुतों के द्वारा स्वर्ग में स्थित देवताओं में सोम को धारण करते हुए मदान् ऋत्विज् कुशासनपर बैठे हुए देवताओं से युक्त सुरारसवाले और जिसमें श्रेष्ठ ऋत्विज हैं ऐसे सौत्रामणि यज्ञ को प्राप्त कराते हैं; इस यज्ञ में (स्वर्काः, इन्द्रं, यजमानाः,

मंत्रार्थ—(सोम्यासः, पितरः, शनायुषा, पवित्रेण, मा. पुनन्तु)
 सौम्यमूर्ति पितर पूर्य आयु दनवाने पवित्रे से मुझ को पवित्र करें
 (पितामहाः, मा, पुनन्तु) पितामह मुझको पवित्र करें (प्रपि-
 तामहाः, पुनन्तु) प्रपितामह पवित्र करें (पितामहाः, शनायुषा,
 पवित्रेण, मा, पुनन्तु) पिता के पिता शनायु देनेवाले पवित्रे से
 मुझे पवित्र करें (प्रपितामहाः, पुनन्तु) प्रपितामह मुझको अति
 पवित्र आनन्दयुक्त सौ वर्ष की आयुसे पवित्र करें (विश्वं, आयुः,
 व्यश्नवे) इस प्रकार मैं संपूर्ण आयु को पाऊँ ॥ ३७ ॥

अग्न आर्यधेपि पचसु आसुथोर्जनिपञ्च नः ।

आरे वाधस्य दुच्छुनाम् ॥ ३८ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 (अग्ने, आर्यधि, पचसे) हे अग्नि ! तुम आपही आयु मातृकराने-
 वाले कुम्होंको करते हो (नः, इपं, ऊर्जं, आसुव) हमको धान
 आदि भन्न आदही आदिरस दीजिए (आरे दुच्छुनां, वाधस्य)
 दूर स्थित दुष्ट कुम्होंकी समान दुर्जनोको बाधा दो, जिससे हम उन
 के आक्रमणसे बचें ॥ ३८ ॥

पुनन्तु मा देवजगाः पुनन्तु मनसा धियः ।

पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ३९ ॥

इसका वैशाखस ऋ०, अनु० छ०, देवजनशीविश्वभूजगातवेदस
 दे० है । मंत्रार्थ—(देवजगाः, मा, पुनन्तु) देवजगामी भक्तजन
 मुझको पवित्र करें (मनसा, धियः, पुनन्तु) मनसादि बुद्धि
 वा मनको पवित्र करें (विश्वाभूतानि, पुनन्तु) सकल प्राणी
 मुझको पवित्र करें (जातवेदः, मा, पुनीहि) हे अग्नि ! तुम भी
 मुझको पवित्र करो ॥ ३९ ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण दीधत् ।

अग्ने फन्वा क्रतुरर्नु ॥ ४० ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 (देव, अग्ने, दीधत्, शुक्रेण, पवित्रेण, मा, पुनीहि) हे देव

अग्ने ! दीप्तिमान् तुम शुद्ध पवित्रसे अर्घ्य तू शुद्धज्वालि के द्वारा
मुझको पवित्र करो (कर्तुम्, अनु, कृत्वा) हमारे यज्ञको देख-
कर आने उन्नतनादिकर्मोंसे पवित्र करो ॥ ४० ॥

यस्यै पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।

ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

इसका मजापति ऋ० गयात्री छ०, यज्ञाग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, ते, अर्चिषि, अन्तरा, यत्, ब्रह्म, पवित्र, विततं, तेन, मा,
पुनातु) हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालाके मध्यमें जो मयीरूप शुद्ध
यज्ञ विस्तृत है उसके प्रभावसे मुझको पवित्र करो ॥ ४१ ॥

पवमानस्सो अयं नः पवित्रेण विधर्षणिः ।

यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

इसका मजापति० ऋ० गाय० छ०, वायु देवता है । मंत्रार्थ—
(यः, विधर्षिणः, पवमानः, नः, पोता) जो देव किये न किये
को जाननेवाला स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है
(सः, अयं, पवित्रेण, मा, पुनातु) वह आज पवित्रसे मुझे
पवित्र करे ॥ ४२ ॥

उताभ्यान्देव सविताः पवित्रेण सवेन च ।

माम्पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

इसका मजापति० ऋ० गाय० छ०, सूर्य दे० है । मंत्रार्थ—
(देव, सविताः, उताभ्यां, पवित्रेण, न, सवेन, मां, विश्वतः,
पुनीहि) हे देव सवके मेरक ! तुम, दोनोंसे अर्पित शुद्ध करनेवाले
पवित्रके द्वारा और आत्माके द्वारा मुझको सब ओरसे पवित्र करो
क्योंकि—तुम्हारी आज्ञासे यज्ञसिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागायस्यामिमा बृहव्यस्त-

न्वोर्वीनष्टाः । तथा मदन्तस्सघमादेषु वपथे

स्याम एतयो रयिणाम् ॥ ४४ ॥

इसका मजाप० ऋ०, त्रि० छ०, वैश्वदेवी दे० है । मंत्रार्थ—
(देवी, पुनती, वैश्वदेवी, आगता) नानाप्रकारके अवतारोंसे श्रीदा

करनेवाले महानारायणकी शक्ति, पवित्र करती हुई, विश्वभरको
प्रकाशित करनेवाली परानामक प्राप्त हुई (यस्यां, इमाः, बह्व्यः
तन्वः, ननिपृष्टाः) जिसमें दीखने हुए यह बहुतसे शरीरधारी स्तुति
करनेवाले हैं (तथा, सदमाधेषु मद्भन्तः, धयं, रयीणां, पतयः, स्याम)
उस पराशक्तिसे यज्ञम्यानोंमें आनन्द पाते हुए हम धनोंके स्वामी हैं
ये समानाः समनसः पितरों यमराज्ये । तेषां-

ल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ४५ ॥

इसका प्रजा० अ० अनु० छ० पितर दे० है । असंख्य दक्षिण
मुख होकर यजमान एकवार लिये, घृतको जुहूसे अग्निमें होमै ।
मेत्रार्थ- (ये, समानाः, समनसः, पितरः, यमराज्ये) जो जाति-
मर्यादा आदिसे समान सपिण्डपितर यमलोकमें वर्तमान हैं (तेषां
लोकः, स्वधा, नमः, यज्ञः, देवेषु, कल्पताम्) उन पितरोंके लोक
में स्वधा नामक अन्न दृष्टिगोचर हो अथवा स्वधा अन्न और नम-
स्कार प्राप्त हो, पितृयज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओंको तृप्त करनेमें
समर्थ हो ॥ ४५ ॥

ये सममानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः-

तेषां श्रीः श्रीर्नमि कल्पतामस्मिंल्लोके उत श्रीः समाः ॥

इसका प्रजा० अ० अनु० छ०, श्री दे० है । यजमान उपवीती होकर
उत्तरवेदीमें आहुति देय । मेत्रार्थ- (ये, जीवेषु, समानाः, समनसः,
मामकाः, जीवाः) जो प्राणियोंमें समदर्शी मनस्वी हमारे सपिण्ड
पितर हैं (तेषां, श्रीः, अस्मिन्, लोके, शतं, समाः, मयि, कल्पताम्)
उनकी लक्ष्मी इस भूलोकमें सौ वर्ष पर्यन्त सुभक्त रहै ॥ ४६ ॥

देसुती ऽअंशृणवास्पितृणामहन्तेवानामुत मर्त्या
नाम् । ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यद्वरा पि-
तरं मातरं च ॥ ४७ ॥

इसका प्रजा० अ० त्रि० छ०, देवयान पितृयान मार्ग दे० है
दूधका होम करै । मेत्रार्थ- (अहं, मर्त्यानां, देवानां, उत, पितृणां
दे, सुती, अशृणवम्) मैंने मरणधर्मी प्राणियोंके देवताओंके और

पितरोंके गमन करनेयोग्य दो मार्गोंको सुनाहै (यत्, पितरं, च, मातरं, अन्तरा, इदं, एतत् : विद्वं, ताभ्यां, समेति) जो सुलोक और भूलोकके मध्यमें वर्तमान है। यह क्रिपावान् जगत् उन दोनों मार्गोंसे प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥

इदं हविः प्रजननम्मे अस्तु दशवीर्यं सर्वं
गणं स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि
लोकसन्धमणुसनि अग्निः पूजाम्बुलाम्मे क-
रोत्षन्नम्पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, व्यवसानाष्टि०, यजमानाशीः दे० है ।
दूध पियै । मंत्रार्थ--(इदं, प्रजननं, दशवीर्यम्) यह प्रजाको उत्पन्न
करनेवाला तथा दशप्राण और दश इन्द्रियोंको उन्नति देनेवालाहै
(सर्वगणं) । सब अद्वोंको पुष्टिदाता (आत्मसनि) आत्माका प्रसन्न
कर्त्ता (प्रजासनि) प्रजाको उन्नतिदाता (पशुसनि) पशुवृद्धि-
कारी (लोकसनि) लोकमें प्रतिष्ठादायक (अभयसाने) बल-
देकर अमयकरनेवाला (हविः, मे, स्वस्तये, अस्तु) वह हवि मुझ
कल्याणदायक हो (अग्निः, मे, मंतां, बहुला, करोतु) अग्नि
देवतामेरी प्रजाको बहुत करे (अस्मासु, अन्नं, पयः, रेतः, धत्त)
हमारे विषमन्न, दूध और वीर्यको पारण करे ॥ ४८ ॥

उदीरतामघं उत्परास उन्मदयमाः पितरः सो-
म्यासः । असुं य ईयुरवृका क्रतुज्ञास्ते नोवन्तु
पितरो हवेषु ॥ ४९ ॥

इसका शंख अ०, त्रि० छ०, पितर दे० है । पितरोंका उप-
स्थान करै । मंत्रार्थ--(अघरे, उत्त, परासः, उत्तः मध्यमाः, सोम्यासः,
उदीरताम्) इस लोकमें स्थित पितर और परलोकमें स्थित पितर
और मध्यलोकमें स्थित सोमभागी पितर क्रमसे ऊपरके लोकको
प्राप्त हों (ये, असुं, ईयुः, ते, अवृकाः, अतज्ञाः, पितरः, हवेषु,
नः, भवन्तु) जो पितर प्राणरूपको प्राप्त हैं वह शमुरहित होनेसे
निरपेक्ष सत्यके ज्ञाना, स्वाध्यायानिष्ठ पितर आइवानों में हमारी

रक्षा करै ॥ ४९ ॥

अग्निरसो नः पितरो नवंग्वा अयर्वाणो भृगवः
सोम्यासः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि
भद्रे सोमनसे स्याम ॥ ५० ॥

इसका शेष ऋ० वि० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ- (नव-
ग्वा, सोम्यासः, अग्निरसः, अयर्वाणः, भृगवः, नः, पितरः) स्तुति
के योग्य वा नवीनगतिवाले, सोमसम्पादक, अग्निरावंशी अयर्ष
वंशी, भृगुवंशी हमारे पितर अर्थात् जो इससमय पितृलोक धाम
को प्राप्त हुए हैं (तेषां, यज्ञियानां, सुमतौ, भद्रे, सोमनसे, अपि,
वयं, स्याम) उन यज्ञमें पूजनीय पितरोंकी सुन्दर बुद्धिमें तथा
कल्याणकारक सुन्दर मनमें भी हम हों अर्थात् इनकी बुद्धि और
मन हमारा कल्याण करने में लगे ॥ ५० ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽग्निरसोमपृथि
वशिष्टाः । तेभिर्यमः संहराणो हवीष्यु-
षान्नुशङ्गिः प्रतिक्राममेतु ॥ ५१ ॥

इसका शेष ऋ०, नि० घा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ-
(ये, सोम्यासः, वशिष्टाः, नः, पूर्वे, पितरः, सोमपृथि, अग्निरसः)
जिन सोमसम्पादक वशिष्टवंशी हमारे पूर्व पितरोंने सोमपान के
निमित्त देवताओंका आवाहन किया था, वह ही इससमय सोम-
पानके निमित्त आमंत्रित हुए हैं (वयम्, यमः, तेभिः, वशिष्टिः,
संहराणः, प्रतिक्रामं, हवीषि, अतु) सोमकी इच्छावाला पितृ-
पति उन सब पितरोंके सहित प्रसन्न होता हुआ हमारी दौड़ों
हवियोंको यथेष्ट भक्षण करै ॥ ५१ ॥

त्वं सोम प्रचिकित्स मनीषा त्वं राजिष्ठम-
नुनेषि पन्थाम् । तव प्रणीतो पितरो न इन्दो
देवेषु रत्नमभजन्तु धीराः ॥ ५२ ॥

इसका शेष ऋ०, घा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ-
(सोम, त्वं, प्रचिकित्सः) हे सोम ! तुम कान्तियुक्त वाचेतनता-

युक्तहो (त्वं, मनीषा, रजिष्टं, पन्थां, अनुनेपि) तुम अपनी बुद्धि के द्वारा अतिसरल-देवयानमार्गको मास करातेहो (इन्दो, नः, धीराः, पितरः, तव, मणीषी, देवेषु, रत्नम्, अभजन्त) हे सोम ! हमारे धैर्यवान् पितरोंने तुम्हारे आश्रयसे देवताओंमें श्रेष्ठ यज्ञ फलको पायाहै ॥ ५१ ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वं कर्माणि चक्रुः
पवमान धीराः । वन्वन्नवातः परिधीरपौरुहि
वीरेभिरश्वैर्मघवा भवानः ॥ ५२ ॥

इसका शेष श्र०, आर्यां त्रि० छ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—
(पवमान, सोम, नः, धीराः, पितरः, त्वया, कर्माणि, चक्रुः)
हे शुद्ध करनेवाले सोम ! हमारे धीर पितरों ने तुम्हारे द्वारा यज्ञादि कर्मों को किया, इसकारण मार्थना करते हैं कि—(वन्वन्, अवाता, परिधीन, अपौरुहि) इस कर्म में लगेहुए वात आदि के उपद्रवों-से रहित तुम उपद्रवकारियों को दूर करो (वीरेभिः, अश्वैः, नः, मघवा, आभव) वीर अश्वों के द्वारा हमको सब ओर से धन देनेवाले हूजिये ॥ ५२ ॥

त्वयि सोम पितृभिः संविदानोऽनु यायापृथिवी
आततन्ध । तस्मै ते इन्दो हविषा विधेम वृषधे
स्थाम पतयो रयीणाम् ॥ ५३ ॥

इसका शेष श्र०, नि० त्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ—
(सोम, पितृभिः, संविदाना, त्वं, यायापृथिवी, अन्वाततन्ध)
हे सोम पितरोंके साथ सम्वाद करतेहुए तुमने स्वर्ग और पृथिवी को विस्तारित कियाहै (इन्दो, तस्मै, ते, हविषा, विधेम) हे सोम ! उन तुम्हारे अर्थ हविकेद्वारा विधानकरतेहैं (वयं, रयीणां, पतयः, स्थाम) हम घेनोंके स्वामी हैं ॥ ५३ ॥

चिह्नपदः पितर ऊत्यर्वाग्निमावो हव्या चकृमा-
जूपद्यम् । त आगतावसा शन्तमेनाथा श
योररपो देवात ॥ ५४ ॥

इसका अर्घ्यादि पूर्ववत् है । बर्हिपद पितरोंका उपस्थान । मंत्रार्थ (बर्हिपदः, पितरः, ते, कृत्या, अर्वाकु, आगत) हे कुशासनपर विराजमान होनेवाले पितरों ! वह तुम रक्षाके निमित्त कन्याएँ बुद्धिसे समीप आइये (वः, इमा, इव्या, चकृम) तुम्हारे यह हावे हमने संस्कृत किये (आग्रपध्वम्) तुम इनको सेवन करो (अथ, शन्तमेन, अवसा, ना, शंयोः, अरपः, दधात) और परमसुखदायक अन्न से वृष्ट होकर हमको सुख, प्रमय और पापका अभाव धारण करो ५५

आहस्मिपुस्तसुविद्वान् अविस्मि नपातञ्च
विक्रमणञ्च विष्णोः बर्हिपदो ये स्वधया सुतस्य
। भजन्त पितृवस्त इहागमिष्ठाः ॥ ५६ ॥

इसका शंख ऋ०, आपो मि० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ— (अहं, सुविद्वान्, पितृवः, आहस्मिपुस्तसु) मैं कन्याएँ देनेवाले पितरोंको अभिमुख जानता हूँ (विष्णोः, नपातं, च, विक्रमणं, च, ये, बर्हिपदः, पितरः, स्वधया, सुतस्य, पितृवः, भजन्ते, ते, आगमिष्ठाः) व्यापक और अत्युत्तम देवयान मार्गको और अनेक प्रकार के गमनवाले कि—जहाँसे लौटकर आना पड़ता है उस पितृयान मार्गको मैं जानता हूँ जो कुशासनपर बैठनेवाले पितर स्वधा अन्नके साथ अभिपुत सोमपानको सेवन करते हैं वह यहाँ आगमन करें ॥ ५६ ॥

उपहृताः पितरस्सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु
प्रियेषु । त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिभ्रवन्तु
सेवमवस्मान् ॥ ५७ ॥

इसका शंख ऋ०, भुरिगार्पी पंक्ति छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ (पितरः इह, आगमन्तु) हे पितरों इस यज्ञमें आगमन करो, (प्रियेषु, बर्हिष्येषु, निधिषु, उपहृताः, सोम्यासः, ते, श्रुवन्तु) प्रिय कुशाओपर स्थित निधिकी समान स्थापित इवियोंके निमित्त बुलाये हुए जो सोमके योग्य पितर हैं, वह हमारे आवाहनको सुनें (ते, अधिभ्रवन्तु, ते, अवन्तु) वह पितामहोंको पुत्रोंसे जो करना

चाहिये सो करें, वह हमारी रक्षा करें ॥ ५७ ॥

आयन्तु नः पितरस्सोम्यासौग्निष्वात्ताः पृथि-
भिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोभिर्भु-
यन्तु तेवन्तस्मान् ॥ ५८ ॥

इसका शास्त्र ऋ०, स्व० ब्राह्मी गाय० छ०, पितर दे० है । अग्नि-
ष्वात्त पितरोंका उपस्थान करे । मंत्रार्थ—(सोम्यासः, अग्निष्वात्ताः
नः, पितरः, देवयानैः, पृथिभिः, आयन्तु) सामंते योग्य अग्नि
करके स्वादिता हमारे पितर देवयान मागोंसे आँव (अस्मिन्,
यज्ञे, स्वधया, मदन्तः, अभिभुवन्तु, ते, अस्मान्, अवन्तु) इस
यज्ञमें स्वधाताम अन्नसे मसन्न होते हुए मानसिक उपदेश दें और
हमारी रक्षा करें ॥ ५८ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छन्त सदः सदः
सदत सुप्रणीतयः । असा हवीषि प्रयतानि
वृद्धिष्या रूषिषि सर्ववीरन्दधातन ॥ ५९ ॥

इसका शास्त्र ऋ०, नि० ब्रा० अनु० छ०, पितर दे० है मंत्रार्थ—
(अग्निष्वात्ताः, पितरः, इह, आगच्छन्त) हे अग्निष्वात्त, पितरों
हमारे इस यज्ञमें आओ (सुप्रणीतयः, सदः, सदः, सदत) सुन्दर
नीतिवाले हम प्रत्येक सभास्थानमें विराजो (वृद्धिषि, प्रयतानि,
हवीषि, आ, अत) कुशाओंपर नियमसे स्थापित हवियोंको सब
प्रकार से भक्षण करो (अथ, सर्ववीरं, रूषि, आदधातन) और
सकल वीर पुत्रादि तथा धनको सब ओरसे लाकर धापनकरो ५९

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मर्त्ये विवः
स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां
यथावशन्तन्वृकल्पयन्ति ॥ ६० ॥

इसका शास्त्र ऋ०, ब्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ—
(ये, अग्निष्वात्ताः, ये, अनग्निष्वात्ताः, दिवः, मध्ये, स्वधया,
मादयन्ते) जिन पितरोंका विधिपूर्वक अग्निदाह-करके अध्वदै-
हिक कर्म हुआ और जिनका अग्निसे दाह नहीं हुआ है और पु-

लोकमें अपने उत्पन्न कर्मके भागसे प्रसन्न रहते हैं (स्वराट्, तेभ्यः यथावकाशं, पगान, असुनीति, तन्वं, कल्पयाति) स्वर्गपति धर्म-राज उन पितरोंको इच्छानुसार इस मनुष्य-सम्बन्धवाले प्राण युक्त शरीरको देता है, अर्थात् यमकी आज्ञासे उनको स्वकर्मानुसार पवनाश्रित शरीर मिलता है और वह अपने पुत्रादिके शास्त्रोक्त आवाहनमें जाते हैं, उनकेतिमित्र दियाहुआ अन्न विश्वेदेवाओं के द्वारा मूहमभावसे प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्तान्तुमतो हवामहे नाराशंसे
सोमपीथं य आशुः । ते नो विप्रांसः सुहवा भवन्तु
वयं स्याम पतयो रथीणाम् ॥ ६१ ॥

इसका शंख ऋ०, आपीं मि०, छं०, पितरः दे० हैं । मन्त्रार्थ— (अतुमता, अग्निष्वात्तान्, हवामहे) ऋतुमान् अग्निष्वात्त नामक पितरोंको हम चुनाते हैं (ये, नाराशंसे, सोमपीथं, आशुः) जो पितर यमसपात्र में सोमपान को भोजन करते हैं (ते, वि-प्रांसः, नः सुहवाः, भवन्तु) वह वेदाध्ययनसम्पन्न पितर हमारे सुखसे चुनाने योग्य हों (वयं, रथीणां, पतयः, स्याम) हम धनों के स्वामी हों ॥ ६१ ॥

आच्छा जानुं दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिष्टुणीत

विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्तो यष्ट

आगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

इसका शंख ऋ०, नि०, मि०, छं०, पितर देवता है । मन्त्रार्थ— (पितरः, विश्वे, जानुः, आच्छाद्य, दक्षिणतः, निषद्य, इमं यज्ञं, अभिष्टुणीत) हे पितरों ! तुम सब वामजंघाको सवगकार मुका कर दक्षिणमुख बैठकर इस यज्ञकी प्रशंसा करो (केनचित्, नः, मा, हिंसिष्ट) चित्तकी चंचलतावश किसी प्रकारका अपराध होने से हमारे ऊपर क्रोध मत करो (यत्, पुरुषता, वः, आगः, वयं, कराम) क्योंकि—मनुष्य स्वभाववश तुम्हारा अपराध हमसे भूल से बन जाता है, इसको क्षमा करना ॥ ६२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रुचिन्वत्स दाशुपे
मर्त्याय । पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्यः प्रपच्छत
त इहोर्जिन्दधात ॥ ६१ ॥

इसका शास्त्र ऋ०, ग्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ
(पितरः, अरुणीनां, उपस्थे, आसीनासः, दाशुपे, मर्त्याय, रुचिं,
धत्त) हे पितरों ! लालऊनके आसनोंपर वा अरुणवर्ण सूर्यकी
किरणोंमें स्थित सूर्यलोककी गोदमें बैठेहुए हविर्देनेवाले यजमान
को धनदो (पुत्रेभ्यः, तस्य, वसुनः, प्रपच्छत) इसके पुत्रोंको
इसका-धनदो (तो, इह, ऊर्जि, दधात) वह इस यजमानके यज्ञमें
आनन्दरस दें ॥ ६१ ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वच्चिन्मन्यसे रुचिम् ।

तन्नो गीर्भिः श्रुवायन्वेद्यभार्पणया युजम् ॥ ६४ ॥

इसका शास्त्र ऋ०, आपीं अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(कव्यवाहन, अग्ने, त्वं, चित्, यं, रुचिं, मन्यसे) हे पितरोंको
अन्न पहुँचानेवाले अग्ने ! तुम भी जिस हविरूप धनको उत्तम
जानते हो (नः, ॥ गीर्भिः, श्रुवायं, युजं, देवता, आपनय) हमारे
उस वपट्टकार आदि वाणियोंसे सुनेयोग्य उचित हविको देवता-
ओंके अर्थ सब ओरसे पहुँचाओ ॥ ६४ ॥

यो अग्निः कव्यवाहनः पितृभ्यश्च दत्तावृधः ।

प्रेतुं हव्यानि योचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ६५ ॥

इसका ऋ० आदि पूर्ववत् है । मंत्रार्थ—(यः, कव्यवाहनः, अग्निः
दत्तावृधः, पितृभ्यः, यस्तु) जो कव्य पहुँचानेवाला अग्नि सत्य
वा यज्ञको बढ़ानेवाने पितरोंका यजन करताहुआ (उ इत्, देवेभ्यः
च, पितृभ्यः, हव्यानि, आ, योचति) वही अग्नि देवताओंके
और पितरोंके अर्थ हवियोंको सब ओरसे जतलाताहै ॥ ६५ ॥

त्वमग्ने ईडितः कव्यवाहनावाह्यहव्यानि सुर-

भीणि कृत्वा । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्ष-

न्तद्धि त्वन्दैव प्रपता हव्यं धिपि ॥ ६६ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(कव्यबाहन, अग्ने, ईदितः, त्वं, हव्यानि, सुरभीणि, कृत्वी, अ-
वाह) हे कव्य पहुँचानेवाले अग्निदेव ! अर्थात्त्वजोसे स्तुति किये
हुए तुम दैवियोंको मनोहर गन्धयुक्त करके पहुँचाते हो (स्वधया
पितृभ्यः, मादाः) पितृमंत्रोंसे पितरोंको दो (ते, अक्षर) उन
पितरोंने भक्षण किया (देव, त्वं, मयता, हवींषि, अद्भि) हे देव !
तुम शुद्ध दाँवोंको भक्षण करो ॥ ६६ ॥

ये चेतः पितरो ये च नेह पांश्च विद्य यान् उ च न
प्रविद्य । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभि-
र्यज्ञे सुकृतञ्जुपस्य ॥ ६७ ॥

इसका शंख ऋ०, मा० उ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(ये,
पितरः, इह, च, इह, न) जो पितर इस लोकमें हैं जो पितर इस लोकमें
नहीं हैं अर्थात् स्वर्गमें हैं, (च, यान्, विद्यः, च, यान्, न, प्रविद्यः) और
जिन पितरोंको हम जानते हैं, और जिनको स्मरण न होनेसे नहीं
जानते हैं (जातवेदः, ते, यति, त्वम्, उ, वेत्थ) हे अग्ने ! वह
पितर जितने हैं तुम ही जानते हो (स्वधाभिः, सुकृतं, जुपस्य)
पितरोंके यज्ञद्वारा श्रेष्ठ अन्नको सेवन करो ॥ ६७ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्यथ ये पूर्वांसो य उप-
रास ईयुः । ये पार्थिवे रजस्यानिपंक्षा ये चा
नूनं सुवृजनामु विक्षु ॥ ६८ ॥

इसका शंख ऋ०, मा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ—
(अथ, ईदं, नमः, पितृभ्यः, अम्तु) आज यह अन्न पितरोंके नि-
मित्त हो (ये, पूर्वांसः, ये, उ, परासः, ईयुः) जो पहिले स्वर्गमें जा
चुके हैं जो कृतकृत्य होकर परब्रह्मको प्राप्त हुए हैं (ये, पार्थिवे, रजः,
निपंक्षा) जो पृथिवीपर होनेवाली अग्निरूप ज्योतिमें स्थित हैं वा
स्वर्गमें स्थित हैं (ना, ये, नूनं, सुवृजनामु, विक्षु) अथवा जो पितर
अवरण हैं। परमरूप वनयुक्त मन्त्राओं में देह धारण किये
वर्तमान हैं, उन पितरोंके निमित्त हम अन्न देते हैं । अथवा ।

जो (पूर्वासः) यजमानसे पूर्व उत्पन्न ज्येष्ठ आहुतितामहादि (ईयुः) पितृलोकको प्राप्तहुए हों, जो (उपरासः) यजमानका जन्म होनेके उपरान्त उत्पन्न हुए छोटे भ्राता पुत्र आदि पितृलोक को प्राप्तहुए हैं (पार्थिवे, रजसि, आनिपत्ता) रजोगुणकार्यमें हवि स्वीकार करनेको आकर बैठे हैं उनको आहुति देते हैं ॥ ६८ ॥

अथा यथा नः पितरः परासः प्रस्तासौ अग्न

भूतमा शुषाणाः । शुचीदयन्दीधितिस्तृकथशासः

क्षामा भिन्दन्तौ अरुणीरपवन् ॥ ६९ ॥

इसका शंख ऋ०, आ० त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, नः, परासः, प्रस्तासः, अतः, आशुषाणाः, पितरः, यथा अथा, शुचि, दीधिति, इव, अयन्) हे अग्ने ! हमारे उत्तम पुरा-
तन यज्ञको पानेवाले पितर जैसे देहयानाके अनन्तर निर्मलका-
न्तिवाले सूर्यमण्डलरूप देवयानमार्गको ही प्राप्तहुए (उक्थशासः,
क्षामा, भिन्दन्तः, अरुणीः, अपवन्) यज्ञोंमें शस्त्रनामक स्तोत्रोंको
पढ़नेवाले और पृथ्वीको वेदीके निमित्त खोदतेहुए अर्थात् सब सा-
मग्री से यज्ञ करतेहुए हमभी सूर्यसम्बन्धी ज्योतिर्मार्गको पावें ६९

उशन्तस्त्वानिधीमद्युशन्तः समिधीमहि । उश-

न्नुशन्त आषह पितृन्हविषे अत्तवे ॥ ७० ॥

इसका शंख ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (उशन्तः,
त्वा, निधीमहि) हे अग्ने ! तुम्हारी इच्छा करतेहुए हम तुमको
स्थापन करते हैं (उशन्तः, समिधीमहि) यज्ञकी इच्छासे तुमको
प्रज्वलित करते हैं (उशन्तः, उशतः, पितृन्, हविषे, अत्तवे, आषह)
चाहते हुए तुम हवि चाहनेवाले पितरोंको हवि भक्षण करने के
निमित्त बुलाओ ॥ ७० ॥

अपाङ्केनैनं नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः । विश्वा

यदजयः स्पृधः ॥ ७१ ॥

इसका शंख ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ (इन्द्र,
यत्, विश्वाः, स्पृधः, अजयः) हे इन्द्र जब तुमने संपूर्ण संग्राम

जीते (अपां, फेनेन, नमुचेः, शिरः, उद्वर्चयः) तब जलोंके भाग से नमुचि दैत्यका शिर काट अर्थात् पाप रूप नमुचिको मारकर बल धारण किया ॥ ७१ ॥

सोमो राजामृतं स्युत ऋजीपेणाजहान्मृत्युम्
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थं हद्र-
स्येन्द्रियमिदम्योमृतममधु ॥ ७२ ॥

इसके अरिब-सरस्वती-इन्द्र ऋ०, महावृहती छ०, सोम दे० है । यहांसे पयोग्रहका सपस्यानकर । मंत्रार्थ- (सुतः, राजा, सोमः, अमृतम्) अभिपुत वनस्पतियोंका राजा सोम, अमृतरूप होता है (ऋजीपेण, मृत्युं, अजहात्) नीरस स्थूल सोमलगाके चूर्णसे स्थूलभागको त्यागा अर्थात् स्थूलभागको अलग करनेपर यह रस-भाग अमृतरूप है (ऋतेन, सत्यं) इस सत्यवा यज्ञकेद्वारा सत्य-रूप परमात्माको जाना (इन्द्रस्य, इदं, अन्धसः, शुक्रं, इन्द्रियं, विपानं, इन्द्रियं, अमृतं, मधु, पयः) इन्द्रका यह अन्न वा सोम सम्बन्धी शुद्ध वीषिदायक पान बलकारक अजर अमरता देने-वाला मीठा द्रव्य है ॥ ७२ ॥

अज्रपा क्षीरं व्यपिवत्कुड्डीक्षिसो धिया ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थं हद्र-
स्येन्द्रियमिदम्योमृतममधु ॥ ७३ ॥

इसका अर्थ छन्द पूर्ववत् और ग्रह देवता है । मंत्रार्थ- (आक्षिरसः, कुड्, पियः, अज्रपाः, क्षीरं, अपिवत्) अक्षों के रस को प्राण ऐसे पीता है, जैसे हंस बुद्धि के द्वारा जलोंमें से दूध को पीता है (ऋतेन, सत्यं, शेषं पूर्ववत्) इस सत्य से सत्य जानाजाता है, शेष पूर्व मंत्र की समान, जानना ॥ ७३ ॥

सोममज्रपो व्यपिवत्कुड्डीक्षिसो धिया ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थं हद्र-
स्येन्द्रियमिदम्योमृतममधु ॥ ७४ ॥

इसका अर्थ आक्षिरादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ- (शुचिषत्, हंसः, अज्रपाः,

छन्दसा, सोमं, व्यपिबत्) निर्मल आकाश में विचरनेवाले
आदित्य ने जल मिले सोम को जलोंमें से वेद के द्वारा वा किरणों
के द्वारा अलग करके को पिया । शेष पूर्ववत् ॥ ७४ ॥

अश्रात्परिक्षुतो रसम्व्रज्जगता व्यपिबत्स्रजम्पयः

सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं

शुक्रमन्धसु इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७५ ॥

इसका ऋषि अश्वि-सरस्वती-इन्द्र, अतिजगती छन्द, प्रह
देवता है । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, परिक्षुता, अश्रात्, रसं, सोमम्,
पयः, विविक्व, व्यपिबत्) प्रजापति ने परिक्षुत अन्न से रसरूप
सोमरूप दूध को गायत्रीलक्षण से विचारकर पिया (क्षत्रं)
क्षत्रिय को वश में किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशति इन्द्रियम् ।

गर्भो जरायुणा वृत्तं उत्वंजहाति जन्मना । ऋते

न सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धसु इन्द्रस्ये-

न्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७६ ॥

इसका अतिशक्वरी छ० है, ऋषि आदि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—
(इन्द्रियं, योनिं, प्रविशत्, रेतः, मूत्रम्, विजहाति) इन्द्रिय योनि
में प्रवेश करता हुआ वीर्य को छोड़ता है तथा अन्यत्र मूत्र को
त्यागता है, अर्थात् एक ही मार्ग से कार्यवश भिन्न २ वस्तु निक-
लती हैं, इस वीर्य से गर्भस्थिति होती है (जरायुणा, आवृतः,
गर्भः, जन्मना, उत्वं, जहाति) भिन्नी से ढका हुआ वह गर्भ
जन्म लेकर उस भिन्नी को त्याग देता है, तब भूमिपर आता
है । शेष पूर्ववत् ॥ ७६ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अ-

श्रद्धामनृते दधान्छद्धान् सत्ये प्रजापतिः ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धसु

इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७७ ॥

ऋषि आदि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, रूपे, सत्यानृते,

दृष्ट्वा, व्याकरोत्) प्रजापति ने मूर्तिमान् सत् और असत् को देखकर विचारपूर्वक दोनों को पृथक् २ स्थापन किया । (प्रजापतिः, अनृते, अश्रद्धां, अदधात्) उस परमात्मा ने अनृत मिथ्याभाषण में नास्तिकतारूप अश्रद्धा को स्थापन किया (सत्ये, श्रद्धां, अदधात्) सत्य में आस्तिक्यवृद्धिरूप श्रद्धा को स्थापन किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७७ ॥

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । श्रुतेनः

सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थं इन्द्रस्ये-

न्द्रियमिदं पयोमृतम्भुः ॥ ७८ ॥

इसका महाहृती छ०, आप्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, सुतासुते, रूपे, वेदेन, व्यपिबत्) प्रजापति प्रेरित अमेरित धर्मा-धर्मके रूपोंको ज्ञानकेद्वारा अथवा वेदके द्वारा विचारकर पीताहुए अथवा प्रजापतिने सुत असुत दोनों प्रकारके पदार्थोंको अपना भरण जानकर भक्षण किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७८ ॥

वृष्ट्वा परिस्रुतो रसं शुक्रमेण शुक्रं व्यपिबत्

पयः सोमं प्रजापतिः । श्रुतेन सत्यमिन्द्रियं

विपानं शुक्रमन्थं इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयो-

मृतम्भुः ॥ ७९ ॥

इसका अतिजगती छ०, क्र०, दे० पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, परिस्रुतः, रसं, वृष्ट्वा, शुक्रमेण, पयः, सोमं, शुक्रं, व्यपिबत्) प्रजापतिने परिस्रुतके रसको देखकर शुद्ध मंत्रसे दुग्ध और सोमको पवित्र करके पिया अथवा प्रजापतिरूप सूर्यमें परिस्रुतका रस दुग्ध और सोम देखकर ही उसको किरणोंसे स्वच्छ करके पिया । शेष पूर्ववत् । इन मंत्रोंमें सोमकी शुद्धि कही सब ही सोम पीते हैं, क्योंकि—यद्यपि सोम एकलताका नाम है परन्तु अन्न दूध आदि में उसका सार रहता है, उसको ग्रहण करने की रीति कही ॥ ७९ ॥

सीसेन तन्त्रमनसा सनीपिणं ऊर्णसूत्रेण

कुवर्षो वयन्ति । अश्विनां यज्ञं संविता सर-

स्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥ ८० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, जगती छं० देवता पूर्ववत् । अत्र एक २ मंत्रसे दो २ आहुति देय । मन्त्रार्थ—(अश्विना, सविता, सरस्वती, वरुणः, मनीषिणः, कवयः, इन्द्रस्य, रूपं, भिषज्यन्, मनसा, यज्ञं, वयान्ति) अश्विनीकुमार नियन्तादेव सरस्वतीवरुण बुद्धिमान् बीतेहुपको देखनेवाले इन्द्रके रूपको रोगरहित करतेहुए मनसे विचारकर सौत्रामणि यज्ञको सम्पन्न करते हैं (सीसेन, ऊर्णसूत्रेण, तन्मय) सीसे धातुसे अंगदको और ऊनके धूतसे पटको धुते हैं ॥ ८० ॥

तदस्य रूपममृतं शचीभिस्त्रिषो दधुर्देवताः

सरराणाः । लोमानि शर्ष्वे बहुधा न तोक्मभि-

स्त्वगस्य मांसमभयन्त लाजाः ॥ ८१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(तिस्रः, देवताः, सरराणाः, अस्य, तत्, अमृतं, रूपं, शचीभिः, सन्दधुः) दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वती तीनों देवताओंने सम्यक् प्रकार कीड़ा करतेहुए इस इन्द्रके उस मरण धर्मरहित रूपको कर्मके द्वारा सन्धान किया वा एक वाक्य होकर यज्ञका स्वरूप निर्माण किया (अस्य, लोमानि, शर्ष्वे, न, त्वक्, तोक्मभिः, बहुधा, न, लाजाः, मांसं, सम्भवन्) इस इन्द्रके रोमोंको जमेहुए धातोंसे सम्पन्न किया और त्वचाको जमेहुए यवोंसे अनेक प्रकारसे प्रकट किया तथा खीले मांसरूप हुई अर्थात् मांसको पुष्ट किया [इस अध्यायमें यहाँसे समाप्तिपर्यन्त गकार चकारका अर्थ देता है] ॥ ८१ ॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्त्तनी सरस्वती वयन्ति

पेशो अन्तरम् । अस्थिं मज्जानं मांसैः कारो-

ः तुरेण दधतो गंधान्त्वचि ॥ ८२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(गवां, त्वचि, दधतुः) पृथ्वीकी त्वचा कहिये गह्वीके पकेहुए पात्रमें सोमको स्थापन करतेहुए (रुद्र वर्त्तनी) रुद्रकी समान मार्गवाले (भिषजा, अश्विनी) गैद्य अश्विनी

कुमार (सरस्वती) वाग्देवी (अन्तरं, पेशः, वयति) शरीरान्त
वर्ती इन्द्रके रूपको परिपूर्ण करते हैं (मासरैः, अस्थि, न, कारो-
तरेण, मज्जानम्) शृङ्गादिचूर्णमयचरुके टपकावसे हड्डियोंको
और गलनबद्धसे मज्जामाको पूर्ण करते हैं ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसुना संत्पाभ्या
वयति दर्शतं वपुः । रसं परिश्रुता न रोहितन्न-
ग्नमुर्दीरस्तसंन्न वेमं ॥ ८३ ॥

शृङ्गादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(नासत्याभ्यां, सरस्वती, मनसा,
पेशलं, वसु, दर्शतं, वपुः, वयति) अश्विनीकुमारोंके साथ सरस्वती
मन से विचारकर इन्द्रके सुपर्ण और रजतरूप धगको तथा दर्शनीय
रूपका उत्पन्न करते हैं (न, परिश्रुता, रोहितं) और परिश्रुत
सुरारससे रुधिरको इन्द्रके शरीर रज्जनके निमित्त पूर्ण किया, अत
एव इन्द्रको वेदमें रोहित नामसे कहा है (धीरः, नग्नदुः, रसं,
न, तारसं, वेम) छुट्टिको मरेणा करनेवाले सर्जको छालसे रसको
पूर्ण किया और तसराका साधन बुननेका दण्ड हुआ ॥ ८३ ॥

पयसा शुक्रममृतं जनित्रं सुरया सूत्राज्जनय-
न्त रेतः । अपामंतिन्दुर्मतिं स्वाधमाना ऊर्ध्वदधं

वातं सव्वन्तद्वारात् ॥ ८४ ॥

शृङ्गादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(पयसा, शुक्रं, अमृतं, जनित्रं,
रेतः, जनयन्त) तीनों देवताओंने निर्मल दूधके भागसे निर्मल
अमृतरूप जननशील धीर्यको उत्पन्न किया (आरात्, अमर्ति,
दुर्मति, बाधमानाः, तत्, ऊर्ध्वं, वातं, सव्वं, सुरया, अपमूत्रात्)
समीप में स्थित होकर अज्ञान और दुर्मति को बाधा देते हुए उस
आमाशयमें अन्नको नाड़ीमें प्राप्त अन्न और पक्वाशयमेंके अन्न
को सुरारससे कल्पितकर मूत्रसे मूत्रको कल्पित करते हुए ॥ ८४ ॥

इन्द्रः सुधामा हृदयेण सत्यम् पुरोडाशेन सविता
जंजान । यकृत्फलोमानं वरुणो भिषज्यन्मतं स्ते
वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥

शृण्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(सुत्रामा, इन्द्रः, हृदयेन) भलो प्रकार रसक पुरोडाशका अधिष्ठात्री देवता इन्द्र हृदयसे हृदयको प्रकट करताहै (सविता, पुरोडाशेन, सत्यम्, जनान) सविताने पुरोडाशसे इन्द्रके सत्यको उत्पन्न किया (वरुणः, विपज्यन्, यकुत्, क्लोमानम्) वरुणने चिकित्सा करतेहुए हृदयको बाई ओर स्थित मांसपिंडरूप तिल्लीको और गलेकी नाड़ी को मगट किया (वायव्यैः, मातस्ते, न, पित्तं, मिनासि) सोम सम्बन्धी ऊर्ध्व पात्रोसे हृदयकी दोनों ओरकी हड्डियों और पित्तको कश्चित्त किया ॥ ८५ ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधुः पिन्वमाना गुदाः पा-
त्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रं प्लीहा
शचीभिरामन्दीनाभिरुदरम् माता ॥ ८६ ॥

शृण्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(मधुः, पिन्वानाः, स्थालीः, आन्त्राणि, सुदुघा, धेनुः, न, पात्राणि, गुदाः) मधुसिक्त सकल स्थाली आँतके स्थानमें हुई, भलेप्रकार दूध देनेवाली आदित्य इष्टि और पात्र गुदास्थानापत्र हुए (न, श्येनस्य, पत्रं, प्लीहा) श्येनका पंख हृदयका वामभागहुआ (न, माता, आसन्दी, शचीभिः, नाभिः, उदरम्) और माता स्थान आसन्दी “चौकी” कमोके द्वारा नाभि स्थान और उदररूप हुई ॥ ८६ ॥

कुम्भी पन्निष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे यो-
स्याक्वर्भो अन्तः । प्लाशिर्यक्तः शतधरि वत्सो
बुद्धेन कुम्भी स्वधाम्पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

शृण्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(जनिता, कुम्भः, शचीभिः, पन्निष्ठः, जनिता) रसका साधन घड़े कमों करके स्थूल आँतको उत्पन्न करताहै (यस्मिन्, योन्याम्, अन्तः, अग्रे, गर्भः, शतधरः, वत्सः व्यक्तः, प्लाशिर्यक्तः, न, कुम्भी, पितृभ्यः, स्वधा, दुहे) जिस कुम्भरूप योनिके भीतर प्रथम सोमरूप गर्भ स्थितहुआ कृपतुल्य घट स्पष्ट जननेन्द्रिय हुआ और सुराधानीपात्र ने पितरों के निमित्त स्वधा

अन्तको मकट किया ॥ ८७ ॥

मुखं सदैव शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रं-
मश्विना सन्तसरस्वती । चप्यन्न पायुर्भिपगस्य ।

घालो वस्तिर्न शेषो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(सत्, अस्य, मुखं, 'सतेन, इत्', शिरः) सत् नामक पात्र इस इन्द्रका मुख हुआ, उसही पात्रसे शिरकी चिकित्सा हुई (पवित्रं, जिह्वा) पवित्र जिह्वा सम्पादक हुआ (अश्विना, सरस्वती, आसन्) अग्निनीकुमार और सरस्वती मुखमें स्थित हुए (न, चप्यं, पायुः) और चप्य पायु इन्द्रिय हुई (बालः, अस्य, भिपक्) रसको छाननेका बख इसकी चिकित्सा हुई (वस्तिः, न, हरसा, तरस्वी, शेषः) गुदा तथा वेगसे वीर्यवान् पुरुषकी जननेन्द्रिय हुई ॥ ८८ ॥

अग्निभ्याञ्चक्षुर्मृतृद्ग्राभ्याञ्छानेन तेजो ह-
विषा शृतेन । पक्ष्माणि गोधूमैः कुबलैरुतानि
पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ८९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(अश्विभ्यां, ग्रहाभ्यां, अमृतं, चक्षुः) अश्विनीकुमार देवतावाले ग्रहों के द्वारा अविनाशी नेत्र कल्पित हुआ (क्षाणेन, शृतेन, हविषा, तेजः) बकरी के दूध में पकेहुए हवि के द्वारा चक्षु का तेज कल्पित हुआ (गोधूमैः, प-
क्ष्माणि) गेहूँओं से नेत्रों के बीच के लोम (कुबलैः, उतानि) बरों से नेत्रों के ऊपर के लोम कल्पित हुए (शुक्रं, न, असितं, पेशः, वसाते) जो स्वेत और कृष्णरूप को अर्थात् नेत्रों में की सफेदी और कालिमा को दफते हैं ॥ ८९ ॥

अजिनं मेपो नृसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो
ग्रहाभ्याम् । सरस्वत्युपवाकैर्व्यानन्नस्यानि वृद्धि-
र्धदैर्जजान ॥ ९० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(आविः, न, मेपः, नासै, वीर्याय) भेड़ और भेड़ा नासिकामें बलका कारण हुए (ग्रहाभ्यां, प्राण-

स्य, पन्थाः, अमृतः) सरस्वती सम्बन्धी ग्रहोकेद्वारा प्राणनायका
मार्ग अभिनाशी हुआ (सरस्वती, उपवाकैः, व्यानं, जज्ञात)
सरस्वती देवी ने जो के अंकुरों से व्यानवायु को मकट किया
(मदरैः, बर्हिः, नस्यानि) वेरों के द्वारा कुशा नासिका के लोम
हुई, अर्थात् इनकी उपयोगी क्रियाओं से बल मकट किया गया,
जिससे इन्द्र तेजस्वी हुआ ॥ ९० ॥

इन्द्रस्य रूपमृपभो बलाय कर्णाभ्यां ओत्रंम-
मृतहृद्भाभ्याम् । यथा न बर्हिभ्रुवि केसराणि
कर्कन्धुजज्ञे मधु सारघम्मुखात् ॥ ९१ ॥

श्रुत्यादि पूर्ववत् । (बलाय, इन्द्रस्य, रूपं, मृपभः) बलके
निमित्त इन्द्रका रूप अष्ट किया (कर्णाभ्यां, ग्रहाभ्यां, ओत्रं)
श्रोत्रसम्बन्धी ग्रहोके द्वारा शिकाकेशब्दको सम्पन्न करनेवाली
श्रोत्र इन्द्रिय सम्पादित हुई (यवाः, न, बर्हिः, भ्रुवि, केसराणि)
जो और कुशा मौके बालोंको सम्पन्न करनेवाले हुए (मृत्वात्,
कर्कन्धु, सारघं, मधु, जज्ञे) मुखसे वेरकी समान मधुमात्रिका
सम्बन्धी शहदकी समान लारश्लेष्मा आदि मकट हुआ ॥ ९१ ॥

आत्मन्नुपधे न टकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न
व्याघ्रलोम । केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा
सिद्धस्य लोम त्विपिरिन्द्रियाणि ॥ ९२ ॥

श्रुत्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(आत्मन्, उपधे, न, लोम,
टकस्य) अपने शरीरमें उपस्थ और अधोभागके रोम टकलोम
से कलित हुए (न, मुखे, श्मश्रूणि, व्याघ्रलोम) और मुखपर
जो दाढ़ीमूँछोंके बाल हैं वह व्याघ्रलोमसे कलित हुए (न, शी-
र्षम्, यशसे, केशाः, श्रियै) और शिरमें यशके निमित्त जो बाल
हैं शोभाके निमित्त हैं (शिखा, त्विपिः) शिखा कान्ति है (इ-
न्द्रियाणि सिद्धस्य, लोम) जो इन्द्रिय हैं सो सब सिद्धके रोम हैं ॥

अहान्यात्मन्निपजा तद्विचिन्तात्मानमंगैः समं-
धात्सरस्वती । इन्द्रस्य रूपं जलमानमायुश्च-

न्द्रेण ज्योतिरमृतन्दधानाः ॥ ९३ ॥

अध्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(इन्द्रस्य, रूपं, शतमानं, आयुः, चन्द्रेण, ज्योतिः, अमृतं, दधानाः) इन्द्रके रूपको और सैकड़ों पुरुषोंसे पूजनीय वा सौवर्ष वा पूर्ण आयुको प्रसन्नतादायक चन्द्र सम्बन्धी ज्योतिके द्वारा अविनाशी सम्पादन करतेहुए (भिषजा, अश्विना, आत्मन्, अङ्गानि) धिकित्सक अश्विनी कुमारोंने शरीरमें अङ्गोंको संयुक्त किया (सरस्वती, तत्, अत्मानं, अङ्गैः, समधात्) और सरस्वतीने उस शरीरकी अवयवों द्वारा सन्धान किया अर्थात् अश्विनीकुमार और सरस्वतीने पूर्वोक्त विधिसे अङ्गों के द्वारा इस यज्ञशरीरको सम्पादन किया इसके द्वारा इन्द्र [यजमान] को सुखमय जीवन और अमृतत्व प्राप्त होताहै ॥ ९३ ॥

सरस्वती योन्यां भूमन्तश्चिभ्यां पत्नीं सुकृतं
तन्विभर्ति । अपां रसेन वरुणो न साम्ना-
न्द्रं धियै जनयन्नुत्सु राजा ॥ ९४ ॥

अध्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ (सरस्वती, अश्विभ्यां, पत्नी, गर्भ, सुकृतं, योन्यां, अन्तः, विभर्ति) सरस्वती देवी अश्विनीकुमारके पत्नीत्वको स्वीकार करतीहुई इन्द्ररूप गर्भको सम्यक्प्रकारसे योनि के भीतर धारण करतीहै (न, अप्सु, राजा, वरुणः, अपां, रसेन, साम्ना, धियै, इन्द्र, जनयन्) और जलोंका देवता राजा वरुण जलोंके सारभूत रसके द्वारा सामके प्रभावसे जलकी शोभा रूप वा ऐश्वर्यके निमित्त इन्द्रको जननकी समान पोषण करताहै अथवा पत्नी सरस्वती इसको धारण करतीहै, अश्विनीकुमारोंके द्वारा वरुण इस इन्द्रका पोषण करतेहैं [यहां इन्द्रपदसे ऐश्वर्य-यान् यज्ञका वर्णन है, वाष्पीहि सरस्वतीहै, जिस वेदवाणीमें यह यज्ञ स्थापित होताहै धूलोक और भूमिके अधिष्ठात्री देवता इसको स्थापन करते हैं अथवा अहोरात्र स्थापकहैं ॥ ९४ ॥

तेजः पशूनां हि विरिन्दियावत्पन्निभुता पर्यसा
साग्धम्मथु । अश्विभ्यान्दुग्धमिषजा सरस्वत्या

सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥ ९५ ॥

ऋष्यादे पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—मिषजा, अश्विभ्यां सरस्वत्या, इन्द्रियावत्, पशूनां, सारथं, मधु, हविः, परियुक्ता, पयसा, तेजः, दुग्धम्) चिकित्सा करनेवाले अश्विनोक्तुमार और सरस्वतीने घीर्यवान् पशुमम्बन्धी। दुग्ध घृत और मधुमाक्षिकाओंके घनाप शहदरूप हविको लेकर परिस्रुत् किये दूधसे इन्द्रके निमित्त तेज को दुहा (सुतासुताभ्यां, अमृतः, इन्द्रः, सोमः) सुत असुत दुग्ध से अमृतरूप ऐश्वर्यदायक सोमको निकाला, इसप्रकार अश्विनी कुमार और सरस्वती आदि ने अनेकों द्रव्योंसे रस छेकर इन्द्रका उपकार किया ॥ ९५ ॥

इति श्री यशवेदान्तगर्त माध्यन्दिनीय शाखाका मापाववादे संहित
एकोनविंश अध्याय समाप्तः ।

अथ विंशोऽध्यायः ।

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्ये नाभि रसि । मां रथां
हिंसीन्मां मा हिंसीः ॥ १ ॥

इसमें १ मं० है। दोनोंका प्रजापति ऋ०, १ का द्विपदा विराट्
गा० २का मा० गा० छ०, १का आसन्दी २का कृष्णाजिन दे० है। इसको
पढ़ताहुआ चौकीके दो पायेदक्षिणवेदी पर और दो उत्तरवेदी पर
रखे। मन्त्रार्थ—(क्षत्रस्य, योनिः, असि) हे आसन्दी ! तुम क्षत्रिय
जातिकी राजपदवी की उत्पत्तिस्यन्त हो (क्षत्रस्य, नाभिः, असि)
तुम क्षत्रिय जातिकी नामि अर्थात् एकताके बन्धनकी निदान हो ।
फिर चौकी पर मृगचर्म बिछावै (त्वा, मा, हिंसीः) हे कृष्णाजिन
आसन्दी तुमको पीडा न देय (मा, मां, हिंसीः) तुम मुझको
पीडा मत दो ॥ १ ॥

निर्पसाद घृतघृतो वरुणः पस्त्यास्त्वा । साधो-

ज्याय सुक्रतुः । मृत्यो पाहि विद्योत्पाहि ॥ २ ॥

इसमें २ मं० है। तीनोंका प्रजापति देवता आर्ची उष्टिण्क छ०

यजमान दे० है । यजमान बैठे । १ मंत्रकी व्याख्या अ० १० मंत्र २७ में होगई, भावार्थ यह है कि—हे यजमान ! तुम इसपर बैठने के फलसे दण्ड पुरस्कारके द्वारा देशके अनिष्टको दूर करनेवाले न्यायपरायण और राजकार्यमें चतुर होकर प्रजाओंपर सत्र'दण्ड को तानेमें समर्थ हूजिये । फिर यजमान वामचरणके नीचे नाँदी का मण्डलाकार रुक्मभूषण रखै (मृत्योः, पाहि) हे रुक्म अकाल मृत्युसे मेरी रक्षा करो । फिर दाहिने चरणके नीचे सुवर्ण का रुक्म रखै (विद्योः, पाहि) हे रुक्म ! विजलीके उत्पात से मेरी रक्षा करो ॥ २ ॥

देवस्य त्वां सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिपिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्याया अनाथायाभिपिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय भियै यशसेऽभिपिञ्चामि ॥ ३ ॥

इसमें १ मं० है । तीनोंका अश्विनौ अ०, १ का माजापत्या अ० १।२ का आर्वागाय० अ०, सबका लि० दे० है। अध्वर्यु यजमानका अभिषेक करावै । मन्त्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, वाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, अश्विनोः, भैषज्येन, तेजसे, ब्रह्मवर्चसाय स्वा, अभिपिञ्चामि) हे यजमान ! सविता देवताकी आज्ञा होने पर अश्विनीकुमारकी भुजा और पूषा देवताके हाथोंसे तथा अश्विनीकुमारकी चिकित्साके द्वारा कान्ति और ब्रह्मतेजके निमित्त तुम्हें अभिषेक कराता हूँ । सरस्वत्यै, भैषज्येन, वीर्याय, अनाथाय अभिपिञ्चामि) सरस्वती करके सम्पादन की हुई औषधिसे पराक्रम और अन्नभक्षणकी सामर्थ्य के निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूँ । (इन्द्रस्य, ऐन्द्रियेण, बलाय, भियै, यशसे, अभिपिञ्चामि) इन्द्रकी इन्द्रियशक्ति की सामर्थ्यसे बल समृद्धि और यशकी प्राप्ति के निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूँ ॥ ३ ॥

कोसि कतुमोसि कस्मै त्वा कार्यं त्वा । सुश्लोः

कुसुमं गल सत्पराजन् ॥ ४ ॥

इसमें २ मंत्र हैं। दोनोंका प्रजा० ऋ०, १ का प्राजा० गा० २ का उष्टिरागर्भा प्राजा० गा० छ०, दे० दोनोंका यजमान है। अर्धव्यु यजमानको स्पर्श करै। मंत्रार्थ—(कः, असि) हे यजमान ! तुम कौन प्रजापति हो (कतमः, असि) बहुगोंमें कौनसे हो (कस्मै, त्वा) प्रजापति पदकी प्राप्तिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ (काय, त्वा) प्रजापतिकी प्राप्तिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ, अर्थात् तुम कौन प्रधान पुरुष हो, तुमने किस देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है, क देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है, क देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है। फिर यजमान नामस्मरण करै। (सुश्लोक, सुमङ्गल, सत्पराजन्) हे सुन्दर कीर्तिवाले, हे श्रेष्ठमङ्गलमय, हे सत्पराज्यके गभो आह्वय ॥ ४ ॥

शिरों मे श्रीर्यशो सुखन्तिवपिः केशाश्च
इमश्नुणि । राजा मे प्राणो अमृतं सन्नाट
चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ० इन्द्रशरीरावय दे० है। यहाँ से ५ मंत्र पढ़कर यजमान अपने शरीरको स्पर्श करै। मंत्रार्थ (शिरः, श्रीः) मेरा शिर ब्रह्मतेजसे शोभायुक्त हो (सुखं, यशः) सुख वेदपाठसे यशःस्वरूप हो (केशाः, च श्मश्रूणि, त्विपिः,) शिर के बाल ढाढ़ीभूँहृदयमे ब्रह्माग्निके प्रकाशसे कान्तिरूप हो (राजा, मे, प्राणाः, अमृतम्) तेजस्वी मेरा प्राण समाधि लाभसे अमृत हो (चक्षुः, सन्नाट) चक्षु इन्द्रिय दिव्य दृष्टि पानेसे सुशोभित हो (श्रोत्रं, विराट्) दूरश्रवणकी शक्तिसे श्रोत्रेन्द्रिय विशेष विराजमान हो ॥ ५ ॥

जिह्वा मे भद्रं बाह्महो मनो मन्युः स्वराड् ।

भामः सोदाः प्रमोदा अंगुलीरंगानि त्रिचम्पे सहः ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(मे, जिह्वा, भद्रम्) मेरी जीभ कल्याणरूप हो (बाक्, महः) बाणी वैदिक सिद्धान्तको कहनेसे

पूजित हो (मनः, मन्युः) मन अहं ब्रह्मास्मि के उच्चारणसे अहं
भावयुक्त हो (मामः, स्वराट्) क्रोध अपनी मर्षादामें विराजमान
हो (अहुलयः, मोदाः) अहुलिये करन्याससे आनन्दरूप हों,
(अह्मनि, प्रमोदाः) अह्म अह्न्याससे परमानन्दरूप हों (मे,
मित्रं, सहः) मेरे मित्र शत्रुनाशक हों ॥ ६ ॥

बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्मवीर्यम् ।

आत्मा चक्षुशो मम ॥ ७ ॥

इसका प्रज्ञा० ऋ०, गाय० छं० देवता पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(मे
बाहू, इन्द्रियं, बलम्) मेरी दोनों भुजा इंद्रिय बलिष्ठ हों (हस्तौ,
कर्मवीर्यम्) मेरे दोनों हाथ देवार्चनादि करनेमें समर्थ हों (मम,
आत्मा, उदरः, चक्षुः) मेरा अन्तरात्मा हृदय भी संसारसे रक्षा
करेवाला हो ॥ ७ ॥

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरं शिरां ग्रीवाश्च श्रोणी ।

ऊरु अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सूर्यतः ॥ ८ ॥

इसका प्रज्ञा० ऋ०, नि० अनु० छं०, देवता पूर्ववत् है । मंत्रार्थ
(मे, पृष्ठीः, राष्ट्रम्) मेरा वृष्टदेश सबको धारण करनेवाले
राष्ट्रको समान हो (उदरं, अंसौ, ग्रीवा, ऊरु, अरत्नी, श्रोणी,
जानुनी, च, सर्वता, अह्मनि, मे, विशः) पेट, कंधे, गरदन,
दोनों ऊरु, हाथ, दोनों ओर का कटिभाग दो जंघा और सब
अंग मेरे प्रज्ञासमान पोषणीय हों अर्थात् राष्ट्ररूप शरीरमें यह
सब अंग निरुपद्रवहों ॥ ८ ॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मैऽपचितिर्भसत् ।

आनन्दनन्दावाण्डौ मे भ्रगः सौभाग्यम्पसे ।

जंघाभ्याम्पुद्गलान्धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ९

इसका प्रज्ञा० अ०, नि० जगती छं०, पूर्ववत् दे० है मंत्रार्थ—
(मे, नाभिः, चित्तं) मेरी नाभि भगवान् के ध्यानसे ज्ञानमय हो
(मे, पायुः, विज्ञानम्) मेरी पायु इंद्रिय ज्ञानजनित संस्कारका
आधार हो (भसत्, अपचितिः) मेरी स्त्री की योनि सन्तानको

उत्पन्न करनेमें समर्थ हो (मे; अणदौ, आनन्दनन्दौ) मेरे अणद-
कोश आनन्दसे समृद्ध हो (गसः, भगः, सौभाग्यम्) मेरी जन-
नेन्द्रिय योगैश्वर्य और योगसम्पत्तिसम्पन्न हो (जंघाम्यां, प्रज्जयां
धर्मः, अस्मि) जंघा और चरणोंसे धर्मरूप होऊँ, नकि-विषयासक्त
(विशि, गतिष्ठिगः, राजा) गजाओंमें गतिष्ठित राजा हूँ ॥ ९ ॥

गति क्षुत्रे गतिं तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यक्षेषु गतिं
तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु गतिं तिष्ठाम्यात्मनः प्रति
गणेषु गतिं तिष्ठामि पुष्टे प्रति धावापृथिव्योः
गतिं तिष्ठामि युद्धे ॥ १० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अतिशकरी छ०, विश्वेदेवा दे० है ।
चौकीसे नीचे बिछे मृगछालापर उतरा मंत्रार्थ—(क्षत्रे, गति, तिष्ठामि)
मैं क्षत्रियजातिमें गतिष्ठित होता हूँ (राष्ट्रे, गति) राष्ट्रमें गतिष्ठित
होता हूँ (अक्षेषु, गति) घोड़ोंमें आधिपत्य पाता हूँ (गोषु,
गति) गौओंके विषयमें आधिपत्य पाता हूँ (अङ्गेषु, गति) शरीर
के अयस्त्रयोंमें गतिष्ठा पाता हूँ (आत्मनः, गति) आरोग्यतासे
चित्तमें गतिष्ठित होता हूँ (गणेषु, गति) गणोंमें प्र० को पाता
हूँ (पुष्टे, गति) धनसम्पत्तिमें प्र० को पाता हूँ (धावापृथिव्योः,
गतिष्ठामि) स्वर्ग और भूनाकली गति० को पाता हूँ (युद्धे,
गतिष्ठामि) युद्धके विषयमें गतिष्ठित होता हूँ ॥ १० ॥

त्रया देवा एकादश अयस्त्रिंशः सुराधंसः ।

वृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा

देवैरवन्तु मा ॥ ११ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, व्यवसानापंक्ति छ०, विश्वेदेवा दे० है ।
ग्रहहोम करे । मंत्रार्थ—(सुराधंसः, वृहस्पतिपुरोहिताः, त्रया,
एकादश, देवाः, अयस्त्रिंशः, देवाः, सवितुः, देवस्य, सवे, देवैः,
मा, अवन्तु) सुन्दर धनवाले वृहस्पति है पुरोहित जिनका ऐसे
प्रज्ञा विष्णु शिव तीनों देवता, ग्यारह देवता, तैंतीस देवता अथवा
ग्यारहके निगुने तैंतीस देवता सबके प्रेरक देवताकी आज्ञामें वर्त्त-

मान देवताओंके साथ वा ब्रह्मादिके साथ मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥

प्रथमा द्वितीयैर्दिवृतीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन
सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजुषि सामभिस्सामा-
न्यग्भिर्ऋचः पुरोनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या
याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभि
राहुतपो मे कामान्तसमर्द्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, भृ०, वि० दे० है । मंत्रार्थ-
(प्रथमाः, द्वितीयैः) पहिले कहे हुए वसु देवता दूसरे रुद्र देवता-
ओंसे मिलकर मेरी रक्षा करें (द्वितीयाः, तृतीयैः) दूसरे तीसरे
के साथ (तृतीयाः, सत्येन) तीसरे आदित्य देवता सत्यरूप ब्रह्म
के साथ (सत्यं, यज्ञेन) ब्रह्म यज्ञके साथ (यज्ञः, यजुर्भिः) यज्ञ
यजुर्वेदके मंत्रोंके साथ (यजुषि, सामभिः) यजु साममंत्रोंके साथ
(सामानि, ऋग्भिः) साम ऋचाओंके साथ (ऋचः, पुरोऽनु
वाक्याभिः) ऋचाएं पुरोऽनुवाक्य मंत्रोंके साथ (पुरोनुवाक्याः
याज्याभिः) पुरोनुवाक्य याज्य मंत्रोंके साथ (याज्याः, वषट्कारैः)
याज्य हविः समर्पणके मंत्रोंके साथ (वषट्काराः, आहुतिभिः)
वषट्कार आहुतियोंके साथ (आहुतयः, मे, कामान्, समर्द्धयन्तु)
आहुतियों मेरी कामनाओंको पूर्ण करें (भूः, स्वाहा) भुवन्को
भलेमकार दी हुई आहुति स्वीकृत हो ॥ १२ ॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् न आनतिरागतिः ।

मांसस्य उपनातवैस्वस्थि मज्जा न आनतिः ॥ १३ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, नि० दे० है । यजमान
ग्रहणको भक्षण करें । मंत्रार्थ-; मम, लोमानि, प्रयतिः) मेरे
सम्पूर्ण शरीर विशाल हों (मे, त्वङ्, आनतिः, आगतिः) मेरी
त्वचा ऐसी हो कि—जिसको सब झुककर गणामें करें और सब
समोप आँवें (मे, मांस, उपनतिः) मेरा मांस मांसियोंको नम-
स्कार करानेवाला हो (अस्थि, वसु) मेरी हड्डियाँ धनरूप हों
(मे, मज्जा, आनतिः) मेरी मज्जा हड्डीके भीतरका भाग जगत्

को नमन करानेवाला हो, अर्थात् मेरे शरीरमेंकी सातोधातु जागृत को बशमें कर सकें ॥ १३ ॥

यद्देवा देवहेडनन्देवासश्चक्रमा व्रयम् । अग्नि-

र्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वथैहसः ॥ १४ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मातरकुंभ को जनमें तैराचै । मंत्रार्थ—(देवाः, देवासः, वयं, यत्, देवहेडनं, आचक्रम, तस्मात्, एनसः, विश्वात्, अहंसः, अग्निः, मा, मुञ्चतु) हे प्रकाशवान् देवताओं ! हमसे जो देवताओंका अपराध हुआ हो उस पापसे और सकल विघ्नरूप पापोंसे अग्नि देवता मुझे मुक्त करे ॥ १४ ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनासि चक्रमा व्रयम् ।

वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वथैहसः ॥ १५ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, वायु दे० है । मंत्रार्थ—(वयं यदि, दिवा, यदि, नक्तं, एनासि, आचक्रम, वायुः, तस्मान्, एनसः विश्वात्, अहंसः, मा, मुञ्चतु) हमने यदि दिनमें और यदि रात में जो पाप किये हों वायु देवता उस पापसे तथा सम्पूर्ण पापोंसे मेरी रक्षा करे ॥ १५ ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनासि चक्रमा व्रयम् ।

सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वथैहसः ॥ १६ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, सूर्य दे० है । मंत्रार्थ (वयं, यदि, जाग्रत्, यदि, स्वप्ने, एनासि, आचक्रम, सूर्यः, तस्मात्, एनसः विश्वात्, अहंसः, मा, मुञ्चतु) हमने यदि जागते में यदि सोतेमें कुछ पाप किये हैं सूर्य देवता उस सब पापसे और सकल पापोंसे मुझको मुक्त करे ॥ १६ ॥

यद ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।

यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चक्रमा व्रयं यदेकस्याधिधर्माणि

तस्यावयवजनमसि ॥ १७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, नि० अनु० छ०, लिङ्गोक्त दे० है मंत्रार्थ

(यत्, ग्रामे, यत्, अरण्ये, यत्, सभायां, यत्, इन्द्रिये, यत्, शूद्रे, यत् अर्थे, यत्, एतः, वयं, चकम) जो ग्राममें, जो वनमें वृक्ष-च्छेदनरूप, जो सभामें असत्यभाषण आदि, जो सकल इन्द्रियों से परदोषकथन परनारीदर्शनादि वा जो देवताओंमें, जो दास-वर्गमें, जो वैश्योंमें जो पाप हमने किया है (यत्, एकस्य, अधि-धर्मणि, आचकम) जो पाप पत्नीसहित यजमानके एककर्म में किया है (तस्य, अवयजनं, असि) उस सब पापको हे देवताओं वा कुम्भके हे अधिष्ठात्री देवता निवारण करनेवाले हो ॥ १७ ॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुःसि निचुम्पुणः । अव, देवैर्वैवकृतमेनोऽयक्ष्यं न मर्त्यै-र्मर्त्यैकृतम्पुरुषाणां देव रिपस्पाहि ॥ १८ ॥

इसका मजा० अ०, अनु० अं०, लिङ्गोक्त दे० है । वरुण की मार्यता मंत्रार्थ—(वरुण, यत्, आपः, अघ्न्या, इति, शपामहे, वरुण, ततः, नः, मुञ्च) हे वरुण । जो जल स्वच्छ रखनेयोग्य हैं वा जो सोमलता काटनेयोग्य नहीं है उसको हमने जो आभि-सुत आदि किया है, हे, वरुण उस पापसे हमको मुक्त करो । कुम्भको जलमें डुबोवे । (निचुम्पुण, अवभृथ, निचेरुः, असि) हे मन्दगति जलाशय ! अवभृथ ! यद्यपि तुम अतिगमनशील हो (निचुम्पुण) तो भी मन्दगति होजाओ (देवैः, देवकृतं, एतः, अवयसि) क्योंकि मैंने ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा जानकर हविके स्वामी देवताओंका जो कुछ अपराध किया है वह इस जलाशयमें दूर किया (मर्त्यैः, मर्त्यैकृतं, अव) हमारे सहायक ऋत्विजों करके यहका दर्शन करनेको आयेहुए मनुष्योंकी अवधारूप जो पाप मना वह हमने इस जलमें नष्ट करादिया (देव, पुरुषाणां, रिपः, पाहि) हे यह ! विरुद्ध फल देनेवाले पापसे मेरी रक्षा करो १८

समद्रे ते हृदयमपस्वन्तः सन्त्वा विरुन्तोपधी-
रुतापः । सुप्रित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दु-

द्विभिप्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्दोष्टि यन्त्रं
घृणन्दिप्तः ॥ १९ ॥

इसमें ४ मं० हैं । जिनमें १ मं० संयुक्ते इत्यादिसे यजमान
अवष्टयस्थानसे दो चरण चले इसकी व्याख्या अ० ८ मं० २१
में होगई । दूसरे मंत्र सुभिप्रिया इत्यादिसे उत्तरमुख होकर जल
की अंजुलिलेय । तीसरे दुर्भिप्रिया इत्यादिसे जिधर शत्रु रहतेहों
उस दिशामें अंजुलिहालदेय, इसकी व्याख्या १। २२ में होगई १९
द्वुपदादि च सुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।

पूतस्पृषिष्रेणेवाज्यमपः शुन्धन्तु मेनसः ॥ २० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, आप दे० है । पत्नी सहित
यजमान कर्मसमयमें धारण किये वस्त्रोंको त्यागै । मंत्रार्थ—(आपः
मा, एतसः, शुन्धन्तु) जल देवता सुभक्तों पापसे पवित्र करै (इव
द्वुपदात्, सुमुचानः) जैसे पुरुष सहजमें ही खड़ाऊँ से अलग हो
जातेहैं (इव, स्विन्नः, स्नातः, मलात्) अथवा जैसे किसीको
पसीना आरहा हो वह पुरुष स्नान करनेपर मैलसे मुक्त होजाता
है (या, पविष्रेण, पूतं, आज्यम्) अथवा जैसे ऊनी वस्त्रमें छाना
हुआ पृथ मलसे रहित होजाताहै ॥ २० ॥

उद्वपन्तमस्तपस्विः पश्यन्त उत्तरंम् । देव-

देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

इसका प्रस्तुत ऋ०, अनु० छ०, सूर्य दे० है । जलमेंसे निकलै
मंत्रार्थ—(तमसः, परि, उत्तमं, स्वः, पश्यन्तः, वयं, देवत्रा, देवं
सूर्यं, उत्तमं, ज्योतिः, उद्वपन्म) अन्धकारमय लोकसे परमश्रेष्ठ
स्वर्गलोकको देखतेहुए हम देवलोकमें सूर्यदेवताको देखतेहुए श्रेष्ठ
महज्योतिको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥

अपो अद्यान्वचारिष्ये रमेन समेष्टमहि ।

पपस्वानग्न आगन्तन्मासधैः सृज वचीसा प्रजया

च धनेन च ॥ २२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । यजमान आ-

हवनीयका उपस्थान करै। मंत्रार्थ—(अग्ने, अद्य, अपः, अन्वचारि-
पम्) हे अग्ने ! आज मैंने जलकर्मको पूर्ण किया अर्थात् अवभृथ
कर्मसे जलको बिछोड़ा है (रसेन, समसृक्षमहि) जलके रससे
संयुक्त हुआ हूँ (पयस्वान्, आगमम्) जलवान् आया हूँ (तं, मा
वर्चसा, च, प्रजया, च, धनेन, संसृज) ऐसे मुझको तेजसे, पुत्र
पौत्रादिसे तथा सुवर्णादि धनसे संयुक्त करो ॥ २२ ॥

ऐधोस्पेधिपीमहि समिदमि तेजोमि तेजो मयि
धेहि समार्धवर्त्ति पृथिवी समुपाः समु सूर्यः ।
समु विद्वंमिदं जगत् । वैश्वानरज्योतिर्भूयासं
वितृन्कामान्व्यश्नवै ऋः स्वाहा ॥ २३ ॥

इसमें ४ मंत्र हैं । सवका मात्रा ० ऋ०, १ । २ का मात्रा ० वृ०
१ । ४ का मात्रा ० उ० ऋ०, १ । २ का समिध देवता । ३ । ४
का, अग्नि दे० है । आहुतिके निमित्त समिधा उठावै । मंत्रार्थ (एधः,
एधिपीमहि) हे समिध तुम प्रकाश करनेवाले हो, तुम्हारे अनु-
ग्रहसे मैं धनादिकी वृद्धिको पाऊँ । यह समिधा आहवनीयमें
झोड़नेको उद्यत होय (समिध, असि, तेजः, असि, मयि, तेजः,
धेहि) हे समिधा तुम पूर्ण प्रकाश करनेवाली हो तुम तेजःस्वरूप
हो, मुझमें तेजको धारण करो । समिधामें घी लगावै—पृथिवी,
समार्धवर्त्ति) पृथिवी प्रतिलक्षण परिवर्त्तनशील है (उपाः, समु)
प्रभातकाल अतिजाते रहते हैं (सूर्यः, उ, समु) सूर्य भी वार २
उदित और अस्त होते हैं (इदं, विश्वम्, जगत्, उ, समु) यह सब
संसारभी आवागमनशील है कुछ भी स्थिर नहीं है । उस
समिधाको अग्निमें होमै—(वैश्वानरज्योतिः, भूयासम्) सकल
कामनाओंको पानेके निमित्त मैं सकल प्राणियोंके हितकारी परमा-
त्माकी उशोतिको माता हूँ (विभून्, कामान्, व्यश्नवै) बहुतसे मनो-
रथोंको पाऊँ (भूः, स्वाहा) सत्स्वरूप ब्रह्मको दी हुई यह आहुति
अलेपकार गृहीत हो ॥ २३ ॥

अभ्याद्वामि समिधमग्ने व्रतं पते त्वायि । व्रतं

श्रद्धावोपैमीन्धे त्वां दीक्षितो अहम् ॥ २४ ॥

इसका अश्वतराशी ऋ०, ति० अनु० छं० अग्नि दे० है ।
अग्न्याधान और ब्रह्मवरणके अनन्तर यजमान आहवनीयाग्निमें
तीन समिधा छोड़ै । मंत्रार्थ—(व्रतपते, अग्ने, समिधं, त्वयि,
अभ्यादधामि) हे कर्मके पालक अग्ने ! यह समिधा तुममें स्था-
पन करता हूँ (दीक्षिताः, अहं, व्रतं, च, अद्वां उपैमि) यज्ञमें
दीक्षिताहूआ में कर्म और धद्धाको प्राप्त होता हूँ (त्वा, इन्धे
च) और तुमको प्रदीक्षणी करता हूँ ॥ २४ ॥

यत्र ब्रह्मं च क्षत्रञ्च सम्पञ्चौ चरतः सहस्रल्लो-

कम्पुण्यम्प्रज्ञेयं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ २५ ॥

इसका अश्वतराशी ऋ०, अनु० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(यत्र, ब्रह्म, च, क्षत्रञ्च, सह, सम्पञ्चौ, चरतः) जहाँ
ब्राह्मण और क्षत्रियजाति भी साथ एकमन होकर विचरते हैं (यत्र
देवाः, अग्निना, सह) जहाँ देवता अग्निके साथ निवास करते हैं
(तं, पुण्यं, लोकं, प्रज्ञेयम्) उस पवित्र स्वर्गलोकको मैं पाऊँ १५

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्पञ्चौ चरतः सह । तं-

ल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेयं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥ २६ ॥

इसका ऋष्यादि २१ वें मंत्रकी समान है । मंत्रार्थ—(यत्र, इन्द्रः
च, वायुः, च, सह, सम्पञ्चौ, चरतः) जहाँ इन्द्र और वायु भी
साथ एकमन होकर विचरते हैं (यत्र, सेदिः, न. विद्यते) जहाँ
अन्न पानेके निमित्त दुःख नहीं है (तं, पुण्यं, लोकं, प्रज्ञेयम्) उस
पवित्र लोकको मैं प्राप्त होऊँ ॥ २६ ॥

अधिशुना ते अधिशुः पृच्यताम्परुषा परुः ।

गन्धस्ते सोममवतु मदीय रसो अच्युतः ॥ २७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छं०, सुरा दे० है । इस मंत्र से
रसको मिलावै । मंत्रार्थ—(तं, अधिशुः, अधिशुना) हे महीपथिरस !
तुम्हारा भाग सोमके भागसे मिलै (परुः, परुषा, पृच्यताम्)
तुम्हारा पर्व सोमके पर्वसे मिलै (तव, गन्धः, अच्युतः,) तुम्हारा

गन्ध अविनाशी हो (रसः, मदोय) रस हर्षभाप्तिके निमित्त हो
(सोमं, अबतु) सोमसे आलिंगन करो ॥ १७ ॥

सिञ्चन्ति परिपिबन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च
सुरायै चम्रै मदे किन्त्वौ वदति किन्त्वः ॥ २८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । पवित्र किये रसको ग्रहण करे । मंत्रार्थ
(वभ्रूवै, सुरायै, मदे, किन्त्वः, किन्त्वः, वदति) बलकीधारक कपिलवर्ण
महोपधियोंके रसपानसे प्रसन्नतामें स्थित हुआ इन्द्र, तुम किस
के तुम किसके हो ऐसा कहगाहै (सिञ्चन्ति) इसकारण उसको
पात्रमें ऋत्विज सींचतेहैं (परिपिबन्ति) दूधसे सींचतेहैं (उत्सि-
ञ्चन्ति) ग्रहोंसे सींचते हैं (च, पुनन्ति) पावन सुवर्ण आदिसे
पवित्र करतेहैं ॥ २८ ॥

धानावन्तं करम्भिणामपूपवन्तमुक्रुधिनम् । इन्द्रं
मातउजुपस्व नः ॥ २९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है । खीलोंका
होम करे—(इन्द्रः, मातः, नः, धानावन्तं, करम्भिणं, अपूपवन्तं,
उजिषतं, जुपस्व) हे इन्द्र ! मातःकाल हमारी खीलों से युक्त
दही, सप्त और मालहुए आदिसे युक्त स्तुतिके साथ पुरोडाश
को सेवन करो ॥ २९ ॥

बृहदिन्द्राय गायतु मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन
उपोतिरजपन्तुनावृषो देवन्देवाय जागृवि ॥ ३० ॥

इसका वृमेध पुरुषमेध ऋ०, बृह० न०, इन्द्र दे० है । ब्रह्मा
इस मंत्रसे सामगान करे । मंत्रार्थ—(मरुतः, इन्द्राय, वृत्रहन्तमं
वृहत्साम, गायत) हे ऋत्विजों ! इन्द्रके निमित्त अति पापनाशक
वा वृत्रासुर नाशक बृहत्सामको गाओ (ऋतावृषः, येन, देवाय,
देवं, जागृवि, उपोतिः, अजनयन्) यज्ञकी वृद्धि करनेवाले देवता
वा ऋत्विजोंने जिस सामगानसे इन्द्रके निमित्त दीप्तिमान जागते
हुए अविनाशी तेजको प्राप्ति कराया अर्थात् सामगानसे इन्द्रते
जस्वी होताहै ॥ ३० ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आनय ।

पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

इसका गजा० ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है। दुग्धको अभि-
मंत्रित करे। मंत्रार्थ—(अध्वर्यो, अद्रिभिः, सुतं, सोमं, पवित्रे, आनय)
हे अध्वर्यु! तुम पत्थरोंमें अभिपुन सोमको पवित्रमें लाओ (इन्द्रस्य,
पातवे, पुनाहि) इन्द्रके पीनेके लिये पवित्र करो ॥ ३१ ॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिन्ल्लोका अधिधिताः ।

य इदं महतो महास्तेन गृह्णामि त्वामहमाधि
गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

इसका कौण्डिन्य ऋ०, पौकं छ०, ग्रह दे० है। ग्रहको ग्रहण
करे। मंत्रार्थ—(यः, भूतानां, अधिपतिः) जो प्राणियोंका पालन
करनेवाला है (यस्मिन्, लोकाः, अधिधिताः) भूआदि लोक
जिस परमात्माके आश्रयसे ठहरे हुए हैं (यः, महान् महतः, इदं)
जो सबसे बड़ा और बड़ोंका भी नियन्ता है (अहं, तेन, त्वा, गृह्-
णामि) हे ग्रह उसी परमात्माकी आज्ञा अनुसार मैं उस परमात्मा
के अनुग्रह से तुझको ग्रहण करता हूँ (अहं, त्वा, माधि, गृह्णामि)
मैं तुझको परमात्मभावको प्राप्त हुए अपनेमें ग्रहण करता हूँ ॥ ३२ ॥

उपयामगृहीतोऽप्यग्निषभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वे-

न्द्राय त्वा सुत्राग्णा एष ते योनिरग्निषभ्यान्त्वा

सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राग्णौ ॥ ३३ ॥

इसका व्याख्या अ० १० मं० २ में होगई ॥ ३३ ॥

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः ओत्रपाश्च मे ।

वाचो मे विश्वभेषजो मनसोसि विलायकः ॥ ३४ ॥

इसका गजा० ऋ०, अनु० छ०, ग्रह दे० है। हुतशेषको सूँघे
वा भक्षण करे। मंत्रार्थ—(मे, प्राणपाः, अपानपाः, चक्षुष्पाः,
च, मे, ओत्रपाः, मे, वाचः, विश्वभेषजः, च, मनसः, विलायकः
असि) हे ग्रह वा हे परमात्मन ! तुन मेरे प्राणोंके रक्षक अपान
वायुके रक्षक, नेत्रोंके रक्षक, ओत्रोंके रक्षक, मेरी वांणीरूप, सकल

आषधोमे मधान तथा मेर मनको विषयोसे हटाकर आत्मस्वरूप में स्थापन करनेवाले हो ॥ ३४ ॥

अश्विनकृत्तस्य ते सरस्वतिकृत्तस्येन्द्रेण सुत्रा-

म्णा कृतस्य । उपहृत उपहृतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

इसका मन्त्रा० ऋ०, उपरिष्ठात् वृद्धी छ०, ग्रह दे० है । मन्त्रार्थ— (उपहृतः, अश्विनकृत्तस्य, सरस्वतिकृत्तस्य, सुत्रा म्णा, इन्द्रेण, कृत्तस्य, उपहृतस्य, ते, भक्षयामि) हे ग्रह ! आज्ञा पायाहुभा मैं अश्विनी कुमारसे संस्कार कियेहुए, सरस्वतीके प्रस्तुत कियेहुए रक्षा करने वाने इन्द्रसे संस्कार किये वा देखेहुए और ऋत्विजोंसे आवाहन कियेहुए तुझको भक्षण करता हूँ ॥ ३५ ॥

समिद्ध इन्द्रं उपमामनीके पुरोरुचा पूर्वकृत्ता-

वृधानः । त्रिभिर्देवेस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान

घृत्रं वि दुरा विववार ॥ ३६ ॥

इसका आगिरस ऋ०, त्रि० छ०, इन्द्र दे० है । ग्यारह मंत्रों से ऐन्द्रनामक आग्नेयमियाजयाज्य करै । मन्त्रार्थ— समिद्धः, उपसां, अनीके, पुरोरुचा, पूर्वकृत्, त्रिभिः, त्रिंशता, देवैः, वावृधानः, वज्रबाहुः, इन्द्रः, घृत्रं, जघान) भलेप्रकारसे दीप्त उपःकालके मुख अर्थात् प्रातःकालके समय आग्ने चननेवाले प्रकाशसे सूर्य-रूपसे पूर्वदिशाका प्रकाशित करनेवाले तीन और तीस अर्थात् नैतीस देवताओंके साथ घृद्धि पानेवाले वज्रधारी इन्द्रने घृत्रासुर वा मेघ को ताड़न किया (दुराः, विववार) मेघोंके सोलों वा दैत्यपुरीके द्वारको सूना किया वा खोला ॥ ३६ ॥

नराशंसः प्रति शूरो गिमानुस्तनूनपात्प्रति

पुत्रस्य धाम । गोर्नित्रिपावान्मधुना समञ्जन्निहिर-

ण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ ३७ ॥

इसका आगिरस ऋ०, त्रि० छ०, तनूनपात् दे० है । मन्त्रार्थ— (नराशंसः, शूराः, यज्ञस्य, धाम, प्रतिगिमानः, तनूनपात्, गोभिः, वपावान्, मधुना, समञ्जन्, निहिरण्यैः, चन्द्री, प्रचेताः, प्रतियजति)

तु विश्ववेदाः । वाधेतान्द्वेषो अभयं कृणोतु सुवी-
र्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

इसका गर्ग ऋ०, भुरिक् पंक्ति छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ—
(सुदामा, स्ववान्, विश्ववेदाः, इन्द्रः, अवीभिः, सुमृडीकः, भवतु)
सुरक्षक, धनवान्, सर्वज्ञ इन्द्र अन्नोंके द्वारा सुखकारी हों (द्वेषः,
वाधतां) हमारे दुर्भाग्यको दूर करे (अभयं, कृणोतु) हमको
अभय देय (सुवीर्यस्य, पतयः, स्याम) हम श्रेष्ठ धनके स्वामी हों
अथवा सुपुत्रवान् हों ॥ ५१ ॥

तस्य वयस्य सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे
स्याम । स सुत्रामा स्ववान् ॥ इन्द्रोऽअस्मेऽआरा
ध्विद्वेदेषः सनुतर्णुयातु ॥ ५२ ॥

इसका गर्ग ऋ०, पंक्ति छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ—(वयः,
तस्य, यज्ञियस्य, सुमतौ, स्याम) हम उस यज्ञका सम्पादन करने
वाले इन्द्रकी सुमतिमें प्राप्त हों (भद्रे, सौमनसे, अपि) कल्याण
रूप श्रेष्ठ मनमें भी स्थित हों अर्थात् इन्द्र हमारे मनको सुमति
और कल्याणसे युक्त करे (सः, सुत्रामा, स्ववान्, इन्द्रः, अस्मे
आराध, ध्वि, द्वेषः, सनुतः, पुयातु) वह सुरक्षक, धनवान् इन्द्र
हम से दूर स्थितभी जोकुछ दुर्भाग्य हो उसको अन्तर्हित करके
दूर करे ॥ ५२ ॥

आमन्त्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा
त्वा केचिन्नियमन्विज पाशिनोऽतिघन्वेव तान्
हंहि ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, वृहती छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ—
इन्द्र, मन्त्रैः, मयूररोमभिः, हरिभिः, आयाहि) हे इन्द्र !
गम्भीर दिनहिनाहट और मोरकी समान रोमवाले अपने घोड़ों
के द्वारा यहाँ आइये (केचित्, त्वा, मा, नियमन्) कोईभी आते
हुए तुमको बाधा नहीं देसकता (न, पाशिनः, विम्) जैसे पाश
धारी व्याधे पशुको पकड़ते हैं (तान्, घन्व, इव, अतीरिह) उन

को महभूमिकी समान लाँघकर आओ ॥ ५३ ॥

एवेदिन्द्रं घृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्च-
न्त्यर्कैः स नस्तुतो वीरवद्धातु गोमधूपम्पात
स्वस्तिभिः सदा न ॥ ५४ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, त्रि० छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ—(वसिष्ठा-
सा, एव, इत्, अर्कैः, घृषणं, वज्रबाहुं, इन्द्रं, अभ्यर्चन्ति) परम
ब्रह्मविचारपरायण महर्षि इसप्रकार ही मंत्रोंके द्वारा मनोरथ पूर्ण
करनेवाले वज्रधारी इन्द्रकी अर्चना करते हैं (सः, स्तुतः, वीर-
वद्ध, गोमधु, नः, धातु) वह स्तुतिको प्राप्त हुआ पुत्रयुक्त गोधन
युक्त हममें स्थापन करे (यूयं, स्वस्तिभिः, नः, सदा, पात) हे
शक्तिशाली ! तुम अनेकों कल्याणोंके द्वारा निरन्तर हमारी
रक्षा करो ॥ ५४ ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घृमो विराट्सुतः ।

दुहे धेनुः सरस्वती सोमं धि शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

इसका विदर्भ ऋ०, अनु० छं०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है ।
मंत्रार्थ—(इन आपिय मंत्रोंका पढ़—(अश्विना, अग्निः, समिद्धः)
हे अश्विनीकुमारों अग्नि पदीश हुआ (घर्मः, तप्तः) प्रवर्ध-
वत्स हुआ (विराट्, सुतः) विराजमान सोम अभिपुत्र किया
गया (धेनुः, सरस्वती, इह, शुक्रं, इन्द्रियं, सोमं, दुहे) वृत्त करने
वाली धेनुरूपा सरस्वती देवीने इस यज्ञमें शुद्ध इन्द्रियोंके निमित्त
बलदायक सोमको दुहा ॥ ५५ ॥

तनूपा भिषजा सुतोऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा

रजांश्च सीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

इसका विदर्भ ऋ०, विराट् अनु० छं०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे०
है । मंत्रार्थ—(तनूपा, भिषजा, उभा, अश्विना, सरस्वती, मध्वा
रजांश्च, सुते, पथिभिः, इन्द्राय, इन्द्रियं, वहान्) शरीरके रक्षक
वैद्य दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वती देवी मधु से लोकोंको
पूर्ण करती हैं सोमका अभिपव होनेपर उसको मार्गोंमें इन्द्रकी

इन्द्रियांकी इन्द्रिके निमित्त वहन करते हैं ॥ ५६ ॥

इन्द्रायेन्दुं सरस्वतीं नराशंसैर्न नमनहुम् ।

अधातामश्विना मधुं भेषजमभ्यपजां सुते ॥ ५७ ॥

इसका विदभि ऋ० अनु० छ० अश्विसंस्वतीन्द्र दे० है ।
मंत्रार्थ—(सरस्वती, नराशंसेन, इन्द्राय, इन्दुं, नमनहुं, भिपजा
अश्विना, सुते, मधु, भेषजं, अधाताम्) सरस्वतीने यज्ञके साथ
इन्द्रके निमित्त सोमनामक महीपथके कन्दको धारण किया
और वैद्य अश्विनीकुमारोंने अभिपुत होनेपर इस मधुर औष-
धिको धारण किया ॥ ५७ ॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्राग्निन्द्रियाणि वीर्यम् ।

इडाभिरश्विनाधिपथं समृज्जथ सथग्धिन्दधुः ॥ ५८ ॥

इसका विदभि ऋ०, नि० अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे०
है । मंत्रार्थ—(आजुह्वाना, सरस्वती, अश्विनी, इन्द्राय, इन्द्रियाणि
वीर्यम्, सन्दधुः) इन्द्रको बुलाती हुई सरस्वती और अश्विनी
कुमारोंने इन्द्रके निमित्त चक्षु आदि इन्द्रिय और सामर्थ्यको
स्थापन किया (इडाभिः इपं, ऊर्म, रयि, सम्) जो आदि पशु-
ओंसहित अन्न, दही आदि रस और धनको स्थापन किया ५८

अश्विना नमुचेः सुतथ सोमथ शुक्रस्पृष्टिमुता ।

सरस्वती तमाभरद्दुर्हिपेन्द्राय पानवे ॥ ५९ ॥

इसका विदभि ऋ०, अनु० छ० अश्वि० दे० है । मंत्रार्थ
(अश्विनी, पमिमुता, सुते, शुक्रं, सोमं नमुचेः, सरस्वती) अश्विनी
कुमारोंके द्वारा महीपथके रसोंक साथ अभिपुन पवित्र सोम
को नमुचि अश्वर वा पापसे सरस्वतीने हरण किया (तं, इन्द्राय,
पानवे, वरिहिया, अमरत्) उसका इन्द्रकी रसोंके निमित्त कुशाओं
पर धारण किया ॥ ५९ ॥

कुचप्लो न व्यचेस्वतीरश्विभ्यान्तदुरो दिशः ।

हन्तो नरादेसी जुभे दुहे कृमिान्तसरस्वती ॥ ६० ॥

इसका विद० ऋ०, अनु० छ०, अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ—अश्विभ्यां, सरस्वती, न, इन्द्रः, उषे, रोदसी, न, कविष्यः, व्यचस्वतीः, दुरः, न, दिशः कामान्, दुहे) अश्विनीकुमारोंके साथ सरस्वतीने और इन्द्रने दोनों पृथिवी और विद्रयुक्त तथा अवकाशयुक्त यज्ञीय द्वार और सब दिशाओंसे कापनाओं को दुहा ॥ ६० ॥

उपासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः ।

सज्जानाने सुपेशसा समञ्जाने सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

इसका विद० ऋ०, अनु० छ०, अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (सरस्वत्या, अश्विना. सज्जानाने, सुपेशसा, उपासा, नक्तं. दिवा, सायं इन्द्रं इन्द्रियैः, समञ्जाने) सरस्वतीके साथ अश्विनीकुमार एकमग होकर सुन्दर रूपवाले उपःकाल, रात्रि, दिन और सायं काल के समय इन्द्रको सामर्थ्यसे संयुक्त करते हैं ॥ ६१ ॥

प्रातनो अश्विना दिवा प्राहि नक्तं सरस्वति । देव्या होतारा भिपजा प्रातमिन्द्रं सचा सुते ॥ ६२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(अश्विना, दिवा, नः, प्रातम्) हे अश्विनीकुमारों दिनमें हमारी रक्षा करो (सरस्वति, नक्तं, प्राहि) हे सरस्वती तुम रात्रिमें रक्षा करो (देव्या, होतारा, भिपजा, सुते, सचा, इन्द्रं, प्रातम्) हे देवसम्बन्धीहोताओं, वैद्य अश्विनीकुमारों ! सोमके अभियुत होनेपर इकट्ठे होकर इन्द्रकी रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तिस्रस्त्रेणा सरस्वत्याश्विना भारतीता । तीव्र-

स्पर्शितुता सोममिन्द्राय सुपुवर्मदम् ॥ ६३ ॥

इसका विद० ऋ० अनु० छ० अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (प्रेषा, सरस्वती, भारती, इडा, तिस्रः, अश्विना, परिश्रुता, तीव्रं, मर्दं, इन्द्रं, सोमाय, सुपुवुः) तीनप्रकारसे स्थित अर्थात् मध्यस्थानों में सरस्वती शुलाकमें भारती और पृथिवीपर इडा इन तीनों अश्विनीकुमारोंके द्वारा महीपथोंके रससंयुक्त अधिक दूषित करनेवाले सोमका अभिपवण किया गया ॥ ६३ ॥

अग्निना भेषजमधु भेषजन्नस्वरस्वती । इन्द्रे
त्वष्टा यशः श्रियं रूपां रूपां मधुः सुते ॥ ६४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(सुते, नः, इन्द्रे. आश्विना, भेषजं, सरस्वती, मधु, भेषजं, त्वष्टा, यशः, श्रियं, रूपंरूपं, अधुः) सोम का अभिषेक होनेपर हमारे इन्द्रमें आश्विनीकुमारने महीपथि, सरस्वतीने मधुरूप औषध, त्वष्टा देवताने कीर्ति लक्ष्मी और अनेक प्रकारके रूप स्थापन किये ॥ ६४ ॥

क्षतधेन्द्रो घनस्पतिः शशमानः परिमुता ।

प्रीत्यालंभस्विभ्याममधुं दुहे धनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(घनस्पतिः, इन्द्रः, शशमानः, षड्रुथा, परिमुता, कीर्त्यालं, इन्द्रः, अश्विभ्यां, सरस्वती, धेनुः, म .. दुहे) पञ्चदेवता इन्द्र स्तुतिको प्राप्त होगातुष्टा प्रत्येक ऋतुमें महीपथीके रसके साथ अन्नके रसको इन्द्रके निमित्त देना-तुष्टा तथा आश्विनीकुमारों सहित सरस्वतीने धेनुरूप होकर इन्द्र के निमित्त मधुको दुहा ॥ ६५ ॥

गोधिर्न सोममग्निना माभरेण परिमुता । समं-

धानं सरस्वत्या स्वाहेन्द्रै सुतममधुं ॥ ६६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(आश्विना, सरस्वत्या, गोभिः, परिमुता, सुतं, मधु, सोमं, इन्द्रे, समधानं, स्वाहा) हे आश्विनी कुमारों ! तुम सास्वतीके साथ दूध घृत आदिके द्वारा महीपथीके रसमें अभिषेक मधुर सोमको इन्द्रके निमित्त स्थापन करो, उसका भेष होन हो ॥ ६६ ॥

अग्निना वृषिरिन्द्रिगन्धुर्जैर्द्विषा सरस्वती ।

आशुक्रमासुराहसुं मुयमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

इसका निद० ऋ०, प्र०, अनु० छ०, अश्वि० देवता है । मंत्रार्थ—(आश्विना, सरस्वती, धिया, नमुने, आसुरान्, इन्द्राय, शुक्रं, द्विषः, इन्द्रियं, नयं वसु, आजभ्रिरे) आश्विनीकुमार और सरस्वतीने बुद्धिपूर्वक नमुचि नामक द्रव्यसे इन्द्रके निमित्त शुद्ध हवि प्रकृति और पूजनीय धन आदिरण किया ॥ ६७ ॥